विश्व का इतिहास

विश्व का इतिहास

लेखक
डा० शान्तिलाल नागौरी

प्रकाशक
बाफना बुक डिपो
चौड़ा रास्ता, जयपुर 3

विश्व का इतिहास

प्रकाशक वाफना बुक डिपो, जयपुर

मुद्रक राजस्थान कम्पोजिंग सैन्टर, जयपुर

संस्करण नवम्बर 1981

मूल्य पिचहत्तर रुपये मात्र

विषय सूची

कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न

अध्याय 1 मध्यकालीन चर्च

1 मध्यकालीन चर्च व्यवस्था का वर्णन कीजिए।
2 धर्म युद्धों के क्या कारण थे ? उनके प्रभावों का वर्णन कीजिए।
3 अभिषेक संघर्ष से आप क्या समझते हैं ? इस संघर्ष के कारणों और घटनाओं पर प्रकाश डालिए।
4 मध्यकालीन यूरोप को चर्च की क्या देन है ? स्पष्ट कीजिए।
5 निम्न पर टिप्पणियां लिखिए —
   (i) चर्च के उत्कर्ष के कारण (ii) वर्मस समझौता (iii) चर्च व राज्य के बीच संघर्ष के कारण।

अध्याय 2 सामन्तवाद

1 सामन्तवाद के लाभ दोषों का वर्णन कीजिए।
2 सामन्तवाद के पतन के कारणों का उल्लेख कीजिए।
3 सामन्तवाद का क्या तात्पर्य है ? इसके विकास के कारणों पर प्रकाश डालिए।
4 'इतिहास की अधिकांश आर्थिक और सामाजिक रचनाओं के समान सामन्तवाद भी स्थान, समय और मानव स्वभाव की आवश्यकताओं के अनुकूल था'' इस कथन की पुष्टि कीजिए।
5 निम्न पर टिप्पणियां लिखिए —
   (i) मानमन, (ii) कृषक दास की स्थिति, (iii) सामन्तों के कर्त्तव्य, (iv) सामन्तों का चर्चों के साथ सम्बन्ध

अध्याय 3 पुनर्जागरण

1 पुनर्जागरण से क्या तात्पर्य है ? इसके कारणों पर प्रकाश डालते हुए यह स्पष्ट कीजिए कि इसका सर्वप्रथम प्रारम्भ इटली में क्यों हुआ ?
2 पुनर्जागरण की विशेषताएँ क्या हैं ? इसका यूरोप की कला व साहित्य पर क्या प्रभाव पड़ा ?
3 पुनर्जागरण के कारणों और परिणामों पर प्रकाश डालिए।
4 निम्न पर टिप्पणियां लिखिए —
   (i) मानववाद (ii) पुनर्जागरणकालीन कला (iii) भौगोलिक खोजों के कारण (iv) गेलीलियो (v) मार्टिन लूथर

अध्याय 4 धम सुधार आन्दोलन

1 धम सुधार आ नोलन ग आप क्या समझते ह ? इसके कारणो और परिणामो का वणन कीजिए ।
2 मार्टिन लूथर कौन था ? धम सुधार आ न्दोलन म उसकी भूमिका का वणन कीजिए ।
3 प्रतिवादात्मक धम सुधार स क्या आशय है ? इसक द्वारा कथोलिक धम म किए गए सुधारो का वणन कीजिए ।
4 "धम सुधार आन्दोलन पोप की सासारिकता और भ्रष्टाचार के विरुद्ध एक नतिक विद्रोह था इस कथन की स्पष्ट कीजिए ।
5 निम्न पर सक्षिप्त टिप्पणिया लिखिए —
   (i) मार्टिन लुथर (ii) जेसुइट सस्था (iii) पाप मोचन पत्र
   (iv) काल्विन (v) पाप लियो दशम

अध्याय 5 फ्रास की राज्य क्राति

1 'फ्रास की राज्य क्राति के अनक गम्भीर कारण थ' इस कथन की पुष्टि म फ्रास की राज्य क्राति क कारणो का उल्लख कीजिए ।
2 फ्रास की राज्य क्रानि वहा के सामन्तो क अत्याचारो क विरुद्ध एक क्राति थी इस कथन को स्पष्ट कीजिए ।
3 फ्रासीसी क्राति के विकास त विभिन्न चरणो का उल्लेख कीजिए ।
4 फ्रास की राज्य क्राति के परिणामो पर प्रकाश डालिए ।
5 निम्न पर टिप्पणिया लिखिए —
   (i) स्टेटस जनरल (ii) नेशनल क न्वेशन (iii) आतक का राज्य (iv) रोबसपियर (v) रूसो (vi) दाते (vii) बस्टाइल जेल का पतन

अध्याय 6 नेपोलियन बोनापाट

1 नपोलियन की फ्रास की राज्य क्राति म क्या भूमिका रही ? प्रकाश डालिए ।
2 नपोलियन के आ तरिक सुधारो का वणन कीजिए ।
3 नेपोलियन के पतन के कारणो पर प्रकाश डालिए ।
4 निम्नलिखित पर टिप्पणिया लिखिए —
   (i) महाद्वीपीय व्यवस्था (ii) प्रायद्वीप का युद्ध (iii) वाटरलू का युद्ध (iv) रूस का अभियान

अध्याय 7 औद्योगिक क्राति

1 औद्योगिक क्राति स क्या समझते हैं ? इसके क्या कारण थे ?
2 औद्योगिक क्राति सवप्रथम इगलण्ड म ही क्यो हुई ? स्पष्ट कीजिए ।

3 औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व यूरोप की दशा का वर्णन कीजिए।

4 औद्योगिक क्रान्ति के क्या कारण थे ? उसके सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक प्रभावों का वर्णन कीजिए।

5 "औद्योगिक क्रान्ति यान्त्रिक शक्ति है और यन्त्रों के आविष्कार का परिणाम है" इस कथन पर प्रकाश डालिए।

6 निम्नलिखित पर टिप्पणियां लिखिए --

(i) जेम्स वाट (ii) जान के (iii) वर्ग संघर्ष (iv) वस्त्र उद्योग में प्रगति।

अध्याय 8 राष्ट्रवाद (जर्मनी और इटली का एकीकरण)

1 "उन्नीसवीं शताब्दी में राष्ट्रवाद यूरोप की प्रबलतम शक्ति थी' इस कथन की पुष्टि उदाहरणों द्वारा कीजिए।

2 इटली के एकीकरण में मजिनी, कावूर और गेरीवाल्डी का क्या योगदान रहा ? इसका संक्षेप में वर्णन कीजिए।

3 "जर्मनी का एकीकरण भाषणों और बहुमतों से नहीं रक्त और लोह से होगा' इस कथन की पुष्टि में बिस्मार्क द्वारा जर्मनी के एकीकरण के लिए किए गए कार्यों का वर्णन कीजिए।

4 जर्मनी के एकीकरण में बिस्मार्क के योगदान का वर्णन कीजिए।

5 फ्रांस प्रशा युद्ध के कारणों और परिणामों का वर्णन कीजिए।

6 निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए —

(i) विक्टर एमेनुअल (ii) सेडोवा का युद्ध (iii) युवा इटली की संस्था (iv) कावूर

अध्याय 9 साम्राज्यवाद

1 साम्राज्यवाद के विकास के कारणों और परिणामों पर प्रकाश डालिए।

2 अफ्रीका महाद्वीप का विभाजन यूरोपीय राज्यों में साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धा का परिणाम था" इस कथन पर प्रकाश डालिए।

3 अफ्रीका और एशिया में साम्राज्यवाद के प्रसार का वर्णन कीजिए।

4 टिप्पणियां लिखिए —

(i) अफ्रीका का विभाजन (ii) साम्राज्यवाद का अर्थ (iii) साम्राज्यवाद की विशेषताएँ

अध्याय 10 प्रथम विश्व युद्ध

1 प्रथम विश्व युद्ध के कारणों और परिणामों का वर्णन कीजिए।

2 1900 ई० से 1914 ई० तक के बीच अन्तर्राष्ट्रीय संकटों का वर्णन कीजिए।

3 वर्साय की संधि का आलोचनात्मक वर्णन कीजिए।

4 विल्सन के चौन्ह सिद्धान्ता का वर्साय की सधि म कहा तक पालन किया गया। स्पष्ट कीजिए।

5 टिप्पणिया लिखिए —

(i) द्विगुट (ii) मोरक्को सकट (iii) हेग सम्मलन (iv) बाल्कन सकट 1912—13 (v) विलियम द्वितीय की विश्व-नीति

अध्याय 11 रूस की क्राति, 1917

1 रूस की बोल्शेविक क्रान्ति (1917) के कारणो पर प्रकाश डालिए।

2 रूस की बोल्शेविक क्रान्ति (1917) के महत्व का वर्णन कीजिए।

3 "1905 ई० की क्रान्ति की असफलता ही 1917 ई० की क्रान्ति की सफलता का कारण थी इस कथन को स्पष्ट कीजिए।

4 रूस की बोल्शेविक क्रान्ति क कारणा और परिणामा का वर्णन कीजिए।

5 क्रान्ति स पूव रूस की आर्थिक सामाजिक व राजनीतिक दशा का वर्णन कीजिए।

6 निम्न पर टिप्पणिया लिखिए —

(i) लेनिन (ii) करेसकी (iii) स्टालिन (iv) रासपुटीन (x) नई आर्थिक नीति

अध्याय 12 राष्ट्रसघ

1 राष्ट्रसघ के उद्देश्या का वणन कीजिए तथा उसके विभिन्न अगों को सक्षेप म बनाइए।

2 राष्ट्रसघ अपने उद्देश्यो की प्राप्ति म कहा तक सफल रहा। स्पष्ट कीजिए।

3 राष्ट्रसघ की उपलब्धियो पर प्रकाश डालिए।

4 राष्ट्रसघ की असफलता क कारणा पर प्रकाश डालिए।

5 राष्ट्रसघ की सफलताओ और असफलताओ का वर्णन कीजिए।

6 टिप्पणियाँ लिखिए —

(i) अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय (ii) मन्डेट प्रणाली (iii) अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर सघ (iv) परिषद (v) राष्ट्रसघ के मानवीय काय

अध्याय 12 आधुनिक चीन

1 चीन क आधुनिकरण की विभिन्न स्थितियो का वणन कीजिए।

2 डॉ सनयातसेन का चीन की गणतन्त्रवादी क्रान्ति म क्या योगदान था? स्पष्ट कीजिए।

3 चीन की साम्यवादी क्रान्ति म माओत्से तुग के योगदान का वर्णन कीजिए।

4 चीन म साम्यवादी क्रांति के कारणों पर प्रकाश डालिए ।
5 चीनी गृह युद्ध म साम्यवादी क्रांति की सफलता के कारणा पर प्रकाश डालिए ।
6 निम्न पर टिप्पणिया लिखिए —
 (1) सनयात्सेन (11) च्याग काई शेक (111) माओत्सेतु ग
 (1V) मचूरिया सकट

अध्याय 14 जापान का आधुनिकरण

1 जापान के आधुनिकरण से क्या आशय है ? इसम मुत्सोहितो के योगदान का वर्णन कीजिए ।
2 'समस्त मानव इतिहास म किसी समय भी किसी राष्ट्र न इतनी तीव्र गति से उन्नति नही की जितनी की जापान ने" इस कथन के सन्दर्भ म आधुनिक काल के जापान की प्रगति का वणन कीजिए । (राज 1966)
3 दो विश्व-युद्धो के बीच जापान की साम्राज्यवादी नीति का वर्णन कीजिए ।
4 जापान के विश्व शक्ति के रूप म उदय के कारणा का उल्लेख कीजिए ।
5 टिप्पणिया लिखिए —
 (I) 1904–5 का रूसी-जापानी युद्ध
 (11) ब्रिटेन और जापान की सधि 1902
 (111) चीनी जापानी युद्ध 1894

अध्याय 15 द्वितीय विश्व युद्ध

1 जमनी मे हिटलर के उत्थान के कारणा पर प्रकाश डालिए ।
2 इटली मे मुसोलिनी के उत्थान के कारणो पर प्रकाश डालिए ।
3 द्वितीय विश्व-युद्ध के कारणा और परिणामा का वणन कीजिए ।
4 इगलैण्ड और फ्रास की तुष्टीकरण की नीति का वर्णन कीजिए ।
5 निम्न पर टिप्पणिया लिखिए —
 (1) रोम बर्लिन टोकियो धुरी
 (11) म्युनिक समझौता (111) स्पेन का गृह-युद्ध
 (1V) स्टालिन (V) बर्लिन

अध्याय 16 सयुक्त राष्ट्रसघ

1 सयुक्त राष्ट्रसघ के क्या उद्देश्य हैं ? उसे अपने उद्देश्यो की पूर्ति म कहा तक सफलता मिली । (राज० 1967)
2 सयुक्त राष्ट्रसघ के अगो तथा उसके कार्यों का वर्णन कीजिए ।
3 सयुक्त राष्ट्रसघ पर एक निबन्ध लिखिए ।

4 "संयुक्त राष्ट्रसंघ अराजनीतिक कार्यों में तो सफल रहा जबकि राजनीतिक समस्याओं के समाधान में असफल' इस कथन पर प्रकाश डालिए।

5 निम्न पर टिप्पणियां लिखिए —
(i) वीटो (ii) यूनेस्को (iii) संरक्षण परिषद (iv) अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय (v) विश्व स्वास्थ्य संगठन।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि

(अ) हिन्दी

1 एलिस आर जौन–संसार का इतिहास
2 गूच जी० पी० –आधुनिक यूरोप का इतिहास
3 ग्रान्ट और टम्परले–यूरोप का इतिहास उन्नीसवीं और 20वीं शताब्दी में
4 प्लट जीन और ड्रमंड–विश्व का इतिहास
5 नेहरू, जवाहरलाल–विश्व इतिहास की झलक
6 विनाके हैराल्ड० एम०–पूर्व एशिया का आधुनिक इतिहास
7 हजन–आधुनिक यूरोप का इतिहास

(ब) अंग्रेजी

1 आगस्टस लिंडले–दी हिस्ट्री आफ ताईपिंग रेवोल्यूशन
2 इजराइल ए सटीन–फ्राम ओपियम वार टू लिबरेशन
3 केटलबी–ए हिस्ट्री आफ माडर्न टाइम्स
4 क्लाइड०, पाल० एच०–दी फार इस्ट
5 कार ई० एच०–इन्टरनेशनल रिलेशन्स बिट्विन दी टू वर्ल्ड वार्स
6 गैथोन और हार्डी–ए हिस्ट्री आफ इन्टरनेशनल अफेयर्स
7 ग्रिसरोल्ड ए० विटनी–फार इस्टर्न पोलिसी आफ यूनाइटेड स्टेटस
8 गिबन्स, एच० ए०–यूरोप सिन्स, 1918
9 प्रो० गोबिन्स–मेकिंग आफ माडर्न जापान
10 टायनबी–ए स्टडी आफ हिस्ट्री
11 डेविस–वर्ल्ड हिस्ट्री
12 डेविस थोमसन–वर्ल्ड हिस्ट्री (1914–1945)
13 थोमसन डी०–यूरोप सिन्स नेपालियन
14 थोमसन जे० एम०–दी फ्रेंच रेवोल्यूशन
15 फे एस० बी० –दी ओरिजिन्स आफ दी वर्ल्ड वार
16 फिलीप–माडर्न यूरोप
17 बीच० डब्ल्यु० एन०–हिस्ट्री आफ दी वर्ल्ड

18 मैक्नल बनस-वैस्टन सिवनीनेशन्स
19 मारगे थो-पोलिटिक्स अमग नश न्स
20 मेरियट-दी रिमार्किंग आफ माडन यूराप
21 यनगा--जापान सिंस परी
22 लो-वेस-यूरोप सिन्स 1914
23 लैंगसम-दी वल्ड सिन्स 1919
24 लिप्सन-यूराप इन नान्नटिंथ एण्ड टुवनटिंथ सन्चरीज
25 वेल्स, एच० जी०-दी आउट लाइन आफ हिस्ट्री
26 शूमन-इन्टरनेशनल पोलिटिक्स
27 शविल-ए हिस्ट्री आफ यूरोप
28 सवाईन-ए हिस्ट्री आफ वल्ड सिवलीजेशन
29 साउथगट-हिस्ट्री आफ माडन यूराप
30 हनशा-सन कन्टम आफ यूरोपियन हिस्ट्री

1
मध्यकालीन-चर्च

मध्यकालीन युग में चर्च का समाज पर बहुत अधिक प्रभाव था। उसकी शक्ति पर किसी का नियन्त्रण नहीं था। उस समय चर्च प्रत्येक मनुष्य के मस्तिष्क पर छाया हुआ था। तीसरी शताब्दी में एक संत साईप्रियन ने चर्च के प्रभाव का वर्णन करते हुए लिखा है कि 'जो अपने को चर्च से पृथक रखता है, वह अपने को चर्च की आशाओं और प्रतिज्ञाओं से वंचित रखता है। वह एक विरोधी है अधार्मिक है शत्रु है। यदि वह चर्च को अपनी माता नहीं समझता, तो वह ईश्वर को किसी प्रकार भी पिता नहीं समझ सकता।' सेवाइन ने लिखा है कि 'मानव भाग्य पर इतना विस्तृत प्रभाव स्थापित करने वाली दूसरी संस्था की तलाश में मानव जाति का इतिहास व्यर्थ खोजा जा सकता है।'[1] बीच ने भी लिखा है कि 'जनता का दैनिक जीवन जन्म से बैप्टाइजेशन तक, विवाहों से अपराधों की क्षमा और मृत्यु से दफनाये जाने तक पूर्णतया उनके (पादरियों) हाथ में था, किन्तु कुछ जातियों के प्रयासों को छोड़कर इस लोकप्रिय धर्म में आध्यात्मिकता बहुत कम रह गई थी।'[2]

चर्च के पास अपार धन-सम्पत्ति थी। उसके अधिकारियों का राजनीति में बहुत अधिक प्रभाव था। चर्च का सर्वोच्च धर्माधिकारी पोप था जो ईसाई जगत के लिए ईश्वर के समान था। मध्यकालीन युग में यदि कोई भी ईसाई व्यक्ति ईसाई धर्म के सिद्धान्तों या चर्च के अधिकारियों का विरोध करता तो उसे गद्दार समझ कर मृत्यु दण्ड दिया जाता था। वेल्स ने लिखा है कि 'मध्यकालीन चर्च में पोप का उत्थान और पतन इस बात की कहानी है कि जिसमें एक संयुक्त धार्मिक संसार का निर्माण नहीं हो सका।'[3] गिरजाघरों की शक्ति का वर्णन करते हुए एलिस

1—सेवाइन—ए हिस्ट्री आफ वर्ल्ड सिविलीजेशन—पृ 321

2—बीच, डब्ल्यू एन—हिस्ट्री आफ दी वर्ल्ड—पृ 421

3—वेल्स एच जी—दी आउट लाइन आफ हिस्ट्री—पृ 688

और जीन न लिख है कि मध्यकालीन यूरोप का वास्तविक ज्ञान ईसाई चच का अध्ययन किये बिना सम्भव नही है। क्योंकि चच उस समय सबसे अधिक प्रभाव पूण सगठन था।'[1]

चच की स्थापना और उत्कष के कारण—रोमन साम्राज्य के पतन के पश्चात चच यूरोप की सबसे अधिक शक्तिशाली सस्था बन गई। प्लट और जीन ने लिखा है कि जब रोमन साम्राज्य टूटा, तब चच ने बहुत सी शासन शक्तिया हथिया ली। मध्ययुग म ईश्वर को पिता और चच को माता का सम्मान प्राप्त था। जब ईसाई धम का अपने सरल सिद्धान्तो एव सन्तो के बलिदानो के कारण सारे यूरोप मे प्रचार होने लगा, तब ईसाई धम के प्रचारको के उपासना करने के लिए चच का गठन किया। इस प्रकार बडे बडे नगरो शहरो और सभी स्थानो पर चच स्थापित किय गये। इन चर्चों के अपने अपने विधान और नियम बने हुये थे। नगरो के चर्चों म रहने वाले साधु अपना नेता चुन लते थे, जो विशप कहलाता था। नगरो के विशप मिलकर अपन प्रदेश के लिए एक अधिकारी का चुनाव करते थे जो आच विशप कहलाता था। प्रान्तीय आच विशप मिलकर सबस बडे पादरी को चुन लेते थ जो पोप कहलाता था। पोप धम का सर्वोच्च अधिकारी होता था और रोम के लेनोसा के महल म रहता था। इस प्रकार चच के गठन ने उसे शक्ति प्रदान की। जिस समय यूरोप म सामन्त आपस म लडने म व्यस्त थे उस समय चच ने अपनी जागीरो म वद्धि कर ली।

चच की शक्ति मे वद्धि के कारण—चच की शक्ति म वद्धि के प्रमुख कारण निम्नलिखित थ—

(1) प्रारम्भ म ईसाई सन्तो न इस धम के प्रचार के लिए अपने बलिदान दिय, जिसस यह धम जन साधारण म बहुत लोकप्रिय हो गया।

(2) रोमन सम्राट कान्सटेन्टाइन ने रोम के स्थान पर कान्सटेन्टीनोपल को अपनी राजधानी बनाया। इसम चच को अपनी शक्ति म वद्धि करने का अच्छा अवसर हाथ लगा। राज्य का अकुश हट जाने पर चच न स्वतन्त्र होने का प्रयास किया। रोमन साम्राज्य के पतन के काल मे चच न अपने प्रभाव म बहुत अधिक वद्धि की।

(3) जब शासक सामन्त और अमीर लोग विलासिता म डूबकर जन साधारण पर अमानुषिक अत्याचार कर रहे थे। तब पादरियो ने इन अत्याचारो का विरोध किया और जनता को शोषण से बचाने के लिए कानूनो का निर्माण

1—एलिस और जौन—ससार का इतिहास—पृ 180
2—प्लट जीन और डमड—विश्व का इतिहास—पृ 214

किया। पादरिया ने सप्ताह मे चार दिन युद्ध पर रोक लगा दी। ईस्टर स 40 दिन तक भी युद्धो पर प्रतिबन्ध लगा दिया। सामन्तो न पादरिया की व्यथ म युद्ध नही करने की बात को स्वीकार कर लिया। चच ने जन सेवा की भावना और शान्ति प्रियता की नीति स जनता म लाकप्रियता प्राप्त की। इस प्रकार चच का सामन्ता पर भी प्रभाव स्थापित हा गया।

(4) चच ने जनता को पारलौकिक जीवन को सुधारने के विषय म सन्देश दिया। इससे प्रभावित हाकर कुछ लोगो ने स्थायी रूप स चच म रहना शुरू कर दिया।

(5) पादरी चर्चों म विद्यार्थिया एव जनता को शिक्षा देने लगे और ईसाई धम का प्रचार करने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ ही समय में चच शिक्षा व सस्कृति के महत्वपूण केन्द्र बन गये।

(6) चच के नियमो का पालन करना प्रत्येक ईसाई के लिए आवश्यक था। नामकरण, विवाह और मृत्यु आदि सस्कार पादरियों क द्वारा सम्पन्न कराये जात थे। इसके अतिरिक्त प्रत्येक ईसाई के जीवन की प्रमुख धार्मिक क्रियायें पादरिया के द्वारा सम्पन्न कराई जाती थी। इन प्रतिबन्धा के कारण चच की शक्ति में काफी वद्धि हुई।

(7) सात सौ वर्षो तक यूरोप के किसी भी सम्राट न गिरजाघरा क अधिकारो को चुनौती देने का प्रयास नही किया। राजाओ की शक्ति कम होने के कारण चच अपनी शक्ति म निरन्तर वृद्धि करता रहा।

(8) चच की जन-सेवा की भावना, त्याग और शान्ति की नीति का बबर आक्रमणकारिया पर बहुत प्रभाव पडा। उन्होंने चर्चों म घुसने का प्रयास नही किया। हूणो के नेता एटिला ने रोम पर आक्रमण किया लेकिन पोप के कहन पर उसने अपनी सेनाओ का पीछे हटा लिया। परिणामस्वरूप रोम की जनता पोप को बबर आक्रमणकारियो के विरुद्ध अपना रक्षक समझने लगी। इसके पश्चात किसी भी राजा या शक्ति ने चच को लूटने का साहस नही किया। उस समय चच की शक्ति इतनी अधिक बढ गई कि सारे यूरोप के लोग पोप के आदेशा का पालन करने लगे।

(9) अनक योग्य पोपा के कारण चच अपनी शक्ति म निरन्तर वृद्धि करता रहा। पाचवी शताब्दी मे पाप इन्नोसेंट प्रथम ने चच का न्याय के क्षेत्र म सर्वोच्च सत्ता बना दिया। प्रत्येक विषय पर निणय देत हुए वह कहता था कि 'रोम का यह आदश है, विवाद समाप्त हाता है।"[1] उसके पश्चात पोप अपने लिये प्रथम ने हूणो नेता एटिला को अपने आध्यात्मिक बल से

1—"Rome has spoken the matter's closed"

रोम पर आक्रमण करने से रोका। इसके पश्चात पोप ग्रीगोरी प्रथम ने कई धार्मिक ग्रन्थो की रचना की और अनेक धार्मिक मामलो पर अपना निर्णय दिया। उसके बाद पोप ग्रीगोरी सप्तम ने भी अनेक धार्मिक विषयो पर अपना निर्णय दिया।

अब तक सरकारी अधिकारी पादरियो की नियुक्ति मे हस्तक्षेप करते थे। पोप ग्रीगोरी ने इसका विरोध किया। परिणामस्वरूप रोमन सम्राट हैनरी चतुर्थ और पोप ग्रीगोरी के बीच तनाव पूर्ण सम्बन्ध हो गये। इस पर पोप ने सम्राट को चर्च से बहिष्कृत कर दिया। सामन्तो ने इस समय पोप का साथ दिया। पोप के प्रयासो से हैनरी चतुर्थ के साम्राज्य मे विद्रोह होने लगे। परिणामस्वरूप अपनी गलती का प्रायश्चित करने के लिए सम्राट 1077 मे पोप से मिलने के लिए तीन दिन नगे पाव ठिठुरती शीत मे पोप के कैनोसा महल के द्वार के पास खडा रहा, लेकिन पोप ने उससे मिलने से इन्कार कर दिया। अन्त मे पोप ने उसे क्षमा कर दिया। प्लट व जीन ने लिखा है कि यह घटना, जिसने कि एक शक्तिशाली सम्राट को इतना अपमानित किया था, पोपो की शक्ति की अधीनता के सूचक चिन्हो मे से एक समझी जाती है।[1]

सम्राट द्वारा माफी मागने के पश्चात पोप ने उसे पुन चर्च मे लिया। सम्राट ने पादरियो की नियुक्ति मे राजनतिक हस्तक्षेप न करना स्वीकार कर लिया। देश की विशाल भूमि पर चर्चों का अधिकार था। चर्चो के अपने न्याया लय होते थे, जिसमे सामन्तो और राजाओ के निर्णय के विरुद्ध अपील की जा सकती थी। पोप का निर्णय अन्तिम समझा जाता था। उसके निर्णय का विरोध करने का किसी को अधिकार नही था। इस समय पोप सर्वाधिक शक्तिशाली था। पोप ग्रेगरी सप्तम तो कहता था कि पोप ही वह एकमात्र व्यक्ति है जिसके चरणो को सब राजन्य चूमते हैं।'[2]

कुछ समय पश्चात ग्रेगरी के विरुद्ध षडयन्त्र रचे जाने के कारण वह 1085 ई० मे रोम को छोडकर भाग गया। 1122 ई० मे पोप और सम्राट के बीच वाम समझौता हुआ। जिसके अनुसार पोप को पादरी नियुक्त करने का पूर्ण अधिकार दिया गया। पोप इन्नोमेन्ट तृतीय के समय चर्च अपनी शक्ति के सर्वोच्च बिन्दु पर पहुच गई थी। वल्स ने लिखा है कि 'इस अवधि मे रोम का पोप सयुक्त ईसाई साम्राज्य के सम्राट के समान हो गया। जसा वह पहले न कभी बन सका था और न भविष्य मे बनने की आशा थी।[3]

1—प्लट और जीन ड्रमड—विश्व का इतिहास—पृ 214

2—प्लट और जीन ड्रमड—विश्व का इतिहास –पृ 215

3—वेल्स, एच जी —दी आउट लाइन आफ हिस्ट्री—पृ 685

(12) चौथी शताब्दी मे सम्राट थियोडोसियस ने ईसाई धम को राज्य धम घोषित कर इसका राजनीति मे हस्तक्षेप बढा दिया। रोमन साम्राज्य क पतन के समय धम का राज्य के मामलो म हस्तक्षेप निरन्तर बढता रहा। शालिमा न चच क साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किये थ। वह पोप की सहायता के कारण ही सम्राट बन सका था। शालिमां को पोप ने 'राज और सम्राट का पद प्रदान किया था। स्पष्ट है कि राजा लोग भी पोप के आशीर्वाद के लिय तरसत थे। ऐसी स्थिति म चर्च की राजनीतिक शक्ति मे बहुत अधिक वृद्धि हुई।

चच का समाज तथा राज्य पर प्रभाव—चच के पास विद्रोहियो का दमन करने के लिए न तो सेना थी और न धम विरोधियों को दड देने के लिए पुलिस थी। फिर, भी चच का समाज में बहुत अधिक प्रभाव था। उस समय धम का विरोध करने पर सम्राट को भी पोप के द्वारा दण्ड दिया जाता था। चच धामिक सगठन के साथ 2 राजनीतिक सगठन भी थ। राज्य के सभी राजनीतिक काय पोप अपने अधीन धर्माधिकारियो की सहायता से सचालित करता था। पोप धम और राजनीतिक दोनो ही क्षेत्रों में सर्वोच्च अधिकारी था। वह अपने किसी भी कृपा पात्र को 'पवित्र रोमन सम्राट" के पद पर नियुक्त कर सकता था। उस समय कोई भी सम्राट पोप से टक्कर लेने का साहस नहीं कर सकता था।

पोप की अदालतो में सम्राट और साम ता के निणय के विरुद्ध अपील की जा सकती थी। पोप का निणय न्याय के क्षेत्र मे अ तिम माना जाता था। उसने विवाह, तलाक और ज म मरण आदि के बारे मे कानून बना दिए। य काय पादरी के बिना सम्पन्न नहीं हो सकते थे। सम्राट अपने कार्यों के लिए पोप के प्रति उत्तरदायी होता था। पोप को विदेशों में अपने राजदूत नियुक्त करने का अधिकार था। उसके अधीन प्रान्तीय धर्माधिकारी आच बिशप जो प्रा तो म राजकुमारो की भांति शासन करते थे। इसलिए वाल्तेयर ने मध्ययुग को धर्माधिकारियो का युग कहा है।

चर्च के कत व्य—चच के कत व्य किसी भी राज्य के कत्त व्या स कम नहीं थे। बीच ने लिखा है कि 'गिरजाघर के हाथ म जनजीवन ही नही था वरन् सबसे बडी बात जो कही जा सकती है वह यह है कि चच के केन्द्रीय सगठन ने यूरोप की एकता के विचार को जीवित रखा।' [1]

(1) **धार्मिक कर्त्तव्य**—चच का मुख्य काम लोगो को पारलौकिक जीवन सुधारने के लिए प्रेरणा देना था और मोक्ष प्राप्ति का माग बताना था। यदि कोई मनुष्य चर्च से अपना सम्बन्ध नही रखता तो उसे स्वग प्राप्त नही हो सकता था। चच धम के दार्शनिक तत्वा का प्रचार करता था और नतिकता का उपदेश देता

---

1 बीच, डब्ल्यू० एल०—हिस्ट्री आफ दी वल्ड—पृष्ठ—421

था। इसके अतिरिक्त पीड़ितो, रोगियो तथा असहायो की सेवा करना और भूले भटको को सही रास्ता दिखाना भी चर्च का नैतिक कर्त्तव्य था।

(2) **संस्कारो को सम्पन्न करवाना**—जन्म से लेकर मृत्यु तक के विभिन्न संस्कारो को सम्पन्न करवाना चर्च का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य था। ईसाईयो के संस्कार चर्च के बिना सम्पन्न नही हो सकते थे। उस समय चर्च ने इस विचारधारा का प्रचार किया कि जो मनुष्य इन संस्कारो को चर्च के माध्यम से सम्पन्न नही करवाता उसे मोक्ष प्राप्त नही हो सकता है। इस प्रकार जन्म से लेकर मृत्यु तक ईसाई चर्च के अधीन हो गये। नामकरण संस्कार विवाह और मृत्यु आदि अवसरो पर पादरी का होना आवश्यक था, क्योकि उसके बिना ये संस्कार सम्पन्न नही हो सकते थे।

(3) **न्याय एवं दण्ड विधान**—चर्च का तीसरा बडा कर्त्तव्य न्याय प्रदान करना था। धार्मिक मामलो को निपटाने के लिये चर्च ने अलग-अलग न्यायालय स्थापित किये। इन न्यायालयो मे चर्च के कानून और दण्ड विधान का पालन किया जाता था। चर्च के नियमो का उल्लंघन करने वाले व्यक्ति को समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता था। कभी कभी तो इन अदालतो मे पोप के द्वारा धर्म विरोधी व्यक्तियो को मृत्यु दण्ड भी दिया जाता था। वीच ने लिखा है कि 'चर्च के पास विद्रोह दबाने के लिए कोई सेना और अपराधियो को दबाने के लिए कोई पुलिस नही थी, किन्तु उनके पास जो शक्ति थी वह बहुत प्रभावशाली थी।'[1]

(4) **सार्वजनिक आराधना का आदेश**—चर्च का चौथा कर्त्तव्य विशेष अवसरो पर आम जनता को सार्वजनिक आराधना करने की स्वीकृत देना था। उसको किसी भी राज्य मे सार्वजनिक आराधना पर प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार था। चर्च ने उस समय इस विचारधारा का प्रचार किया कि धर्माधिकारियो को नाराज करने मे जनता का कल्याण नही हो सकता और सामूहिक रूप से आराधना करने से ही उसका कल्याण हो सकता है। इसलिए जनता चर्च के आदेशो का पालन करती थी।

(5) **राज्य कार्य मे सहयोग**—चर्च के धर्माधिकारी राज्य कार्य में सम्राट को सहयोग देते थे। वे इस बात का प्रयास करते थे कि सम्राट धर्म और न्याय के अनुसार शासन करे। सम्राट विकट परिस्थितियो मे चर्च के धर्माधिकारियो से सलाह लेता था। उस समय सम्राट ने कई विशपो को राजकीय पदो पर नियुक्त किया था। इंगलैण्ड मे बकट व वूल्जे तथा फ्रांस मे रिशलू नामक विशप को प्रधान मन्त्री के पद पर नियुक्त किया गया। विशपो के बढते हुए प्रभाव के कारण फ्रांस के दार्शनिक वाल्तेयर ने मध्ययुग को विशपो का युग बताया।

(6) **भूमि प्रबन्ध**—चर्च के पास अपार धन सम्पत्ति और विशाल भूमि

---

1 वीच, डब्ल्यू० एन०—हिस्ट्री आफ दी वर्ल्ड–पृष्ठ–422

थी । इस विशाल भूमि का प्रबन्ध पादरियो द्वारा किया जाता था । पादरी भूमि का लगान वसूल करते थे और किसानो से भेंट आदि भी लेत थे । इस प्रकार मध्यकालीन युग म चर्चो ने जमींदारी का काम किया । चच को अपनी भूमि का सरकार को लगान नही देना पडता था । भूमि से वसूल किया गया कर चच की आय का साधन था । इसके अतिरिक्त अपराधियो पर किय गये जुर्माने और राजाओ से प्राप्त नियमित भट भी उसकी आय क साधन थ ।

(7) संस्कृति का सचार—चच का सातवा कत्तव्य सस्कृति का सचार करना था । प्रारम्भिक ईसाई सन्तो ने चर्चो का धम प्रचार के लिए निर्माण करवाया था । किन्तु आगे चलकर ये चच सस्कृति के केन्द्र बन गये । इन चर्चो का मुख्य काय पूवजो न अर्जित संस्कृति को आने वाली पीढियो के हाथ में सौपना था । पादरी जनसाधारण को शिक्षा देते थे और उन्हे सुसंस्कृत बनाते थे ।

चच का सगठन—प्रोफेसर ल्यूकस के अनुसार चच के सगठन का आधार राजतन्त्रीय था । प्रारम्भ म चच का गठन अत्यन्त सरल और सीधे ढग स किया गया था । चच वह केन्द्र था, जहाँ सभी व्यक्ति ईश्वर की उपासना या आराधना कर सकत थ और जिसके द्वार सब लोगो के लिय खुले हुए थे । चच का सर्वोच्च अधिकारी पोप कहलाता था । इस गठन की मुख्य विशेषता यह थी कि 55 वष की अवस्था से अधिक आयु वाला व्यक्ति ही पोप बन सकता था । गावों के गिरजाघरो म सबसे छोटा प्रचारक पादरी होता था जो ईसाई धम का प्रचार और सेवा का काय करता था । प्रत्येक जिले म विशप नाम का धर्माधिकारी होता था और प्रत्येक प्रान्त के लिए "आच विशप" नाम का धार्मिक पदाधिकारी होता था । कस्तुतुनिया, सिकन्दरिया और जरसलम के चच की गिनती बड़े चर्चो म की जाती थी । इन गिरजाघरो म सेन्टपीटम द्वारा स्थापित रोमन गिरजाघर प्रमुख था ।

राज्य व पोप के बीच सघष—चच ने अपने उत्कष काल स ही अपनी शक्ति म इतनी अधिक वद्धि कर ली थी कि पादरियो ने राजा के कार्यों को चुनौती देना प्रारम्भ कर दिया । इन पादरियो पर सम्राट का कोई नियन्त्रण नही था । राजाओ को पोप के अधीन समझा जाता था । व अपने कार्यों के लिय पोप के प्रति उत्तरदायी होते थ । परिणामस्वरूप राजा और पोप के बीच सघष होना अवश्यम्भावी था । यदि सम्राट शक्तिशाली होता तो पोप उसकी इच्छाओ का आदर करते थे । यदि सम्राट दुबल होता तो पोप उससे अपने आदेशो का पालन करवात थे । पोप की बढती हुई शक्ति को यूरोप के कुछ शक्तिशाली शासको न चुनौती दी । बनस न लिखा है कि 'ऐसा हुआ कि सामन्तवादी युग म चच के विकास के साथ-साथ महत्वाकाक्षी राजनीतिज्ञो का भी उदय हुआ । सासारिक और आध्यात्मिक सत्ता के बीच सघष टाला नही जा सका, क्योकि दोनो द्वारा दावाग्रस्त अधिकार क्षेत्र बहुतायत में एक स थे ।' [1]

---

1 मैकनेल बनस—वैस्टन सिवलीजेशन—पृष्ठ—310

शालमेन के पोप के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध थे। इसका कारण यह था कि उस समय पोप की स्थिति असुरक्षित थी और शालमेन भी अपनी स्थिति को सुदृढ़ करना चाहता था। पोप ने शालमेन को यूरोप में ईसाई धर्म का पहला पवित्र रोमन सम्राट बनाया था। शालमेन 768 ई० में गद्दी पर बैठा और 814 ई० तक शासन किया। वह अपने समय का एक योग्य और प्रतिभा सम्पन्न सम्राट हुआ। जिसने कानून का गठन किया और अपने साम्राज्य में सुव्यवस्थित शासन व्यवस्था की स्थापना की। वेल्स ने लिखा है कि 'शालमेन के माध्यम से यूरोप में रोम के सीजर की परम्पराओं की पुनरावृद्धि हुई।'[1]

शालमेन ईसाई धर्म का बहुत आदर करता था। उसने "सीटी आफ गॉड" नामक पुस्तक पढ़ी। उस पुस्तक का उस पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। इसके पश्चात शालमेन ने बहुत से गिरजाघरों का निर्माण करवाया और चर्च को बहुत सी जागीरें उपहारस्वरूप प्रदान की। उसने लियो तृतीय को रोम के पोप के चुनाव में जितवाया था। पोप ने शालमेन को खुश करने के लिए उसे एक रत्न जड़ित सोने का मुकुट पहनाया और उसे सीजर तथा आगस्टस की उपाधि से विभूषित किया। इतना ही नहीं पोप ने उसका राज्याभिषेक किया और उसे पवित्र रोमन सम्राट के पद पर नियुक्त किया। वेल्स ने लिखा है कि शालमेन इससे प्रसन्न नहीं हुआ। 'यदि उसे इस समारोह का आभास मिल जाता तो वह चर्च में ही नहीं जाता।'[2]

शालमेन की मृत्यु 814 ई० में 78 वर्ष की अवस्था में हो गई, लेकिन पवित्र रोमन सम्राट का पद अगले एक हजार वर्ष तक चलता रहा। सेवाइन ने लिखा है कि "इस युग का एक अत्यधिक असाधारण अनुभव पवित्र रोमन सम्राट की स्थापना था। वह न तो पवित्र था न रोमन और न ही सम्राट फिर भी नाम तो एक हजार वर्ष तक चलता रहा।"[3]

शालमेन के उत्तराधिकारी ओटो ने एक पोप को हटाकर दूसरे ऐसे व्यक्ति को पोप के पद पर नियुक्त किया, जो उसके आदेशों का पालन करता था। सम्राट हेनरी तृतीय ने भी इसी प्रकार की कार्यवाही की। उस समय ऐसा प्रतीत हुआ कि पोप की शक्ति हमेशा के लिये कम हो जायगी परन्तु हेनरी तृतीय की मृत्यु के पश्चात पोप ने फिर अपनी शक्ति को बढ़ाना प्रारम्भ किया। हेनरी तृतीय का पुत्र हेनरी चतुर्थ अभी नाबालिग था। इस कारण कुछ समय तक उसकी माता ने शासन किया। इस अवसर का लाभ उठाकर पोप ने अपनी शक्ति में वृद्धि कर ली। हेनरी चतुर्थ ने बालिग होने पर पोप की शक्ति को चुनौती दी। अतः उसके समय से पोप

---

1 वेल्स, एच० जी०—दी आउट लाइन आफ हिस्ट्री–पृष्ठ–644
2 वेल्स, एच० जी०—दी आउट लाइन आफ हिस्ट्री–पृष्ठ–646
3 सेवाईन ए हिस्ट्री आफ वर्ल्ड सिवलीजेशन–पृष्ठ–298

व राज्य के बीच मे शक्ति के लिय सघप शुरू हो गया। यह सघप इतिहास म 'इवेस्टीचर स्ट्रगल' (Investiture Struggle) के नाम से प्रसिद्ध है। इसको "अभिषेक का सघप" भी कहते हैं।

इवेस्टीच्यर स्ट्रगल—यूरोपियन दशा म प्रान्त के विशपा का चुनाव ग्राम व नगर के पादरिया के द्वारा किया जाता था। इस पर बहुत से राजाओ ने विशपा के चुनाव मे हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया। यदि कोई भी विशप उनकी इच्छा के विरुद्ध चुना जाता, तो वे उस विशप का अभिषेक करने से इकार कर देते थे। अभिषेक की प्रतीक वस्तु' छडी और अगूठी आदि देने से भी इकार कर देते थे। इतना ही नही उस विशप को चच की भूमि और सम्पत्ति पर भी अधिकार नही करने देते थे।

पोप ग्रीगोरी सप्तम का यह मानना था कि चच अपने अधिकारिया के चुनाव म पूणतया स्वतन्त्र है। चच की सम्पत्ति, प्रबन्ध और विनय आदि म राज्य का हस्तक्षेप करन का अधिकार नही है। इसके विपरीत सम्राट हेनरी चतुथ का यह मानना था कि चच की जो भूमि है, उस पर पहले राज्य का अधिकार था और उसी भूमि पर चच ने अधिकार कर लिया है। इस प्रकार भूमि का स्वामी चच भी अन्य सामन्ता की तरह राजा का एक साम त है। इसलिय हेनरी चतुथ के अनुसार पादरिया पर राज्य का निय त्रण होना चाहिये अन्यथा वे राज्य म अशान्ति फला देंगे। हेनरी चतुथ 'राज्य के अ तगत राज्य' (State Within State) की स्थिति को समाप्त करना चाहता था।

जबकि पोप का यह मानना था कि चच को अधिक से अधिक अधिकार मिलने चाहिये क्याकि ईश्वर के द्वारा ससार की बुराईयो को दूर करने के लिए चच की स्थापना की गई है। पोप ने ऐसे राजाओ का अभिषेक करने से इकार कर दिया, जो उसके आदेशा का पालन नही करते थे। ग्रीगोरी ने कहा था कि "पोप ही एक ऐसा व्यक्ति है, जिसके चरण सब राजा चूमते है।" उसके निणयो और आदेशो का उल्लघन कोई नही कर सकता। हेनरी चतुथ ने इसका विरोध किया। परिणाम स्वरूप आगे चलकर इन दो विरोधी विचारधाराओ मे अभिषेक के सघप का सूत्रपात हुआ।

यदि निष्पक्ष रूप से हम अध्ययन करें तो यह पता चलता है कि दोनो पक्षो के तर्कों म कुछ सत्यता अवश्य थी। यदि किसी एक पक्ष की इसम पूणरूप से विजय हो जाती तो वह मध्ययुग के लिये घातक सिद्ध हो सकता था। यदि सम्राट को पादरिया के अभिषेक करने का और उन पर नियन्त्रण रखने का अधिकार मिल जाता तो पोप की राजनतिक शक्ति नष्ट हो जाती और वह राजाओ के हाथ की कठपुतली बनकर रह जाता। यदि राजा यह स्वीकार कर लेते कि उसके राज्य मे रहने वाले धर्माधिकारिया पर उसका कोई नियन्त्रण नही रहेगा तो इसका परिणाम

यह होता कि यूरोप म अराजकता व अशाति फल जाती और धर्माधिकारी तानाशाह बन जाते।

सम्राट हेनरी चतुथ ने जब पोप की शक्तियों को चुनौती दी तो पोप ने उसे समाज से बहिष्कृत कर दिया। हेनरी चतुथ न जब पोप क आदेश का विरोध किया तो पोप ने ईसाई जनता को उसके विरुद्ध आन्दोलन करने के आदेश दिये। सम्राट को लाचार होकर पोप स माफी मांगने क लिए केनोसा जाना पडा। वहां जाकर हेनरी चतुथ ने पोप के सामन अपना अपराध स्वीकार कर लिया और अपनी गलती के लिये पोप से क्षमा याचना की। पोप ने उसे माफ कर दिया और दोनो के बीच *समझौता हो गया परन्तु यह समझौता अस्थाई सिद्ध हुआ और दोनो क बीच फिर* सघष आरम्भ हो गया क्योकि हेनरी ने पोप ग्रीगोरी को उसक राजमहल म बन्दी बना लिया। इस प्रकार मध्ययुग के महानतम पाप ग्रीगोरी की बन्दी गृह म ही मृत्यु हो गई। उसक अतिम शब्द य थे मैंन न्याय म प्रम किया है और असमानता से घृणा। इस कारण मेरी निर्वासन म मृत्यु हो रही है।'

हेनरी न उत्तराधिकार के इस सघष को पुन प्रारम्भ कर दिया। काफी समय के पश्चात 1122 ई० म हेनरी पचम और पोप प्रास्कल द्वितीय के बीच वमस नामक स्थान पर समझौता हुआ। जिसम निम्नलिखित शर्तें तय की गई —

1) हेनरी पचम न पादरियों का अगूठी तथा अभिषेक करने का अधिकार त्याग दिया।
(2) पोप अपने धर्माधिकारियो का चुनाव करन म स्वतन्त्र रहेगा। सम्राट उसम किसी प्रकार का हस्तक्षेप नही करेगा।
(3) पाप ने यह स्वीकार किया कि चच के अधिकारियो का चुनाव सम्राट की उपस्थिति म किया जायगा। चुनाव के बाद जो पादरी चच के अधिकारी चुने जायेंगे, वे सम्राट की राजनीतिक अधीनता स्वीकार करेंगे।

इस प्रकार की दुहरी प्रथा का अधिक समय तक सफलतापूवक काय करना सम्भव नही था इसलिये बीस वष पश्चात फिर से सघष प्रारम्भ हो गया। जमनी *क राजा फ्रेडरिक (1152–90)* ने *पोप की शक्तियों* को फिरस चुनौती दी। उसका यह मानना था कि ईश्वर की इच्छा स ही व्यक्ति राजा बनता है इसलिए उन्ह पोप से अभिषेक करान की आवश्यकता नहीं है। उस समय का पोप फ्रेडरिक के विचारो का सफलतापूवक विरोध नही कर सका।

पोप इन्नोसेंट तृतीय (1198 1216) ने जमनी के सम्राट के चुनाव मे हस्तक्षप किया। इगलण्ड के राजा जान को भी उसका आदेश स्वीकार करना पडा। *उस समय इगलण्ड के राजा जान की सहायता स चुने गये सम्राट फ्रेडरिक द्वितीय ने* पोप को फिर चुनौती दी। इस पर पोप इनोसेन्ट चतुथ ने उसे चच से बहिष्कृत कर

दिया और 1245 ई० म उसे सम्राट पद से भी हटा दिया। परन्तु इसका कोई प्रभाव नही पडा। सघप राजाओ क पक्ष म रहा। उस समय फ्रास के राजा फिलिप ने चच की सम्पत्ति पर कर लगाया। जब पाप न इस कर को देने स इन्कार किया तो उसन पाप बोनीफस अष्टम का बन्दी बना लिया और उसके स्थान पर आच विशप बोर्डियस को पोप बना दिया। पोप की राजधानी रोम से हटाकर फ्रास म एविमनोन को बनाया गया। एविमनोन 70 वप तक पोप की राजधानी बनी रही। इस प्रकार फ्रास के सम्राट फिलिप न पोप को अपना एक सामन्त बनाकर उसकी शक्ति को बहुत बडा आघात पहुचाया। पोप इन्नोसन्ट चतुथ क समय स ही पोप की प्रतिष्ठा व शक्ति म कमी होने लग गई थी। इस प्रकार धीरे धीरे चच का प्रभाव कम होता गया। जनता धार्मिक सुधार और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की ओर बढ़न लगी। पुनजागरण काल म कई धम सुधारको न खुले रूप स पोप के अनतिक कार्यों के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया।

सघप के परिणाम—मक्नल बनस के अनुसार इस सघप के निम्न चार परिणाम हुए —

(1) इस सघप के फलस्वरूप पोप की प्रतिष्ठा को आघात पहुचा और उसकी शक्ति भी कम हो गई। धीरे धीरे उसका प्रभाव भी कम होने लगा।

(2) पोप को धम का सर्वोच्च अधिकारी बनने के लिए नये सिरे से प्रयास करना पडा।

(3) पाप का राजनीतिक क्षेत्र म प्रभाव समाप्त हो गया। जिसके फलस्वरूप फ्रास और इग्लण्ड म राष्ट्रीयता की भावना का विकास हुआ।

(4) इस सघप न बुद्धीजिवियो की गतिविधि को गति प्रदान की।

(5) पोप और राजा दोनों न अपने-अपने पदो को सफलता दिलान के लिए पुराने साहित्य का सहारा लिया।

(6) इस सघप के फलस्वरूप रोमन कानून की लोकप्रियता म वृद्धि हुई।

चच के पतन के कारण—समय क साथ चच म भी अनेक दोप आ जाने क कारण जनता पर उसका प्रभाव कम होने लगा और धीरे धीरे उसका पतन होने लगा। चच के पतन क प्रमुख कारण निम्नलिखित थे —

(1) विलासितापूर्ण जीवन—इन्नोसन्ट तृतीय के बाद अधिकाश पोपो का चरित्र नतिक दृष्टि स गिर गया था। अब एस व्यक्ति पोप बनने लगे, जिनका चरित्र शुद्ध नही था। उन्होन त्याग और नम्रता के स्थान पर विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करना शुरू कर दिया। पोप अलक्जेन्डर षष्ठम (1492–1503) ने खुले आम विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत किया। वास्तव म चच के पास इतना

---

(1) मैक्नल बनस-वस्टन सिवलीजेशन्स, पृष्ठ—313

अधिक धन था, कि उसने पादरियो की बुद्धि भ्रष्ट कर दी थी। उन्होंने विलासिता पूर्ण जीवन व्यतीत करना ही अपनी जिन्दगी का मुख्य ध्येय समझ लिया था। जो चर्च पहले उपासना के केन्द्र थे, अब विलासिता के केन्द्र बन गये। सासारिक सुखो और सत्ता के लालची अधार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति भी पादरी बन गये थे। आम जनता ने ऐसे पादरियो को सम्मान नही दिया और उन्हे हीन दृष्टि से देखा जाने लगा।

(2) **राजा व पोप के बीच संघर्ष**—पादरियो ने अपनी शक्ति में वृद्धि कर सत्ता का दुरुपयोग करना शुरू कर दिया। उन्होंने राजकीय कार्यों में हस्तक्षेप करना और सम्राटो का विरोध करना शुरू कर दिया जिसके फलस्वरूप अभिषेक के संघर्ष का सूत्रपात हुआ। शासक चर्चों की विशाल सम्पत्ति और भूमि को छीनना चाहते थे। हेनरी ने पोप को एक घमंडी साधु बताया। फ्रांस के सम्राट फिलिप ने पोप को बन्दी बना लिया और राजधानी वेनोसा से हटाकर फ्रांस में एविमनोन बना दी गई, जिससे पोप की शक्ति को गहरा आघात पहुँचा। इंगलण्ड के सम्राट हेनरी अष्टम ने चर्च की सम्पत्ति को लूटा और पोप की शक्ति को धक्का पहुचाया। उसने पोप से अपने सम्बन्ध विच्छेद कर इंगलण्ड में एक अलग चर्च की स्थापना की। सम्राटो के इस प्रकार की चर्च विरोधी कार्यवाही से उसकी शक्ति कम हो गई और पतन की ओर अग्रसर होने लगा।

(3) **पादरियों द्वारा कर्त्तव्यों की उपेक्षा**—पादरियो ने अपने कर्त्तव्यो की उपेक्षा की और जनता को शिक्षित करने की तरफ कोई ध्यान नही दिया। परिणामस्वरूप जनता अशिक्षित और अन्धविश्वासो में विश्वास करती रही। 12 वी शताब्दी में व्यक्तिवाद और राष्ट्रीयता का विकास होने के कारण चर्च का प्रभाव कम होने लगा। जनता ने अपने राष्ट्रीय राजा का समर्थन किया जो धार्मिक सिद्धान्तो में तो विश्वास करते थे लेकिन आडम्बरो से मुक्त होकर स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने के समर्थक थे। इसका परिणाम यह हुआ कि धीरे धीरे जनता पादरियो के आडम्बरपूर्ण जीवन व कार्यों से घृणा करने लगी। इससे पादरियो का प्रभाव दिन प्रतिदिन कम होता गया।

(4) **शिक्षा का प्रसार**—शिक्षा के प्रसार ने भी पादरियो की शक्ति को आघात पहुँचाया। इस समय चर्च द्वारा मुक्ति पत्रो की बिक्री की जा रही थी और यह कहा जा रहा था कि जो व्यक्ति इस पत्र को खरीदेगा उसे स्वर्ग की प्राप्ति होगी। इसी प्रकार पादरियो के अनैतिक बच्चो का चर्च मे ग्रुप के नाम से पालन किया जाने लगा। जब जनता में शिक्षा का प्रसार होने लगा तो उन्होने पादरियो के इन कार्यों की कटु आलोचना की और सुधारकों ने इन दोषो को दूर करने के लिए धर्म सुधार आन्दोलन चलायें।

(5) चर्च की आपसी फूट—चर्चों की आपसी फूट उसके पतन का कारण सिद्ध हुई। पश्चिमी पोप का प्रभाव निरन्तर बढ़ता जा रहा था। पूर्वी चर्च के पादरियों और पश्चिमी चर्च के पादरियों में धार्मिक विषयों पर गम्भीर मतभेद थे। पूर्व के चर्च मूर्ति पूजा के विरोधी थे जबकि पश्चिम के चर्च मूर्ति पूजा के समर्थक थे। इसका परिणाम यह हुआ कि ग्यारहवीं शताब्दी में चर्च दो शाखाओं में विभाजित हो गया। पश्चिमी चर्च में विश्वास करने वाले ईसाई रोमन कैथोलिक और पूर्वी चर्च में विश्वास करने वाले आर्थोडाक्स कहलाये। गिरजाघरों की इस आपसी फूट और संघर्ष ने उनकी प्रतिष्ठा को धक्का पहुँचाया।

(6) चर्च के पतन के लिए धर्म युद्ध भी उत्तरदायी थे जिनका वर्णन आगे किया गया है।

चर्च की देन—चर्च अपने प्रभाव में वृद्धि करने के लिए सम्राटों से संघर्ष करता रहा। पूर्वी चर्च और पश्चिमी चर्च के पादरियों में भी धार्मिक विषयों पर गम्भीर मतभेद थे। इतना होने पर भी चर्च ने मध्यकालीन यूरोप को अनेक बहुमूल्य देन दी।

चर्च की प्रमुख देन निम्न लिखित है

(1) ईसाई धर्म का प्रचार—ईसाई धर्म के प्रचार में चर्च ने बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान दिया। रोमन साम्राज्य के पतन के पश्चात् बर्बर आक्रमणकारियों ने यूरोप में लूटमार प्रारम्भ की, तो ऐसे कठिन समय में चर्च ने जनता की रक्षा की। हूण आक्रमणकारी एटिला ने रोम पर आक्रमण किया, लेकिन पोप से प्रभावित होकर रोम को लूटे बिना वापस चला गया। शार्लिमा के प्रयासों से पश्चिमी यूरोप में ईसाई धर्म का प्रचार हुआ। इस प्रकार चर्च ने ईसाई जन जीवन की रक्षा की और आशा से अधिक ईसाई धर्म का प्रचार किया।

(2) दर्शन का विकास—चर्च ने ईसाई मत के दर्शन के विकास के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान दिया। यद्यपि प्रारम्भिक ईसाई सन्तों ने यूनानी दर्शन को नहीं अपनाया। परन्तु कुछ समय पश्चात ईसाई विद्वानों पर यूनानी दर्शन की छाप स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। ओरीगन (185–254) तथा एथानसियस आदि पर यूनानी प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। प्रसिद्ध ईसाई दार्शनिक आगस्टाइन (354–430) ने चर्च को ही मुक्ति का एक मात्र मार्ग बतलाया। चर्च ने ईसाई धर्म या दर्शन की क्रियाएँ निश्चित की। इसके पश्चात चर्च में स्कालिस्टिक दर्शन का विकास हुआ।

(3) शिक्षा का विकास—चर्च ने शिक्षा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। जब बर्बर जातियों ने यूरोप को लूटना प्रारम्भ किया तो चर्च ने जनता को अपने मठों मे शरण दी। उस समय कई विद्वानों ने भी चर्चों में शरण ले ली थी। अतः पादरियों ने चर्चों में ही स्कूल व विश्वविद्यालय खोलने शुरू कर दिए। धीरे-धीरे चर्च समस्त यूरोप की शिक्षा के केन्द्र बन गये। पादरी चर्च में बच्चों को लैटिन भाषा में शिक्षा देते थे। इस प्रकार चर्च ने लैटिन भाषा के विकास में भी अपना

महत्वपूर्ण सहयोग दिया। इसी भाषा म धर्माधिकारियो ने अच्छे साहित्य की रचना की। एलिस और जौन न लिखा है कि 'जितने भी स्कूल थे, करीब-करीब सभी चच के हाथ म थे और वहा पढ़ने बोलने की भाषा लटिन थी।'[1] चच ने आगे चलकर विश्वविद्यालयो की स्थापना की। इटली के बोलोना फ्रांस के पेरिस और इग्लैण्ड के आक्सफोड तथा कम्ब्रिज विश्वविद्यालयो की स्थापना चच के द्वारा की गई। इन विश्वविद्यालयो म सारे पश्चिमी यूरोप के विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करन क लिये आते थे।

पेरिस म अधिकांश स्कूल स्ट्रा स्ट्रीट म थे। इसका नाम स्ट्रा स्ट्रीट इसलिए पड़ा क्योंकि इन स्कूलो के कमरे म फश पर फूस बिछाकर उस पर विद्यार्थियों को बिठा दिया जाता था। जिस लटिन भाषा म 'स्ट्रा' कहा जाता था। इसी समय विद्यालयो ने बी० ए०, पी० एच० डा० आदि उपाधियां देने की प्रथा शुरू की। तभी से य उपाधिया आज तक चली आ रही हैं। इस प्रकार सस्कृति क अविकसित काल म चच ने शिक्षा के विकास म महत्वपूर्ण योगदान दिया।

(4) कला के क्षेत्र मे देन—चच ने कला क क्षेत्र मे भी बहुमूल्य देन दी है। ईसाई धम के गिरजाघर ससार की स्थापत्य कला म अपना महत्वपूर्ण स्थान रखत हैं। गिरजाघर क्रास की शक्ल के बने हुए होते थे जिनमे मोटी दीवारें और खिडकियां बहुत कम होती थी उनके निर्माण म विभिन्न शलियो का प्रयोग किया जाता था। उस समय गिरजाघरो के निर्माण म एक नई शली का प्रयोग किया गया जिस 'गोथिक शली' कहा जाता है।

चच ने मूर्तिकला के क्षेत्र मे भी बहुत प्रगति की। इस समय मूर्तिकार ईसा के पुनज म व उसके जीवन से सम्बन्धित घटनाओ को प्रदर्शन करने के लिए सुन्दर सुदर मूर्तिया का निर्माण करने लगे। चच ने चित्रकला के क्षेत्र मे भी काफी प्रगति की। चित्रकारो ने ईसा के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं के चित्र चच की दीवारो पर बना दिए थे। यद्यपि प्रारम्भिक ईसाई सत सगीत के विरोधी थे, किन्तु बाद म उसकी उपयोगिता को समझा और भक्ति के लिए सगीत को आवश्यक माना गया। सन्त एब्रोस ने प्राथना को भजनो और स्वरो म गाना शुरू किया

(5) राजाओं की निरकुशता पर नियन्त्रण- चच के धर्माधिकारियो ने राजाओ की निरकुशता पर नियन्त्रण बनाये रखा और वे अपनी शक्ति का दुरुपयोग करने मे सफल नहीं हुए। चच न समय-समय पर राजाओ के गलत कार्यों का विरोध किया। पोप न जौन को मनमानी करने से रोका। चच ने सामन्तो को व्यथ के युद्ध न करन की सलाह दी, जिसे उन्होन स्वीकार कर लिया।

(6) राजनतिक एकता प्रदान करना—पवित्र रोमन सम्राट और पाप ने इसाई धम क नाम पर यूरोप के एक बहुत बडे भाग को राजनीतिक एकता के सूत्र

1—एलिस और जौन–ससार का इतिहास—पृष्ठ–184

में बाध दिया। इस बात की पुष्टि धम युद्धा से होती है, जिसम कि सभी ईसाईयो ने एक साथ सघप मे भाग लिया। चच के धर्माधिकारिया ने सुव्यवस्थित व अनुशासित राज्यो की स्थापना म महत्वपूण योगदान किया।

(7) यूरोप को सभ्यता का केन्द्र बनाना—पादरी ईसाई धम का प्रचार करने के लिए निजन और जगली स्थानो पर गये। वहा उन्होंने गरीबों की देखभाल और सेवा की तथा धम का प्रचार करने के लिए चर्चों की स्थापना की। विल डयूरेट ने लिखा है कि "मध्ययुग की सबसे बडी विजय और सफलता यूरोप के अधिकाश भाग को जो निजन और अरण्य था, सभ्यता के लिए उपयुक्त था। पादरिया ने इन जगली स्थानो म जगलो को कटवाकर भूमि को खेती के योग्य बनाया और वहा पर शिक्षा का प्रसार किया। परिणामस्वरूप निजन देशो म सभ्यता का विकास हुआ और चच यूरोपीय सभ्यता के केन्द्र बन गये।

धम युद्ध (1096 1270 ई०)—मध्यकालीन युग के अन्त तक चच की शक्ति बहुत कम हो गई थी फिर भी जनता उनसे काफी प्रभावित थी। चच ने अपने पतन के समय म भी ईसाईयो को मुसलमाना के विरुद्ध युद्ध करने के लिए उत्साहित किया। प्लेट और जीन ड्रमड ने लिखा है कि 'धम युद्ध (क्रूसेड) दो धार्मिक शक्तियो ईसाइयत और मुहम्मदी पथ म सघष था।"[1] जाजफरियर ने कहा है कि मध्यकालीन युग मे ईसाईया और मुसलमानो के बीच धम के प्रश्न पर जो युद्ध लडे गय, वे इतिहास मे धम युद्ध अथवा क्रूसेड के नाम से प्रसिद्ध है। य युद्ध ग्यारहवी शताब्दी के अतिम वर्षों मे लडे गये थे। उस समय ईसाई राज्य और इस्लामी राज्य दोनो ही निकटपूव के क्षेत्रा पर अधिकार करना चाहते थे। इसलिये ये युद्ध लडे गये थे। एच० जी० वेलस ने लिखा है कि 'मानव जाति का इतिहास लिखने वाले इतिहासकार के लिये क्रूसेड मे इतनी ही रूचि है कि दया से परिपूण भावनाएँ इसम जान डालकर सवप्रथम उस आकर्षित करती है।"[2] प्लेट और जीन ड्रमड ने लिखा हैं कि "होठो पर यह नारा और छाती पर एक लाल (क्रास) सलीब लिए हजारो ईसाई पदल, घोडे पर सवार होकर या किसी जहाज पर चढकर पवित्र भूमि के लिए पवित्रतम नगर, जरूसलम की ओर रवाना हुए थे। कवच धारण किए सूरमा, चोयड पहने कृषकदास, मुक्ति स अभिलाषी मनुष्य, लूट चाहने वाले लोग, स्त्रिया, बच्चे, अपराधी और कजदार ये सब इन धम युद्धा के योद्धा थे। ये धम युद्ध शस्त्र तीथ यात्रायें होती थी, जो पवित्र भूमि जेरुसलम को मुसलमानो से मुक्त कराने के लिये की जाती थी।[3]

1—प्लट और जीन ड्रमड-विश्व का इतिहास – पृष्ठ–211
2—वेलस, एच० जी०-दी आउट लाइन आफ हिस्ट्री–पृष्ठ 673
3—प्लेट और जीन ड्रमड-विश्व का इतिहास–पृष्ठ 211

धम युद्धों के कारण—इन धम युद्धा क प्रमुख कारण निम्नलिखित थे —

(1) **तुर्कों द्वारा ईसाईयों पर अमानुषिक अत्याचार**—1076 म सल्जुक तुर्कों ने ईसाइयों के पवित्र धार्मिक तीथ स्थान जेरूसलम पर अधिकार कर लिया। इसक पश्चात ईसाईयों पर नाना प्रकार के अत्याचार करने लगे। तुर्कों ने जेरूसलम की धार्मिक यात्रा पर कर लगा दिया। अब कर देने के पश्चात ही ईसाई धर्माव लम्बी जेरूसलम म प्रवेश कर सकते थे। तुर्कों ने ईसाई व्यापारियो से भी कर वसूल करना शुरू कर दिया। इतना ही नही जेरूसलम के गिरजाघरो को तुर्कों ने अपने घाडो क लिए अस्तबल बना दिया था। पीटर नामक सन्त व अन्य यात्रियो ने यूरोप के ईसाईयो को तुर्कों द्वारा जेरूसलम म उन पर किय जाने वाले अत्याचारो की कहानियां सुनाई और उनको उत्साहित किया। पीटर ने फ्रास जमनी आदि देशो की यात्रायें की और वहा तुर्कों के अत्याचार की कहानी सुनाई और ईसाईयो को अपने जेरूसलम के बन्धुओ की रक्षा करन का आह्वान किया। इसका परिणाम यह हुआ कि यूरोप के ईसाइयों ने जेरूसलम की रक्षा करने के लिए तुर्कों पर आक्रमण करने का निश्चय किया। सेवाइन न लिखा है कि 'ग्यारहवी शताब्दी के अन्त से तेरहवी शताब्दी की समाप्ति तक धम योद्धाओ ने बडी सख्या म पश्चिम यूरोप से अपने घर त्याग कर पूव की तरफ यात्रा की, ताकि पवित्र भूमि को आक्रमणकारी तुर्कों से बचा सके। क्रूसेड शब्द का महत्व ईसाई के क्रास से लिया गया है।'[1]

(2) **बाइजेन्टाइन का दुबल साम्राज्य**—700 वर्ष तक बाइजेन्टाइन का साम्राज्य अरब आक्रमणकारियो से यूरोप की रक्षा करता रहा। सम्राट वसील द्वितीय (963–1025) क शासनकाल म बाइजेन्टाइन साम्राज्य की सीमाएँ सेल्युक तुर्कों के साम्राज्य स जाकर मिल गई थी। इस समय सल्जुक तुर्कों ने बगदाद के अब्बासी खलीफा को हटाकर इस्लामी साम्राज्य पर अधिकार कर लिया था। 1071 ई० म मजीकट क मदान म बाइजेन्टाइन क सम्राट रोमनुस और सेल्जुक तुर्कों के बीच भयकर युद्ध हुआ। युद्ध मे तुर्कों ने बाइजेन्टाइन सम्राट को बुरी तरह पराजित किया और उसक कई नगरा पर अधिकार कर लिया। इस युद्ध म विजय प्राप्त होने से तुर्कों का एशिया माइनर म प्रभुत्व स्थापित हो गया था। ऐसी स्थिति म बाइजेन्टाइन सम्राट को बाध्य होकर तुर्कों से सधि करनी पडी। इसी समय बाइजेन्टाइन के सम्राट ने कुस्तुनतुनिया की रक्षा के लिए यूरोप से सहायता मागी। पोप ने सहायता देना स्वीकार किया। उसका यह मानना था कि इसस पूव और पश्चिम के मतभेद समाप्त हो जायेंगे और उसके प्रभाव म वद्धि होगी।

(3) **पोप द्वारा अपनी शक्ति मे वद्धि करने के लिये प्रयास**—वास्तव म उस समय पोप अपनी शक्ति म वद्धि करने के लिये युद्ध को आवश्यक समझ रहा था।

1—सेवाइन ए हिस्ट्री आफ वल्ड सिवलीजेशन पृष्ठ 346

कुछ इतिहासकारो का यह मानना है कि पोप सम्राटो की शक्ति कमजोर बनाने के लिये सनिक कायवाही को आवश्यक मान रहा था। पोप ने इस युद्ध मे सहायता देना इसलिये स्वीकार किया क्योकि उसका यह मानना था कि इस सहायता से पूर्वी चच और पश्चिमी चच के मतभेद समाप्त हो जायेंगे और सम्पूण ईसाई जगत फिर से एक सूत्र म बध जायेगा। इससे उसके प्रभाव मे वद्धि होगी और वह सवशक्तिमान हो जायेगा। दूसरा, पोप का यह मानना कि यदि इस युद्ध म मुसलमान पराजित हुए तो पूव म भी उसके प्रभाव का विस्तार होगा। तीसरा यदि इस युद्ध म पराजय हुई तो यूरोप के सम्राट की शक्ति कमजार हा जायेगी और पोप सारे यूरोप मे अपना राजनीतिक प्रभाव स्थापित कर लेगा। इस प्रकार पोप मुसलमानो को पराजित करन के लिए अपने साम तो को उनके विरुद्ध युद्ध म भेजना चाहता था, ताकि उनकी शक्ति समाप्त हो जाय और वह यूरोप का सर्वोपरि सम्राट बन सके। इसलिए पोप ने युद्ध का आह्वान किया।

(4) व्यापार के क्षेत्र मे प्रतिस्पर्द्धा -धमयुद्ध का चौथा कारण ईसाईयो और मुसलमानो के बीच व्यापार के क्षेत्र म प्रतिस्पर्द्धा थी। इस समय पूव मे व्यापार ईसाई जहाजो के द्वारा होता था। उस समय तुर्की बेडे इसाईयो के जहाज लूट लेते थे। इसलिये ईसाई पूर्वी भूमध्य सागर क प्रदेशो मे मुसलमानो की व्यापारिक प्रभुता समाप्त कर अपनी व्यापारिक प्रभुता स्थापित करना चाहते थे। ईसाईयो का यह भी मानना था कि जब उन्होने स्पेन म मुस्लिम शासन का अन्त कर उस पर अधिकार कर लिया तो उन्हे बहुत सी व्यापारिक सुविधाए प्राप्त हुयी। अत उनकी यह धारणा बन गई थी कि यदि वे जेरूसलम म मुस्लिम शासन का अन्त कर देंगे तो उन्हे बहुत सी व्यापारिक सुविधाएँ मिलेगी। इस प्रकार व्यापारिक सुविधाओं को प्राप्त करन के लिय इस युद्ध को धम युद्ध का रूप दे दिया गया। प्लेट और जीन ड्रमड ने लिखा है कि "पूव के देशो की अत्यधिक समद्धि की कहानियो ने पश्चिम के बहुत से दरिद्र किसानो को इन युद्धों म भाग लेने क लिये प्ररित किया। व्यवसाइयो को इसमे पूव के साथ व्यापार को बढ़ाने का सुअवसर दिखाई दिया। कुछ सरदार पूव मे राज्य स्थापित करन के सपने देखने लगे थे। राजाओ ने इस प्रकार के सरदारो को प्रोत्साहित किया, क्योकि यदि वे धम युद्ध पर चले गये तो राजाओ को स्वदेश म सत्ता हथियाने के लिये उनसे प्रतियोगिता न करनी पड़ेगी।"1

(5) पोप की युद्ध के लिए घोषणा—पोप अपने प्रभाव और शक्ति को बनाये रखने के लिए युद्ध को आवश्यक मानता था। उसने 1095 ई० मे दक्षिण फ्रास के क्लेरमाण्ट नगर मे ईसाईयो की एक विशाल आम सभा मे जोशीला भाषण

1—प्लेट और जीन ड्रमड—विश्व का इतिहास—पृष्ठ 212

देते हुए कहा कि उन्हे जेरूसलम से तुर्कों को भगाने के लिये हर प्रकार का बलिदान देना चाहिये। चर्च के अन्य धर्माधिकारियों ने भी समस्त ईसाईयों को इस पवित्र युद्ध के लिये तयार किया। पोप को इस काय म राजाओ और सामन्तो ने भी सहयोग दिया। उसने समस्त ईसाई जगत से अपील की कि वे आपसी मतभेद को भुलाकर मुसलमानो के आधिपत्य से जेरूसलम को मुक्त करायें तथा सगठित होकर धार्मिक यात्राओ पर लगे हुये प्रतिबन्ध को हटायें एव जेरूसलम के ईसाईयो पर होने वाले अत्याचारो मे उनकी रक्षा करें। इस प्रकार पोप की युद्ध के लिये घोषणा भी धम युद्ध का महत्वपूण बनी। प्लट जीन ड्रमड ने पोप के विचार का वणन करते हुए लिखा है कि जेरूसलम को मुक्त कराने के लिए लडो। वहां का एक एक स्थान ईसा द्वारा उच्चारित शब्दो से और उसके किये चमत्कारिक कर्मों से प्रभावित हो रहा है।"[1]

(6) **युद्ध का तत्कालीन कारण**—पोप ने धम युद्ध की घोषणा कर दी, जिसका जनता पर अच्छा प्रभाव पडा। उसने जनता से अपील की कि जो लोग इस युद्ध मे भाग लेगें, उनके अपराध ईश्वर माफ कर देगा। परिणामस्वरूप विशप सामन्त, राजा, किसान और साधारण जनता भी इस युद्ध मे भाग लेने के लिये तैयार हो गई। सन्त पीटर सात हजार ईसाईयो को लेकर तुर्कों पर आक्रमण करने के लिये जेरूसलम रवाना हुआ। उनम स अधिकाश माग म ही बीमार हो गये, कुछ की भूख से मृत्यु हो गई और बचे हुए जो लोग जेरूसलम पहुचे उनका तुर्कों ने बध कर दिया। यह दुघटना 1096 ई० म घटित हुई। इस घटना से सारे पश्चिमी यूरोप म युद्ध की अग्नि भडक उठी और यही स धम युद्ध प्रारम्भ हो गय। इन युद्धो को क्रूसेड भी कहा जाता है।

युद्ध की प्रमुख घटनायें—धम-युद्ध 1096 ई० से 1270 ई० तक चलते रहे। कुल मिलाकर धम युद्ध सात बार लडे गये—प्रथम 1096–1099 ई०, दूसरा 1147 ई०, तीसरा 1189 ई० म, चौथा 1202–1204 ई० पाचवा 1218 ई०, छठा 1248 ई० और सातवा 1270 इ० में लडा गया।

(1) पहला धम-युद्ध-(1096–1099 ई०)—1097 ई० मे पहला धम युद्ध प्रारम्भ हुआ। काउण्ट रेमण्ड और गौड फ्रे के नेतृत्व मे ईसाई सेना को तुर्कों पर आक्रमण करने के लिये भेजा गया। इस बार ईसाईयो की सना मे अधिकतर फ्रासीसी और नामन लोग थे। सिसली के नामन राज्य का बोहो मुड भी सेना मे था। ईसाईयों की इस सेना ने 1097 ई० में नान्टिया पर अधिकार करने के पश्चात् एन्टिओक को घेर लिया। यह घेरा एक वप तक चलता रहा। गौड फ्रे की सेना ने 1099 म बेलेस्टाइन और सीरीया पर अधिकार कर लिया। इस समय

1—प्लट, जीन और ड्रमड—विश्व का इतिहास—पृ 211

हजारो मुसलमानो को करल कर दिया गया। इसके पश्चात् इस विजित प्रदेश का विभाजन सामन्ती व्यवस्था के आधार पर कर दिया गया और गौड फ्रे को जेरूसलम का सम्राट बनाया गया। प्रथम धर्म-युद्ध म ईसाईयो को विजय प्राप्त हुई। पचास वर्ष तक जेरूसलम और सीरीया पर ईसाईयो का राज्य बना रहा। 1100 ई० म गौड फ्रे की मृत्यु के पश्चात् उसका छोटा भाई बाल्डविन जेरूसलम का शासक बना। उसने बोहीमु ड का एक प्रदेश एन्टिओक को लिया और ट्रिपोली पर रेमण्ड ने अधिकार कर लिया।

(2) दूसरा धर्म-युद्ध-(1147 ई०)—प्रथम धर्म-युद्ध मे ईसाइयो की विजय होने से व 1099 से 1187 ई० तक जेरूसलम पर शासन करते रहे। इस समय ईसाईयो के धार्मिक यात्रा और व्यापार पर लगे हुये प्रतिबन्ध को हटा दिया गया। अब ईसाई बिना रोक टोक के पुन जेरूसलम की यात्रा पर जाने लगे और पश्चिमी एशिया के तटो पर ईसाई व्यापारी पुन फल गय। चालीस वर्षों तक जेरूसलम में शान्ति व्यवस्था स्थापित रही। 1144 ई० म मोसुल के अमीर जागी ने जब लेबनट क ईसाई राज्य पर आक्रमण कर अधिकार कर लिया, तो दूसरा धर्म युद्ध प्रारम्भ हो गया।

इस युद्ध म जर्मन सम्राट केनाड तृतीय और फ्रांसीसी सम्राट लुई षष्ठम ने अपनी-अपनी सेना के साथ एशिया माइनर पर आक्रमण कर दिया। वे अमीर जागी के आक्रमण को विफल करना चाहते थ। अमीर जागी ने जर्मन सेना को युद्ध म बुरी तरह पराजित कर भगा दिया, किन्तु फ्रांस के सम्राट षष्ठम न अपनी सेना के साथ दमिश्क पर घेरा डाल दिया। काफी संघर्ष के पश्चात भी सम्राट षष्ठम दमिश्क पर विजय प्राप्त नही कर सका। अन्त मे वह घेरा उठा कर फ्रांस को वापस लौट आया। इस युद्ध म 3 हजार ईसाई मारे गये। ईसाईयो की यह हार 1148 ई० म हुई थी।

अमीर जागी के पश्चात मोसूल का अमीर सलादीन हुआ। उसने 1174 ई म मिश्र पर, 1183 में सीरीया पर और 1187 म जेरूसलम पर अधिकार कर लिया और वहा क ईसाई शासक लुसी गनान को बन्दी बना लिया।

इस प्रकार अक्टूबर 1187 ई० म जेरूसलम पर पुन तुर्कों का अधिकार हो गया।

*(3) तीसरा धर्म-युद्ध-(1189 ई०)—जेरूसलम पर सलादीन का अधि*कार होन के पश्चात यूरोप मे ऐसी अफवाहें फली कि सलादीन प्रात काल के नाश्ते म ईसाई बच्चो को खाता है। पोप ने ईसाई सम्राटो से जेरूसलम को मुसलमानो क आधिपत्य स मुक्त करान के लिये पुन अपील की। इस पर पवित्र रोमन सम्राट फ्रेडरिक, इगलण्ड का सम्राट रिचार्ड प्रथम और फ्रांस का सम्राट फिलिप आगस्टस अपनी सेना के साथ तुर्की पर आक्रमण करने के लिए रवाना हुए। फ्रांस और

इगलण्ड की सेना जल माग से और जमन सेना थल माग से जेरूसलम पर आक्रमण करने के लिए रवाना हुई। पवित्र रोमन सम्राट फ्रेडरिक की तो एशिया माइनर में प्रवेश करते ही मृत्यु हो गई। इन तीनो शासको ने एक घेरा डाला था परन्तु सलादीन ने इनको सब तरफ से घेर लिया। इसी समय फ्रास के शासक फिलिप के इगलैंड के शासक रिचाड से मतभेद पैदा हो गये इसलिये फिलिप बीमारी का बहाना बनाकर फ्रास लौट गया किन्तु इगलण्ड का शासक रिचाड प्रथम युद्ध के मैदान म ही डटा रहा। अग्रेज फौजें निरन्तर आगे बढ़ती रहीं। अन्त म सलादीन को 1193 ई० म इगलण्ड के सम्राट रिचाड प्रथम से समझौता करने के लिए बाध्य होना पड़ा। इस समझौते के अनुसार नवेन्ट के तटीय प्रदेशो पर ईसाईयो का अधिकार मान लिया गया तथा जरूसलम म उन्हे धार्मिक सुविधायें प्रदान की गई। इस प्रकार यह एक सम्मानजनक समझौता था। 1194 ई० म सलादीन की मृत्यु हो गई।

(4) **चौथा धम-युद्ध**–(1202–1204 ई०)—चौथा धम युद्ध 1202 ई० मे प्रारम्भ हुआ जो 1204 ई० तक चलता रहा। वेनिस के व्यापारियो ने इस युद्ध का नेतृत्व किया था। इन व्यापारियो ने बाइजेन्टाइन से व्यापारिक प्रतियोगिता म आगे बढने के लिए धम युद्ध प्रारम्भ कर दिया। अमीर सलादीन की मृत्यु से वेनिस लोगो ने जेरूसलम पर अधिकार करने का निश्चय किया। पोप इन्नोसेन्ट तृतीय ने इन व्यापारियो को सहायता प्रदान की। इस पर अल्पकाल के लिये पोप का जेरूसलम पर अधिकार हो गया। पोप ने कस्तुन्तुनिया पर भी अधिकार कर लिया, किन्तु ईसाईया म फूट पड जाने से मुसलमानो ने कस्तुन्तुनिया पर फिर से अधिकार कर लिया। प्लट और ड्रमड ने लिखा है कि बनियो ने एक धम-युद्ध छेडा जो कुछ समय के लिये सफल भी हुआ किन्तु यह युद्ध जेरूसलम के मुसलमानो के विरुद्ध नही अपितु कस्तुन्तुनिया के अपने साथी ईसाईयो के विरुद्ध था।[1]

(5) **पाचवा धम-युद्ध**–(1212 ई०)—पाचवा धम युद्ध 1212 ई० मे हुआ। इस धम-युद्ध को बालको का धम युद्ध भी कहते हैं। धम युद्धो की असफलता के पश्चात कुछ लोगो ने यह मत प्रकट किया कि बच्चो की एक सेना को जरूसलम पर आक्रमण करने के लिये भेजना चाहिये। उनके मत का आधार बाईबिल का एक कथन था। बाईबिल म कहा गया था कि सकट के समय एक छोटा बालक उनका (ईसाईयो) का नेतृत्व करेगा। इस आधार पर एक फ्रासीसी बालक स्टीफेन 30 000 बालकों के साथ और निकोलस नामक बालक 20,000 बालको के साथ जेरूसलम पर आक्रमण करने के लिए रवाना हुये। परन्तु यह प्रयत्न भी असफल रहा। सेना के अधिकाश बालक माग म ही मृत्यु को प्राप्त हुये। और

1—प्लट और ड्रमड—विश्व का इतिहास—पृ 213

बचे हुये बालका के जेरूसलम पहुचने पर तुर्को न दास बनाकर बेच दिया। सेवाइन ने लिखा है कि इस सारे युग का यह सबसे अधिक भाग्यहीन अभियान था।"[1] वास्तव म इन धम युद्धो मे सबसे दु खद बच्चा का धम युद्ध था।

(7) छठा धम-युद्ध–(1228 से 1244 ई०)—छठा धम युद्ध 1228 ई० म प्रारम्भ हुआ और 1244 ई० तक चलता रहा। इस युद्ध का नेतृत्व पहले जान दी ब्रीन ने और बाद म फ्रेडरिक द्वितीय ने किया, परन्तु उनको सफलता प्राप्त नही हो सकी। इस समय पोप ने फ्रेडरिक को पवित्र रोमन सम्राट पद से हटा दिया। इस पर फ्रेडरिक न कूटनीति का प्रयोग करते हुए तुर्की सुल्तान के साथ समझौता कर लिया। इस समझौते के अनुसार जरूसलम, नैजरथ और बेथ लहम आदि धार्मिक स्थाना पर ईसाईया का यात्रा करन की स्वतन्त्रता तो मिल गई परन्तु 1244 ई० म टर्को के सुल्तान ने इस समझौते को भग कर दिया। इस प्रकार यह व्यवस्था भी अस्थाई सिद्ध हुई।

(7) सातवाँ धम-युद्ध–(1248–1270 ई०)—सातवा धम-युद्ध 1248 में प्रारम्भ हुआ और 1270 तक चलता रहा। इस धम युद्ध म फ्रास के सम्राट लुई नवम न दनता पर अधिकार कर लिया। इसके पश्चात् जब लुई मिश्र को विजय करन के लिये आगे बढ़ा तो तुर्की सेना ने उसे बुरी तरह पराजित किया और बन्दी बना लिया। लुई न तुर्की सुल्तान को बहुत सा धन देकर बद स मुक्ति प्राप्त की।

इसके पश्चात लुई न 1270 ई० म एक बार फिर तुर्की स आज्य पर आक्रमण किया किन्तु युद्ध प्रारम्भ होन के पूव ही उसकी मृत्यु हो गई। इस प्रकार यह धम युद्ध बीच म ही बन्द हो गया। उचित अवसर पाकर तुर्कों न पुन सीरिया, जरूसलम कस्तुन्तुनिया और समस्त बल्कान प्रदश पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार 200 वर्षों के युद्धा और बलिदाना क बाद भी ईसाई अपने तीथ स्थान जरूसलम को तुर्कों क आधिपत्य से मुक्त नही करवा सके। वैसे इतिहास म अनको व्यथ के युद्ध लड गय हैं लेकिन इन धम युद्धा का उन निरथक युद्धो की मेरिट म प्रथम स्थान है।

धम युद्धों के परिणाम— यूरोप के ईसाईयो न अपन पवित्र धार्मिक स्थान जेरूसलम पर अधिकार करने क उद्देश्य स धमयुद्ध लड थ, लेकिन वे अपन उद्देश्य की प्राप्ति म असफल रहे और जेरूसलम पर अधिकार नही कर सके। प्लट और जौन इमड ने लिखा है कि 'धम युद्ध पवित्र भूमि जेरूसलम पर अधिकार पान म

1—सेवाइन— ए हिस्ट्री आफ वल्ड सिवलीजेशन— पृ 348

इंगलण्ड की सेना जल मार्ग से और जर्मन सेना थल मार्ग से जेरूसलम पर आक्रमण करने के लिए रवाना हुई। पवित्र रोमन सम्राट फ्रेडरिक की तो एशिया माइनर में प्रवेश करते ही मृत्यु हो गई। इन तीनों शासकों ने एक घेरा डाला था परन्तु सलादीन ने इनको सब तरफ से घेर लिया। इसी समय फ्रांस के शासक फिलिप के इंगलैण्ड के शासक रिचार्ड से मतभेद पैदा हो गये इसलिये फिलिप बीमारी का बहाना बनाकर फ्रांस लौट गया, किन्तु इंगलण्ड का शासक रिचार्ड प्रथम युद्ध के मैदान में ही डटा रहा। अंग्रेज फौजें निरन्तर आगे बढ़ती रहीं। अन्त में सलादीन को 1193 ई० में इंगलण्ड के सम्राट रिचार्ड प्रथम से समझौता करने के लिए बाध्य होना पड़ा। इस समझौते के अनुसार लबनान के तटीय प्रदेशों पर ईसाईयों का अधिकार मान लिया गया तथा जेरूसलम में उन्हें धार्मिक सुविधायें प्रदान की गई। इस प्रकार यह एक सम्मानजनक समझौता था। 1194 ई० में सलादीन की मृत्यु हो गई।

(4) चौथा धर्म-युद्ध–(1202–1204 ई०)—चौथा धर्म-युद्ध 1202 ई० में प्रारम्भ हुआ जो 1204 ई० तक चलता रहा। वेनिस के व्यापारियों ने इस युद्ध का नेतृत्व किया था। इन व्यापारियों ने बाइजेन्टाइन से व्यापारिक प्रतियोगिता में आगे बढ़ने के लिए धर्म युद्ध प्रारम्भ कर दिया। अमीर सलादीन की मृत्यु से वेनिस लोगों ने जेरूसलम पर अधिकार करने का निश्चय किया। पोप इन्नोसेन्ट तृतीय ने इन व्यापारियों को सहायता प्रदान की। इस पर अल्पकाल के लिये पोप का जेरूसलम पर अधिकार हो गया। पोप ने कुस्तुन्तुनिया पर भी अधिकार कर लिया, किन्तु ईसाईयों में फूट पड़ जाने से मुसलमानों ने कुस्तुन्तुनिया पर फिर से अधिकार कर लिया। प्लट और ड्रमन्ड ने लिखा है कि वेनिया ने एक धर्म-युद्ध छेड़ा जो कुछ समय के लिये सफल भी हुआ किन्तु यह युद्ध जेरूसलम के मुसलमानों के विरुद्ध नहीं अपितु कुस्तुन्तुनिया के अपने साथी ईसाईयों के विरुद्ध था।[1]

(5) पाँचवा धर्म-युद्ध–(1212 ई०)—पाँचवा धर्म युद्ध 1212 ई० में हुआ। इस धर्म-युद्ध को बालकों का धर्म-युद्ध भी कहते हैं। धर्म युद्धों की असफलता के पश्चात कुछ लोगों ने यह मत प्रकट किया कि बच्चों की एक सेना को जेरूसलम पर आक्रमण करने के लिये भेजना चाहिये। उनके मत का आधार बाईबिल का एक कथन था। बाईबिल में कहा गया था कि संकट के समय एक छोटा बालक उनका (ईसाईयों) का नेतृत्व करेगा।' इस आधार पर एक फ्रांसीसी बालक स्टीफिन 30,000 बालकों के साथ और निकोलस नामक बालक 20,000 बालकों के साथ जेरूसलम पर आक्रमण करने के लिए रवाना हुये। परन्तु यह प्रयत्न भी असफल रहा। सेना के अधिकांश बालक मार्ग में ही मृत्यु को प्राप्त हुये। और

1—प्लट और ड्रमड—विश्व का इतिहास—पृ 213

बच्चे हुए बालकों को जेरूसलम पहुँचने पर तुर्कों ने दास बनाकर बेच दिया। सेवाइन ने लिखा है कि "इस सारे युग का यह सबसे अधिक भाग्यहीन अभियान था।"[1] वास्तव में इन धर्म युद्धों में सबसे दु:खद बच्चों का धर्म युद्ध था।

(7) छठा धर्म-युद्ध—(1228 से 1244 ई०)—छठा धर्म युद्ध 1228 ई० में प्रारम्भ हुआ और 1244 ई० तक चलता रहा। इस युद्ध का नेतृत्व पहले जान दी ब्रीन ने और बाद में फ्रेडरिक द्वितीय ने किया परन्तु उनको सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। इस समय पोप ने फ्रेडरिक को पवित्र रोमन सम्राट पद से हटा दिया। इस पर फ्रेडरिक ने कूटनीति का प्रयोग करते हुए तुर्की सुल्तान के साथ समझौता कर लिया। इस समझौते के अनुसार जेरूसलम, नैजरथ और बेथलेहम आदि धार्मिक स्थानों पर ईसाईयों को यात्रा करने की स्वतन्त्रता तो मिल गई परन्तु 1244 ई० में टर्की के सुल्तान ने इस समझौते को भंग कर दिया। इस प्रकार यह व्यवस्था भी अस्थाई सिद्ध हुई।

(7) सातवां धर्म-युद्ध—(1248–1270 ई०)—सातवां धर्म युद्ध 1248 में प्रारम्भ हुआ और 1270 तक चलता रहा। इस धर्म युद्ध में फ्रांस के सम्राट लुई नवम ने दमता पर अधिकार कर लिया। इसके पश्चात् जब लुई मिश्र को विजय करने के लिये आगे बढ़ा तो तुर्की सेना ने उसे बुरी तरह पराजित किया और बन्दी बना लिया। लुई ने तुर्की सुल्तान को बहुत सा धन देकर कैद से मुक्ति प्राप्त की।

इसके पश्चात लुई ने 1270 ई० में एक बार फिर तुर्की साम्राज्य पर आक्रमण किया किन्तु युद्ध प्रारम्भ होने के पूर्व ही उसकी मृत्यु हो गई। इस प्रकार यह धर्म युद्ध बीच में ही बन्द हो गया। उचित अवसर पाकर तुर्कों ने पुनः सीरिया, जेरूसलम, कुस्तुनतुनिया और समस्त बल्कान प्रदेश पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार 200 वर्षों के युद्धों और बलिदानों के बाद भी ईसाई अपने तीर्थ स्थान जेरूसलम को तुर्कों के आधिपत्य से मुक्त नहीं करवा सके। वैसे इतिहास में अनेकों व्यर्थ के युद्ध लड़े गये हैं लेकिन इन धर्म-युद्धों का उन निरर्थक युद्धों की श्रेणी में प्रथम स्थान है।

धर्म युद्धों के परिणाम—यूरोप के ईसाईयों ने अपने पवित्र धार्मिक स्थान जेरूसलम पर अधिकार करने के उद्देश्य से धर्मयुद्ध लड़े थे, लेकिन वे अपने उद्देश्य की प्राप्ति में असफल रहे और जेरूसलम पर अधिकार नहीं कर सके। प्लट और जीन ड्रमंड ने लिखा है कि 'धर्म युद्ध पवित्र भूमि जेरूसलम पर अधिकार पाने में

1—सेवाइन—ए हिस्ट्री आफ वर्ल्ड सिविलीजेशन—पृ 348

असफल रहे, किन्तु वे एक नये यूरोप का निर्माण करने में सहायक बने।'[1] इन धर्म युद्धों के प्रमुख परिणाम निम्नलिखित हुए —

(1) जन की हानि—इन युद्धों में जन की अपार क्षति हुई। पोप ने घोषणा की थी कि जो व्यक्ति इन युद्धों में भाग लेगा, ईश्वर उनके पाप क्षमा कर देगा, इसलिये सम्पूर्ण ईसाई जगत कृषक कारीगर और मजदूरों ने इन युद्धों में भाग लिया। परिणाम स्वरूप हजारों व्यक्ति व्यर्थ ही इन युद्धों में मारे गये। पोप ने ईसाई धर्म की रक्षा के नाम पर उन लोगों का खून बहाया जो यूरोपियन सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के आधार स्तम्भ थे।

(2) भौगोलिक ज्ञान में वृद्धि—इन धर्म युद्धों की यात्रा से ईसाईयों के भौगोलिक ज्ञान में वृद्धि हुई। पश्चिमी यूरोप के लोगों ने भूमध्य सागर व पश्चिमी एशिया के प्रदेशों की यात्रा की। जिससे इन देशों के विषय में उनको भौगोलिक अनुभव प्राप्त हुआ। मार्कोपोलो ने अनुसंधान के लिये बड़ी-बड़ी यात्रायें की। दूर देशों के बारे में भौगोलिक खोजों के कारण यूरोपियन लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन आया। प्रोफेसर नेविल ने लिखा है कि 'इस भौगोलिक ज्ञान के बिना पुनर्जागरण वैसा नहीं हो सकता था जैसा कि वह था।"

(3) सामन्तवाद का अन्त—धर्मयुद्धों के कारण सामन्तों की शक्ति का अन्त हो गया। इन युद्धों से पहले यूरोपियन समाज पर सामन्तों का बहुत अधिक प्रभाव था। अनेक सामन्तों ने युद्धों में जाने से पहले अपनी जमीनें व्यापारियों को बेच दी थी। युद्धों में अधिकांश सामन्त मारे गये और जो सामन्त युद्ध में पराजित होकर लौटे उनका समाज में अब पहले जैसा प्रभाव नहीं रहा। इसके अतिरिक्त सामन्त युद्ध में जाने से पहले उनके अनेक दासों किसानों (सर्फों) की जमीन और उनके परिवार को स्वतन्त्र कर चुके थे। इसलिए धर्मयुद्धों के पश्चात किसानों को सामन्तों के शोषण से मुक्ति मिली। परिणामस्वरूप सामन्तवाद सदा के लिये समाप्त हो गया।

(4) एकतन्त्रीय शासन व्यवस्था—धर्मयुद्धों के कारण यूरोप में एकतन्त्रीय शासन व्यवस्था के विचारों का विकास हुआ। इन युद्धों के कारण पश्चिमी यूरोप के सम्राट पूर्वी शासन व्यवस्था के सम्पर्क में आये। इसका यूरोपियन सम्राटों पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। यूरोपियन सम्राटों का यह मानना था कि एकतन्त्रीय शासन व्यवस्था के कारण ही मुसलमानों को इन धर्मयुद्धों में सफलता प्राप्त हुई है। इसके अतिरिक्त मुसलमान शासकों के ठाट बाट और दरबार ने भी यूरोपियन सम्राटों को काफी प्रभावित किया। धर्मयुद्धों के पश्चात् यूरोप में राष्ट्रीय राज्यों का निर्माण शुरू हो

1—प्लट और जीन ड्रमंड—विश्व का इतिहास—पृष्ठ 213

गया और वहा एकतन्त्रीय शासन व्यवस्था की स्थापना की गयी। फ्रांस, इंगलण्ड, पुर्तगाल, स्वीडन आदि देशो म धम युद्धो के पश्चात तुर्कों के दरबार के आधार पर अपने वभवपूण दरबारो का गठन किया।

(5) इस्लाम मे कट्टरता का प्रवेश धमयुद्धा के कारण इस्लाम म महत्व पूण परिवतन हुए। धमयुद्धा क पूव इस्लाम उदारवादी था, लेकिन इसक पश्चात इस्लाम म कट्टरता ने प्रवश किया। अब तुर्कों ने शक्ति से तलवार के बल पर अपने साम्राज्य का विस्तार किया और उसकी रक्षा की।

(6) पोप के प्रभाव मे कमी—इन धम युद्धा के कारण पोप का प्रभाव कम हो गया। जब ईसाई जगत जरुसलम को तुर्कों के प्रभाव से मुक्त नही करवा सका तो पोप के प्रभुत्व को गहरा आघात पहु चा। ईसाईयो न जरूसलम पर अधि कार करन के जिस उद्देश्य से युद्ध लडे थे, वो पूरा नही हो सका। जनता की धम से आस्था उठ गई। पोप के आदेशानुसार 50,000 हजार बच्चे जेरुसलम को स्वतन्त्र कराने के लिय भेजे गये थे। जब उनम से एक भी वापस जिन्दा नही लौटा तो पोप के इस कथन "ईश्वर यह कहता है" से जनता का विश्वास उठ गया। अब जनता को यह विश्वास हो गया कि पोप ईश्वर का प्रतिनिधि नही है। पोप का यह विश्वास था कि यूरोप के बडे-बडे सम्राट इन युद्धो मे भाग लेकर या तो मारे जावेंगे या उनकी शक्ति कमजोर हो जायेगी और तब वह एक विशाल साम्राज्य का स्वामी बन जायेगा लेकिन पोप की यह आशा भी पूरी नही हुई। इन धमयुद्धो के कारण पोप की शक्ति कमजोर हुई और उसके प्रभाव तथा सम्मान म भी कमी आई।

(7) धम सुधार आन्दोलन—इन युद्धा से पोप के प्रभाव में कमी हुई। इस समय पोप का नतिक पतन होने लगा। उसने सादगी को छोडकर विलासिता पूण जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ किया था। परिणामस्वरूप अब जनसाधारण पोप के आचरण पर आरोप लगाने लगा। बारहवी और तेरहवी शताब्दी म लियोन्स के एक व्यापारी पीटर वाल्टी ने पोप तथा अन्य धर्माधिकारियो को सादगीपूण जीवन व्यतीत करने की सलाह दी। पीटर वाल्टो स्वय पादरी बन गया। उसन कहा कि ईश्वर और पुत्र के बीच पादरी की कोई आवश्यकता नही है और मोक्ष प्राप्त करने के लिए सिफ बाईबिल पर्याप्त है, पोप के आर्शीवाद की कोई आवश्यकता नही है। इस पर पोप ने पीटर को धम द्रोही बताया।

पोप के विरुद्ध दूसरा आन्दोलन दक्षिण फ्रास के एल्बी नगर म प्रारम्भ हुआ। यहा क लोगो न पोप की विलासिता का विरोध किया। उनका यह मानना था कि मोक्ष प्राप्त करने के लिए चच की कोई आवश्यकता नही है। पोप न इस आन्दोलन को भी शक्ति से दबा दिया। इस प्रकार धीरे धीरे पोप के आचरण के विरुद्ध धमसुधार आन्दोलन प्रारम्भ हो गया।

(8) **उद्योग के क्षेत्र मे विकास**—धमयुद्धो के कारण यूरोप म उद्योग के क्षेत्र म काफी विकास हुआ। उद्योगा के विकास के कारण यूरोपियन देशो म मजदूरो की माग बढी। अरबा ने यूरोपवासिया को नीबू, नारगी व गन्ने आदि की खेती करना सिखाया। मुसलमानो ने यूरोपियन देशो को मशीनो का प्रयोग करना सिखाया। अब यूरोप म कुटीर उद्योगो के स्थान पर बडे-बडे कारखाना के द्वारा माल उत्पादित किया जाने लगा इसलिये इन धमयुद्धो को औद्योगिक क्रांति तयार करने वाला आधार माना जाता है।

(9) **व्यापार मे वद्धि**—धमयुद्धो क कारण यूरोप व पूव के व्यापार म वद्धि हुइ। यूरोप चावल प्याज लहसन, मक्का मलमल रग काच गममसाले, रूई और रेशम आदि वस्तुओ को पूर्वी देशो से मँगवाता था और इसक बदले मे चमडा ऊन धातु और कपडे पूर्वी दशो को निर्यात करता था। इन धमयुद्धा के कारण यूरोप के व्यापार म काफी वद्धि हुई और इटली तथा फ्रास के अनेक नगर विशाल व समद्ध हो गये। प्लट और जीन डमड ने लिखा है कि 'इन नगरा की बढोतरी व्यापार तथा निर्माण मे वद्धि और महाजनी के विकास स एक शक्तिशाली व्यवसायी वग उठ खडा हुआ।[1]

(10) **गिल्ड प्रथा का प्रारम्भ**—धमयुद्धो के कारण गिल्ड प्रथा प्रारम्भ हुइ। यूरोप म प्रत्येक वग के व्यापारियो ने अपने उद्योग धधो की रक्षा के लिये गिल्ड (श्रेणिया) या सगठन बना लिये। उत्पादन गिल्ड और वितरण गिल्ड आदि श्रेणियो का व्यापार पर नियत्रण स्थापित हो गया। इसके पश्चात कुटीर व्यवसायों और जता निर्माताओ आदि के गिल्ड बने। य गिल्ड ही वस्तुओ का उत्पादन मूल्य एव बेचन का मूल्य निर्धारित करते थ। मण्डिया व्यापार और बाजार आदि सभी तरह के निणय करत थे। इसम सामूहिक व्यापार की शुरूआत हुई, लेकिन इसस व्यापार म व्यक्तिगत स्वतत्रता की समाप्ति हो गई थी।

(11) **मुद्रा के क्षेत्र मे प्रगति**—यूरोप ने धम युद्धो के दौरान मुद्रा के क्षेत्र म प्रगति की। इन धमयुद्धा से पूव सामन्त और चच के धमाधिकारी अपने कृषको से अनाज या श्रम के रूप म कर वसूल करते थे लेकिन व्यापार म उन्नति के साथ साथ मुद्रा का महत्त्व भी बढ्ने लगा। व्यापार की प्रगति के कारण व्यापारी के पास धन एकत्रित होने लगा। धीरे धीरे व्यापारी वग धनवान होता चला गया। धमयुद्ध के दौरान यूरोप म मुद्रा का प्रचलन शुरू हो गया था और इसे धन के रूप म भी परिणित किया जाने लगा था। इस समय प्रत्येक देश मे भिन्न भिन्न प्रकार के सिक्के प्रचलित किये गय और धातुओ के आधार पर मुद्राओ के मूल्य निश्चित किये।

1—प्लट और जीन डमड—विश्व का इतिहास—पृष्ठ 213

(12) सांस्कृतिक आदान प्रदान—इन धर्म युद्धों के कारण पूर्व और पश्चिम देशों के बीच सांस्कृतिक आदान प्रदान सम्भव हुआ। अरबों ने यूरोप को ज्योमेट्री, कुतुबनुमा, बारूद, मुद्रण यन्त्र और गणित में अंकों का प्रयोग करना सिखाया। छापखाने का आविष्कार के कारण यूरोप में शिक्षा का प्रसार हुआ। इस समय पूर्वी दर्शन का पश्चिमी देशों में प्रचार हुआ। प्लेटो, अरस्तु आदि के ग्रन्थों का अरबी भाषा में अनुवाद किया गया। इस सम्पर्क का ईसाईयों के रहन-सहन और रीतिरिवाजों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। अब यूरोपियन निवासी विलासिता की सामग्री और बढ़िया फर्नीचर का प्रयोग अधिक करने लगे। यूरोपियन शासकों ने मुसलमान शासकों की तरह अपने दरबार को सजाया।

खलीफाओं के समय की सांस्कृतिक गतिविधियों का यूरोप में प्रचार हुआ। पूर्व और पश्चिम दोनों के बीच साहित्य, कला, विज्ञान और रीति रिवाजों आदि का आदान प्रदान हुआ। धर्मयुद्धों के पश्चात् पोप ने भी मुसलमान शासकों की तरह विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ कर दिया। इन धर्मयुद्धों के कारण पुनर्जागरण सम्भव हो सका। सेवाइन ने लिखा है कि 'निर्णायक रूप से यह कहा जा सकता है कि धर्मयुद्धों ने नये विचारों के उदय और पुरानी व्यवस्था को फाड़ फेंकने में अत्याधिक योगदान दिया, जिन्होंने पुनर्जागरण सम्भव किया।"[1]

1—सेवाइन—ए हिस्ट्री आफ वर्ल्ड सिविलाईजेशन, पृष्ठ 349

प्रस्तावित सन्दर्भ पुस्तकें —

1 सेवाइन—एक हिस्ट्री ऑफ वर्ल्ड सिविलाईजेशन
2 वीच, डब्ल्यू० एन०—हिस्ट्री ऑफ दी वर्ल्ड
3 वेल्स, एच० जी०—दी आउट लाइन ऑफ हिस्ट्री
4 एलिस और जौन—संसार का इतिहास
5 प्लट, जीन और ड्रमंड—विश्व का इतिहास
6 मकनल बर्नस—वैस्टर्न सिविलाईजेशन्स

2

सामन्तवाद

मध्यकालीन यूरोप की सबसे महत्वपूर्ण देन सामन्तवादी व्यवस्था है। उस समय का राजनीतिक व सामाजिक जीवन इसी प्रथा पर आधारित था। सामन्तवाद को अंग्रेजी में 'फ्यूडेलिज्म' कहा जाता है। 'फ्यूडल'' शब्द का जन्म 'फ्यूडम'' नामक शब्द से हुआ है जिसका अर्थ है 'जागीरदार'; प्रोफेसर डेविस ने लिखा है कि "सामन्तवाद किसी राजाज्ञा या किसी मनुष्य की देन नहीं थी अपितु वह तो मध्यकालीन युग की एक स्वाभाविक देन थी। प्लट व जीन ड्रमड ने लिखा है कि 'मध्ययुगीन सामन्त तन्त्र न कोई प्रणाली न योजना और न कोई आयोजना ही थी। यह यूरोप के सब क्षेत्रों में ठीक एक जैसा भी नहीं था। यह तो आवश्यकता के कारण हुआ विकास भर था।'[1]

इसका यह अर्थ नहीं है कि सामन्तवाद का विकास आकस्मिक रूप से हुआ। वास्तव में प्राचीन सभ्यताओं के काल से ही यह प्रथा विकसित हो रही थी। चीन और मिश्र आदि देशों में सामन्तों ने कई बार अशान्ति और अव्यवस्था उत्पन्न करने का प्रयास किया था। प्राचीन यूनान के नगर राज्यों के सामन्तों को विशेषाधिकार प्राप्त थे। मध्यकालीन युग में अराजकता एवं अशान्ति के कारण सामन्तवाद का विकास हुआ। समस्त यूरोप और भारत में सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक सभी व्यवस्थायें सामन्तवादी व्यवस्था पर आधारित थी।

रोमन साम्राज्य के पतन के समय जब रोम पर बर्बर जातियों के आक्रमण होने लगे तब इन आक्रमणकारियों से रोमवासियों की रक्षा करने का भार कुछ वीर पुरुषों ने अपने कन्धों पर ले लिया। इन वीर पुरुषों ने यूरोप के नगरों व ग्रामों में दुर्गों का निर्माण करवाया और उनमें कुछ शस्त्र व सैनिक रखे जिनकी सहायता से वे लुटेरों से ग्राम व नगरवासियों की रक्षा करते थे। उन्होंने आसपास की भूमि पर अधिकार कर लिया। कृषकों श्रमिकों और व्यापारियों ने सामन्तों की अधीनता

1—प्लैंट व जीन ड्रमड—विश्व का इतिहास—पृ 201

स्वीकार कर ली। किसानों ने आक्रमणकारियों से अपनी भूमि की रक्षा करने के लिये भूमि पर वीर सामन्तों को अधिकार दे दिया। इन वीर सामन्तों ने भूमि की रक्षा के बदले किसानों से कर मांगा, जिसे उन्होंने देना स्वीकार कर लिया। कुछ धार्मिक लोगों ने अपनी भूमि का अधिकार चर्च को दे दिया। चर्च ने इसके बदले में उनको आजीवन खेती करने का अधिकार प्रदान किया। इस प्रकार समय के अनुसार वीर पुरुषों और जन साधारण के बीच एक समझौता सम्पन्न हुआ। इससे सामन्तों की उत्पत्ति हुई और उनका कार्य सामन्तवाद कहलाया।

डब्ल्यू० एन० वीच ने लिखा है कि—'केन्द्रीय सरकार के समाप्त हो जाने पर जनता अपनी रक्षा के लिए स्वतः जन समूह बना ले, जो किसी शक्तिशाली के चारों तरफ हो समाज के उसी गठन को सामन्तवाद कहते हैं।'[1] बर्नस ने लिखा है कि—"सामन्तवाद की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है कि समाज का विकेन्द्रित ढांचा जिसमें सरकार की शक्ति अपने पर आधारित लोगों के सामन्त में हो।"[2]

प्रोफेसर विल डूरा ने लिखा कि—'इतिहास की अधिकांश आर्थिक और सामाजिक रचनाओं के समान सामन्तवाद भी स्थान समय और मानव स्वभाव की आवश्यकताओं के अनुकूल था।"

यूरोप में छठी शताब्दी से लेकर 15 वीं शताब्दी तक सामन्तवाद का विकास होता रहा। सामन्तवादी शासन व्यवस्था के अन्दर स्थानीय शासक राजा के अधिकारों का प्रयोग करता था। सामन्तवाद का स्वरूप विभिन्न देशों में अलग अलग था। विशाल रोमन साम्राज्य की रक्षा के लिये सम्राट ने अपने वंशज और सम्बन्धियों को राज्य के कुछ भाग पर अधिकार दे दिया। ये व्यक्ति अपने अधीन राज्यों में शान्ति व्यवस्था बनाये रखते। अपने अधीन लोगों से कर वसूल करते और आपसी झगड़ों पर निर्णय करते थे। युद्ध के समय में सामन्त अपनी सेना लेकर राजा की सहायता के लिये युद्ध के मैदान में पहुंच जाते थे। धीरे धीरे ये पद पैतृक हो गये। यही व्यक्ति आगे चल कर सामन्त कहलाये। सेवाइन ने लिखा है कि— 'मध्यकालीन सामन्तवाद इन्हीं परिस्थितियों का दूसरा प्रत्यक्षीकरण था।"[3]

सम्राट शार्लमेन द्वारा नियुक्त प्रान्तों के अधिकारी आगे चलकर सामन्त बन गये। शार्लमेन के समय इन प्रान्तीय अधिकारियों को "मर्सीडिमीनिसाह्" के नाम से पुकारा जाता था। शार्लमेन के पश्चात उसके उत्तराधिकारी अयोग्य और दुर्बल सिद्ध हुए। उन्होंने सामन्तों का सहयोग प्राप्त करने के लिये, उन्हें

1—वीच डब्ल्यू० एच०—हिस्ट्री आफ दी वर्ल्ड—पृ 419

2—मैकनेल बर्नस—वैस्टर्न सिविलीजेशन—पृ 274

3—सवाइन—ए हिस्ट्री आफ वर्ल्ड सिविलीजेशन—पृ 299

विशेष अधिकार और सुविधायें प्रदान की। जिससे आगे चल कर सामन्तवाद का निरन्तर विकास होता रहा।

सामन्तवाद के विकास के कारण—सामन्तवाद के विकास के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे —

(1) विशाल साम्राज्य की स्थापना—मध्ययुग म राजा विशाल साम्राज्य की स्थापना तो कर लेते थे, लेकिन यातायात के साधनो के अभाव के कारण और स्वय की दुबलताओ के कारण अपने विशाल साम्राज्य को ठीक तरह से नही सभाल सकते थे, इसलिये उन्होंने सुरक्षा की दृष्टि स अपना विशाल साम्राज्य कई भागों में विभक्त कर दिया और वहा पर उन्होंने अपन सम्बन्धियो का शासन करने के लिये नियुक्त किया। इससे सामन्तवाद का तीव्र गति से विकास हुआ।

रोमन प्रशासन व्यवस्था म स्थानीय शासन का दायित्व कुलीनो पर निभर करता था। शक्तिशाली सम्राट के शासनकाल मे स्थानीय कुलीन अधिकारी केन्द्रीय आदेशो के अनुसार शासन करत रहे। जब केन्द्र दुबल हो गया तो इन स्थानीय कुलीन अधिकारियो ने स्वतन्त्र रूप से शासन करना आरम्भ कर दिया, और अपनी सुरक्षा के लिये अपने से अधिक शक्तिशाली कुलीनो का सरक्षण प्राप्त कर लिया।

(2) राजनीतिक अवस्था—अपने उत्कष काल म रोम ने सम्पूण पश्चिमी यूरोप पर अधिकार कर लिया था और एक ल व समय तक उन्होने वहा पर शान्ति और सुव्यवस्था बनाये रखी। रोमन साम्राज्य के पतन के समय पश्चिमी यूरोप मे अराजकता अशान्ति और अव्यवस्था फलने लगी। इसी समय बाहरी आक्रमण प्रारभ हो गये। इससे किसान बहुत भयभीत हुए क्योकि उनकी रक्षा करन वाला कोई नही था। रात्रि म बडे बडे कुलीन सरदारो ने अपन साथियो के साथ आसपास के किसानो का लूटना प्रारम्भ कर दिया। इतना ही नही इन कुलीन सरदारो ने अपन बराबर के कुलीनो को भी लूटना प्रारम्भ कर दिया।

कुलीन सरदारो की लूट के कारण किसान बहुत चिन्तित हो गये। उनको हमेशा अपनी फसल चोरी होने का भय रहता था लेकिन उनकी रक्षा करने वाला कोई नही था। इस समय किसान बहुत दु खी थे इसके अतिरिक्त कुलीन सरदार भी दुखी थे। क्योकि उन्हे आये दिन बडे सरदारो के हमले का भय लगा रहता था। कुलीन सरदारो के पास अस्त्र शस्त्र और दुग थे इसलिए किसान चाहते थे कि कुलीन सरदार उनकी रक्षा कर। कुलीन सरदार अपने दुग की रक्षा करने के लिए ऐसे लोगो की तलाश म थे जो उनकी सेना मे भर्ती हो सकें। इसके अतिरिक्त वे धन भी प्राप्त करना चाहते थे। इसलिए कुलीन सरदारो और किसानो के बीच मे एक समझौता हो गया।

इस समझौते के अनुसार किसानो ने अपनी भूमि सरदारो को सौप दी और यह निश्चित हुआ कि सरदार न तो उनको लूटेंगे और न ही उनकी फसलो को

नुकसान पहुँचायेंगे। इसके अतिरिक्त यदि किसी अन्य सरदार ने उन पर आक्रमण किया तो वे उनकी रक्षा करेंगे और अपने किले में आश्रय देंगे। इसके बदले में किसान अपनी उपज का एक निश्चित भाग सामन्तों को कर के रूप में देंगे, और उनके अन्य काम निःशुल्क करेंगे। इस व्यवस्था से किसानों को अपनी सुरक्षा की गारंटी तो प्राप्त हो गयी, परन्तु अब किसान स्वतन्त्र नहीं रहे। उनकी भूमि पर सामन्तों का अधिकार हो गया। अब किसानों की दशा अर्द्ध दास (सर्फ) जैसी हो गई थी। इसी प्रकार दुर्बल सामन्तों ने भी अपनी सुरक्षा के लिए अपने से शक्तिशाली सामन्तों के साथ समझौता कर लिया। बड़े सामन्तों ने छोटे सामन्तों की सुरक्षा का आश्वासन दिया। इसके बदले में छोटे सामन्तों ने धन तथा सैनिकों से बड़े सामन्तों की सेवा करना स्वीकार कर लिया। इस प्रकार एक नई सामाजिक तथा राजनीतिक व्यवस्था का विकास हुआ।

(3) आर्थिक व्यवस्था—सामन्तवाद प्रथा के विकास में आर्थिक व्यवस्था का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। रोमन साम्राज्य का सारा काम दास ही करते थे। खेती भी दासों के द्वारा ही की जाती थी, लेकिन दासों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया जाता था। उनके स्वामी उनका शोषण करते थे। उन पर नाना प्रकार के अत्याचार करते थे। परिणामस्वरूप दासों ने खेती करना छोड़ दिया, जिससे राज्य की पैदावार घटने लगी।

ऐसी स्थिति में रोमन लोगों ने पैदावार बढ़ाने के लिए गुलामों को कुछ सुविधायें प्रदान की। उन्होंने गुलामों को भूमि दी और उन्हें दासता से मुक्त कर दिया। अब गुलामों ने खेती का काम करना शुरू कर दिया लेकिन उन्हें अपनी भूमि की उपज का कुछ हिस्सा कर के रूप में अपने स्वामी को देना पड़ता था। इसके अतिरिक्त गुलामों को अपने स्वामी के बहुत से काम निःशुल्क करने पड़ते थे। इस प्रकार गुलामों को ज्यादा सुविधायें तो नहीं मिलीं परन्तु उन्हें पारिवारिक जीवन तथा भरण पोषण करने की सुविधा अवश्य प्राप्त हो गई। अब इन गुलामों को अर्द्ध दास या कृषक दास या सर्फ अर्थात् कम्मी के नाम से पुकारा जाने लगा। इन नये किसानों की रक्षा करने वाला कुलीन सरदार सामन्त के नाम से प्रसिद्ध हुआ। एक सामन्त के अधीन कई सर्फ होते थे। एक बड़े सामन्त के अधीन कई छोटे सामन्त होते थे। इनमें से प्रत्येक अपने स्वामी के आगे स्वामी भक्त रहने की शपथ ग्रहण करता था। एक सर्फ अपना सिर सामन्त के चरणों में रखकर शपथ ग्रहण करता था कि "आज के दिन से आजीवन मैं शरीर और आत्मा से आपका आदमी बनता हूँ और आपके प्रति सच्चा और वफादार रहूँगा।"

तब सामन्त उस सर्फ को उठा कर उसका मुँह चूमता था। इस प्रकार किसान सामन्त की, सामन्त बड़े सामन्त की और बड़ा सामन्त राजा की अधीनता स्वीकार कर लेता था। अब भूमि पर सामन्त का अधिकार था। वह जब चाहे तब

कृपक को भूमि स बेदखल कर सकता था। इसलिए साम तवादी व्यवस्था को एक कृपि सम्बन्धी सामाजिक व्यवस्था भी कहा जाता है क्योंकि कृपक और साम त क आपसी सम्बन्धो का मुख्य आधार भूमि वितरण था।

(4) जमनी का प्रभाव— मैकनल बनस ने लिखा है कि "यदि जमनी का प्रभाव नही होता तो मध्य युग मे साम तवाद विशेष स्वरूप धारण नही करता।"[1]

रोम स पहले जमनी म साम तवाद का विकास आरम्भ हो गया था। जमनी म इस विकास का श्रेय कोमीटेटस नामक सस्था को दिया जाता है। कोमीटेटस एक ऐसी सस्था थी, जिसका प्रत्यक सदस्य वफादारी और ईमानदारी स अपने मुखिया की सवा करने का वायदा करता था। इसके बदले म मुखिया उन्हे भूमि पर खेती करने का अधिकार देता था एव शस्त्र देता था। इस सस्था क प्रत्येक सदस्य को बाइबल पर हाथ रखकर वफादारी की कसम खानी पडती थी। जमनी के सामन्तवाद का स्वरूप रोमन स्वरूप स भिन था। जमनी की इस सस्था म मुखिया और अन्य योद्धा बराबर थे। बनस ने लिखा है कि "कोमीटेटस का सम्मान और बफा दारी के सम्बन्धो के विचार ने ही आगे चलकर साम्यवाद मे अपना रूप बदल दिया।"[2]

यहा के साम तवाद मे साम त के द्वारा प्रत्येक सदस्य को बफादारी की शपथ दिलवाई जाती थी। उस कमैडेशन कहते थे। यह शब्द कोमीटेटस स ही लिया गया है। जमनी के कोमीटेटस नामक सस्था क सदस्यो को सम्पत्ति रखने का अधिकार था। इस सस्था का मुखिया जनता को अपनी सम्पति भी ल जान की स्वीकृति देता था। इसस स्पष्ट है कि जमनी ने साम तवाद को सगठित किया। साम तवाद क कानून और परम्परा पर भी जमन प्रभाव स्पष्ट रूप स दृष्टिगोचर होता है।

जमन समाज विभिन्न कबीलो मे विभाजित था। यहा प्रत्येक जाति क कबीला का अलग अलग नता होता था। जब जमनी के कबीलो न काफी भूमि पर अधिकार कर लिया तो उन्होने प्रत्येक कबीले क नेता को भूमि बाट दी। इस समय दोनो क बीच यह समझौता हुआ कि नेता उनकी रक्षा करेगा लेकिन उसक अधीन सरदार अपन नता क लिए सनिक तथा राजनीतिक सवायें देंगे। इस प्रकार विभिन्न कबीलो का नता बहुत बडा साम त बन गया।

(5) शालमन की नीति रोमन साम्राज्य क पतन क समय सामन्तवाद का विकास हो रहा था। रोम क पतन क बाद म आठवी शताब्दी म पपिन नामक सेनापति न एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की। पेपिन क करलोमैन और शालमन दो पुत्र थे। पेपिन क दोनो पुत्रो न विशाल साम्राज्य का दो भागो म विभाजित कर दिया। करलोमैन न अनक प्रदेश विजय कर साम्राज्य का विस्तार किया किन्तु कुछ ही वर्षों म उसकी मृत्यु हो गई।

1 मैकनल बनस—वस्टन सिवलीजेशन्स—पृष्ठ–275
2 मैकनल बनस—वस्टन सिवलीजेशन्स—पृष्ठ–276

शालमेन के लिये इस विशाल साम्राज्य पर यातायात के साधनों के अभाव के कारण नियन्त्रण रखना बहुत कठिन था। उसने इस समस्या को हल करने के लिये अपने विशाल साम्राज्य का विभाजन कर दिया तथा प्रत्येक प्रान्त में अपने स्थानीय सेवकों को नियुक्त कर दिया। प्रान्त का प्रत्येक स्थानीय शासक एक निश्चित मात्रा में सेना रख सकता था और वर्ष में एक बार शालमेन के दरबार में उपस्थित होकर उसको लगान और उपहार स्वरूप अनेक वस्तुएँ देता था। शालमेन एक योग्य और पराक्रमी सम्राट था। इसलिये उसके शासन काल में प्रान्त के किसी भी स्थानीय शासक ने विद्रोह करने का साहस नहीं किया किन्तु शालमेन की मृत्यु के पश्चात उसके उत्तराधिकारियों की दुर्बलता के कारण सभी स्थानीय शासक स्वतन्त्र हो गये। ये स्थानीय शासक सामन्त कहलाये। इस प्रकार यूरोप में शालमेन ने सामन्त प्रथा को संगठित किया। एलिस और जौन ने लिखा है कि "शालमेन का साम्राज्य इतना बड़ा था कि उस पर एक व्यक्ति अकेला शासन नहीं कर सकता था। इसके अतिरिक्त उसके समय में धन का अभाव था। इसलिये शालमेन ने युद्ध सहायता देने वालों को बड़े बड़े भूखण्ड दिये। इन पर उन्हें शासन करना था। इन भूखण्डों को काउण्टी डची और मार्च कहते थे। इनके शासक काउन्ट ड्यूक और मार्किस कहलाते थे। इस तरह इन उपाधियों की उत्पत्ति हुई जो यूरोप में शताब्दियों से चली आ रही हैं। इस प्रथा के कारण लोगों के पास बड़ी बड़ी भू सम्पत्तियाँ बन गई और किसान अपनी भूमि के स्वामित्व से वंचित रह गये।"[1] इस प्रथा को इतिहासकारों ने सामन्तवाद के नाम से पुकारा है।

(6) **यातायात के साधनों का अभाव**—अंग्रेजों ने विश्व में सबसे बड़ा साम्राज्य स्थापित किया। विकसित यातायात के साधनों के कारण वे एक लम्बे समय तक अपने विशाल साम्राज्य पर सफलतापूर्वक शासन करते रहे। प्राचीन काल में यातायात के साधनों के अभाव के कारण शासक अपने विशाल साम्राज्य को सम्भालने में असमर्थ थे इसलिए राजाओं ने विशाल साम्राज्य को विभक्त कर अपने सम्बन्धियों और स्वामीभक्त सेवकों को वहाँ का शासक नियुक्त कर दिया। इससे आगे चलकर सामन्तवाद का विकास हुआ।

मध्य कालीन युग में पश्चिमी यूरोप में अराजकता, अशान्ति और अव्यवस्था फैली हुई थी। उस समय यातायात के साधनों के अभाव के कारण राजा के लिये एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित करना एक अत्यन्त कठिन कार्य था। ऐसी परिस्थिति में सामन्तवाद के विकास को प्रोत्साहन मिला। इस समय प्रत्येक अवसरवादी ने अपनी शक्ति में वृद्धि की। पादरी रोमन अधिकारी तथा प्रत्येक अवसरवादी सरदार ने अपने प्रभाव में वृद्धि की। ऐसे समय

---

1 एलिस और जौन—संसार का इतिहास पृष्ठ 167

म गराज लोगा ने अपनी सुरक्षा क लिय शक्तिशाली लोगा की शरण ली। बीच न लिखा है कि अराजकता और सन्दिग्धता के सागर म यूरोप डूबा जा रहा था। तभी राजनीतिक संगठन क नाम पर सामन्तवाद का बडी तजी स संगठन हुआ।'[1]

सामन्तवाद के चिह्न यूरोप म आज भी स्पष्ट रूप से दृष्टि गोचर होते हैं।

(7) **विदेशियों के आक्रमण**—मध्ययुग म विदेशिया के आक्रमण के कारण सामन्तवाद का तीव्र गति से विकास हुआ। आठवी शताब्दी मे नोमन्स, स्लाव और मुसलमान पश्चिमी यूरोप पर लगातार आक्रमण करते रहे। ये आक्रमण कर लूटमार मचाते और अनेक व्यक्तियों का निर्दयता स कत्ल कर देते थे। मुख्यरूप से नोमन्स के आक्रमणो का पश्चिमी यूरोप पर भारी आतंक छाया हुआ था। इन आक्रमणकारियों से रक्षा पाने के लिये किसानो ने ऐसे शक्तिशाली व्यक्तियों की शरण ली जिनके पास हथियार और सुरक्षा के लिये दुर्ग थे। इस प्रकार विदेशी आक्रमणो की वृद्धि के कारण *जनता को शरणागत और शासकों को सामन्त के रूप म परि*वर्तित कर दिया। यूरोपियन सम्राटो ने विदेशी आक्रमणो से जनता की रक्षा करने के लिये सेनापतियों और वीर पुरुषो को भूमि प्रदान की। इसके बदले मे उनसे अच्छी सेना की माग की गई कालांतर मे ये सेनापति ही सामन्त बन गये।

(8) **धर्म युद्ध**—यूरोप म इस्लाम का विस्तार रोकने के लिये छोटे छोटे जागीरदारो ने धर्म युद्धो म चर्च की सहायता की और इन युद्धों म उन्होने बहुत अधिक प्रसिद्धि प्राप्त की। इन जागीरदारो न पश्चिमी यूरोप म इस्लाम के प्रसार पर रोक लगा दी। परिणाम स्वरूप जन साधारण को यह विश्वास हो गया कि संकट के समय ये जागीरदार या सामन्त उनकी रक्षा कर सकते हैं। इसलिये आम जनता सामन्तो के दुर्गों के नीचे चारो ओर बस गई ताकि आक्रमण के समय वे अपनी जान की रक्षा करने के लिए गढी मे शरण ले सके।

गढ म रहने वाले ड्यूक और काउंट आदि कुलीन पुरुष धर्म युद्धो मे प्राप्त ख्याति का लाभ उठाकर सामन्त बन गये। प्राचीन काल म सम्राट चर्च को उपहार *स्वरूप जागीर और जमीनें आदि दान म देते थे।* चर्च ने *जिन जिन किसानो को* अपनी भूमि खेती करने के लिय दी वे किसान चर्च के वफादार और स्वामीभक्त सेवक बन गये। चर्च के आधार पर अन्य समृद्ध लोगो ने भी अपनी भूमि खेती करने के लिए कुछ लोगों को दी। वे लोग उनके वफादार सेवक बन गये। इस प्रकार सामंतवाद प्रारम्भ हो गया। यद्यपि सामन्तो के नेतृत्व म ईसाई धर्म युद्ध म मुसलमानो को पराजित नहीं कर सके लेकिन धर्म युद्धो म उन्होने ईसाई सेना का नेतृत्व किया। जिसके कारण ईसाई जगत म उनका सम्मान और प्रतिष्ठा बढी। इस अवसर का लाभ उठाकर इन सामन्तो ने अपनी शक्ति मे वृद्धि की।

---

1 बीच ड्यू एन–हिस्ट्री आफ दी वर्ल्ड

(9) **सामन्तों का आदर्श चरित्र**—एक तरफ तो कुछ ऐसे सामन्त थे जो लूटत और उनके परिवार के सदस्यो को गुलामो की तरह बेच देते थे। उनकी इस प्रकार की लूटमार से सब तरफ अराजकता अशान्ति और अव्यवस्था का आतंक छाया हुआ था। दूसरी तरफ कुछ ऐसे धर्म परायण सामन्त भी थे जिनके अच्छे चरित्र व कार्यों से जन साधारण उनकी ओर आकर्षित हुआ। उन्होंने किसानो की आक्रमणकारियो से रक्षा की और गरीबो को शोषण तथा दासता से मुक्ति दिलवाई। उनकी कला के क्षेत्र म बहुत अधिक रुचि थी इसलिये उन्होंने अपने यहा कई कलाकारो को आश्रय प्रदान किया। परिणामस्वरूप इन सम्पन्न समृद्ध और शक्तिशाली सामन्तो की जनसाधारण ने अधीनता स्वीकार करली। इस प्रकार सामन्तवाद का विकास होता चला गया।

(10) **रोमन प्रथाओं का प्रभाव**—रोमन साम्राज्य की 'कोलोनट' और 'प्रिसेरियम' आदि प्रथाओं ने सामन्तवाद के विकास म अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। कोलोनेट प्रथा म तो सामन्तो ने अपनी उपज मे वृद्धि करने के लिये गुलामो को थोडी स्वतन्त्रता देकर अपनी भूमि उन्हें खेती करने के लिय दे दी। इससे सामन्तो की शक्ति मे वृद्धि हुई।

प्रिसेरियम प्रथा के अन्तर्गत समृद्ध लोग अपनी जीती हुई भूमि को किसानों को किराय पर खेती करने के लिये दे देते थे। इसी प्रथा के अनुसार कई किसानो ने अपनी सुरक्षा के लिय या कर्ज से मुक्ति प्राप्त करने के लिये अपनी भूमि सामन्तो को सौंप दी। इस प्रथा के अनुसार भूमि स्वामी अपने किरायेदार किसानो की रक्षा का पूरा उत्तरदायित्व अपने उपर लेता था और सकट के समय उनकी रक्षा करता था। मैक्नल बर्नस ने लिखा है कि "इन अन्तिम रोमन प्रथाओ का जिन्हें कोलोनेट और प्रिसेरियम कहते थे। रोमन इतिहास म सामन्तवाद के विकास मे बहुत बडा योगदान है।'[1] कालान्तर म किरायेदार किसान केवल सामन्त के मात्र सेवक बनकर रह गय और उनका सम्राट से साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहा।

सामन्तवाद का अर्थ तथा तत्व—साधारण तौर से जब एक कमजोर व्यक्ति अपनी भूमि तथा स्वय की सुरक्षा के लिय अपनी भूमि को एक शक्तिशाली व्यक्ति के हाथो म सौंप देता और उसकी अधीनता स्वीकार कर लेता तो वह शक्तिशाली व्यक्ति उसकी सुरक्षा करता था। इसके बदले मे कमजोर व्यक्ति उसको अपनी उपज का एक निश्चित भाग कर के रूप म देता था। इस व्यवस्था को सामन्तवाद के नाम से पुकारा जाता था। अराजकता के समय म सामन्तवाद का विकास हुआ। इसका विकास धीरे धीरे हुआ। इस व्यवस्था को पूर्ण विकसित होने म कई शताब्दियां बीत गई। आरम्भ म सामन्तवाद एक समझौत की तरह था। इस व्यवस्था के

---

1 मक्नेल बर्नस–वेस्टर्न सिवलीजेशन्स–पृ 274

अनुसार कृषक और सामन्ता के बीच एक समझौता हो जाता था और दोनो ही समझौते के अनुसार अपने कर्त्तव्या का पालन करत थे। धीरे धीरे चर्चों, राजाओं और नगर के समृद्ध लोगो न भी सामन्त बनना आरम्भ कर दिया। कुछ ही समय म सामन्तवाद सभी सस्थाओ पर छा गया।

सामन्त को लाड' तथा उसकी भूमि को फीफ के नाम से पुकारा जाता था। राजा सामन्त को उसकी सेवा के बदले म जो भूमि देता था उसे वह किराय पर खेती करने के लिये किसानो को दे देता था। दोना के बीच म एक समझौता हो जाता था। उसके अनुसार साम त खेती करन के बदले म किसान का उपज का एक निश्चित भाग देता था। शेष उपज पर सामन्त का अधिकार रहता था। इसी प्रकार छोटे सामन्त बडे सामन्ता से समझौता करते थे। इसके अनुसार बडा सामन्त छोटे सामन्त की रक्षा करता था। इस रक्षा के बदले म छोटा सामन्त बडे सामन्त को उपज का एक निश्चित भाग दता था। उस समय बडे सामन्त वल्लास (आसामी) रखते थे। सामन्त अपने स बडे लाड की सनिक सेवा करता था और अनेक वस्तुऐं उसको उपहार स्वरूप भेंट करता था। यदि युद्ध म लाड का बन्दी बना लिया जाता तो सफ उसे हरजाना देकर छुडाकर लाते थ। इसी प्रकार लाड की लडकी की शादी म सभी सर्फों को उपहार स्वरूप वस्तुऐं भेंट देनी पडती थी। इसके अतिरिक्त लाड का लडका व्यस्क होने पर उसे 'नाईट की उपाधि प्रदान की जाती थी और उसके अधीन किसानो को उपहार देने पडत थे।

समय के अनुसार सम्राटो न प्रा ता के स्थानीय सामन्ता को लगान वसूल करने का अधिकार दिया और राजस्व सम्बन्धी मामलो म निणय करने का भी अधिकार दिया। इससे सामन्ता की शक्ति म और वृद्धि हुई। छाट सामन्त को अपनी जागीर से बाहर जाने के लिय बडे सामन्त की स्वीकृति लेनी पडती थी। उनके शादी ब्याह लेन देन भी बडे सामन्त की इजाजत के बिना नही हो सकत थे। सिफ लोगो के लिये अध्ययन भी वजित था। उनको पढाई करने क लिये सामन्त की स्वीकृति प्राप्त करनी पडती थी। जब लाड अपने वेलास (आसामी) को भूमि सौंपता था तो वेलास इमानदारी और वफादारी स काम करने की कसम खाता था। वेलास की मृत्यु के पश्चात उसके पुत्र के व्यस्क होन पर साम त उसको भूमि सौंप देता था। उस समय देश का शासन सामन्तो के हाथ मे था। यह कहना गलत न होगा कि मध्यकालीन यूरोप मे शासन की वास्तविक शक्ति सामन्ता के हाथो मे निहित थी। सामन्त अपनी रक्षा के लिये पत्थर की मजबूत दीवारो से दुर्गों का निर्माण करवात थ। आगे चलकर इन दुर्गों म टावर का भी निर्माण किया जाने लगा। जिनकी ऊचाई 190 फीट तक होती थी। इन टावरो म सन्तरी पहरा देता था। सामन्त के लडके को बचपन से ही सभी प्रकार के शस्त्रो को चलाने की शिक्षा दी जाती थी। इस काल मे वीर पुरुष को आदर की दृष्टि से देखा जाता

था। उसे समाज मे बहुत सम्मान दिया जाता था। प्लैट जीन और डमड ने सामत-काल के एक गीत की निम्न पत्तिया दी है 'शान्ति मे मुझे नही आनद, युद्ध तू बनजा मेरा भाग्य।"[1]

उस समय छोटा भाई अपने बडे भाई की भूमि पर अधिकार करने के लिए उसकी हत्या तक कर देता था। बडे साम्राज्यो के पतन के समय सामतवाद का तेजी के साथ विकास हुआ।

सामतवाद का स्वरूप— *सामतवादी व्यवस्था का आधार भूमि वितरण* व्यवस्था थी। उस समय इस प्रथा के दो स्वरूप थ—1-राजनीतिक दृष्टि से सामतवाद का स्वरूप 2-आर्थिक दृष्टि से सामतवाद का स्वरूप।

(1) राजनीतिक दृष्टि से सामतवाद का स्वरूप—राजनीतिक स्वरूप के अतगत सामन्तवादी व्यवस्था म कमजोर सम्राट भी सर्वोपरि होता था। देश की सम्पूर्ण भूमि पर सम्राट का अधिकार माना जाता था। वह कुछ भूमि को अपने पास रखता था और शेष भूमि को लाड म बांट देता था। य लार्ड बडे सामन्त होते थे, जो विशाल भूमि के स्वामी होते थे। बडा सामन्त अपनी फीफ फीफ को छोटे-छोटे भागो म विभाजित कर छोट सामतो मे बाट देता था। य छोटे सामत बडे सामन्तो के वासाल (आसामी) थे। इनको अपनी योग्यतानुसार ड्यूक, काउण्ट बैरन और 'नाईट' की उपाधि प्रदान की जाती थी।

काउण्ट की नियुक्ति सम्राट के द्वारा स्थायी रूप से की जाती थी और वह सम्राट के प्रति ही उत्तरदायी होता था। उसकी नियुक्ति करना तथा पद से हटाना सम्राट की इच्छा पर निभर करता था। क्रेन ब्रिटन न लिखा है कि काउण्ट आर्थिक न्यायिक व सैनिक प्रबन्ध के साथ शासक के प्रतिनिधि के रूप म करता था। इसके अतिरिक्त वह सिर्फ सम्राट क प्रति ही उत्तरदायी होता था।

ड्यूक को लैटिन भाषा म ड्यूक्स कहा जाता है। जिसका अर्थ होता है 'विशाल भू भाग का स्वामी' इसस पता चलता है कि ड्यूक काउण्ट से बडा और अधिक प्रभावशाली व्यक्ति था। युद्ध क परीक्षण म सफल व्यक्तियो को राज्य की ओर से नाईट (शूरवीर) की उपाधि प्रदान की जाती थी। य नाईट भी अपनी भूमि का कुछ भाग दूसरा का देकर उन्ह अपना सेवक बना सकत थ। चच क धर्माधिकारी भी भूमिपति (लार्ड) अथवा अनुचर (वसाल) दोनो ही बन सकत थ। सामन्तवाद का सबस छोटा व्यक्ति सफ[3] होता था।

(2) आर्थिक दृष्टि से सामन्त प्रथा का स्वरूप—आर्थिक दृष्टि से सामन्त

---

1 प्लैट जीन और डमड-विश्व का इतिहास पृ 202
2 भूमि क छोटे-छोटे भाग को फीफ कहा जाता था।
3 कृषक दासो को मध्य युग म सफ के नाम स पुकारा जाता था।

प्रथा का स्वरूप साम`त और कृपक के बीच सम्ब धो पर आधारित था। इसके अ`तगत साम`त की भूमि से प्राप्त होने वाली आय और उसके कृपक दास से सबध निश्चित किये जाते थे। छोटे साम`त गावो म सुदढ दुग बनाकर रहते थ और दुग के आसपास की भूमि पर उनका अधिकार होता था। कभी कभी बड साम`त अपने अधीन छोटे साम`तो मे भूमि को बाट देते थे। जिन शर्तों पर बडा साम`त कृपक दास के साथ समझौता करता था। वही शर्तें बडा साम`त छोटे साम`त के साथ भी रखता था। छोटे साम`तो को "मनर कहा जाता था।

एक शक्तिशाली साम`त के पास हजारो की सख्या म मनर होते थे। य मनर जीवन भर अपने स्वामी की सेवा करते थे। यदि कोई मनर" बेच दिये जाते अथवा दूसरे भूमिपति के अधिकार म चले जात तो कृपक दास भी बिके हुए समने जात थे और उ हे नये स्वामी की आजीवन भर सेवा करनी पडती थी। सामन्त कृपक दासो का घोर शोषण करता था। छोटे साम`त भी बडे साम`तो की तरह अपनी भूमि कृपक दासो मे बाटकर उनसे खेती करवाते थे।

**साम`तवाद का सगठन**—जब राजा बडे साम`त को और बडा साम`त छोटे साम`त को भूमि का हस्ता`तरण करता था, तब एक शानदार समारोह आयोजित किया जाता था। इस समारोह म साम`त नि शस्त्र होकर नग सिर राजा अथवा बडे साम`त के चरणो म झुक जाता था, और उनका हाथ चूमकर यह शपथ लेता था कि म आजीवन भर वफादारी और इमानदारी के साथ अपने स्वामी की सेवा करता रहू गा और साम`त का आदमी बनकर रहू गा। लेटिन भाषा मे आदमी का होमो" कहा जाता था। इसलिय यह शपथ होमज' कहलाती थी। इसके पश्चात कृपक दास बाईबल पर हाथ रखकर कसम खाता कि मैं जीवन भर अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करता रहू गा। इस शपथ को फिपल्टी की शपथ कहा जाता था। इसके पश्चात साम`त या लाड अपने किसान को मिट्टी का ढेला या टहनी देता था। इसका अथ यह था कि किसान का जमीन दे दी गई। इसी के साथ मालिक अपने साम`त की रक्षा करने का वचन देता था।

उपरोक्त समारोह म सर्वोच्च स्थान राजा का और उसके बाद लाड का होता था, पर`तु वास्तविक स्थिति यह थी कि राजा का स्थान नाम मात्र का हुआ करता था और व्यावहारिक दप्टि मे लाड (बडे साम`त) का प्रभाव सर्वाधिक होता था। प्रशासन व्यवस्था का आधार बडे बडे साम`त थे जिनका शासन पर पूण नियत्रण था। राज्य के सभी उच्च पदा पर बडे बडे साम`तो का अधिकार था। उस समय साम`ती प्रथा का मुख्य आधार सनिक सेवा थी। राजा के पास स्थायी और नियमित सेना नही होती थी। उसकी सनिक शक्ति साम`तो पर निभर करती थी। इसलिये सामन्तो का महत्व बनना स्वाभाविक सी बात थी। ये साम`त अपनी जागीरो म बने हुए सुदढ दुर्गों म रहते थे। इनके राजा के दरबार मे अधिकारी

और कर्मचारी रहते थे। कई बड़े-बड़े सामन्तो ने राजाओं की तरह सिक्के ढलवाये। राजा लोग विशेष अवसरों पर सामन्तों की सलाह लेने के लिये सभा बुलाते थे। इससे आगे चलकर संसदीय प्रणाली का सूत्रपात हुआ।

मध्य युग के सामन्तों के पास अपार धन सम्पत्ति और विशाल भूमि थी। उनका प्रशासन पर भी नियन्त्रण था। फिर भी ये लोग विलासपूर्ण जीवन व्यतीत नहीं करते थे और अपने कर्त्तव्यों का पालन निष्ठा के साथ करते थे। ये अपने क्षेत्र के लोगों की भलाई के लिये हमेशा चिन्तित रहते थे। वे प्रजा की भलाई के लिये सार्वजनिक निर्माण के अनेक कार्य करवाते थे। पुलों, और नहरों का निर्माण करवाते थे सड़कों की मरम्मत करवाते थे। इतना ही नहीं मार्गों की सुरक्षा के लिये विशेष प्रबन्ध करते थे, ताकि व्यापार बिना किसी बाधा के उन्नति कर सके।

छोटे सामन्तों के कर्त्तव्य

1 वर्ष में 40 दिन तक अपने बड़े सामन्त के लिये युद्ध करना पड़ेगा।

2 लार्ड के बुलाने पर उसके दरबार में उपस्थित होना पड़ेगा।

3 वर्ष में तीन बार बड़े लार्ड को उपहार स्वरूप कुछ न कुछ वस्तु अवश्य देनी पड़ती थी। इसके अतिरिक्त छोटे सामन्त को लार्ड के लड़के को 'नाईट' की उपाधि मिलने के समय और उसकी लड़की की शादी में भेंट देनी पड़ती थी। साथ ही लार्ड के बन्दी बन जाने पर हरजाना देकर उसे मुक्त भी करवाना पड़ता था।

सामन्त अपने किसानों के साथ लिखित समझौते करते थे।

बड़े सामन्तों के कर्त्तव्य—बड़े सामन्तों के मुख्य कर्त्तव्य निम्नलिखित थे—

1 बड़े सामन्त अपने क्षेत्र के निवासियों की आक्रमण के या बाढ़ के समय रक्षा करते थे। उन्हें अपने गढ़ में संरक्षण देते थे। इसके अतिरिक्त शत्रु से मुकाबला करने के लिये उन्हें अस्त्र शस्त्र आदि देते थे।

2 वे अपने क्षेत्र में कृषि, वाणिज्य व्यापार तथा उद्योग धन्धों को प्रोत्साहन देते थे।

3 युद्ध के समय बड़े सामन्त अपनी सेना लेकर राजा की सहायता के लिये पहुँच जाते थे और राजा की तरफ से युद्ध में भाग लेते थे।

4 बड़े सामन्त किसानों से उपज का एक निश्चित भाग कर के रूप में लेते थे।

5 वे अपने क्षेत्र में शान्ति और व्यवस्था को बनाये रखते थे।

6 राजा के बुलाने पर दरबार में उपस्थित होते थे और उसको प्रत्येक राजकीय कार्य में सहयोग देते थे।

7 जनता के आपसी विवादों को निपटाना।

8 जनता को न्याय प्रदान करना।

9 जनता के धम की रक्षा करना भी उनका कत्तव्य था।

10 दुबल व्यक्तियो तथा नारियो की रक्षा करना।

11 किसान के बीमार हो जाने पर वह उसको आर्थिक सहायता प्रदान करता था।

12 वह अपन क्षेत्र म जनहित के लिय नहरें पुल और सडकें आदि बनवाता था।

प्रोफेसर ल्यूकस न साम तो के कत्तव्यो पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि मध्य युग म साम त आधुनिक सगठित राज्य की भाति काय करते थे। व अपने क्षेत्र म शाति और सुव्यवस्था बनाये रखते और आर्थिक उन्नति के लिये भी विशेष प्रयत्न करत थ। वे ये सब काय सनिको की सहायता से करत थे।

सामन्तों के अधिकार— एक साम त अपने क्षेत्र म राजा की तरह अधिकारो का प्रयोग करता था। वेबेस्टर ने लिखा है कि "साम तवाद एक ऐसी शासन प्रणाली ह जिसम स्थानीय शासक उन सब शक्तियो का प्रयोग करते हैं जो कि एक सम्राट या राजा अथवा किसी केन्द्रीय शक्ति को प्राप्त होते हैं। साम त अपने क्षेत्र की प्रजा पर इच्छानुसार शासन कर सकता था। उसे अपने अधीन प्रदेशो मे याय के सम्पूण अधिकार प्राप्त थ।

एक साम त का अपने अधीन दासो पर पूण नियन्त्रण था। वह उनस मन चाहा ले सकता था। साम त अपनी व्यक्तिगत भूमि पर खेती करान के अलावा दासो से बगार भी ले सकता था। उनको युद्ध म भाग लेना पडता था तथा साम त के कई घरेलू कामो को भी करना पडता था। यूरोप म इस प्रकार के दास बहुत अधिक सख्या म थे।

एक साम त कृषक दास से भूमि के बदले मे उपज का एक निश्चित भाग लगान के रूप मे वसूल करता था। वह जब चाहे कृषक को भूमि से बेदखल कर सकता था। एक कृषक की मत्यु के पश्चात उसका उत्तराधिकारी साम त की स्वीकृति के पश्चात ही उस भूमि पर खेती कर सकता था। अपराध करने पर वह अपने किसान को कठोर से कठोर सजा दे सकता था। यहा तक कि उसका वध भी कर सकता था।

कृषक दास के कत्त व्य —कषक दास को 20 कत्तव्यो का पालन करना पडता था। जिनमे निम्नलिखित प्रमुख थे —

(1) कम्मी (कषक दास) अपने साम तो की खेती पर बिना मजदूरी के काम करता था। उन्हे अपनी उपज का एक निश्चित भाग साम तो को कर के रूप म देना पडता था। कषक दास वष भर म साम त को तीन प्रकार से कर चुकाता

था। (अ)–सामन्त द्वारा राजा को दिया जाने वाला कर (ब)–सामन्त का कर (स) भूमिपति द्वारा इच्छानुसार लगाया गया कर।

(2) सर्फ (कृषक दास) अपनी उपज का 1/10 भाग कर के रूप में सामन्त को देता था।

(3) सामन्त अपने कृषक दास से मनचाहा बेगार ले सकता था। सर्फ अपने स्वामी के लिये रोटी पकाता था, शराब तैयार करता था, लकड़ी फाड़ता था और शिकार के समय अपने स्वामी की सहायता करता था।

(4) कृषक दास अपने स्वामी के शराब के खर्च लिये शुल्क देता था।

(5) कृषक दास को युद्ध के समय अस्त्र शस्त्र धारण कर सामन्त की सेना में भर्ती होना पड़ता था और युद्ध में सामन्त की ओर से लड़ना पड़ता था।

(6) सर्फ (कृषक दास) अपने द्वारा बनाई गई जो भी वस्तु बाजार में बेचता उस वस्तु पर भी उसे सामन्त को कर देना पड़ता था।

(7) यदि कोई कृषक दास अपने पशुओं को अपने स्वामी की भूमि पर चराता तो उसके बदले में उसे अपने सामन्त को कर देना पड़ता था।

(8) सामन्त के बन्दी बन जाने पर सर्फ हरजाने की रकम देकर उसे मुक्त करवाते थे।

(9) सामन्त के पुत्र को 'नाईट' की उपाधि मिलने पर कृषक दास उसे उपहार देते थे।

(10) सामन्त की पुत्री की विवाह में भी कृषक दासों को उपहार देना पड़ता था और उसके दहेज के लिये भी धन देना पड़ता था। इसके अतिरिक्त शादी के अवसर पर आयोजित किये जाने वाले समारोहों का खर्चा भी देना पड़ता था।

(11) कम्मी या सर्फ के लड़के के लिये चर्च में जाने पर तथा पढ़ाई करने पर प्रतिबन्ध था। यदि कोई सर्फ इस आदेश की अवहेलना करता तो उसे सजा दी जाती थी, जबकि स्वामी के पुत्र की शिक्षा का व्यय उन्हें देना पड़ता था।

(12) यदि कोई कृषक दास एक स्थान से दूसरे को जाना चाहता तो उसे अपने स्वामी की स्वीकृति प्राप्त करनी पड़ती थी।

(13) यदि कोई कृषक दास दूसरे सामन्त के प्रदेश में अपने पुत्र का विवाह करना चाहता तो उसे अपने स्वामी को जुर्माना देना पड़ता था।

(14) यदि सामन्त चाहता तो अपने अधीन किसी भी कृषक दास की नव विवाहिता पत्नि के साथ प्रथम रात्रि को सभोग कर सकता था।

(15) यदि कोई कृषक दास निःसंतान मर जाता तो सामन्त उसका धन सम्पत्ति छीन लेता था।

कृषक दास का जीवन बहुत दुख मय था। उसकी मेहनत का

उसका स्वामी वर के रूप म ले लेता था। इस प्रकार सामन्त कृषक दासा का शोषण कर रह थे लेकिन कभी कभी यदि सामन्त अपन कृषक दास के साथ सुहानुभूति उदारता एव दया का व्यवहार करता तो इसस उसके जीवन म नव उल्लास का सचार हो जाता था।

सामन्तों का जीवन —(1) सामन्त की शक्तिया-सामन्त आपा क्षेत्र क्षेत्र का शासक होता था और अपन अधीन प्रदेशो म वह राजा की तरह अधिकारा का प्रयोग करता करता था। वह दूसर सामन्ता से युद्ध और सधि कर सकता था और अपनी जागीर मे राजा की तरह सिक्के ढलवाता था। सामन्त युद्ध म जो कवच पहन कर जाता था उसका वजन 10 पौंड था।[1]

सामन्त समय समय पर अपनी जागीर का निरीक्षण करता रहता था। इस निरीक्षण के समय वह गले म भारी जजीर अगुली मे सुन्दर अगूठिया, पैरो म लम्बे नुकीले जूते और एक बहुत सुन्दर गोटा किनारी लगा लम्बा वस्त्र धारण करता था। वह अपराधिया के कोडे लगाता था। उन्ह फासी पर लटका सकता था या कत्ल करवा सकता था। यदि कोई व्यक्ति राज्य द्रोही या धमद्रोही सिद्ध हो जाता तो उस मौत की सजा दी जाती थी।

(ii) आवास एव खानपान-प्रत्येक सामन्त शत्रु से रक्षा करने के लिये शानदार बढिया व सुन्दर गढ (दुग) का निर्माण करवाता था। यह पहाडो पर बनाये जाते थे। जिसके चारो तरफ चौडी खाई खोदी जाती थी। जब कभी गढ पर आक्रमण होता तो गढ के अन्दर से लोग शत्रु पर पत्थर और गरमशाशा आदि फैंकते थे। शत्रु लम्बे समय तक गढ को घेरे रहता ताकि गढ के लोग भूखे मर जाये। गढ म खाद्यान्न के बडे बडे भण्डार भरे रहते थे। इनम रहन के लिये विशेष सुविधा नही थी ये गढ सीलनदार ठडे और अधेरे कमरे की तरह थे। इनम सभ्य मनुष्य आराम से नही रह सकते थे। गढ म गुलाब की पखुडिया बिखेर कर दुगन्ध को दूर करने का प्रयास किया जाता था। सामता का मुख्य भोजन सूप मास मछली फल और मिठाई आदि थे।

(iii) सामन्तो के समय स्त्रियो की दशा यद्यपि गढ मे महिलाए बडी शान शौकत और ठाठ से रहती थी परतु उन्हे पुरुषो के समान अधिकार प्राप्त नही थे। इसके अतिरिक्त उन्ह बहुत कम स्वतत्रता थी। तेरह वष की लडकी का साठ वष के बुढढे के साथ विवाह किया जा सकता था। किसी कृषक दास की मत्यु होने पर सामन्त उसकी लडकी से विवाह करता था। लडकी को बचपन से ही ऐसे हाव भाव और तरीके सिखाये जाते थे ताकि वह अपने पति को आजीवन खुश रख सके। उस

---

[1] प्लैट जोन उडुमड-विश्व का इतिहास-पृष्ठ-103

समय लडकियाँ अपनी साँस को सुगंधित रखने के लिये विशेष प्रकार के बीज खाती रहती थी।"[1]

उस समय लडकिया अपने शरीर को नाजुक, पतला, सुदर और आकर्षक बनाये रखने के लिये कम भोजन करती थी। उनको गाना, बजाना, नृत्य करना घुडसवारी करना और योद्धाओ को आकर्षित करना सिखाया जाता था। इसके अतिरिक्त उनको बढिया बुनाई और कसीदा निकालना सिखाया जाता था। उस समय प्रत्येक स्त्री यह चेष्टा करती थी कि उसका पति उसे जीवन भर प्यार करता रहे। पति की अनुपस्थिति म वह उसकी जागीर की देखभाल करती थी। सामन्तो म बहुपत्नि विवाह प्रथा प्रचलित थी। उस समय स्त्री के द्वारा गल्ती की जाने पर पति उसे पीट सकता था। पत्नि को पीटना कानूनी रूप से वैध था।

(iv) सामन्तो के समय बच्चो की दशा —सामन्त का सबसे बडा लडका उसका उत्तराधिकारी माना जाता था। उसके वयस्क होने पर उसे 'नाईट' की उपाधि प्रदान की जाती थी। नाईट की उपाधि प्राप्त करने वाला व्यक्ति बहादुर होता था। जो अच्छा तैराक और तलवार चलाने म दक्ष होता था। नाईट की उपाधि के लिये बच्चे को बचपन से ही प्रशिक्षण दिया जाता था। सामन्त का सबसे बडा लडका सात वर्ष का हो जाता तो उसे गढ म भेज दिया जाता था। जहाँ उसे महिलाएँ खाने-पीने का तरीका और शिष्टाचार आदि सिखाती थी। पादरी उसे शिक्षा देता था तथा वीरता की कहानिया सुनाकर उसे योद्धा बनने के लिये प्रोत्साहित करता था। उसे शिकार करना, नाचना और गाना आदि भी सिखाया जाता था। पन्द्रह वर्ष की आयु का होने पर उसे घुडसवारी करने और हथियार चलाने आदि का प्रशिक्षण दिया जाता था। प्रशिक्षण पूरा होने पर वह नाईट की उपाधि लेने के लिये जिरह बख्तर लेकर चर्च म पहुच जाता था। जहा रात भर वह सिजदे में झुका रहता था। प्रातःकाल होने पर उसे स्नान कराया जाता था और उसके पश्चात उसे जिरह बख्तर पहना दिया जाता था। इसके बाद सामन्त उसके कधे पर तीन बार तलवार से हल्का वार कर करता था और कहता था कि "ईश्वर के सन्त माईकेल और सन्त जार्ज के नाम पर मैं तुम्हे नाईट की उपाधि प्रदान करता हू। बहादुर बनो शिष्ट बनो, वफादार बनो।"[2]

(v) आमोद प्रमोद —मनोरंजन के मुख्य साधन नृत्य संगीत आदि थे। इसके अतिरिक्त जादूगर और नट जनता को अपने करिश्मे दिखाकर उसका मनोरंजन करते थे। इस शान्तिकाल म सशस्त्र टूर्नामेन्ट आयोजित किये जाते थे। इसम सूरमा

1 ग्लंट जीन व इमड–विश्व का इतिहास–पृष्ठ 205

2 एलिस व जोन–ससार का इतिहास–पृष्ट–198

लोग द्वन्द युद्ध करते थे। इस समय सुन्दरियाँ की पत्नियाँ हाथ म झंडे लेकर बठी रहती थी। द्वन्द युद्ध मे विजय प्राप्त करने वाला सूरमा हारने वाले का झंडा ले लेता था।

सामत के कार्य व उसकी समीक्षा —मध्य युग म सामन्त कठोर जीवन व्यतीत करता था। वह अपने स्वामी के लिय वफादार रहता था तथा उसकी हमेशा सहायता करता था। अपने प्रदेश म विद्रोह का दमन करने के लिय उसे कई युद्ध करने पडते थे। कभी कभी वह कमजोर व्यक्तियो, स्त्रियो और धम की रक्षा क लिये भी युद्ध करता था। अपने प्रदेश म शाति और व्यवस्था बनाय रखता था। इसके अतिरिक्त मार्गों की सुरक्षा का प्रबन्ध करता था ताकि बिना किसी अवरोध के व्यापार और वाणिज्य उन्नति कर सकें। वह अपना अधिकाश समय प्रजाहित के कार्यों पर व्यतीत कर देता था। यद्यपि उसके पास धन का अभाव नही था फिर भी जनता के समक्ष अपना आदश उपस्थित करने के लिये भोग विलासपूर्ण जीवन व्यतीत नही करता था।

यद्यपि सामन्त मध्यकालीन युग के प्रारम्भिक वर्षों म इन आदर्शों का पालन करते रहे, परतु इस युग की अन्तिम शताब्दियो म उन्होने आदर्शों व कत्तव्यो का पालन करना छोड दिया और भोग विलास पूर्ण जीवन व्यतीत करने लगे। प्रारम्भ म वे जिस नारी के सतीत्व की रक्षा के लिये जान की बाजी लगाते थे अब उसी का अपहरण करने लगे। अपनी शक्ति मे वद्धि करने के लिय उन्होने पडोसी सामन्तो से युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया। किसानो पर मनमाना अत्याचार करने लगे और उनका शोषण करने लगे। इन कार्यों के फलस्वरूप उनके अधीन प्रदेशो म अराजकता अशान्ति और अव्यवस्था फैलने लगी तथा जनता म सामन्तों के विरुद्ध असतोष प्रारम्भ हो गया। जिसके कारण स्थान स्थान पर जनता ने उनके विरुद्ध विद्रोह करने प्रारम्भ कर दिये।

सामन्तों का चर्चों से सम्बध —सेवाइन ने लिखा है कि 'सामन्तवाद की वलिष्ठता गिरजाघर के प्रभाव से और भी बढ गई थी। गिरजाघर सबसे अधिक जमीन का मालिक था और कई विशेष अधिकार रखता था। जो उसे बाद के रोमन सम्राटो और फ्रैंको ने दिये थे।[1] गिरजाघरो को अधिकाश धन सम्पत्ति और भूमिदान क रूप म प्राप्त होती थी। चच क धर्माधिकारी बिशप और पादरीयो ने सामतो की तरह काय करना प्रारम्भ कर दिया था। जिस भूमि को पादरी किसानो मे बाटते थे उस भूमि पर चच स्थाई रूप से अधिकार कर लेता था। कई सामन्त तो युद्ध म मारे जाते थे और कईयो की नि सन्तान मृत्यु हो जाती थी। कुछ का राजा बदल देता था किन्तु जिस भूमि पर चच का अधिकार हो जाता उसका स्वामी कभी नही

1 सेवाइन—ए हिस्ट्री आफ वल्ड सिवलीजेशन—पृष्ठ 302

बदलता था क्योंकि चर्च कभी नही मरता । राज्यो को इससे यह नुकसान होता था कि नया सामन्त (चर्च) बनने पर भी उसको कोई आय प्राप्त नहीं होती थी गिरजाघरो के न तो लडके होते और न ही उनको नाईट की उपाधि दी जाती थी। इसलिये जो किसान चर्च के अनुचर होते थे, उन्हे इन अवसरो पर भेंट आदि भी नही देनी पडती थी । परिणामस्वरूप सामंत के शोषण से बचने के लिये गरीब लोगो ने चर्च की भूमि किराये पर लेना प्रारम्भ कर दिया ।

गिरजाघरो ने सामन्त प्रथा मे कुछ महत्वपूर्ण सुधार किये। 1000 ई० मे "पीस आफ गौड" तथा 1027 ई० मे प्रभू की धर्म संधि के नाम से सामन्तो को व्यर्थ के युद्ध न करने पर सहमत कर लिया । इस प्रकार चर्च ने सामन्तो से आग्रह किया कि वे सप्ताह मे चार दिन युद्ध न करें । सामन्तो ने इसे स्वीकार कर लिया। इस प्रकार चर्च ने शांति का वातावरण बनाने मे महत्वपूर्ण योगदान दिया । चर्च ने सामन्तो के शोषण से गरीब जनता को बचाने का यथा सभव प्रयास किया । इसी प्रकार चर्च ने ईस्टर से पहले 40 दिन तक सामन्तो को युद्ध न करने की बात पर राजी कर लिया । गिरजाघर के प्रभाव का वर्णन करते हुए एलिस व जोन ने लिखा है कि 'युद्ध के दौरान किसानो व्यापारियो और स्त्रियो को सताने की मनाही की गई ।[1]

चर्च को इस बात का श्रेय दिया जा सकता है कि उसने इन बहादुर सामन्तो को मानवीय दृष्टिकोण से सोचने के लिये विवश किया, ताकि युद्ध से पैदावार और व्यापार को कोई हानि नही पहुचे और आवश्यक वस्तुओ का उत्पादन बिना किसी बाधा के होता रहे ।

सामन्त और राजा के बीच सम्बन्ध—मध्य युग मे राजा नाम मात्र का शासक होता था और राज्य की वास्तविक शक्ति सामन्तो के हाथो मे केन्द्रित थी । फ्रांस मे अनेक ऐसे सामन्त थे जिसके पास सम्राट से भी अधिक धन, भूमि और सेना थी । छुटकारा देने की प्रथा के अन्तर्गत उस समय अनेक सामन्त सम्राट के नियन्त्रण से मुक्त हो चुके थे । इस प्रकार अनेक ऐसे सामन्त थे जो यद्यपि सम्राट के राज्य मे रहते थे पर सम्राट का उन पर कोई नियन्त्रण नही था । राज्य मे केवल मध्यम वर्ग ही सम्राट का स्वामी भक्त था । प्रत्येक सामन्त वर्ष मे तीन बार सम्राट को उपहार और कर देने के लिए जाता था । राजा को अपने अधीन सामन्तो के विवादो को निपटाने का अधिकार नही था । राज्य की सारी राजनीतिक शक्ति सामन्तो के हाथो मे निहित थी ।

सामन्त तथा राष्ट्रीयता—सेवाइन ने लिखा है कि "सामन्तवादी राज्य को

1 ऐलिस व जोन—ससार का इतिहास—पृष्ठ—196

राष्ट्रीयता का पूवज कहा गया है।'[1] यूरोप म अनेक ऐसे राज्य थे, जिनम सामन्त कई शताब्दियो तक शासन करते रहे। परिणाम स्वरूप थन्य देशा की अपेक्षा उन राज्यो म राष्ट्रीयता का विकास सबस पहले हुआ। इलीडी, फ्रास की रियासत के सामन्ता के द्वारा फ्रास का एकीकरण सभव हो सका था। अरागोन और कास्टिल रियासतो के सामन्ता ने स्पेन का एकीकरण किया था। हैप्सबग के सामन्ता ने आस्ट्रिया का एकीकरण किया था। इस प्रकार सामन्त रियासतो से एक राष्ट्र का निर्माण करने लग। इगलण्ड म विजेता विलियम ने 1806 म अपनी जाति के लोगो को एक करने की शपथ ग्रहण की। इस सालिलबरी शपथ कहा जाता था। वास्तविकता यह है कि सामन्तवादी प्रथाएँ सारे यूरोप म आज तक प्रचलित हैं। फ्रास म सामन्तो द्वारा जनता का बहुत अधिक शोषण करने पर 1789 ई० म क्राति हुई। 1917 ई० की रूसी क्रान्ति का मूल कारण भी सामन्तो द्वारा जनता शोषण था। इस प्रकार सामन्तवाद के कारण यूरोप म पहले राष्ट्रीयता की भावनाऐं विकसित हुई और उसके बाद क्रातिकारी विचारो का विकास हुआ।

सामन्तवाद से लाभ —यद्यपि यह सत्य है कि सामन्तवाद उपयोगी प्रथा नही थी। जिस भी देश मे सामन्तवादी शासन व्यवस्था होती थी वह कमजोर हो जाता था। और पतन की ओर अग्रसर हो जाता था। इतना सब कुछ होत हुए भी इस प्रथा से यूरोप के तत्कालीन समाज को बहुत लाभ हुए, क्योकि मध्ययुग म यूरोप वासियो के जीवन के प्रत्येक अग पर इस प्रथा का काफी प्रभाव पडा था। इस प्रथा के प्रमुख लाभ निम्नलिखित है —

(1) **साम्राज्य की सुरक्षा**—रोमन साम्राज्य के पतन के पश्चात् सामान्तो ने बबर आक्रमणकारियो से अपन राज्यो की रक्षा की और जनता को शान्ति तथा सुरक्षा प्रदान की। यूरोप म जमनी की असभ्य जातिया के आक्रमणो के कारण अराजकता, अशान्ति एव अव्यवस्था फल गई थी। सामन्तो ने इसका अन्त किया और अपने राज्य की रक्षा करते हुए जनता को भी शान्ति और सुरक्षा प्रदान की। उस समय राजा की शक्ति कमजोर हो चुकी थी तब सामन्तो ने आक्रमणकारियो से सामना करने के लिए राजा को अपनी सैनिक सहायता देकर उसके सारे साम्राज्य की रक्षा की। उन्होने मध्य युग म व्याप्त अराजकता एव अव्यवस्था का अन्त किया और अपने अधीन प्रदेशा मे शान्ति और सुव्यवस्था बनाये रखी। इस प्रकार सामन्तो ने केन्द्रीय शक्ति के अभाव को पूरा कर दिया। इस प्रथा से राजा को समय पर सामन्त सैनिक सहायता देत थे और सुरक्षा का भार भी अकेले राजा पर न होकर सामन्तो म बट गया था।

(2) **शासकों पर नियन्त्रण**—सामन्त प्रथा का दूसरा लाभ यह था कि उसने राजाओ की निरकुशता और स्वेच्छाचारिता पर अकुश लगा दिया। सामन्तो ने

1 सेवाइन-ए हिस्ट्री आफ वल्ड सिवलीजेशन पृष्ठ 304

राजाओं की शक्ति को नियन्त्रित कर उसके अधिकारों को सीमित कर दिया। जिससे वे अपने अधिकारों का दुरुपयोग नहीं कर सकें।

सामन्ता से पहले सम्राट अपने राज्य का सर्वेसर्वा होता था। सामन्तवादी व्यवस्था के विकास के कारण सम्राज्य की शक्ति का विकेन्द्रीकरण हो गया। परिणाम स्वरूप सम्राट जन हित के कार्यों की तरफ ध्यान देने लगे, ताकि जनता में उनके विरुद्ध असंतोष नहीं रहे और सामन्त उसका तख्ता पलटने में सफल नहीं हो सकें। कुछ देशों में सामन्तों का सम्राट पर बहुत अधिक नियन्त्रण था। वह चाहते हुए भी उनके अधिकारों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगा सकता था। इंग्लैण्ड के राजा जॉन ने सामन्ता के अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगाने का प्रयास किया तो सामन्तों ने अपने मेग्नाकार्टा (अधिकार पत्र) पर जौन का हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य किया। इस प्रकार सामन्ता ने जनता के अधिकार को सुरक्षित बनाये रखने का प्रयास किया। परिणामस्वरूप इंगलैण्ड में आगे चलकर प्रजातन्त्रात्मक शासन व्यवस्था विकसित हुई।

(3) **न्याय एवं दण्ड व्यवस्था**—सामन्त प्रथा से न्याय व्यवस्था को लाभ पहुंचा। सामन्तों की अदालत में उन्हें 'न्यायाधीश' "माई लार्ड" या "योर लार्डशिप" आदि शब्दों से सम्बोधित किया जाता था। आज भी अदालत में न्यायाधीश के लिए इन्हीं शब्दों का प्रयोग किया जाता है। यह सामन्तवाद की एक महत्वपूर्ण देन है। आधुनिक यूरोप का कानून सामन्तों की अदालतों के कानून का विकसित रूप है। सामन्तों के दरबार में दो अदालतें होती थी। एक में सिर्फ किसानों और प्रजा के झगड़े सुने जाते थे और दूसरी में केवल सामन्तों के आपसी झगड़े निपटाये जाते थे। आज की छोटी और बड़ी अदालतों का स्वरूप सामन्तों की अदालतों पर आधारित है। रोमन नियमों के लोप हो जाने से सामन्तों ने अपनी न्याय पद्धति के द्वारा उस कमी को पूरा किया। सामन्तों के न्यायालय में दिव्य परीक्षा, जिसे 'आर्डियल' भी कहते थे, उसके द्वारा मुकदमों पर निर्णय दिया जाता था। इसके अतिरिक्त वादी और प्रतिवादी के बीच युद्ध करवाकर भी फैसला किया जाता था। अपराधी सिद्ध होने वाले व्यक्तियों को कोड़े लगाये जाते थे अथवा उन्हें दागा जाता था। धर्मद्रोही का अपराध सिद्ध होने वाले व्यक्ति को जिन्दा अग्नि में डाल दिया जाता था।

(4) **सार्वजनिक कानून का विकास**—सामन्तवाद ने सार्वजनिक कानून के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। सामन्तवाद से पहले स्थानीय परम्पराएँ प्रचलित थी, किन्तु आगे चलकर सामन्तों ने कानूनों में एकरूपता लाने का प्रयास किया। परिणामस्वरूप सम्पूर्ण देश के लिए एक समान कानून बनाने का मार्ग प्रशस्त हो गया। सामन्तों ने देश की सुरक्षा में भी महत्वपूर्ण सहयोग दिया।

(5) **नगरों की उन्नति**—सामन्ती प्रथा ने नगरों के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। उस समय सामन्तों में प्रतिस्पर्धा थी इसलिए प्रत्येक

सामन्त अपने गढ तथा नगर को अपने पडोसी सामन्त से सुन्दर और समृद्ध बनाने का भरसक प्रयास करता था। इससे नगरों का विकास हुआ। सामन्तों की इस प्रतिस्पर्द्धा के कारण उन्होंने अपने निवास स्थान को सुन्दर नगरों में परिणित कर दिया। पहले केवल देश की राजधानी ही एक बडा नगर माना जाता, किन्तु अनेक सामन्तों के कारण और नये नगरों का विकास हुआ। मध्यकाल में भारत के राजस्थान राज्य में 18 सामन्तों ने 18 अच्छे नगरों का विकास किया। इस प्रकार सामन्तवाद ने नगरों के विकास में अपना सहयोग दिया।

(6) **आर्थिक विकास**—सामन्ती प्रथा के कारण आर्थिक विकास बहुत अधिक हुआ। इस प्रथा के कारण कृषि और व्यापार के क्षेत्र में बहुत अधिक उन्नति हुई —

(i) **कृषि**—भूमि का स्वामी सामन्त होने के कारण भूमि छोटे छोटे टुकडों में नहीं होती थी। सामन्त अपनी भूमि पर कृषकों से खेती करवाता था। और उनकी मेहनत के बदले में वह उनको उपज का एक निश्चित भाग दे देता था। वह किसानों को भूमि हमेशा के लिए नहीं देता था। इससे भूमि छोटे छोटे टुकडों में विभाजित होने से बच जाती थी।

सामन्त अपनी सारी भूमि पर एक साथ किसानों से खेती करवाता था। भूमि की उवरता बनाये रखने के लिए वह भूमि के एक भाग को प्रति वर्ष खाली छोड देता था। जिससे भूमि की उवरता बनी रहती थी और उपज भी बहुत अधिक होती थी। उन्होंने अपने अधीन प्रदेशों में दलदलों को सुखाकर कृषि योग्य बनाया तथा कृषि के विकास के लिए सिंचाई के साधन सुलभ कराये। सामन्तों ने अपने प्रदेशों में नहरों व बांधों का निर्माण करवाकर सिंचाई की समुचित व्यवस्था की।

(ii) **व्यापार**—सामन्तों के समय व्यापार के क्षेत्र में बहुत अधिक उन्नति हुई। व्यापारी वर्ग इस युग में ही धनवान बने। सामन्त व्यापार को इसलिये प्रोत्साहन देते थे क्योंकि व्यापारी उनको विकास कार्य के लिए और युद्ध के लिए धन आदि देते थे। सामन्तों ने डाकुओं का दमन कर दिया और सडकों की मरम्मत करवाई ताकि बिना किसी बाधा के व्यापार उन्नति कर सके। सामन्त प्रत्येक व्यापारी से जो भी उसके सीमा में से होकर गुजरता थी चुंगी वसूल करते थे। यदि कोई व्यापारी चुंगी बचाकर भागने का प्रयास करता तो उसका माल लूट लिया जाता था। इस प्रकार चुंगी से सामन्तों को आय होती थी। सामन्तों ने व्यापार को प्रोत्साहन देने के लिए अपने अधीन प्रदेशों में सडकों का निर्माण करवाया।

(7) **धर्म की रक्षा**—सामन्त धर्म की रक्षा के लिए अपनी जान की बाजी तक लगा देते थे। वे धर्म के विरोधियों से युद्ध करना अपना कर्त्तव्य समझते थे। इस समय ईसाई और मुसलमानों के बीच धर्म युद्ध हुए थे। इन युद्धों से ईसाई धर्म की प्रतिष्ठा को काफी धक्का पहुंचा। सामन्तों ने इसाई धर्म की रक्षा करने के लिए

उत्साह के साथ इन धर्म युद्धों में भाग लिया और इसाई धर्म की रक्षा करने में सफल हुए।

(8) **साहित्य के क्षेत्र मे प्रगति**—सामन्त साहित्य के क्षेत्र में रुची रखते थे, इसलिये उन्होंने अपने दरबार में साहित्यकारों और कवियों को सरंक्षण दिया, जिन्होंने अपने-अपने क्षेत्र में प्रशसनीय रचनायें रचीं। उस समय यूरोप में साहित्यकारों ने वीरतापूर्ण रोमांचकारी साहित्य के क्षेत्र में अनेक रचनाएँ रचीं।

(9) **कला के क्षेत्र में प्रगति**—सामन्तवाद के प्रादुर्भाव के कारण यूरोपियन देशों ने कला के क्षेत्र में बहुत अधिक उन्नति की। सामन्त कला के प्रेमी थे इसलिए उन्होंने कला को बहुत प्रोत्साहन दिया। परिणामस्वरूप उस समय स्थापत्य कला के क्षेत्र में बहुत अधिक प्रगति हुई। उस समय भवन निर्माण के क्षेत्र मे रोमन और गोथिक शैली का प्रयोग किया जाता था। रोमन शैली सामन्तों की वीरता की प्रतीक थी। इस शैली के अनुसार बनाये गये मकान मजबूत और मोटी दीवारों के होते थे। सामन्त रोमन शैली के आधार पर सुरक्षा के लिए मजबूत दुर्गों का निर्माण करवाते थे।

गोथिक शैली सामन्तों की विलासिता का द्योतक थी। इस शैली के अनुसार बने हुए भवनों में भव्यता और सुन्दरता स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती थी। इस प्रकार स्थापत्य कला के क्षेत्र में बहुत अधिक विकास हुआ। सामन्तों ने अपने दरबार में अनेक संगीतकारों, चित्रकारों मूर्तिकारों को सरक्षण दे रखा था, जिन्होंने अपने अपने क्षेत्र में प्रशसनीय रचनाएँ रची।

सामन्तवाद के दोष—सामन्तवाद से न तो जन साधारण को लाभ हुआ और न ही शासकों को। सामन्तवाद के प्रमुख दोष निम्नलिखित हैं —

(1) **साम्राज्य मे एकता का अभाव**—सामन्तवाद के प्रादुर्भाव ने विशाल साम्राज्य का विभाजन कर दिया। इससे केन्द्र कमजोर हो गया और जनता की स्वामिभक्ति राजा और सामन्तों के बीच विभाजित हो गई। इस प्रथा के कारण देश प्रेम और राष्ट्रीयता का स्थान स्वार्थ और स्थानीयता ने ले लिया। सामन्त के अधीन प्रदेशों की जनता राजा की अपेक्षा सामन्त के प्रति अधिक स्वामिभक्त रहती थी। इस प्रकार सामन्तवाद ने राष्ट्रीयता के स्थान पर स्थानीयता की भावना को बढ़ावा दिया। सामन्त अवसर मिलते ही स्वतन्त्र होने का प्रयास करते थे। इस प्रकार सम्राट की दुर्बलता का लाभ उठाकर कई सामन्तों ने अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिये थे।

(2) **वर्ग संघर्ष मे वृद्धि**—सामन्तों ने वर्ग संघर्ष को बढ़ावा दिया। अमीर गरीब, उच्च नीच का भेद बढ़ता गया। धनवान लोग गरीबों का शोषण करते थे। इससे सर्फ किसानों की दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई। गरीब और अमीर के बीच संघर्ष के समय सामन्त अमीर का पक्ष करते थे। यहां तक कि अमीर

अपराध करने पर भी कानून उसको उतना दंड नहीं देता था, जितना कि उसे मिलना चाहिए था। सामन्त अपने किसानों पर अत्याचार करते थे और उनका शोषण करते थे। उस समय धर्माधिकारी भी सामन्तों का पक्ष लेते थे।

(3) **अधिनायक वाद का उदय**—सामन्तवाद के प्रादुर्भाव से अधिनायक वाद का जन्म हुआ। अधिनायक वाद के कीटाणु सामन्तवाद के समय से ही विकसित हो रहे थे जो 19 वीं शताब्दी में जाकर पूर्ण रूप से विकसित होकर विश्व के समक्ष प्रकट हुए। इससे अधिनायकवाद का तेजी से विकास हुआ। सामन्त दूर-दूर प्रान्तों में नियुक्त होते थे, इसलिए उन्हें राजा का कोई भय नहीं था और जनता के परवाह नहीं करते थे। उस समय सामन्त अपने कोष को भरने के लिए जनता से मनमाने कर वसूल करते थे। इस प्रकार सामन्त अपने अधीन प्रदेश में शासक की तरह स्वतन्त्र रूप से शासन करता था और अपनी सैनिक शक्ति पर ही विश्वास करता था।

(4) **कृषकों का शोषण**—सामन्त किसानों का शोषण करते थे। उस समय सामन्त किसानों से अनेक उपहार भेंट और बेगार आदि लेते थे। जैसे जैसे सामन्तों को किसानों से धन मिल गया वैसे वैसे उनकी धन की लालसा बढ़ती गई। अब उन्होंने किसानों पर कई नये नये कर लगाये। मध्यकालीन फ्रांस में सामन्त किसानों से रोटी बनाने, शराब बनाने और शादी करने का कर भी वसूल करते थे। इस युग में किसान सिर्फ सामन्तों की सेवा करने के लिए ही जीता था। इतना होने पर भी सामन्त कृषकों के हितों के लिए कोई ध्यान नहीं देते थे।

(5) **यूरोप में अशान्ति**—राजाओं ने विशाल साम्राज्य में शान्ति व्यवस्था बनाये रखने के लिए साम्राज्य का विभाजन कर सामन्तों को नियुक्त किया था। परन्तु इस प्रथा के कारण यूरोप में अराजकता अशान्ति और अव्यवस्था फैली। सामन्त अपने छोटे छोटे स्वार्थों के लिए आपस में युद्ध करते थे। राजा कमजोर होने के कारण उन पर नियन्त्रण रखने में असमर्थ था क्योंकि उसकी स्वयं की शक्ति का आधार भी सामन्त थे। इस प्रकार युद्ध और अराजकता बढ़ती गई।

(6) **सामन्तों का विलास प्रिय जीवन**—कालान्तर में सामन्तों ने अपने आदर्श को भूलकर विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करना आरम्भ कर दिया और जनता पर अत्याचार करने लगे। सामन्तों ने कृषक दास का शोषण करना प्रारम्भ कर दिया। उनका नैतिक पतन भी होता जा रहा था।

पादरी लोग भी सामन्त बनने लगे। यूरोप की अधिकांश भूमि पर चर्च का अधिकार था। चर्च के धर्माधिकारी सामन्तों का पक्ष करते थे और उनके हितों की रक्षा करने के लिए यथासम्भव प्रयास करते थे। सामन्त और कृषकदास पादरियों को टाईथ नाम का एक धार्मिक कर भी देते थे। इस प्रकार चर्च के धर्माधिकारी सामन्त बनने लगे और उन्होंने भोगविलासपूर्ण जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ कर

दिया। गिरजाघरो में पादरियों के अनैतिक बच्चे पलने लगे। पोप भी गरीबों पर अत्याचार करने लगा था। पोप इन्नोसेंट तृतीय ने तो यहां तक कहा था कि "कम्मियों को ईश्वर ने ही गुलाम बनाया है।"

प्रारम्भ में सामन्त स्त्रियों की रक्षा के लिए अपनी जान की बाजी तक लगा देते थे लेकिन अब उन्ही सामन्तों ने स्त्रियों का अपहरण करना शुरू कर दिया था। सामन्तो में बहु पत्नि प्रथा प्रचलित थी। सामान्यत वे अपनी पत्नि को छोड़कर दूसरी स्त्रियों के साथ के साथ रंगरेलिया मनाते थे। पादरियों के भोगविलास के कारण उनका नैतिक पतन शुरू हो गया और सुधारों की मांग होने लगी। परिणाम स्वरूप धर्म सुधार आन्दोलन आरम्भ हुआ।

(7) व्यापार—वाणिज्य के क्षेत्र में प्रगति न होना—कुछ विद्वानों का मानना है कि सामन्ती प्रथा के समय व्यापार वाणिज्य के क्षेत्र में प्रगति नहीं हो सकी। उनका मानना है कि सामन्त का केवल अपनी जागीर की चिन्ता थी। वे सार्वजनिक मार्गों की सुरक्षा के लिए और सड़कों की मरम्मत की तरफ कोई ध्यान नहीं देते थे। सब तरफ डाकुओं का बोल-बाला होने के कारण वे व्यापारियों का सामान लूट लेते थे। इसके अतिरिक्त व्यापारी प्रत्येक सामन्त की जागीर से गुजरते समय अपने सामान की चुंगी देता था। इससे व्यापारियों को बहुत परेशानी का सामना करना पड़ता था। प्रत्येक सामन्त को चुंगी चुकाते हुए जब वह अपना सामान लेकर अपने निर्धारित स्थान तक पहुंचता था तो उसकी कीमत काफी बढ़ जाती थी।

सामन्त युग मे मुद्रा का प्रचलन बहुत कम था इसलिए लोग विशाल पैमाने पर उद्योग धन्धे स्थापित नहीं कर सके। उस समय अनाज ही विदेशी विनिमय का साधन था। विदेशी व्यापार मे लेन देन के लिए मुद्रा के स्थान पर अनाज का प्रयोग किया जाता था। इस कारण इस युग के लोग नये उद्योग धन्धे आरम्भ नहीं कर सके। ऐसी परिस्थितियों में व्यापार वाणिज्य का विकास होना सम्भव नहीं था।

सामन्तवाद के पतन के कारण—यद्यपि सामन्तों ने बर्बर आक्रमणकारियों से यूरोप की रक्षा की, परन्तु उनके शासन में जनता पूर्णरूप से सुखी नहीं थी। सामन्त जनता पर नाना प्रकार के अत्याचार करने लगे। परिणाम स्वरूप सामन्तों के विरुद्ध जनता में असन्तोष फैलता गया। यही कारण था कि मध्यकालीन युग के अंतिम वर्षों में स्थान-स्थान पर जनता ने सामन्तों के विरुद्ध विद्रोह कर दिये, जिससे उनकी शक्ति क्षीण होने लगी। प्रारम्भ मे सामन्त जनता के सामने आदर्श उपस्थित करने के लिए सादगीपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे और जनहित की ओर विशेष ध्यान देते थे। अब सामन्तों ने विलासपूर्ण जीवन व्यतीत करना शुरू कर दिया और अपने अधीन जनता का शोषण करने लगे, इसलिए उनका पतन अवश्यम्भावी था। सामन्तवाद के पतन के लिए निम्न कारण उत्तरदायी थे —

(1) नवीन अस्त्रों शस्त्रों का प्रचलन—सामन्तवाद के पतन का पहला कारण नवीन अस्त्र शस्त्रों का प्रचलित होना था। प्रारम्भ में सामन्त प्रथा के उत्कर्ष का कारण सामन्तों के पास अपार शक्ति थी। उनके पास सुदृढ़ दुर्ग अस्त्र शस्त्र तथा सैनिक थे जिनके द्वारा वह अपने अधीन प्रदेशों की जनता की रक्षा करता था। सामन्त संकट के समय जनता को अपने दुर्गों में संरक्षण देता था। इन सुदृढ़ दुर्गों पर अधिकार करना बहुत कठिन भी था। सामन्त घोड़े पर सवार होकर भाले और बरछों से युद्ध करते थे। परन्तु 13 वीं शताब्दी में युद्ध नीति में परिवर्तन होने लगे। अब युद्ध में धनुष बाणों का उपयोग अधिक होने लगा। जिसके फलस्वरूप सामन्तों के भाले और बरछे बेकार सिद्ध हुए। भाले और बरछे निकट से युद्ध करने के लिए उपयोगी थे जबकि धनुष बाण द्वारा दूरी से ही शत्रु पर वार किया जा सकता था।

बारूद के उपयोग के कारण सामन्तों की शक्ति का अन्त हो गया। सम्राटों ने बारूद से सामन्तों के दुर्गों को धाराशायी कर दिया। इस प्रकार सामन्तों की शक्ति के केन्द्र दुर्गों के ध्वस्त हो जाने से उनकी शक्ति ही क्षीण हो गई। मध्य युग में बन्दूकों के प्रचलन ने भी सामन्तों के शौर्य और महत्व को समाप्त कर दिया। राजाओं ने बन्दूकों का उपयोग करने के लिये एक नई प्रशिक्षित पैदल सेना का गठन किया जिसके सामने सामन्तों की घुड़सवार सेना बेकार सिद्ध हुई। अब राजाओं ने बारूद पर एकाधिकार कायम कर लिया और बन्दूकधारियों की एक स्थायी सेना का गठन किया। इस सेना का वेतन भी दिया जाने लगा। अब राजा के पास एक स्थायी सेना थी। उसे सामन्तों की सैनिक सेवा की आवश्यकता नहीं थी। इस प्रकार इन नवीन अस्त्रों शस्त्रों के प्रचलन ने सामन्तों की शक्ति का अन्त कर दिया।

(2) धार्मिक युद्धों का प्रभाव—तुर्कों ने इसाईयों के पवित्र तीर्थ स्थान जेरूसलम पर अधिकार कर लिया था। इसाई पुनः जेरूसलम पर अधिकार करना चाहते थे इसलिये तुर्कों और ईसाईयों के बीच में युद्ध लड़े गये। ये युद्ध इतिहास में धर्म युद्ध अथवा क्रूसेड के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये धर्म युद्ध 1095 ई. से लेकर 1453 ई. तक चलते रहे। इन धर्म युद्धों ने अप्रत्यक्ष रूप से सामन्तों की शक्ति को समाप्त करने में महत्वपूर्ण सहायता की। पोप की अपील पर सैकड़ों सामन्तों ने अपने सैनिकों और कृषक दासों के साथ इन धर्म युद्धों में भाग लिया। उनमें से अधिकांश सामन्त युद्ध में मारे गये। जो कृषक दास युद्ध में बच गये उन्हें पोप ने स्वतन्त्र करने का आश्वासन दिया। जब अनेक कृषक दास युद्ध से वापस लौटकर आये तो पोप ने अपने वायदे के अनुसार उनको स्वतन्त्र कर दिया। इससे सामन्तों की शक्ति को गहरा धक्का पहुंचा। जिन सामन्तों के कृषक युद्ध में भाग लेने गये उनकी भूमि पर खेती नहीं हो सकी क्योंकि कृषकों के अभाव में खेती का काम कौन करता। इसलिये सामन्तों की आय में कमी हुई।

परिणाम स्वरूप राजाओं ने ऐसे कमजोर सामन्तों की रही-सही शक्ति को भी कुचल दिया।

(3) किसानों का असन्तोष —14वीं शताब्दी के आरम्भ में सामन्तों के विरुद्ध किसानों में असन्तोष फैलने लगा। इसका कारण यह था कि सामन्त किसानों का बहुत अधिक शोषण करते थे और उस धन से विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। इसलिये किसान सामन्तों से बहुत नाराज थे।

1338 ई० में यूरोप में एक भयंकर महामारी फैली जिससे यूरोप की आधी जनसंख्या समाप्त हो गई। इस महामारी को 'काली मृत्यु' भी कहा जाता है। इसके कारण आधी जनसंख्या बचने से मजदूरों और किसानों का अभाव हो गया। बचे हुए किसानों ने अधिक वेतन पर सामन्तों का काम करना स्वीकार कर लिया। अब सामन्तों ने किसानों के प्रति उदारतापूर्ण व्यवहार करना प्रारम्भ किया क्योंकि उनकी जमीन बिना काश्त के बंजर होने लगी थी और उनकी आमदनी भी काफी घट गई थी। फिर भी किसानों में असन्तोष बढ़ता ही गया।

1381 ई० में वाट टाईलर के नेतृत्व में इंगलैण्ड के हजारों कृषकों ने सामन्तों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया उसी समय फ्रांस में भी सामन्तों के विरुद्ध विद्रोह हुआ। सामन्तों ने इन विद्रोहों को बुरी तरह से कुचल दिया किन्तु किसानों का असन्तोष सामन्तों के विरुद्ध निरन्तर बढ़ता रहा। इन विद्रोहों के कारण सामन्तों की शक्ति कमजोर हो गई। मैकनल बर्न्स ने लिखा है कि "किसानों के स्वतन्त्र होते ही जो कि सामन्तवाद की मशीन का सबसे महत्वपूर्ण पुरजा था, इस प्रथा का जीवित रहना असम्भव हो गया।"[1]

(4) नये व्यापारिक वर्ग का उत्थान —धर्म युद्धों के कारण यूरोप में एक नये व्यापारिक वर्ग का उत्सर्ग हुआ, जिसके कारण यूरोप ने व्यापार तथा वाणिज्य के क्षेत्र में बहुत अधिक उन्नति की। यूरोप के व्यापारियों ने अब पश्चिमी एशियाई देशों के साथ व्यापार करना प्रारम्भ किया। जैसे-जैसे व्यापार का विकास होता गया, वैसे-वैसे व्यापारी वर्ग भी धनी बनता गया। व्यापारी सामन्तों को आर्थिक सहायता देते थे, इसलिये सामन्त उनसे दबकर रहते थे। व्यापारी वर्ग के पास धन तथा बुद्धि का अभाव नहीं था किन्तु सामन्तों की तरह उनको समाज तथा प्रशासन में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं था इसलिये यह वर्ग सामन्तों से जलने लगा और उनके दमन के लिये सम्राटों को आर्थिक सहायता देने लगा।

यूरोप में व्यापार-वाणिज्य तथा उद्योग धन्धों के क्षेत्र में बहुत उन्नति हुई। जिसके फलस्वरूप अनेक नये-नये नगरों का जन्म हुआ तथा अनेक नगर भी विकसित हुए। नागरिक नगरों के व्यापारियों ने गांवों के किसानों और कृषक दासों को ऊंची मजदूरी का प्रलोभन देकर वहां आकर बसने के लिये प्रेरित किया। सामन्तों को यह पसन्द नहीं आया। जिसके फलस्वरूप दोनों में संघर्ष प्रारम्भ हो गया। ऐसी स्थिति

1 मैकनल बर्न्स वेस्टर्न सिविलिजेशन पृष्ठ 258

मे व्यापारी वग ने सामन्तो के दमन के लिये राजाओ को हर प्रकार की सहायता प्रदान की।

(5) चच के प्रभाव मे कमी —मध्य युग म चच और सामन्ता क बीच एक प्रकार का समझौता हो चुका था। जिसके अनुसार सामन्त चच की भूमि दान मे देत थे और इसके बदले म चच के धर्माधिकारी सामन्ता का पक्ष लेत थ। सामन्तो की तरह चच भी विशाल भूमि का स्वामी थी। चच की भूमि की रक्षा करने के लिय सामन्त धर्माधिकारियो को सहायता देते थे। जब मध्य युग के अन्त म चच का प्रभाव कम हो गया तो सामन्तो की शक्ति पर भी इसका प्रभाव पडना स्वाभाविक बात थी। इस प्रकार चच के प्रभाव म कमी होने के साथ-साथ सामन्ता की शक्ति भी क्षीण होने लगी।

(6) राजाओं की शक्ति का विकास —राजाओ की शक्ति कमजोर हो जाने के कारण ही सामन्तवाद का प्रादुर्भाव हुआ था। धम युद्धा म अनेक सामन्त मारे जाने से राजाओ की शक्ति म वृद्धि हुई। अब राजाओ न एक नई सेना का गठन किया और बारूद का प्रयोग करके सामन्तो की शक्ति के केन्द्र गढा को ध्वस्त करना प्रारम्भ कर दिया। इसमे सामन्तो की शक्ति क्षीण हो गई और राजाओ की शक्ति म वृद्धि हुई। ऐसी स्थिति म राजाओ ने सामन्ता की शक्ति को आसानी से कुचल दिया। राजाओ और सामन्तो के सघर्ष म सामन्ता को कही से सहयोग नही मिला जबकि जनता और व्यापारियो ने इस सघर्ष म सम्राट की हर प्रकार स सहायता की। राजाओ न विदेशी व्यापार को सरक्षण देकर अपनी शक्ति म वृद्धि कर ली थी। इस प्रकार राजाओ की शक्ति क विकास ने सामन्ता की शक्ति के पतन म महत्वपूर्ण योगदान दिया।

(7) मुद्रा विनिमय प्रथा—मुद्रा विनिमय प्रथा भी सामन्ता के पतन का एक महत्वपूर्ण कारण सिद्ध हुई। मध्य युग म विशाल पमाने पर मुद्रा का प्रचलन हुआ। जिसने आर्थिक व्यवस्था म क्रान्तिकारी परिवर्तन किये। अब मुद्रा क माध्यम स वस्तु विनिमय होने लगा। इसके पूर्व सामन्तवादी व्यवस्था म अनाज क माध्यम स वस्तु विनिमय होता था। सामन्तो ने भोग विलास तथा अन्य आवश्यकताओ की वस्तुए मुद्राए देकर खरीदना प्रारम्भ कर दिया। ऐसी स्थिति म सामन्तो न कृषक दासो और कृषको स भी अनाज के स्थान पर द्रव्य की माग की। इससे सामन्तो का प्रभाव कम हो गया। उस समय बहुत स दास धन देकर सामन्ता स स्वतन्त्रता प्राप्त करने लगे। मुद्रा के प्रचलन स राजाओ न भी एक स्थायी सेना रखना प्रारम्भ कर दिया और उसे वेतन देने लगे। अब राजा का सामन्तो की सनिक सेवाओ की आवश्यकता नही रही।

(8) राष्ट्रीय भावना का प्रसार —राष्ट्रीय भावना का प्रसार सामन्ता क पतन के लिये एक महत्वपूर्ण कारण सिद्ध हुआ। यूरोपियन देशा म राष्ट्रीय भावनाओ

के प्रसार म व्यापारी वग ने महत्वपूण योगदान दिया । उस समय प्रत्यक व्यापारी यह चाहता था कि उसके देश म दूसरे देश के व्यापारी न बसें। जब दूसरे देश के व्यापारी उनके देश म बसने लगे तो व्यापारियो मे आपसी सघष प्रारम्भ हो गया। इस सघष मे राजाओ ने अपने-अपने देश के व्यापारियो के हिता की रक्षा के लिए भाग लिया। यूरोप म व्यापारिक हितो की रक्षा के लिये 1381 ई से लेकर 1443 ई तक सौ वर्षीय युद्ध लडा गया। इस युद्ध मे व्यापारियो ने महत्वपूण भूमिका अदा की। इससे यूरोप म राष्ट्रीय भावनाओ का विकास हुआ। यूरोप म राष्ट्रीय भावना के प्रसार के कारण जनता ने स्थानीयता के स्थान पर राष्ट्रीय हित को महत्व देना शुरू कर दिया और सामन्तो का विरोध करना शुरू कर दिया । इस प्रकार राष्ट्रीय भावना के प्रसार के कारण सामन्ता की शक्ति दिनो दिन क्षीण होती गई, और 15वी शताब्दी के अन्त तक सामन्तो का पूण रूप से पतन हो गया।

सामन्तवाद का मूल्याकन —मध्य कालीन युग म यूरोपियन देशा मे सामन्तवाद का प्रादुर्भाव व उसका विकास तथा पतन हुआ। उस समय सम्पूण मानव समाज पर सामन्तवाद छाया हुआ था। इस सामन्ती प्रथा ने शासन व्यवस्था म कई महत्वपूण सुधार किय। इस समय कृषि तथा कला के क्षेत्र म बहुत अधिक विकास हुआ। सामन्ता के दरबारो मे आश्रय प्राप्त कवियो ने शौय और प्रणय के क्षेत्र मे कई प्रशसनीय रचनाय रची। इसके अतिरिक्त सामन्ता न समाज तथा स्त्रियो की दशा म भी सुधार किया। इतना सब कुछ होते हुए भी जनता सामन्तो के शासनकाल म सुखी नही थी।

जब सामन्त वग को मुसलमाना का पराजित करन म सफलता नही मिली तो इसस जन साधारण पर उनका प्रभाव हो गया और उसकी प्रतिष्ठा घट गई। उस समय सामन्ता म बहु विवाह प्रथा प्रचलित थी और वे विलासप्रिय जीवन व्यतीत करत थे, इसलिए स्त्रियो की दशा म कोई विशेष सुधार नही हुआ। सामन्ता के समय अच्छी किस्म की मुद्रा का चलन नही होन के कारण व्यापार का विकास नही हो सका। उनके शासनकाल म अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सुरक्षित नही था और उन्होने किसाना का बहुत अधिक शोषण किया । अन्त म यह कहा जा सकता है कि यद्यपि सामन्तवादी शासन व्यवस्था मध्यकालीन युग के अनुकूल थी तथापि उसके अनेक भयकर दुष्परिणाम भी निकले।

प्रस्तावित सन्दभ पुस्तकें

1 प्लेट व जीन ड्रमड—विश्व का इतिहास
2 वाच डब्ल्यू एन —हिस्ट्री आफ दी वल्ड
3 मैकनेल बनस—वस्टन सिविलीजेशन्स
4 सवाइन—ए हिस्ट्री आफ वल्ड सिविलीजेशन
5 गलिस और जौन—समाज का इतिहास

3
पुर्नजागरण

प द्रहवी शता ी न केवल यूरोप के लिए वल्कि समस्त विश्व क इतिहास मे महत्वपूण स्थान रखती है। इस शता दी को इस वात का श्रेय दिया जाता है कि इसने यूरोप के मध्य और आधुनिक काल के इतिहास को सयुक्त करन मे अपना महत्वपूण योगदान दिया। पद्रहवी शता ी से पहले यूरोप के देशा की दशा बडी शाचनीय थी। रोमन साम्राज्य पतन की ओर अग्रसर हो चुका था। इसलिये यूरोप मे दृढ क द्रीय सरकार नही थी। जमनी और इटली में साम तों का शासन था जिन पर राजा का नाम मात्र का नियत्रण था। यद्यपि यूरोप क कई देशो मे साम तो की शक्ति क्षीण हो चुकी थी, फिर भी कृपक वग का शोषण जारी था। उस समय एक साम त का दूसरे साम त क साथ युद्ध और राजा का साम तो के साथ सघप हाता रहता था। धम मनुष्या के स्वतन्त्र चि तन के माग म बाधक बना हुआ था। शिक्षा के अभाव क कारण लोग अज्ञानी थ। उस समय क विद्वान लटिन भाषा म पुस्तकें लिखते थे। जो जन साधारण की समझ से परे थी। धार्मिक विचारो के कारण कला का पूण रूप से विकास नही हो रहा था। साहित्य क क्षत्र म उदासीनता छाइ हुइ थी। उस समय वज्ञानिक खोज करने का मतलब था मानव समाज को अपना शत्रु बना देना। प द्रहवी शता दी की एक महत्वपूण घटना ने मध्यकालीन मानव समाज क अ धविश्वासो को दूर कर दिया। उस समय शिक्षा का विकास हुआ स्वत त्र चि तन को प्रोत्साहन दिया गया एव नइ नइ खोजें हुई। इस महत्वपूण घटना को इतिहासकार पुनजागरण क नाम स पुकारत है।

आधुनिक युग का उदय 14वी शताब्दी से लकर 17वी शता दी तक यूराप न सभ्यता और सस्कृति क क्षेत्र म आश्चयजनक प्रगति की। प्राफसर डेविस ने लिखा है कि प द्रवी और सोलहवी शता दी म अनेक भोगोलिक खोजे हुयी और धम सुधार आ दोलन प्रारम्भ हुआ। इसके अतिरिक्त पुनर्जागरण भी इसी समय की देन है। इन खोजो के कारण यूराप मध्य युग स आधुनिक युग की ओर अग्रसर हुआ। इस प्रकार यूरोप की सभ्यता और सस्कृति क विकास म पुनजागरण का महत्वपूण स्थान है।

पुनजागरण का अथ—तेरहवी शताब्दी व उत्तराद्ध से सत्रहवी शताब्दी के मध्य तक यूरोप ने सभ्यता और संस्कृति के क्षेत्र में जो आश्चयजनक प्रगति की, उसे पुनजागरण (रेनसा) कहा जाता है। पुनजागरण शब्द के अनेक अथ है। साहित्यिक दृष्टिकोण से पुनजागरण शब्द का अथ नूतन जन्म अथवा पुनजन्म होता है, परन्तु व्यावहारिक दृष्टिकोण स मनुष्य की बौद्धिक चेतना और स्वतन्त्र चिन्तन शक्ति के पुनजन्म को पुनजागरण कहा जाता है।

रोमन साम्राज्य ने सास्कृतिक क्षेत्र मे आश्चयजनक प्रगति की। रोमन साम्राज्य के पतन के साथ साथ यूरोपवासी प्राचीन यूनानी और रोमन ज्ञान को भूल गये। उन्होंने संस्कृति के विकास का और कोई ध्यान नही दिया। इस समय मनुष्य स्वतन्त्र रूप से चिन्तन नहीं कर सकता था। सामन्तो की शिक्षा के प्रति रूचि नही होने के कारण विद्यालय बन्द हो चुके थे। शिक्षा के विकास का माग अवरुद्ध हो चुका था। उस समय चच तथा धम का मानव समाज पर इतना अधिक प्रभाव था कि मनुष्य स्वतन्त्र रूप मे चिन्तन नही कर सकते थे। धम ग्रन्थो म जो बातें लिखी हुई थी अथवा धर्माधिकारी जो कुछ कहते थे, उसे जनता पूण सत्य समझ कर स्वीकार कर लेती थी। जो व्यक्ति धर्माधिकारियो की बात का विरोध करता था, उसे मत्यु दण्ड दिया जाता था। उस समय की जनता के पास इतना समय नही था, कि वह प्राचीन प्रचलित परम्पराओ के विरुद्ध कुछ सोच सके। इस प्रकार प्राचीन काल में बौद्धिक दृष्टि से जागत मानव अब एक गहन निद्रा म सो गया। मध्य काल के उत्तराध म यूरोपीय मानव ने स्वतन्त्र रूप से चिन्तन करना प्रारम्भ कर दिया और जन जीवन के सम्बन्ध में एक नई विचारधारा को अपनाया।

पुनजागरण का प्रभाव सम्पूण मानव समाज पर पडा। इसके प्रभाव से शिक्षा के क्षेत्र में विकास हुआ। अब विद्वानों ने पुस्तकें लैटिन भाषा के स्थान पर बोलचाल की भाषा म लिखना शुरू कर दिया, ताकि जन साधारण उसे पढ सके और आसानी स उसको समझ में आ सके। धार्मिक बन्धना से मुक्त होकर कलाकार स्वतन्त्र रूप स कला के क्षेत्र में विकास करने लगे। साहित्यकारो ने भी अपनी रचनाओ म सुन्दर शली का प्रयोग कर प्राचीन साहित्य का नया रूप देने का प्रयास किया। वैज्ञानिकों न नई नई खोजें करनी प्रारम्भ कर दी। इस प्रकार प्राचीन संस्कृति को आलोकित कर उसे वतमान में मिला दिया। प्राचीन संस्कृति की प्रगति और परिवतन को ही पुनजागरण अथवा बौद्धिक चेतना कहते हैं। भिन्न भिन्न विद्वानो न पुनजागरण की भिन्न भिन्न परिभाषाएँ दी हैं।

प्रोफेसर डेविस न लिखा है कि पुनजागरण शब्द मानव स्वातन्त्र्य प्रिय साहसी विचारों को जो मध्य युग में धर्माधिकारियो द्वारा जकडे व बन्दी बना दिये गये थे, व्यक्त करता है। जवाहरलाल नहरू ने लिखा है कि "पुनजागरण का अथ विद्या का पुनजन्म तथा कला, विज्ञान, साहित्य और यूरोपीय देशों की भाषा का

विकास है।'[1] प्रोफेसर स्टेन ने लिखा है कि बौद्धिक परिवतन ही पुनजागरण है। इसमे भूतकाल के प्रति रूचि और वतमान को समझने की बौद्धिक चेतना दिखाई देती है। सेवाइन ने लिखा है कि 'पुनजागरण एक सयुक्त अभिव्यक्ति है जिसका प्रयोग मध्यकाल के अत म और आधुनिक युग क आरम्भ के समय दृष्टिगोचर सभी बौद्धिक परिवतनो के लिए किया गया था[2] एलिस और जौन ने लिखा है कि पुनजागरण ने मनुष्य के क्षितिज का विस्तार किया। यूरोप में पुनजागरण युग मध्य युग और आधुनिक युग के बीच म पुल की तरह है। पुनजागरणकालीन लोगो ने मध्ययुगीन यूरोप की सस्कृति के आधार पर एक नई सस्कृति का विकास किया जिसमे उहोने यूनानी और रोमन सभ्यताओ से प्राप्त प्रेरणाओ और विचारो का योगदान लिया।[3] प्लट जीन व ड्रमड ने लिखा है कि 'पुनजागरण ने मनुष्य मे, उसकी उपलब्धियो म और उसके ससार मे रूचि को पुन जीवित किया।[4] सक्षेप मे पुनजागरण की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है कि मध्य युग के अत म और आधनिक युग के प्रारम्भ क समय अनेक सास्कृतिक या बौद्धिक परिवतन हुए थे। इस समय लोगो ने प्राचीन सस्कृति को आलोकित कर उसे वतमान म मिला दिया। इस प्रगति या परिवतन को पुनजागरण कहा जाता है।

पुनजागरण की विशेषताएँ—पुनजागरण की प्रमुख विशेषताए निम्न लिखित हैं —

1 **स्वतत्र चितन** पुनजागरण ने स्वतत्र चितन की विचार धारा का विकास किया। मध्यकालीन युग म धार्मिक प्रतिबधो स मनुष्य स्वतत्र रूप से चितन नही कर सकता था, परन्तु पुनजागरण के कारण मनुष्य ने स्वतत्र रूप स चितन करना प्रारम्भ कर दिया। अब वह धम मे व्याप्त बुराईयो पर विचार करने लगा और परम्परागत विचारधाराओ को स्वत त्र रूप स आलोचना की कसौटी पर कसने लगा।

2 **व्यक्तित्व का विकास**—पुनजागरण की दूसरी विशेषता व्यक्तित्व का विकास करना था। पुनजागरण के कारण मनुष्य ने अ ध विश्वास, प्राचीन रूढियो तथा चच के बधनो से छुटकारा प्राप्त कर लिया। इसके पश्चात उसन स्वतत्र रूप से अपने व्यक्तित्व का विकास किया।

3 **मानववादी विचारधारा**—पुनजागरण की तीसरी विशेषता मानववादी विचारधारा का प्रसार करना था। मध्य युग म चच इस बात का प्रचार कर रहा

1—नेहरू, जवाहरलाल—विश्व इतिहास की झलक
2—सेवाइन—ए हिस्ट्री आफ वल्ड सिवलीजेशन, पृ० 353
3—एलिस और जौन—ससार का इतिहास पृष्ठ 238
4—प्लट जीन और ड्रमड—विश्व का इतिहास पृष्ठ 248

था कि दुनिया म जन्म लेना भयकर पाप है। मनुष्य को चाहिये कि इस जीवन का आनन्द नही उठाय और तपस्या तथा निवृति माग क द्वारा मुक्ति प्राप्त करन का प्रयास करे। पुनजागरण न चच की इस विचारधारा का विरोध किया कहा कि और मनुष्य को इस जीवन का पूण आनन्द उठाना चाहिये। मनुष्य को अपना जीवन साथक बनान का प्रयास करना चाहिये। धम और मुक्ति के स्थान पर मनुष्य को सम्पूण मानव समाज का उद्धार करना चाहिय। इस प्रकार पुनजागरण ने पारलौकिक कल्पना के स्थान पर मनुष्य का ध्यान यथाथवादी समस्याओ की ओर आकर्षित किया।

4 देशी भाषाओं का विकास—पुनजागरण न देशी भाषाओ के विकास म बहुत महत्वपूण योगदान दिया। पुनजागरण से पूव विद्वान लटिन भाषा म पुस्तकें लिखते थे, जिसको जन साधारण न तो पढ सकता था और न ही समझ सकता था, लेकिन पुनजागरण के कारण विद्वान लोगो न बोल चाल की भाषा म पुस्तकें लिखी, ताकि जन साधारण उसे पढ सक तथा अपन व्यक्तित्व का विकास कर सके। इस प्रकार पुनजागरण क कारण बोल चाल की भाषा की गरिमा एव सम्मान म वृद्धि हुई।

5 चित्रकला का विकास—पुनजागरण ने चित्रकला के विकास मे महत्वपूण योगदान किया। अब चित्रकारो न अपन चित्रों म कल्पना चित्र के स्थान पर यथाथ का चित्रण करना प्रारम्भ कर दिया। पहल चित्र कल्पना प्रधान होत थ। अब चित्रा म वास्तविक सौन्दय का चित्रण होने लगा।

6 वज्ञानिक विचारधारा के क्षेत्र में विकास—पुनजागरण क कारण वैज्ञानिक विचारधाराओ के क्षेत्र म महत्वपूण प्रगति हुई। इसक कारण मनुष्य न प्रत्यक विषय का निरीक्षण, अन्वेषण, जाच और परीक्षण करना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार मध्य युग के अध विश्वासो व रूढियो को उसन मानन से इन्कार कर दिया।

पुनजागरण के कारण—पुनजागरण कोई आकस्मिक घटना नहीं थी। इसके लिये एक लम्बे समय से वातावरण तैयार हो रहा था। जिससे यूरोपीय समाज म अनेक बौद्धिक परिवतन हुये। इन परिवतनो के पराकाष्ठा पर पहुचने मे दो तीन शताब्दियो का समय लगा। सवाइन ने लिखा है कि—"जहा अनेक योग्य नताओ का माग-दशन इसे मिला था, वहा वज्ञानिक भावना, एक धार्मिक जोश, कला की एक नई शली और एक नवीन प्रकार का साहित्य, पुनजागरण की वास्तविक पृष्ठ-भूमि प्रस्तुत करता है।'[1]

1—सेबाइन – ए हिस्ट्री आफ वल्ड सिवलीजेशन—पृ 354

पुनजागरण के कारण—पुनजागरण के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

1 **धम युद्ध**—धम युद्धो ने पुनजागरण का वातावरण तयार कर दिया। यूरोप की अधिकाश जनता ईसाई धम की अनुयायी थी। ईसाईयो का धार्मिक तीथ स्थान जेरूसलम था जिसकी जीवन म एक बार यात्रा करना प्रत्येक ईसाई अपना धार्मिक कत्तव्य समझता था। जब मुसलमानो ने जेरूसलम पर अधिकार कर लिया एव उन्होने ईसाईयो की जेरूसलम की यात्रा पर प्रतिबन्ध लगा दिया। तुक लोग धार्मिक रूप से असहिष्णु थे इसलिये जो भी ईसाई जेरूसलम की यात्रा पर आता उसे या तो व लूट लेते या जान से मार देत थे। इतना ही नही यात्रा के समय ईसाईयो पर नाना प्रकार के अत्याचार करते थे। ऐसी परिस्थिति म यूरोपीय ईसाई समाज ने अपन पवित्र तीथस्थान जेरूसलम को तुर्कों क आधिपत्य से मुक्त कराने के लिये उनके साथ जो युद्ध लडे वे इतिहास म धम युद्ध के नाम से प्रसिद्ध थे।

इन धम युद्धों के कारण यूरोपियन जनता का पूर्वी देशो की जनता से सम्पक स्थापित हुआ। इससे पूव यूरोप अज्ञान एव अ ध विश्वासो की गहन निद्रा म सोया हुआ था जबकि पूर्वी देशो ने यूनान तथा भारत की सभ्यताओ के सम्पक म आने के कारण एक नई सभ्यता का विकास कर लिया था। जब यूरोपवासी पूर्वी देशो के सम्पक मे आये तो उन्होने मुस्लिम देशो की नवीन सभ्यता क अनेक तत्व ग्रहण किये। यूरोपियन दशो की जनता ने पूर्वी देशो स तक शक्ति प्रयोग पद्धति तथा विज्ञान क क्षेत्र मे अनेक बातें सीखी। मुस्लिम देशो के खान-पान रहन सहन एव सफाई ने भी यूरोपवासिया को बहुत अधिक प्रभावित किया।

धम युद्धो के कारण यूरोप क पूर्वी देशो से व्यापारिक सम्ब ध स्थापित हुए और निरतर व्यापार बढता गया। इस व्यापार के कारण यूरोपवासिया को नये मार्गों, नये देशो और सामुद्रिक मार्गों का पता चला। इससे उनमे भौगोलिक खोज की प्रवत्ति जाग्रत हुई। जिसक परिणामस्वरूप अनेक यूरोपियनो ने भौगोलिक खोजो के लिए पूर्वी देशो की यात्रायें की और अपनी यात्राओ का दिलचस्प वणन लिखा। इन यात्राओ के वणन को पढने के पश्चात यूरोपवासिया को सकीण विचारो से मुक्ति मिली और उनकी चि तन शक्ति का विकास हुआ।

पूर्वी दशो मे रहने वाले यूरोपियनो ने मुस्लिम साहित्य का अध्ययन किया जिसका उन पर बहुत अधिक प्रभाव पडा। धम युद्धो म पोप की सम्पूण शुभ कामनाओ और आशीर्वाद क बावजूद भी जब ईसाईयो को युद्ध म विजय प्राप्त नही हुई तो पोप की प्रतिष्ठा को जबरदस्त धक्का पहु चा और उसकी शक्ति क्षीण होन लगी। अब धम के बन्धन कमजोर होने लगे। यूरोपियनो ने पूर्वी देशो क सम्पक म आन के पश्चात अपन जन जीवन म भी उसी के अनुकूल परिवतन करन शुरू कर दिये। इस प्रकार धम युद्धो ने पुनजागरण का वातावरण तयार करन म अपना महत्वपूण योगदान दिया।

2 व्यापार मे वृद्धि—पुनजागरण के कारण यूरोपियन देशो के व्यापार म काफी वृद्धि हुई। धम-युद्धा स लौटने वाले ईसाई अपने साथ पूर्वी देशो से गम मसाले मखमल, कालीन व कशीदे की बनी हुई बहुत सी वस्तुयें अपने साथ लेकर आते थे। यूरोपवासी नीबू खजूर और कई प्रकार के फल पूर्वी देशों से मगाते थे।

धम युद्धा क समय यूरोपियन देशा का पूर्वी देशो स व्यापारिक सम्पक स्थापित हो चुका था। धम-युद्ध स यूरोप क व्यापारिक केन्द्रा को बहुत हानि पहु ची। द्वितीय धम युद्ध के बाद यूरोपियना ने व्यापार म काफी वृद्धि की क्योंकि इस समय अनका यूरोपियन व्यापारी जेरुसलम और एशिया माइनर के पश्चिमी किनारा पर बस चुके थ। उस समय वेनिस, मिलानलूका और फ्लोरेंस के नगर विदेशी व्यापार क प्रसिद्ध केन्द्र बन चुके थे। यूरोपवासिया का व्यापार के माध्यम से विदेशा से सम्पक हुआ। इससे उनके ज्ञान म वृद्धि हुई। विदेशा से उन्होने कई तत्व ग्रहण किये और उसका प्रचार अपन देश म किया। व्यापारिक प्रगति के कारण अनेक नगरा का जन्म तथा विकास सम्भव हो सका। व्यापार क विकास क कारण धन म वृद्धि हुई। जिससे नय उद्योग धन्धो का विकास सम्भव हुआ।

यूरोपियन व्यापारियो ने बगदाद काहिरा और कोरडोवा से पुस्तक खरीदी और उनको यूरोप लेकर आये। इन पुस्तको को जब विद्वानो न पढ़ा तो उससे बहुत प्रभावित हुये। व्यापारी वर्ग ब्याज पर रुपया उधार लेकर व्यापार करता था। चच इस बात का विरोधी था। इसलिए व्यापारी चच के प्रति उदासीन हो गये और उन्होने चच क सुधारो के बारे म सोचना शुरू कर दिया। इस प्रकार विदेशी सम्पक के कारण यूरोपियना का विवेक जाग्रत हुआ और व्यापार म वृद्धि क साथ साथ पुनजागरण का वातावरण भी तयार होता गया।

3 अरब और मगोल सम्पक—अरबो और मगोलो न भी पूर्वी देशो के सचित ज्ञान को यूरोपवासिया तक पहु चाया। यूरोप के विभिन्न क्षेत्रो म अनेक अरब के लोग बस गये थे। ये लोग स्वतन्त्र रूप से चिन्तन करते थे और प्लेटो तथा अरस्तु क विचारो का अध्ययन करते थे। इस प्रकार अरब विद्वानो ने यूरोपीय विद्वाना का ध्यान दाशनिक क्षेत्र की ओर आकर्षित किया। इसस यूरोपीय विद्वान बहुत प्रभावित हुये। परिणामस्वरूप यूरोपियन विद्वाना ने पेरिस ऑक्सफोड और कास्टील क विश्वविद्यालयो म बौद्धिक आन्दोलन को प्रारम्भ किया। इसस यूरोप वासियो का तक शास्त्र क प्रति विश्वास जाग्रत हुआ।

13 वी शताब्दी के मध्य म मगोल नेता कुबलाई खा ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की। उसने इस बात का प्रयास किया कि यूरोप और एशिया के देशा को एक सूत्र म बाध दिया जाय। कुबलाई खा ने अपने दरबार मे पोप क दूत पेरिस, इटली और एशियाई देशा के विद्वाना तथा साहित्यकारो को आश्रय दे रखा था। प्रसिद्ध इटालियन यात्री मार्कोपोला भी कुछ समय के लिये उसके

दरबार मे रहा था। उसने अपनी यात्राओ का वणन किया। जब उस वणन को जनता ने पढा तो उनके मन म सस्कृति के विकास की भावना जाग्रत हुई। प्रसिद्ध जिनेवा यात्री क्रिस्टोफर कोलम्बस भी कुबलाई खा के दरबार म रहा था। वह कुबलाई खा से प्रभावित होकर समुद्री यात्राओ क लिये रवाना हुआ। कुबलाई खा के दरबार म रह कर अनक यूरोपियनो न पूर्वी ज्ञान विज्ञान को सीखा। अरबो और मगोलो न पूर्वी देशो के आविष्कार जस छापाखाना, कुतुबनुमा और बारूद आदि को यूरोपियन देशो तक पहु चाया। इन आविष्कारो क ज्ञान के कारण यूरोप निरन्तर विकास करता रहा।

4 **कुस्तुनतुनिया पर तुर्कों का अधिकार**—पूर्वी रोमन साम्राज्य जो इस समय बाइजन्टाइन साम्राज्य क नाम स जाना जाता था। उसकी राजधानी कुस्तुन्तुनिया थी, जिस पर 1453 ई० म उस्मानी तुर्कों न अधिकार कर लिया था। मध्य युग मे कुस्तुनतुनिया ज्ञान, दशन एव कला का एक प्रसिद्ध केन्द्र था, परन्तु असभ्य तुर्कों के लिय इसका कोई महत्व नही था, इसलिय बाईजेन्टाइन के ईसाई विद्वान इटली क बडे-बडे नगरो मे जाकर रहन लगे। वहा जाकर उन्होने रोम व यूनान के प्राचीन ग्र थो का अध्ययन किया और प्राचीन ज्ञान का रोम व अ य नगरो म प्रचार किया। रोम के माध्यम से ही यूरोप म प्राचीन ज्ञान का प्रकाश फलने लगा। इस प्रकार पुनर्जागरण सव प्रथम इटली म प्रारम्भ हुआ और धीरे धीरे इसका प्रभाव समस्त यूरोप पर दिखाई दन लगा।

कुस्तुनतुनिया पर तुर्कों की विजय का दूसरा परिणाम यह निकला कि यूरोप स पूर्वी देशो को जान वाल स्थल माग पर अब उनका अधिकार हो चुका था। तुक लोग इस रास्त से गुजरन वाल यूरोपियन व्यापारियो को लूट लेते थे। परिणाम स्वरूप यूरोपियन देशो का व्यापार पूर्वी देशो क साथ ठप्प हो गया, इसलिए यूरोप वासियो न पूर्वी देशो क साथ व्यापार करन के लिए जल माग की खोज करना शुरु किया। इसी प्रयास क कारण भारत और अमेरिका आदि देशो के जल माग की खोज सम्भव हो सकी। उपयु क्त कारण से पुनर्जागरण सभव हो सका।

(5) **सामन्तवाद का पतन**—मध्यकाल म यूरोपीय राजनीति पर सामन्तो का प्रभाव था। इस समय राज्य की वास्तविक शक्ति सामन्तो क हाथ म केन्द्रित थी, और सम्राट नाम मात्र क शासक थ। सामन्त जनता से कर वसूल करते थे। इतना ही नही वे जनता पर अनक प्रकार क अत्याचार करत थे। सामन्तो की अत्याचारपूर्ण नीति एव अमानुषिक व्यवहार क कारण जनता क लिए कला और साहित्य के विकास के बारे म सोचना असम्भव था। उस समय की जनता सामन्तो से भयभीत थी। जनता को इतन अधिक कर सामन्तो को दने पडते थे कि वह सुबह से शाम तक कठोर परिश्रम करन क बावजूद भी अपना जीवन निर्वाह बडी मुश्किल से कर पाती थी।

मध्यकाल के अन्त तक सामन्तो की शक्ति क्षीण होने लगी। सामन्तों का पतन हो जाने के कारण जनता ने चन की सांस ली। अब उसके मन से सामन्तों का भय निकल गया। इसलिए अब जनता स्वतन्त्र रूप से चिन्तन एव मनन करने लगी। जिसके फलस्वरूप पुनजागरण का वातावरण तयार हुआ।

(6) नगरों की वृद्धि—सामन्तवाद के कारण यूरोप मे अनक बड़े-बड़े नगरों की स्थापना हुई। इन नगरो के कारण व्यापार के क्षेत्र म प्रगति हुई। इससे व्यापारी वग धनवान बनता चला गया। इसलिए यह वग जीवन की विलासिता की वस्तुए खरीदना चाहता था। अत इस वग ने कठोर नियमों का उल्लघन कर स्वतन्त्र रूप मे विचार करना प्रारम्भ कर दिया।

इसके अतिरिक्त सामन्तो के नेतृत्व म जिन नगरो का विकास हुआ था, उनका स्वरूप यूनान के नगर राज्यो के जसा बन चुका था। उन नगरों म शासन की वास्तविक शक्ति वहा के सामन्तो के हाथों मे निहित थी। इन नगरो की सांस्कृतिक विचार धारायें भी स्वतन्त्र रूप से विकसित हो रही थी। ये नगर एक दूसरे से पूण रूप से स्वतन्त्र थे। इटली का फ्लोरेन्स नगर सांस्कृतिक क्षेत्र मे स्वतन्त्र रूप से विकास कर रहा था। इस प्रकार नगरो के विकास क कारण पुनजागरण की स्थिति उत्पन्न हुई।

(7) कागज एव छापेखाने का आविष्कार—कागज एव छापेखाने के आविष्कार ने पुनजागरण मे अपना महत्वपूण योगदान दिया। अरबो ने कागज और छापेखान का प्रयोग चीन से सीखा। इसके पश्चात् यूरोपवासी जब अरबो के सम्पक म आये तो उन्होने उनको भी कागज और छापेखान का प्रयोग करना सिखा दिया। यूरोप में 1439 ई० म लेकर 1450 ई० तक छापेखाने का विकास होता रहा। कुछ ही समय म यूरोप के बड़े-बड़े नगरो म 200 से अधिक छापेखानो की स्थापना हो गई। प्रेस जान गुटन बग ने सव प्रथम मिन्ज म छापेखान की स्थापना की। इसके पश्चात छापेखाने का प्रचार निरन्तर बढता रहा। सव प्रथम पुनजागरण इटली म प्रारम्भ हुआ और उसने पुनजागरण के प्रसार म अपना महत्वपूण योगदान दिया।

शुरू मे छापाखाने मे धार्मिक पुस्तक बाईबल को ही छापना प्रारम्भ किया। उसके पश्चात कहानियां भी छपने लगी, लेकिन अभी तक नये नेताओ के लेखो को प्रकाशित नही किया जाता था। जब छापाखाने ने स्थानीय भाषा म बाईबल, गिरजा घर सम्बन्धी साहित्य और प्राचीन कहानियो को छापना शुरू किया तो इससे साहित्य का विकास हुआ। इसस जनसाधारण की साहित्य क प्रति रुचि बढने लगी। छापाखाने क कारण पुस्तकें सस्ती और अधिक सख्या में मिलने लगी। बाईबल हर ईसाई के घर मे पहुंच गई। छापाखाने क कारण जनसाधारण मे शिक्षा का प्रसार हुआ। पुस्तको क प्रसार से लोगो के विचारों म तेजी के साथ परिवर्तन आने

परिणामस्वरूप यूरोपवासियों की अध्ययन के प्रति रुचि जाग्रति हुई। अब उन्होंने स्वतन्त्र रूप से चिन्तन करना प्रारम्भ कर दिया, जिसके कारण उनकी बौद्धिक चेतना का विकास हुआ। वेन फिगर ने लिखा है कि 'छापेखाने के आविष्कार ने मध्यकाल के भार को दूर कर दिया तथा रहस्यमय चिन्तन के स्थान पर बौद्धिक मनन को स्थान दिया तथा व्यक्तिवाद की भावना स्थापित की। प्रत्येक मनुष्य यह सोचने लगा कि उसके विचार भी कुछ महत्व के हैं।

(8) भौगोलिक अनुसंधान—भौगोलिक खोजों ने यूरोप के पुनरुत्थान और विकास में महत्वपूर्ण सहयोग दिया। व्यापार की वद्धि के लिए यूरोपियन देशों में व्यापारिक प्रतिस्पर्धा प्रारम्भ हो गई। भौगोलिक खोजों के कारण व्यापार के क्षेत्र का विस्तार होता गया। यूरोप के व्यापारी भूमध्यसागरीय क्षेत्र से बाहर निकल कर अन्य महासागरों में अपने प्रभाव क्षेत्र को बढाने लगे। उस समय मार्कोपोलो, कोलम्बस और वास्को डगामा जैसे साहसी यात्रियों ने भारत चीन और अरब आदि देशों के जल मार्गों की खोज की।

कस्तुनतुनिया पर तुर्कों का आधिपत्य हो जाने से नये समुद्री मार्ग की खोज के प्रयत्न किए गये। पुर्तगाली राजकुमार हेनरी नाविक ने अफ्रीका के समुद्री मार्ग की खोज की। 1486 ई० में कप्तान डाइज ने अफ्रीका के दक्षिणी भाग की खोज की, जिसे आगे चलकर केप आफ गुड होप के नाम से सम्बोधित किया गया। सन 1497 ई० में ऐमरिगो नामक नाविक ने अमेरिका की खोज की और उसी के नाम पर इस देश का नाम अमेरिका रखा गया।

मैगलन नामक नाविक ने प्रशान्त महासागर में फिलीपाइन द्वीप समूह की खोज की। जब यूरोपीयन वासी मैक्सिको और पीरू पहुँचे तो वहां के सभ्य लोगों से वे बहुत अधिक प्रभावित हुए। निकोलोपोलो ने अपनी एशियाई यात्रा का विवरण लिखा। उसके पुत्र मार्कोपोलो ने भी अपनी यात्रा का विवरण लिखा। इस यात्रा विवरणों को पढकर यूरोप के अनेक साहसी नाविकों ने विश्व के विभिन्न भागों तक पहुंचने के लिए जल मार्ग खोज निकाले। अब यूरोप निवासी व्यापार एवं धर्म के प्रचार के लिए विश्व के विभिन्न भागों में पहुंचने लगे। इससे वे दूसरे देशों की सभ्यता के सम्पर्क में आए। इसका उनके चिन्तन और विचारधारा पर काफी प्रभाव पडा। अब उन्होंने धर्माधिकारियों और सामन्तों के अत्याचारों से मुक्त होने का प्रयास किया। परिणामस्वरूप पुनर्जागरण की स्थिति उत्पन्न हुई। डब्लू० एन० बीच ने लिखा है कि 'पुराने मूर नाविक धन्य हैं जिन्होंने पुर्तगाल को प्रेरणा दी। पुर्तगाल अन्य किसी राष्ट्र से अधिक अच्छी स्थिति में था, जो समुद्री अभियान उठाकर मार्ग खोज सकता था।'[1]

---

1 बीच, डब्लू० एन०—हिस्ट्री आफ दा वर्ल्ड—पृष्ठ 527

(9) विज्ञान का विकास—मध्यकाल के उत्तराद्ध से विज्ञान के क्षेत्र म प्रगति प्रारम्भ हुई। वैज्ञानिक खोजो के कारण अब जहाजो पर पाल लगा दिए गये, जिससे व तीव्र गति से चलने लगे। यूरोपियनो ने चीन के सम्पर्क म आने के पश्चात उनसे कुतुबनुमा का प्रयोग करना सीखा। कुतुबनुमा की सहायता से ही मार्कोपोलो, कोलम्बस और वास्कोडिगामा आदि साहसी नाविको ने ससार के जल मार्गो की खोज की। इसी प्रकार बारूद के आविष्कार न सामन्तो की शक्ति को समाप्त करने म सहायता की। अब सामन्तो के स्थान पर राजाओ के साम्राज्य स्थापित होने लगे। मशीनो के प्रयोग से आगे चलकर औद्योगिक क्रान्ति हुई।

इस समय प्राचीन मान्यताओ की सत्यता को परखने के लिये विभिन्न प्रयोग होने लगे। कापरनिस ब्रूनो और लिलियो आदि प्रसिद्ध वैज्ञानिको ने ज्योतिष एव खगोल के क्षेत्र म अनेक नई खोज कर प्राचीन मान्यताओ का खण्डन किया। शरीर विज्ञान के क्षेत्र म डा० हार्वे ल्यू पाश्च्यर और डॉ० जेनर ने अनेक नये प्रयोग किये और प्राचीन मान्यताओ का खण्डन किया। इस प्रकार वैज्ञानिक प्रयोगों के कारण प्राचीन रूढिया और अन्धविश्वासो की समाप्ति हुई। और मनुष्य को वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति हुई। वैज्ञानिक विचारधारा के कारण अब मनुष्यो के विचारो मे परिवर्तन आया। अब मनुष्य किसी बात को सुनने के पश्चात उस पर विश्वास नही करता था। बल्कि उस पर प्रयोग करता था और प्रयोग में सही पाये जाने पर ही उस पर विश्वास करता था। इससे मनुष्य की मानसिक स्थिति में परिवर्तन आया और वह बौद्धिक क्षेत्र म आगे बढा। इस प्रकार इन वैज्ञानिक खोजों ने पुनजागरण मे बहुत महत्वपूर्ण योगदान दिया।

10 शिक्षा का विकास—मध्य युग के अन्त म शिक्षा के क्षेत्र म बहुत अधिक विकास हुआ। उस समय यूरोप के बडे बडे नगरों में विश्वविद्यालय स्थापित किय जा चुके थ। इन पर धार्मिक नियन्त्रण नही था, इस लिये विद्यार्थी इनमें किसी भी विषय का अध्ययन कर सकता था। शिक्षा के विकास के कारण मनुष्य प्राचीन ज्ञान को तर्क की कसौटी पर कसने लगा। जिसके फलस्वरूप अन्धविश्वासो की समाप्ति हुई और अब मनुष्य प्रत्येक विषय पर स्वतन्त्रता पूर्वक विचार करने लगा।

11 यूरोपीय दर्शन—मध्ययुग का यूरोपीय दर्शन अरस्तु का तर्क शास्त्र और आगस्टाइन के तत्व ज्ञान पर आधारित था। इसम धार्मिक विश्वास तथा तर्क शास्त्र का समन्वय था। मध्य युग मे यूरोपीय दर्शन को स्कालिष्टिक कहा जाता था। तरहवी शताब्दी म इस दार्शनिक विचारधारा का बहुत अधिक प्रचार हुआ। बेकन नामक दार्शनिक भी इसी समय पैदा हुआ। उसन वैज्ञानिक प्रयोगों पर जोर दिया इस वैज्ञानिक चिन्तन ने पुनजागरण में बडा महत्वपूर्ण योगदान दिया।

1453 ई० को तुर्कों ने पूर्वी रोमन साम्राज्य की राजधानी कस्तुनतुनिया

पर अधिकार कर लिया जिसके कारण बाइजेंटाइन साम्राज्य की सदव के लिये समाप्ति हो गई परन्तु पश्चिमी यूरोप म ज्ञान का प्रसार हुआ। अब तुर्कों ने बल्कान प्रदेश म लूटमार करना प्रारम्भ किया तो अनेक यूनानी विद्वान अपना प्राचीन साहित्य लेकर पश्चिमी यूरोप मे भागकर चले आये। जब यूरोप क बौद्धिक वग न यूनान के साहित्य को पढा तो वे बहुत प्रभावित हुए। उस समय का यूरोपीय दशन अरस्तु का तक शास्त्र और आगस्टाइन के तत्व ज्ञान पर आधारित था। इस दशन ने यूरोप म खलबली मचा दी। इससे बौद्धिक वग बहुत अधिक प्रभावित हुआ। आगे चलकर तेरहवीं शताब्दी म बेकन ने अरस्तु क विचारो का विरोध करते हुए वज्ञानिक प्रयोगों पर जोर दिया। वह मशीन स चलने वाली ट्रेन बस और हवाई जहाज की कल्पना करता था इस प्रकार इन वैज्ञानिक प्रयोगो ने पुनजागरण मे महत्वपूण योगदान दिया।

पुनजागरण का प्रारम्भ इटली मे ही क्यों हुआ ?—उपयु क्त कारणो से यूरोप मे पुनजागरण सम्भव हो सका। अब प्रश्न यह उठता है कि पुनजागरण का प्रारम्भ इटली म ही क्यो हुआ ? इसके उत्तर म यह कहा जाता है कि उस समय इटली (इतालवी) के नगर पूर्वी दशो क साथ व्यापार करके समृद्ध हो गय थे, इसलिये व संस्कृति का प्रोत्साहित करने के योग्य थे। इतालवी नगरो के समद्ध व्यापारियो के पास अच्छे ढग से जीवन व्यतीत करने के लिये अवकाश और धन सम्पत्ति दोनो ही तत्व मौजूद थ। व लोग सुन्दर जरीदार कपड पहनते थ। उनके घरो म सभी प्रकार की सुख सुविधा और सौन्दय प्रसाधन का सामान मौजूद था। ये धनी लोग रग रेलिया मनाते थे और बड़े-बड़े प्रीति भोजो का आयोजन करते थे। उन्होन अपन रहने क लिय विशाल भव्य भवनो का निर्माण करवाया और उन्ह चित्रो तथा मूर्तियो से सजाने के लिये कलाकारो को प्रोत्साहित किया। इसस इतालवी नगरो के स्वरूप म परिवतन होने लगा।

पूर्वी देशो के साथ व्यापार करन वाले व्यापारी और धम युद्धो स वापस लौटने वाले सनिक इटली के नगरो म रुकते थे। य लोग तुर्कों की उच्च सभ्यता क बारे म इटली के लोगो को बताते थ। जब तुर्कों ने कस्तुनतुनिया पर अधिकार कर लिया तो उस समय अनेक यूनानी विद्वान और कलाकार इतालवी के नगरो मे भाग कर आ गये। इसलिये यूनानी साहित्य का अध्ययन एव चिन्तन सव प्रथम इटली क नगरो म प्रारम्भ हुआ।

मध्य युग म जब अधिकाश यूरोपीय नगर अधकार म डूबे हुये थ तब इटली के नगरो म ज्ञान का प्रकाश फल रहा था। इटली के नगर एक दूसरे के साथ विचारो का आदान प्रदान करते थे और व धीरे धीरे समृद्धिशाली होते गये। उनमे स कुछ नगरों ने पवित्र रोमन सम्राट की अधीनता से स्वतन्त्रता प्राप्त करली। इटली के ये नगर यूनान के नगर राज्यो जस बन गये। इन स्वतन्त्र नगरो के धनी

लोगो ने कलाकारो और साहित्यकारो को प्रोत्साहन दिया। यही कारण था कि रेनेसा काल के कई प्रमुख व्यक्ति दार्शनिक पेट्राक, रवि दाते कथाकार बोकेशियया, चित्रकार लियोनादिडा, विची माइकल, एंजिलो और राफिन आदि इतालवी नगरो में ही पदा हुये।

इतालवी के नगरा म सवप्रथम पुनजागरण होने के कुछ अ य कारण भी उत्तरदायी थे। प्राचीन रोमन साम्राज्य सभ्यता एव सस्कृति का केन्द्र था। इटली के नगरो को पुनजागरण के लिये रोमन सस्कृति से प्ररणा मिलती रही, इसलिये इतालवी के नगरो म पुनजागरण सव प्रथम प्रारम्भ हुआ। रोम ईसाई धम का मुख्य केन्द्र था। कुछ पोपा ने पुनजागरण की भावना से प्ररित होकर अनेक विद्वानो और कलाकारा को रोम मे आश्रय दिया। जि होने यूनानी पाडुलेखो का लटिन भाषा म अनुवाद किया। पोप निकोलस पचम न स त पीटर के गिरजाघर का निर्माण करवाया और वेटिकन पुस्तकालय की स्थापना की। पोप निकोलस पचम के इन कार्यों का इटली के अ य नगरा पर बहुत अधिक प्रभाव पडा। उस समय वेनिस, फ्लोरेंस और मिलान के नगरा म बडे-बडे विश्वविद्यालयो की स्थापना की गई।

इटली की भौगोलिक स्थिति के कारण भी वहा सबसे पहले पुनजागरण का काय प्रारम्भ हुआ। यूरोप क अ य देशो की अपेक्षा इटली का यूनानी साम्राज्य और सस्कृति से कई शताब्दियो से सम्पक चला आ रहा था। पश्चिम और पूव के देश, भूमध्य सागर के जल माग से व्यापार करते थे। उस समय भूमध्य सागर के जल माग पर इटली का अधिकार था। उपरोक्त सभी कारणो से इतालवी के नगरो मे पुनजागरण सबसे पहल प्रारम्भ हुआ।

मानववाद का विकास—बौद्धिक चेतना को पदा करन म मानववादी विचार धारा न महत्वपूण योगदान दिया। इस विचारधारा का प्रवतक पेट्राक था जो इटली के फ्लोरेंस नगर का रहने वाला था। मध्य युग म प्रत्येक मनुष्य प्राचीन बन्धना को मान व तक की कसौटी पर कसने के पश्चात सही होन पर उसे स्वीकार करता था। विद्वाना ने मनुष्य की इस स्वतन्त्र विचारधारा की प्रवत्ति को मानव वाद के नाम से सम्बोधित किया है। जिन विद्वाना ने यूनानी और रोमन साहित्य का अध्ययन किया, व मानववादी के नाम से प्रसिद्ध हुये।

मानववाद को अग्रेजी मे ह्युमेनिज्म (Humanism) कहते हैं। इस शब्द की उत्पत्ति लटिन भाषा क श द ह्युमेनिटीज से हुई है। जिसका अथ है उच्च ज्ञान अर्थात मनुष्य के जीवन की समस्याओ का समाधान निकालना। इस विचारधारा के विद्वाना का मुख्य काय मनुष्य के महत्व को स्थापित करते हुए उसके जीवन को सुखी एव उन्नत बनाना था।

मध्य युग म मानव जीवन का कोई विशेष महत्व नही था। उस समय मानव जीवन पर धम का प्रभाव छाया हुआ था। धम की ओट में अन्धविश्वासो

और रूढियों का सवस्व कायम था। उस समय मनुष्य का मुख्य उद्देश्य परलोक को सुधारना था। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए सभी मनुष्य हर सम्भव प्रयास करते थे। उनका सम्पूर्ण धन, श्रम और समय धम ग्रन्थो के चिन्तन करने में व्यतीत होता था। उस समय कोई भी मनुष्य स्वतन्त्र रूप से चिन्तन नहीं कर सकता था। यदि कोई मनुष्य परम्परागत मान्यताओं का उल्लघन करता था, उन्हे असत्य सिद्ध करने का प्रयास करता तो उसे धम द्रोही घोषित कर कठोर से कठोर सजा दी जाती थी।

मानववाद के विकास के कारण वातावरण में क्रान्तिकारी परिवतन हुआ। इस विचारधारा के विद्वान धम के स्थान पर मनुष्य का अधिक महत्व देते थे। परिणाम स्वरूप देवी देवताओं की स्तुतियों तथा इहलोक सम्बन्धी उपदेशो के स्थान पर मानव की विभिन्न समस्याओं पर रचनायें रची जाने लगी। मानववादियो का कहना था कि मनुष्य को चाहिये कि वह परलोक की चिन्ता छोडकर इस लोक को ही स्वग बनाने का प्रयास करे। देवी देवताओं के स्थान पर रोगियो गरीबो और अनाथो की सेवा करे और बिना किसी भेद भाव के प्रत्येक मनुष्य को उन्नति के लिये अवसर दे। प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छानुसार किसी भी धम की स्वतन्त्र रूप से उपासना करे और राष्ट्र के प्रति निष्ठावान बना रहे। पठन पाठन का विषय भी धम के स्थान पर मनुष्य तथा ससार होना चाहिये।

मानववादी विचारधारा का मुख्य प्रवतक

मानववादी विचारधारा का मुख्य प्रवतक पेट्राक था। जिसका जन्म इटली के फलारेन्स नामक नगर में 1304 ई में हुआ था। उसने अपनी अधिकाँश कविताए धम निरपेक्षता पर लिखी और परलोक के सुख के स्थान पर इस लोक को सुख पूवक व्यतीत करने पर अधिक जोर दिया। पट्राक ने प्राचीन यूनानी तथा रोमन ग्रन्थो का अध्ययन करने के लिये जनसाधारण को प्रोत्साहित किया। इतना ही नहीं उसने ग्रन्थो की सुरक्षा के लिये पुस्तकालयो की स्थापना पर जोर दिया।

इस विचारधारा के लोगो का मानना था कि हम प्राचीन ज्ञान का तक के आधार पर परीक्षण करना चाहिये और यदि बात सत्य हो तो स्वीकार करना चाहिये। इस प्रकार की विचारधारा के प्रसार के कारण यूरोप का प्रत्येक व्यक्ति समाज मे प्रचलित बातो को तक की कसौटी पर कसने लगा। इससे यह पता चला कि समाज में अनेक निराधार बातें भी प्रचलित हैं। इस विचारधारा के प्रसार से दो लाभ हुए। पहला तो यह कि हर व्यक्ति तार्किक हो गया। दूसरा यह कि समाज में प्रचलित अंध विश्वास समाप्त हो गये। अब व्यक्ति किसी भी बात को तभी स्वीकार करता था जबकि वह तक की कसौटी पर खरी उतरती थी। बाद के मानववादियो ने यूरोप के सभी भागो मे इस विचारधारा का प्रसार किया।

पुनर्जागरण के विकास का क्षेत्र

पुनजागरण विश्व इतिहास की सवाधिक महत्वपूर्ण घटनाओं में से एक है।

पुनर्जागरण के साथ ही विश्व ने नवयुग मे प्रवेश किया। मध्यकाल मे मनुष्य प्राचीन रूढ़ियों और अंध विश्वासो से जकड़ा हुआ था। अब मनुष्य ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे स्वतन्त्र रूप से चिंतन करना प्रारम्भ कर दिया। इस समय मानव ने प्राचीन विचारो को तर्क की कसौटी पर कसा। उसमे जो बातें तर्क की कसौटी पर सही साबित हुई, व स्वीकार कर ली और जो गलत सिद्ध हुई उस तिलाजलि दे दी। इस प्रकार नवीन विचारो की खोज प्रारम्भ हुई।

पुनर्जागरण सर्वप्रथम इटली के नगरों मे प्रारम्भ हुआ। उसके पश्चात् यूरोप मे इसका प्रसार हुआ। पुनर्जागरण साहित्य विद्या और कला तक ही सीमित नही था अपितु इसका क्षेत्र बहुत अधिक विस्तृत था। इसने मानव के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया। परिणाम स्वरूप जन जीवन के प्रत्येक क्षेत्र म नवीनता दृष्टिगोचर होने लगी। पुनर्जारण के कारण जिन क्षेत्रो म नवीनताए उत्पन्न हुई उसका वर्णन निम्न प्रकार से किया जा सकता है —

बौद्धिक जागृति

पुनर्जागरण ने यूरोपियन जनता को बहुत अधिक प्रभावित किया। यूरोपियन लोग प्राचीन परम्पराओ और अंधविश्वासो म बुरी तरह जकडे हुए थे। इस समय यूरोपियन प्राचीन विचारो को आख मूद कर स्वीकार कर लेते थे। पुनर्जागरण के काल म एक वैचारिक क्रान्ति हुई। जिसने मानव को प्राचीन अन्धविश्वासो और आडम्बरो से मुक्ति दिलवाई। यह वैचारिक क्रान्ति मानववादी विचारधारा के कारण सम्भव हो सकी।

पुनर्जारण का जन्मदाता इटली का महाकवि दांते था। जिसने तेरहवी शताब्दी म सर्वप्रथम अपनी कविताए लेटिन भाषा के स्थान पर बोल चाल की भाषा म लिखी। इसके पश्चात् फ्लोरेन्स निवासी पेट्राक (1304-1374) ने अनेक ग्रंथों का अध्ययन कर मानवीय दृष्टिकोण पर बहुत सारी पुस्तकें लिखी। पेट्राक के विचारो का समकालीन विचारको पर बहुत अधिक प्रभाव पडा। इटली के अनेक विद्वानो ने पेट्राक के विचारो का प्रचार किया।

बोकेशियो नामक विद्वान ने डेकामरोन नामक पुस्तक लिखी, जिसम उसने धार्मिक प्रभाव से मुक्त मानवीय विचारो, गुणो और विशेषताओ का वर्णन किया। बोकेशियो के शिष्यो ने उसके विचारो का प्रचार किया। इसी समय कस्तुनतुनिया का एक विद्वान, मैनुअल क्रीसोलारस इटली आया। इसने भी वैचारिक क्रान्ति म महत्वपूर्ण योगदान दिया। इसने इटली के विद्वानो को यूनानी भाषा सिखाई। इसी समय यूनानी विद्वान बेसारियोन ने वेनिस के सेंट मार्क चर्च को अपना पुस्तकालय उपहारस्वरूप दे दिया। यहीं से चर्च ने पुनर्जागरण के विकास मे अपना सहयोग देना शुरू कर दिया। जब प्रसिद्ध यूनानी विद्वान निकोलस पंचम पोप बना तो उसने सभी चर्चों को पुनर्जागरण की प्रगति मे योगदान देना शुरू कर दिया।

किम्टिग लिआन नामक विद्वान ने इस बात का प्रचार किया कि राजदूतों और राजनीतिज्ञो को भी चाहिये कि व मानवीय दृष्टिकोण के आधार पर काम करें।

मेकियावली ने दि प्रिंस नामक पुस्तक लिखी। इसमे उसने नवीन राजनीतिक आदर्शों के बारे म वणन किया है । इटली के विद्वाना और साहित्यकारो ने अपनी इस नवीन विचार धारा का प्रसार सम्पूण विश्व म किया। जब यूरोप म मानवतावादी विचारधारा का प्रसार हुआ तो यूरोप के विभिन्न दशो मे मानव वादी दृष्टिकोण से साहित्य सृजन का काय होन लगा। अब यूरोप म साहित्य विज्ञान, कला और अन्य क्षेत्र म भी पुनजागरण प्रारम्भ हुआ। जिसके फलस्वरूप यूरोपियन लोगा के विचारा म परिवतन हुआ।

1 साहित्य के क्षेत्र मे पुनजागरण

इटली फ्रास इगलड स्पन पुतगाल जमनी और हालण्ड आदि देशा म साहित्य के क्षेत्र म तीव्र गति से विकास हुआ । इस समय बोल चाल की भाषा म साहित्य सृजन किया गया। पुनजागरण काल का साहित्य तक और दशन पर आधारित था। बाईबल का सभी भाषाओ मे अनुवाद किया गया। इस समय लेटिन भाषा से लगभग सौ बोल चाल की भाषाए विकसित हुई । छापेखाने क प्रयोग के कारण पुनजागरण अपनी सफलता के सर्वोच्च शिखर पर पहुच गया। साहित्य के क्षेत्र म हुए पुनजागरण का समस्त यूरोप पर प्रभाव पडा।

(1) इटली

पुनर्जागरण क फलस्वरूप मानव क विचारो म क्रातिकारी परिवतन हुआ जिसक कारण मानसिक परिवतन हुआ और वचारिक क्राति सभव हुई। इस क्राति क कारण इटली म नवीन साहित्य का सृजन हुआ । यहा के विद्वान यूनानी साहित्य क अध्ययन के प्रति रुचि रखन लग और प्राचीन साहित्य के आधार पर नवीन साहित्य का सृजन करन लग। इटली के साहित्य मे नवीनता उत्पन्न करन का श्रेय दाते पट्राक गिओवानी बाकशिया एरियस्टो और मैकियावली आदि विद्वाना को दिया जाता है।

महाकवि दाते (1265–1321 ई०)

इटालियन साहित्य म नवीनता उत्पन्न करन का श्रेय महाकवि दाते का दिया जाता है। उनका जन्म 1265 ई म हुआ था और 56 वष का आयु म 1321 ई मे उनकी मृत्यु हो गई। दाते की तुलना यूनानी भाषा एव साहित्य क प्रकाण्ड विद्वान होमर के साथ की जाती है। उसने इटालियन भाषा म दि डिवाइन कामेडी नामक विश्व प्रसिद्ध पुस्तक लिखी । इस पुस्तक म उसने मृत्यु क पश्चात् नरक और स्वग की काल्पनिक यात्रा का वणन किया है। इसक माध्यम से दाते ने मानवता को प्रेम एव एकता का पाठ पढान का प्रयास किया है। दाते ने अपनी कविताओ की रचना मातृभाषा में की । उसके द्वारा अपनी कविताओ म जनभाषा का प्रयोग करना साहित्य पुनर्जागरण का सकेत मात्र था। दाते को इटालियन कविता के पिता के नाम से भी पुकारा जाता है।

पेट्राक (1304–1374 ई०)

इटली का दूसरा प्रसिद्ध कवि और विद्वान व्यक्ति पेट्राक था। यह इटली के फ्लोरेंस नामक नगर का रहने वाला था। इसके पिता दाते के घनिष्ट मित्रो म से एक थे। पेट्राक ने विद्वानो का ध्यान यूनान तथा रोम के प्राचीन ग्रन्थो का अध्ययन करने हेतु आकर्षित किया। उसने अनेक कविताओ की रचना की। इसने अपनी कविताओ म प्रकृति एव मनुष्य के हर्षों एव विषादो का मार्मिक ढग से वर्णन किया है। उसने यूनानी और लटिन भाषा के पुराने हस्तलिखित ग्रन्थो को सग्रहित किया। इससे पुस्तकालयो की स्थापना का सिलसिला प्रारम्भ हुआ और कुछ ही समय म यूरोप म अनेक पुस्तकालयो की स्थापना हो गइ। यूरोप म मानववादी विचार धारा को विकास करने का श्रेय भी पट्राक को ही दिया जाता है। उसके द्वारा लिखे हुए गीत बहुत अधिक प्रसिद्ध है। पेट्राक को प्रथम आधुनिक मनुष्य और "पुनर्जागरण का पिता' के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है।

गिओवानी बोकेशियो (1313–1375 ई०)

बोकशियो को इटली के गद्य साहित्य का पिता कहा जाता है। उसने "दि कामरोन नामक पुस्तक लिखी। इसम उसने एक सौ हास्य कहानिया लिखी हैं। बोकेशियो ने अपनी कहानियो म सामन्तो पादरियो और सरदारों का बडे भद्दे ढग से मजाक उडाया है लकिन मनुष्य जाति से इसे गहरा प्रेम और सहानुभूति थी।

एरियस्टो (1474–1533 ई०)

एरियस्टो (1474–1533 ई०) इसी प्रकार एरियस्टो नामक साहित्यकार ने भी पुनर्जागरण म महत्वपूर्ण योगदान दिया। उसकी प्रौढ गद्य एव पद्य साहित्य की रचनाओ ने बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की।

मेकियावली (1474–1520 ई०)

मकियावली इटली का प्रसिद्ध राजनीतिक, विचारक और महान् साहित्यकार था। उसन 'दी प्रिन्स" और 'दी आर्ट ऑफ वार' नामक दो ग्रथो की रचना की। 'दी प्रिन्स' नामक ग्रथ म राजनीति के बारे म विवरण दिया है। कुछ इतिहासकार मकियावली के दी प्रिन्स नामक ग्रथ की तुलना चाणक्य के अर्थशास्त्र से करते हैं। उसन इटली की राजनीति का गम्भीरता से अध्ययन किया। इसके पश्चात् उसने कहा कि शासकों को सुचारु रूप से शासन चलाना चाहिए। उसने लिखा है कि यह बहुत अच्छा होता कि लोग राजा से भी प्रेम करते और उससे डरते भी, किन्तु चू कि ऐसा हो पाना कठिन है इसलिए आवश्यक है कि लोग उससे डरें। मकियावली के विचारो का तात्कालीन राजनीतिक दुराचाराओ पर काफी गहरा प्रभाव पड़ा।

(ii) हालण्ड

इटली म साहित्य के क्षेत्र म जो क्रान्तिकारी परिवतन हुआ उसका यूरोप

के अन्य देशों पर भी गहरा प्रभाव पड़ा । पन्द्रहवीं शताब्दी का सबसे प्रभावशाली मानववादी लेखक डेसीडेरियस इरस्मस (1466–1536 ई०) था । जिसका जन्म 1466 ई० में हालैण्ड में हुआ था । वह अपनी योग्यता शैली और विद्वता के लिए इतना अधिक प्रसिद्ध था कि लोगों ने उसे यूरोप का विद्वान की उपमा दे दी थी । उसने अपनी रचनाओं के माध्यम से अन्ध विश्वास, असहिष्णुता और अज्ञान के विरुद्ध आवाज उठाई । वह विश्व शांति का समर्थक था । उसने निरंकुश अत्याचारी सम्राटों की कटु आलोचना की । और मूर्खता की प्रशंसा (इन दी प्रेज आफ फौली') नामक पुस्तक की रचना की । इसमें उसने व्यंगपूर्ण शैली में धर्माधिकारियों का मजाक उड़ाया और धर्माधिकारियों के दुराचारों का वर्णन किया है ।

(iii) फ्रांस

फ्रांस में रेबीलस, माण्टेन आदि विद्वानों ने साहित्य के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया । रेबीलस (1495–1533 ई०) फ्रांस के गद्य साहित्य में नवीनता उत्पन्न करने का श्रेय रेबीलेस को दिया जाता है । यह अपने समय का एक अच्छा गद्य लेखक था । उसने गद्य साहित्य में उपन्यास पद्धति को जन्म दिया । और अपने उपन्यासों में मानव के स्वतन्त्र चिंतन के महत्व के बारे में वर्णन किया है । रबीलेस ने पादरियों व अध्यापकों का अपने उपन्यासों में व्यंग का प्रयोग करते हुए मजाक उड़ाया । वह उस समय में प्रचलित शिक्षा का विरोधी था । उसका यह मानना था कि अध्यापक छात्रों को व्यर्थ की बातें रटा देते हैं । फ्रांस में मोन्टो नामक विद्वान निबन्ध का जन्मदाता था । उसने कहा था कि कुछ पराजय विजयों से भी बढ़कर विजयपूर्ण होती हैं ।

मोण्टेन (1533–1592 ई०) मोण्टेन अपने समय का एक अच्छा निबन्धकार था । उसके निबन्धों को इस समय अच्छी प्रसिद्धी मिली । वह अपने निबन्धों में ओजस्वपूर्णशैली का प्रयोग करते हुए भावों को स्पष्ट रूप से व्यक्त करता था । परिणामस्वरूप वह उस समय फ्रांस का सर्वश्रेष्ठ गद्य लेखक बन गया ।

रामसर्ड अपने समय का एक अच्छा गीतकार था । उसकी रचनाओं को इस समय काफी ख्याति मिली । इसके अतिरिक्त कार्नेल रासीन मोलियर मदाम और दसन्निमे आदि साहित्यकारों की रचनायें भी काफी प्रसिद्ध हुईं ।

(iv) इंगलण्ड

इंगलण्ड में भी साहित्य के क्षेत्र में पुनर्जागरण हुआ और 16वीं शताब्दी तक पुनर्जागरण अपने सर्वोच्च शिखर पर जा पहुंचा । वहां के साहित्य के विकास में कवि चासर एडमण्ड स्पन्सर, सर टामस मूर मार्लोव और विलियम शेक्सपियर आदि विद्वानों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया ।

कवि चासर (1340–1400 ई०)

कवि चासर इंगलण्ड के मध्यकाली युग का महान कवि था । उसे अंग्रेजी

काव्य का पिता के नाम म भी पुकारा जाता है। उमने अपनी रचनायें उस समय की प्रचलित भाषा म लिखी। और अपनी रचनाओं म लोगों के गुण व दोषों का वणन किया। चासर न अनेक मनोरजक कहानिया भी लिखी। उसकी ये कहानिया 'केण्टरबरी टेल्स नामक सग्रह म प्रकाशित हुई।

एडमड स्पेंसर

स्पेंसर न साहित्य के विकास मे अपना महत्वपूण योगदान दिया। उसन फेयरी क्वीन' नामक पुस्तक लिखी, जिसको उस काल म काफी ख्याति मिली।

सर टामस मूर (1478–1535 ई०)

सर टामस मूर न 'यूरोपिया' नामक पुस्तक लिखी, जो 1516 ई० मे प्रकाशित हुई। यह पुस्तक लेटिन भाषा म लिखी गई थी बाद म इसका अग्रेजी म अनुवाद कर दिया गया था। उसने अपनी पुस्तक म अपने युग के समाज और सरकार की हास्यपूण ढग म आलोचना की है। टामस मूर प्लेटो के विचारो से बहुत अधिक प्रभावित था और वह इगलैण्ड मे श्रेष्ठ शासन व्यवस्था स्थापित किये जाने के पक्ष मे था। उसन अपनी पुस्तक मे आदश समाज और आदश राज्य के सिद्धातों का वणन किया है।

मार्लोव (1564–1593 ई०)

क्रिस्टोफर मार्लोव इगलण्ड का प्रसिद्ध गीतकार था। उसने कई नाटक लिखे। उसन 'डा फाउस्टस' नामक नाटक भी लिखा। जिसम नायक ज्ञान और शक्ति को लकर अपनी आत्मा शतान को बेच देता है।

विलियम शेक्सपियर (1564–1616 ई०)

इगलण्ड के पुनजागरण कालीन साहित्यकारा में शेक्सपियर को सवश्रेष्ठ साहित्यकार का स्थान प्राप्त है। वह अपने युग का सबसे प्रसिद्ध नाटककार और कवि था जिसकी तुलना विश्व के विद्वान व्यक्तियों से की जाती है। शेक्सपियर एलिजाबेथ के शासनकाल मे हुआ। उसने अपनी रचनाओं म मानवीय करुणा और मानवीय स्वभाव के सभी पहलुओं का शानदार वणन किया है।

शेक्सपियर ने हैमलट नामक प्रसिद्ध नाटक की रचना की। उसम उसन बताया कि किस प्रकार नायक अपनी आत्मप्रवचना के कारण मर जाता है। उसन "मैकबथ नामक पुस्तक भी लिखी। इसम उसन यह बताया कि एक युग व्यक्ति यदि राजा बनना चाहता है तो भी जन साधारण की सहानुभूति प्राप्त कर सकता है। उस हर वस्तु स अच्छाई ही नजर आती है। शेक्सपियर की तीसरी रचना 'जुलियस सीजर' है। यह एक नाटक है जिसन विश्व म सर्वाधिक प्रसिद्धी प्राप्त की है।

फ्रांसिस बेकन—

फ्रांसिस बकन भी इस समय का एक अच्छा निबधकार था। जिन्होंने निबन्धों

की गणना अच्छे निबन्ध लेखकों में की जाती है। बेन फिगर ने लिखा है कि बकन ने मनुष्य का ध्यान न्याय के धार्मिक विचारों से हटा दिया और उसे प्रकृति के अध्ययन एवं मानवहित के कार्यों को करने के लिये प्रोत्साहित किया।

मिल्टन भी इस काल का सर्वश्रेष्ठ कवि था। उसने "पेराडाइज लास्ट" नामक ग्रन्थ की रचना की। जिसे उस समय बहुत अधिक प्रसिद्धी मिली। हाब्स भी राजनीतिशास्त्र का सर्वश्रेष्ठ विद्वान था

(v) जर्मनी—

जर्मनी के साहित्य में नवीनता उत्पन्न करने का श्रेय वहां के रूडोल्फ कोनाड और काल्टस आदि साहित्यकारों को दिया जाता है। मार्टिन लूथर नामक धर्म सुधारक जर्मनी में पैदा हुआ था। यह धर्म शास्त्र का प्राध्यापक था। इसने बाईबल का जर्मन भाषा में अनुवाद किया। और धर्म में व्याप्त दोषों को दूर करने का प्रयास किया।

(vi) स्पेन—

पुनर्जागरण के कारण स्पेन के साहित्य पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। स्पेन में सर्वान्तिस और कैल्डेस नामक विद्वानों ने साहित्य के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

(vii) सर्वान्तिस—

सर्वान्तिस इस काल का सर्वश्रेष्ठ लेखक था। उसने डान क्विक्जोट नामक पुस्तक लिखी। यह पुस्तक मनोरंजन से भरपूर है। इसमें मध्यकालीन रूढ़ियों और परम्पराओं की कटु आलोचना की गई है। इसका मुख्य कथानक डान क्विक्जोट दुनिया को सुधारने का प्रयास करता है। इस प्रयास में उसकी बड़ी दुर्दशा होती है। वह अपने अनुयाईयों के साथ पवन चक्कियों से इस प्रकार से युद्ध करता है जैसे कि वह सैनिकों से युद्ध कर रहा हो। बच्चे मनोरंजन के लिये इस पुस्तक को पढ़ते है। उसी ने यह कहा था कि 'हर कुत्ते का अपना दिन आता है एक से पंखों के पक्षी एक साथ रहते हैं।

लोपडी वेगे नामक विद्वान स्पेन के रंगमंच का जन्मदाता था। कैल्डेस नामक व्यक्ति स्पेन का सर्वश्रेष्ठ कवि था। उसने नवीन विचारों को आधार बनाकर अपनी कविताएँ रची। इस समय केमाज पुर्तगाल का एक सर्वश्रेष्ठ कवि था। उसने 'लुसियाड नामक महाकाव्य स्पेनिश भाषा में लिखा। यह महाकाव्य पुर्तगाल साहित्य की उत्कृष्ट कोटि की रचना मानी जाती हैं। उपरोक्त विद्वानों के द्वारा सभी रचनायें स्पेनिश भाषा में ही लिखी गई थी।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पुनर्जागरण के कारण यूरोपियन देशों में स्थानीय भाषाओं में साहित्य का सृजन हुआ। जिसके फलस्वरूप यूरोप की स्थानीय *या प्रादेशिक भाषाओं का विकास सम्भव हो* सका। उस समय लोगों में प्राचीन

यूनानी तथा रोमन ग्रन्थों का अध्ययन करने तथा मानववाद को समझने की अभिरुचि उत्पन्न हुई।

पुनर्जागरण के फलस्वरूप धर्म के प्रभाव की समाप्ति हुई। पहले धर्म पर ही साहित्य लिखा जाता था किन्तु अब साहित्यकार स्वतन्त्रतापूर्वक जीवन समस्याओं का आलोचनात्मक ढंग से साहित्य में वर्णन करने लगे। अब मनुष्य का पारलौकिक जीवन के सम्बन्ध में मान्यताओं से विश्वास उठ गया। इस प्रकार पुनर्जागरण के कारण मनुष्य की स्वतन्त्र रूप से चिन्तन करने की शक्ति का विकास हुआ।

2 कला के क्षेत्र में विकास

प्रोफेसर डेविस ने लिखा है कि 'पुनर्जागरण के कारण कला के क्षेत्र में अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक विकास हुआ। मध्यकाल में कला पर धर्म का बहुत अधिक प्रभाव था। उस समय धर्म का प्रचार करने के लिए ही कला का उपयोग किया जाता था। परन्तु पुनर्जागरण के कारण कला धर्म के प्राचीन बन्धनों से मुक्त हो गई। अब कलाकारों ने स्वतन्त्र रूप से कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने वास्तविकता व स्वभाविकता को निकट लाने का प्रयास किया।

पुनर्जागरण के काल में प्राचीन एवं मध्यकालीन के समन्वय से एक नवीन कला का विकास हुआ। जिसके फलस्वरूप प्रेम, सौन्दर्य एवं प्राकृतिक सौन्दर्य के निरूपण पर चित्रों का निर्माण किया जाने लगा। कला के क्षेत्र में भी सर्वप्रथम पुनर्जागरण इटली के फ्लोरेन्स नगर में प्रारम्भ हुआ। यहाँ पर कलाकार धार्मिक बन्धनों से मुक्त होकर स्वतन्त्र रूप से कलाकृतियाँ बनाने लगे। पुनर्जागरण के कारण यूरोप में भी कला के क्षेत्र में बहुत अधिक विकास हुआ। कला के क्षेत्र में अब वास्तविकता दृष्टिगोचर होने लगी। धीरे धीरे सभी यूरोपियन देशों में इस नवीन कला का प्रसार हो गया।

(1) स्थापत्य कला के क्षेत्र में विकास

पुनर्जागरण से पूर्व मध्य काल में स्थापत्य कला में गोथिक शैली का प्रयोग किया जाता था। इस शैली के आधार पर धार्मिक भवनों का निर्माण किया जाता था। पुनर्जागरण के कारण कला पर व्याप्त धार्मिक बन्धन समाप्त हो गये। इटली ने सर्वप्रथम प्राचीन यूनान और रोम की कला का समन्वय कर एक नवीन शैली का विकास किया। इस नवीन शैली में अनेक डिजाईनों और शृंगारों को प्रोत्साहन दिया गया और इस शैली के आधार पर विशाल राजमहलों और चर्चों का निर्माण करवाया गया। भवनों में सौन्दर्य की दृष्टि से फूल-पत्तियाँ एवं पक्षियों के चित्र अंकित किये गये। वास्तुकला में पत्थर के साथ लकड़ी का बहुत अधिक मात्रा में प्रयोग किया गया। उस समय लकड़ी पर सुन्दर खुदाई का कार्य भी किया जाता था। इस नई शैली का जन्मदाता फ्लोरेंस निवासी ब्रूनलेस्की (1379–1446 ई०) था। अब अरबों के प्रभाव से स्थापत्य कला में गोल मेहराबों का निर्माण किया जाने लगा।

16वीं शताब्दी में इस नवीन शैली का पूर्ण रूप से विकास हो चुका था। इस शताब्दी का प्रमुख वस्तुकला विद् माइकेल एंजिलो था। रोम का सन्त पीटर का गिरजाघर पुनर्जागरण कालीन स्थापत्य कला का सुन्दर नमूना है। इसका निर्माण माइकेल एंजिलो और रफल जैसे प्रसिद्ध कलाकारों ने करवाया था। एंजिलो 90 वर्ष की आयु तक इसके निर्माण में व्यस्त रहा। इस गिरजाघर का विशाल गुम्बज बहुत प्रशंसनीय है। यह गिरजाघर इतना विशाल है कि इसमें 80 हजार व्यक्ति एक साथ प्रार्थना कर सकते हैं।

वेनिस के सन्त मार्क का गिरजाघर और इंगलैण्ड में सन्त पाल के गिरजाघर का निर्माण भी इस नवीन शैली के आधार पर किया गया था। इस समय अमीरों ने भी इस नवीन शैली के आधार पर विशाल भवनों का निर्माण करवाया। पेरिस का लूब्रे का संग्रहालय और जर्मनी का हैडेलबर्ग का दुर्ग उस समय की नवीन वास्तुकला के सुन्दर नमूने हैं। यद्यपि अमेरिका के बड़े बड़े नगरों में टाउनहाल पुनर्जागरण कालीन भवनों के जैसे बनाये गये है परन्तु सुन्दरता विशालता और प्रभाव में ये प्राचीनकला का मुकाबला नही कर सके।

फ्रांस में भी इस नवीन शैली के आधार पर अनेक भवनों का निर्माण किया गया। स्पेन के सम्राट फिलिप ने भी इस नवीन शैली के अनेक भवन बनवायें। इंगलैण्ड मे 1619 ई० में "ह्वाइट हाल" में दावत घर का निर्माण किया गया। इसका निर्माण प्रसिद्ध कलाकार इनिगोजानस ने करवाया था। इस प्रकार स्पष्ट है कि पुनर्जागरण कालीन कलाकार स्थापत्य कला के क्षेत्र मे प्राचीन कला को मात नही दे सके।

(ii) चित्रकला के क्षेत्र मे विकास

पुनर्जागरण से पूर्व मध्यकाल में चित्रकला धार्मिक बन्धनों में जकड़ी हुई थी। पुनर्जागरण के कारण चित्रकला धार्मिक बन्धनों से मुक्त हो गई और चित्रकला के क्षेत्र मे काफी विकास हुआ। अब धार्मिक चित्रों के स्थान पर जन जीवन से सम्बन्धित मौलिक एवं यथार्थ चित्रों का चित्रण किया जाने लगा। इससे चित्रकला में सजीवता दृष्टिगोचर होने लगी। इस काल के प्रसिद्ध चित्रकार सिमाबू गिटो एड्रिया साइमोन, मार्टिन और मेसेक्सिमो आदि थे।

गिटो को चित्रकला का जन्मदाता माना जाता है। यह पहला चित्रकार था जिसने मानव एवं प्रकृति पर अनेक चित्रों का चित्रण किया। मध्यकाल में अधिकांश चित्रकार भवन की दीवारों पर चित्रों का निर्माण करते थे। इन चित्रों का रंग कच्चा होता था जो थोड़े समय में अपने आप उखड़ जाता था। पन्द्रहवी शताब्दी में बेल्जियम के वान आइक नामक दो भाईयो ने चित्रों को अधिक सख्या में बनाने के लिए उनमें तेल मिलाने का प्रयोग शुरू किया। इस समय लकड़ी और कपड़ों पर भी चित्रों का निर्माण किया जाने लगा। और चित्रकारो ने रंगों को

मिश्रित करने की विधि याज निकाली। जिसके कारण चित्र और अधिक सुदर बनने लग। प्लट और जीन डमड ने लिखा है कि 'रग का समझदारी से, परिदृष्य का चतुरता स और प्रकाश छाया का सफाई से प्रयोग करके रेनेसा के चित्रकार विश्व के आश्चय बन गये। [1]

लियो नार्डो दाविंची (1452–1519 ई०) यह उस समय का प्रसिद्ध चित्रकार था। उसके चित्र साद और भाव स परिपूण हात थ। वह चित्रो क लिए उपयुक्त सुदर रागा का प्रयोग करता था। और उनम शरीर के अगो और प्रति अगा को स्पष्ट रूप स व्यक्त करता था। उसके चित्र लास्ट सपर "(अन्तिम भोजन) और ' मोनालिसा" विश्व के सवश्रेष्ठ चित्रो मे महत्वपूण स्थान रखत है। वास्तव म वह पुनजागरण कालीन प्रथम प्रसिद्ध चित्रकार और श्रेष्ठ प्रतिनिधि था।

इटली का दूसरा प्रसिद्ध चित्रकार माइकेल एजलो था। वह मनुष्य को ससार की सवश्रेष्ठ रचना मानता था। ऐजलो का चित्र "लास्ट जजमट' (अतिम निणय) विश्व के सवश्रेष्ठ चित्रा म महत्वपूण स्थान रखता है। इस चित्र का निर्माण करने म उसे 20 वष का समय लगा। इसके 145 चित्र आज भी उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त इसके द्वारा निर्मित 400 मूर्तिया भी आज तक सुरक्षित हैं। ऐंजेलो ने दाऊद और मूसा की विशाल तथा सजीव मूर्तियो का निर्माण किया था। ये मूर्तिया सगमरमर की बनायी गई थी। उसने सन्त पीटर के गिरजाघर के भीतर छत पर ईसा क जन्म स प्रलय तक की कहानी चित्रा के रूप म चित्रित की है। इन चित्रो को बनाने म उसे पाच वष का समय लगा और इसी काम मे वह अधा हो गया। यह चित्र आज भी देखन वाला को आश्चय मे डाल देता है। दुर्भाग्य से यह अपने जीवन म विशेष प्रसिद्धि प्राप्त नही कर सका।

यद्यपि राफेल नामक प्रसिद्ध चित्रकार की छोटी उमर म ही मृत्यु हो गई, किन्तु जीवन के 37 वर्षों म (1483–1520 ई०) उसे जो प्रसिद्धी मिली वह अन्य चित्रकारा का नही मिल सकी। उसके ' सिस्टाइन मडोना नामक चित्र की गणना सवश्रेष्ठ चित्रा म का जाती है। राफेल दवी दवताओ के भावपूण और प्रेमपूण चित्रा का निमाण करता था। इसलिए पोप उस पर बहुत प्रसन्न था। उसन अपन एक चित्र म यूनानी दाशनिका को आपस म शास्त्राथ करत हुए दिखाया है। और अपन रगील चित्रा म वनिस के समृद्ध लोगा का जीवन चित्रित किया है। वह मातृत्व और वात्सल्य के सजीव एव सुदर चित्रा का निमाण करता था। उसके द्वारा बनाये गये चित्रा म सजीवता और सुदरता दृष्टि गोचर होती है। प्लट और जीन ड्रमड ने लिखा है कि माइकेल ऐंजेलो क मुकाबले राफेल का काम शान्त,

---

1 प्लटा जीन और ड्रमड–विश्व का इतिहास, पृष्ठ 257

मधुर और नारी सुलभ माहिनी से परिपूण प्रतीत होता है।'[1]

हालण्ड म नवीन चित्रकला विकसित करने का श्रय हूवट आइक तथा जान वान आइक आदि प्रसिद्ध चित्रकारो को दिया जाता है। जमनी के प्रसिद्ध चित्रकार ड्योरार और हेन्स दाल्वीन ने लकडी तथा तावे के बतनो पर आश्चयजनक चित्रो का निर्माण किया।

स्पेन म चित्रकला का विकास करने का श्रेय एलग्रीका और वेलेजक्यूज आदि प्रसिद्ध चित्रकारो को दिया जाता है। वेलजक्यूज सासारिक चित्रो का निर्माण करता था। उसने विलासपूण राजदरबारो पर अनेक चित्र बनायें। चित्रकार रूबेन्स (1577-1640 ई०) भडकीले चित्रो का निमाण करता था। वह चित्रा म नारियो के अगा का सुदर ढग स प्रदशन करता था। उसका चित्र "सलीव स अवरोहन' विश्व के सवश्रेष्ठ चित्रो म अपना महत्वपूण स्थान रखता है।

पुनजागरण कालीन चित्रा को देखकर पादरी नाराज होते थे। क्योकि महान सता और शहादो का चित्र भी साधारण लागा के जैसा बनाया जाता था। एक पादरी ने चित्रकारा को फटकारते हुए कहा कि चितेरो तुम बुरा करते हो, तुम गिर्जो म अहकार लाते हो तुम पवित्र मेरी (ईसा की माता) को ऐसी वशभूषा म प्रस्तुत करते हो माना वह कोई सामान्य स्त्री हो। पुनजागरणकालीन कला ने समस्त यूरोपियन देशो को प्रभावित किया।

(iii) **मूर्तिकला के क्षेत्र मे विकास**—पुनजागरण के कारण मूर्तिकला के क्षेत्र म काफी विकास हुआ। प्रसिद्ध मूर्तिकार दानोतेलो ने धम के स्थान पर मनुष्य की मूर्तियो का निर्माण करना प्रारम्भ किया। यह इटली के फ्लोरेन्स नगर का रहने वाला था। उसके द्वारा बनाई गई वेनिस क सत माक की आदमकद मूर्ति मूर्तिकला का एक सुदर नमूना है।

दूसरा प्रसिद्ध मूर्तिकार लारेजो गिबर्टी (1378–1455) था। उसने फ्लोरेज नगर के गिरजाघर म कौसे का द्वार बनाया। जिसकी गिनती पुनजागरण काल के शिल्प के उत्कृष्ट नमूना म की जाती हैं। इस कृति ने उस हमेशा के लिए अमर बना दिया। माईकेल ऐंजेला न इस द्वार के बारे मे यहा तक कहा था कि 'यह द्वार तो स्वर्ग के द्वार पर रखन योग्य है। यूरोप म भी मूर्तिकला के क्षेत्र म काफी विकास हुआ। समाधिया पर मूर्तिया का निर्माण किया जाने लगा। इसका प्रारम्भ स्पेन क सम्राट फर्नेनिण्ड की समाधि स हुआ।

(iv) **सगीत कला के क्षेत्र मे विकास**—पुनजागरण के कारण सगीत कला के क्षेत्र मे काफी विकास हुआ। इतिहासकार हेज न लिखा है कि 16वी शताब्दी म सगीत कला के क्षेत्र म अच्छी प्रगति हुई। इसका कारण यह था कि मध्यकाल म

1 स्वट जीन व ड्रमड–विश्व का इतिहास–पृष्ठ 258

गिरजाघरो मे सगीत पर प्रतिबन्ध था। बाद म सेंट एम्ब्रोस ने गिरजाघरो मे सगीत के प्रयाग का आवश्यक माना। अब तक गिरजाघरो म ही प्रार्थनाएँ गीत के रूप म गाई जाती थी लेकिन अब अन्य क्षेत्रो म भी सगीत का प्रचार प्रारम्भ हुआ।

पुनजागरण काल म ही वायलिन और पियाना का आविष्कार हुआ। इस समय वाद्य सगीत की लोकप्रियता मे वृद्धि हुई और पहली बार आरकेस्ट्रा का प्रचलन हुआ जिसम एक साथ कई वाद्य बजाये जा सकते थे। इस समय का प्रसिद्ध सगीतज्ञ पैलेस्ट्रिना था जो इटली का निवासी था। पुनजागरण के कारण धार्मिक तथा लौकिक सगीत का भेदभाव समाप्त हो गया।

(3) विज्ञान के क्षेत्र मे विकास—पुनजागरण काल म विज्ञान के क्षेत्र मे बहुत अधिक विकास हुआ। मध्यकाल म यूरोपियन अधविश्वासो और प्राचीन रूढ़ियो के बन्धन मे जकडे हुए थे। उन पर धर्माधिकारियो का बहुत अधिक प्रभाव था। जो उस समय स्वतन्त्र चिन्तन के प्रबल विरोधी थे। मध्यकाल म प्राचीन रूढ़िया क विरुद्ध आवाज उठाने वाले एव प्राचीन साहित्य की जाच करने वाले व्यक्ति को धर्मद्रोही की सजा दी जाती थी।

पुनजागरण के कारण वैज्ञानिक क्रान्ति हुई। जिसके कारण जन साधारण का अधविश्वासो तथा मिथ्या विचारो से विश्वास उठ गया। मनुष्य न स्वतन्त्र रूप स चिन्तन करना प्रारम्भ कर दिया। इस समय कई नई खोजें और आविष्कार हुए। इस वैज्ञानिक क्राति के कारण मनुष्य ने प्रकृति के रहस्यो का पता लगाने का प्रयास किया और प्राकृतिक शक्तियो का उपयोग करके मानव जीवन को सुखी बनाने म सफलता प्राप्त की।

(1) खगोल एव भूगोल के क्षेत्र मे विकास—सेबाइन ने लिखा है कि "नये देशो की खोज और ज्योतिष की छानबीन न जनता को पहली बार यह अनुभव करवाया कि उनके कई लोकप्रिय विश्वास गलत है।[1] प्रत्यक्ष वस्तुओ और प्रमाणो को देखने के पश्चात् जनता न विज्ञान पर विश्वास करना प्रारम्भ कर दिया। सामुद्रिक यात्रियो न नये-नये प्रदेशो की खोज की और ज्योतिषियो न एक नये ब्रह्माण्ड की खोज की। दूसरी शताब्दी म प्रसिद्ध खगोल शास्त्री टॉलेमी ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि पृथ्वी स्थिर है और सूर्य व चन्द्रमा उसके चारो तरफ चक्कर लगाते हैं। चर्च ने टॉलेमी के इस सिद्धान्त को स्वीकार किया और लोगो न इस पर विश्वास कर लिया।

खगोल शास्त्र के क्षेत्र म क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने वाला व्यक्ति निकोलस कापर निकस (1473–1543 ई०) था। यह पोलण्ड का रहने वाला था। उसने टॉलेमी के मत को गलत बताया और इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि पृथ्वी

---

1 सबाईन—ए हिस्ट्री ग्राफ वल्ड सिवलीजशन, पृष्ठ 370

सूय के चारो ओर चक्कर लगाती है। उस समय लोगो ने इस बात पर बहुत आश्चय किया और एकाएक उसके सिद्धात पर विश्वास नही कर सके। कोपरनिकास का सिद्धात बाईवल के विरुद्ध था। चच ने इस सिद्धात का बडा विरोध किया। पोप के आदेश स कोपरनिकस ने अपने विचारो का प्रचार बन्द कर दिया और वह दड से बच गया।

जमनी के प्रसिद्ध खगोल शास्त्री कपलर ने गणित के अको से कापरनिकस सिद्धात को सही प्रमाणित कर दिखाया। इटली क वैज्ञानिक जाइडिनो ब्रूनो न कोपरनिकस के सिद्धात का प्रचार करना शुरू किया। परिणामस्वरूप पोप न उसे मृत्यु दण्ड दिया। धार्मिक अत्याचार और बबरता क बावजूद भी वज्ञानिक खोजे निरन्तर होती रही।

इटली के प्रसिद्ध विद्वान गलीलियो (1564-1642) न कोपरनिकस के सिद्धात की पुष्टि की। उसन एक ऐसी दुरबीन का निर्माण किया जिसस सूय चन्द्रमा और ग्रहो आदि को देखा जा सकता था। पोप न गेलीलियो को कद कर लिया और उसको बाध्य होकर अपने विचारो को वापस लेना पडा।

इगलण्ड का निवासी आईजक न्यूटन (1642-1727 ई०) एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक था। उसने पृथ्वी के गुरुत्वाकषण शक्ति के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। उसने बताया कि पृथ्वी म आकषण शक्ति है इसलिए हर वस्तु ऊपर से नीचे की तरफ आती हैं ऊपर की प्रत्येक वस्तु को पृथ्वी अपनी तरफ खीचती हैं। इस समय पृथ्वी का आकषण और घूमने का सिद्धात ये दो बडी खोजें हुई। इस प्रकार यूरोप ने ससार को एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया।

(ii) **गणित के क्षेत्र मे विकास**—देस्कार्तेस (देकार्ते) एक प्रसिद्ध दाशनिक और गणितज्ञ था। उसन यह बताया कि किसी भी बात का तक की कसौटी पर कसने के उपरान्त यदि सत्य प्रतीत होती हो तो उस स्वीकार कर लेना चाहिए। परिणामस्वरूप रूढिवादी लाग उसक शत्रु बन गय। उसने बीज गणित का ज्यामिती म उपयाग करन के बारे म खोज की।

अग्रेज वज्ञानिक न्यूटन न पृथ्वी के गुरुत्वाकषण सिद्धात का आविष्कार किया इसका लोगो पर भारी प्रभाव पडा। जब उनको पता चल गया कि हमारी पृथ्वी धमशास्त्रो क अनुसार काई देवयोग या आकस्मिक घटना नही है अपितु यह तो प्रकृति के नियमा क अनुसार अपनी धुरी पर घूम रही है। गणित के क्षेत्र म गेलीलियो और स्टेविन नामक विद्वानो ने भी अनेक खोजें की।

(iii) **भौतिक शास्त्र के क्षेत्र मे प्रगति**—भौतिक शास्त्र की प्रगति म गेलीलियो ने महत्वपूण योगदान दिया है। पहले यह मत प्रचलित था कि गिरने वाली वस्तु की गति उसके वजन पर निभर करती है, गेलीलियो ने अरस्तु के इस मत का खण्डन किया। 1593 ई० म उसन चच के झूलते हुए दीपक को देखकर पन्डूलम

क सिद्धात का आविष्कार किया। इस सिद्धात के अनुसार उसने इस मत का प्रतिपादन किया कि गिरने वाली वस्तु की गति उसके भार पर नही अपितु उसकी दूरी पर निर्भर करती है। उसने एयर तथा हाईड्रोस्टिक तुला की भी खोज की। गिलबर्ट नामक वैज्ञानिक ने मैगनेट के सिद्धात का आविष्कार किया था।

(IV) रसायन शास्त्र के क्षेत्र मे प्रगति—रसायन शास्त्र के क्षेत्र म कई खोजें हुई। वाल हेलमोंट ने 1630 ई० म कार्बन डाईऑक्साइड नामक गैस का आविष्कार किया। कोडस नामक वैज्ञानिक ने गधक और ऐल्कोहल को मिलाकर इंधन का आविष्कार किया। राबर्ट बायल ने गैसों के विस्तार पर बॉयल सिद्धात का आविष्कार किया। स्विटजरलैण्ड के प्रसिद्ध वैज्ञानिक परसीलसस ने रसायन शास्त्र और चिकित्सा शास्त्र के पारस्परिक सम्बन्धों का वर्णन किया।

(V) चिकित्सा शास्त्र के क्षेत्र मे प्रगति—चिकित्सा शास्त्र के क्षेत्र म भी काफी प्रगति हुई। नादरलैण्ट के प्रसिद्ध वैज्ञानिक वसेडियम (1516–1564) ने 'मानव शरीर की बनावट' नामक पुस्तक लिखी। उसने इस पुस्तक म शल्य चिकित्सा के व्यवहारिक प्रयोग पर अधिक जोर दिया। परिणामस्वरूप पुरानी मान्यताऐं समाप्त होने लगी। एन्डा विसालियस नामक विद्वान ने मानव शरीर की हड्डियो का अध्ययन करने के पश्चात् अस्थिपंजर पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला।

स्विट्जरलण्ड के वैज्ञानिक परसीलमस ने चिकित्साशास्त्र एव रसायन शास्त्र क पारस्परिक सम्बन्धो का वर्णन किया। इस समय जडी बूटियो का प्रयोग रोगो के इलाज के लिए किया गया। इगलण्ड के विलियम होर्वे ने मनुष्य के शरीर मे रक्त सचारण की विधि का आविष्कार किया। इससे चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र म हलचल मच गई। उसने इस मत का प्रतिपादन किया कि हृदय खून को धमनियों के माध्यम से सारे शरीर म फेंकता है और शिराओ द्वारा खून वापस लेता रहता है। इस आविष्कार के पश्चात् खून चढ़ाने तथा हृदय और ग्रथिया जैसी बीमारियो का इलाज आसानी से किया जाने लगा। जर्मन विद्वान केपलर ने शव सम्बन्धी नियमो की खोज की।

(VI) नये यन्त्रों का आविष्कार—यूरोप म इस समय कई नये यत्रों का आविष्कार हुआ। जकारियाज ने सूक्ष्म दर्शक यन्त्र बनाया। 16वी शताब्दी म घडियो का आविष्कार हुआ। गेलीलियो ने दूरदर्शक यत्र का आविष्कार किया। छापेखाने का आविष्कार चीन की प्राचीन सभ्यता के समय म हो चुका था परन्तु वास्तविक विकास पुनर्जागरण काल म यूरोप म सभव हो सका। इस समय तक वैज्ञानिको ने वाष्प शक्ति की खोज करली थी। अब मशीनो को वाष्प शक्ति की सहायता से चलाया जाने लगा। इस प्रकार आज के विकसित वैज्ञानिक युग की नीव पुनर्जागरण काल के समय म ही रखी गई थी।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पुनर्जागरण ने मनुष्य जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया। इससे मनुष्य को मध्य काल में प्रचलित रूढ़ियों और प्राचीन परम्पराओं से छुटकारा मिला और अब मनुष्य ने नये युग में प्रवेश किया। प्लट और जीन डूमड ने लिखा है कि 'इन वैज्ञानिकों ने तो केवल अस्पष्ट मार्ग आलोकित किया था। उनके बाद के लोगों ने इस अस्पष्ट से मार्ग को वैज्ञानिक प्रगति के चौड़े राजपथ में बदल दिया।'[1] फिर भी आज तक लोग अंधविश्वासों और रूढ़ियों को अपने जीवन में बहुत महत्वपूर्ण स्थान देते हैं।

(4) **भौगोलिक खोजें** मध्यकालीन युग में यूरोप में बर्बर जातियों के आक्रमण के कारण अराजकता एवं अव्यवस्था फैल गई और यूरोपियन देशों का विदेशों से सम्पर्क टूट गया। मध्य युग के अन्त में जब राष्ट्रीय राज्यों का उदय हुआ और आर्थिक क्रान्ति हुई तब यूरोपियन देशों ने दूर-दूर के देशों के साथ अपना सम्पर्क स्थापित करने का प्रयास किया। इस बार उन्होंने एशिया के जलमार्ग द्वारा व्यापार करने का निश्चय किया। इसलिये आधुनिक युग के प्रारम्भ में ही यूरोपियन देशों ने नये जलमार्गों की खोज करने का निश्चय किया। इन खोजों से यूरोपियन देशों को अमेरिका का पता लगा और उसके साथ उन्होंने अपने सम्बन्ध स्थापित कर लिये। भौगोलिक खोजों की प्रवृत्ति को जाग्रत करने में निम्न परिस्थितियों का योगदान रहा—

भौगोलिक खोजों के कारण भौगोलिक खोजों के प्रमुख कारण निम्न लिखित थे —

(1) अरबवासी दूर-दूर के देशों से स्थल तथा जल मार्ग के द्वारा व्यापार करते थे। जब धर्म युद्ध हुए तो यूरोपियनवासियों ने इन युद्धों में भाग लिया। इन युद्धों से लौटने वाले यूरोपियनों की पूर्वी देशों के प्रति ज्ञान में बहुत अधिक वृद्धि हुई।

(2) ईसाई धर्म के प्रचारक नये नये देशों में ईसाई धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार करना चाहते थे। मार्कोपोलो ने अपनी चीनी यात्रा का वर्णन तेरहवी शताब्दी मे लिखा। उसने इस मत का प्रतिपादन किया कि पृथ्वी गोल है और जहाजों के माध्यम से पूर्वी देशों में पहुंचा जा सकता है। मार्कोपोलो के विचारों का यूरोपियनों पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। अब उनकी संसार के विषय में जानने और उससे सम्पर्क स्थापित करने की जिज्ञासा मे वृद्धि हुई।

(3) यूरोप में आर्थिक क्रान्ति हुई जिसके कारण उत्पादन में वृद्धि हुई। अब

1—प्लट और जीन डूमड—विश्व का इतिहास, पृष्ठ 265

यूरोपियनवासी अपने व्यापार म वद्धि करने के लिये पूर्वी देशा से व्यापार करने के लिय उतावले हो उठे।

(4) यूरोपियनवासियो न स्थल माग क द्वारा भारत और चीन मे व्यापार करने का प्रयास किया किन्तु 1453 ई० म तुर्कों द्वारा कस्तुनतुनिया पर अधिकार कर लेने से उनके लिय स्थल माग द्वारा पूर्वी देशा क साथ व्यापार करने का माग अवरुद्ध हो गया। विवश होकर यूरोपियन देशों ने पूर्वी देशा के साथ व्यापार करन के लिये नये जल मार्गों की खोज करना प्रारम्भ कर दिया।

(5) यूरोपवासियो न कुतुबनुमा का प्रयोग अरबवासियो से सीखा। जिसके द्वारा अंधेरी रात्रि म भी दिशा का पता लगाया जा सकता था। कुतुबनुमा ने यूरोपियन नाविकों के मानसिक बल मे वद्धि की।

(6) पुनर्जागरण के काल मे मनुष्यो मे ज्ञान प्राप्ति की जिज्ञासा बढी। इससे प्रेरित होकर उन्होने नय-नय देशा की खोजें की।

(7) राष्ट्रीय राज्यो ने व्यापार और व्यवसाय क क्षेत्र म विकास करने के लिय आवश्यक की राजकीय संरक्षण प्रदान किया।

(8) इस समय यूरोप की जनसंख्या तीव्र गति स बढनी जा रही थी। इस बढती हुई जनसंख्या को बसाने के लिये नये-नये देशों की खोज करना आवश्यक हो गया।

भौगोलिक खोजें- भौगोलिक खोजो मे पुर्तगाल सबसे आगे था। इसी देश के बहादुर नाविकों ने उत्तरी अफ्रीका, भारत का पश्चिमी तट और अमेरिका की खोजें की। यूरोप के अन्य देशा न भी पुर्तगाल का अनुसरण किया।

पुर्तगाल के राजा प्रिंस हेनरी (1394-1460) न जल मार्गों की खोज करने के लिये एक नाविक स्कूल की स्थापना की। इस स्कूल के नाविकों ने अफ्रीका के तटीय प्रदेशा की खोजें की। परन्तु कोलम्बस, वास्कोडिगामा और मेगेलन ने भौगोलिक खोजा के क्षेत्र म महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त कर यूरोपियन देशा का माग दशन किया।

(1) **कोलम्बस (1451-1506) का योगदान**—स्पेन का नाविक क्रिस्टोफर कोलम्बस जिनाआ का निवासी था। यह पहले पुर्तगाल क राजा के दरबार म नौकरी करता था। कोलम्बस न मार्कोपोलो के यात्रा विवरण और भूगोल वेत्ता टोसकेनेली के लेखा को पढ़ने के पश्चात पश्चिम के माग से घूमकर भारत का जल माग खोजन का निश्चय कर लिया। इस काय म उसे स्पेन की रानी ईसा बेला ने बहुत महत्वपूर्ण सहायता दी।

3 अगस्त, 1492 ई० को कोलम्बस तीन जहाजा में 28 व्यक्तियो के साथ भारत का जलमाग खोजने के लिय चल पडा। कनरी द्वीप म पहुचने के पश्चात् वह

पश्चिम दिशा की ओर निरन्तर बढ़ता रहा। पाच सप्ताह तक धरती नही दिखाई दी। इस समय कोलम्बस बड़ी विकट परिस्थिति म फँस गया क्योंकि धर्म भीरू मल्लाहो ने विद्रोह कर दिया। 6 अक्तूबर को दूर क्षितिज पर पक्षी उड़ते हुए उसे दिखाई दिये और पाच दिन बाद कोलम्बस अमेरिका के 'बहामा द्वीप समूह' म जा पहु चा। उसने दो अभियान और किये। अन्त मे 1502 ई० म वह अमेरिका की खोज करने म सफल हुआ। 1506 ई0 म इस महान नाविक की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसकी खोजो के कारण उसे काफी प्रसिद्धि प्राप्त हुई।

(2) **वास्कोडिगामा का योगदान**—1497 इ० म पुर्तगाली नाविक वास्कोडिगामा भारत के जल मार्ग की खोज करने के लिये रवाना हुआ। 1498 ई० में वह भारत के दक्षिणी समुद्री तट पर स्थित कालीकट ब दरगाह म आ पहुचा। वास्कोडिगामा पहला व्यक्ति था, जिसने सर्व प्रथम भारत के जल मार्ग की खोज की। उसकी इस खोज के कारण यूरोप म हलचल मच गई।

(3) **मेगेल्लन का योगदान**—मेगेल्लन ने भौगोलिक खोजो में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। मेगेल्लन पुर्तगाल का रहने वाला था। स्पेन के राजा ने "मसालो के द्वीपो" का जल मार्ग खोजने के लिये उसे अपने यहा नौकरी दी। मेगेल्लन पाच पुराने जहाजो म तीन सौ बहादुर व्यक्तियो को लेकर मसालो के द्वीपो की खोज करने के लिये चल पड़ा। रास्ते म उसकी खाद्य सामग्री समाप्त हो गई, इसलिये उसे तथा उसके साथियो को समुद्री चूहे खाकर अपना गुजारा करना पड़ा। उनमे से काफी लोग मर गये थे। फिर भी मेगेल्लन ने फिलीपाईन द्वीप समूह की खोज करने म सफलता प्राप्त की। इस द्वीप समूह म पहुचते ही उसकी स्थानीय लोगो से झड़प हो गई जिसम मेगेल्लन अपने कई साथियो के साथ मारा गया। इस सघर्ष मे एक जहाज किसी प्रकार बच निकला जो अफ्रीका का चक्कर काटता हुआ स्पेन पहुच गया। इस जहाज मे 18 अधमरे नाविक पड़े हुए थे। मेगेल्लन की यह खोज ऐतिहासिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

स्पेन और पुर्तगाल अमेरिका म अपने उपनिवेश बनाने का प्रयास कर रहे थे। इस बात को यूरोपियन देश सहन नही कर सका। अब यूरोपियन देशो ने भी जलमार्गों की खोज करने के लिये साहसी नाविको को भेजना प्रारम्भ कर दिया। इगलैंड के सर फ्रासीसी ड्रेक तथा जान हाकिन्स ने स्पेन के जहाजो और अमेरिका मे स्पेन के अधिकृत प्रदेशो मे लूटमार करना प्रारम्भ कर दिया। यूरोपियन देशों ने भी अमेरिका और पूर्वी देशो के साथ व्यापारिक सम्पर्क स्थापित किये और वहा अपने उपनिवेश बनाये। कुछ ही समय में यूरोपियन देश अमेरिका और पूर्वी देशो म अपना साम्राज्य स्थापित करने म सफल हुए।

भौगोलिक खोजों के परिणाम—भौगोलिक खोजो का यूरोप के आधुनिक

इतिहास म महत्वपूण स्थान हैं। इन भौगोलिक खोजो के प्रमुख परिणाम निम्न लिखित हुये —

(1) यूरोप के प्रत्यक देश न खोजे गय देशा म अपना साम्राज्य स्थापित करने का प्रयास किया। इस प्रकार साम्राज्यवादी भावनाए विकसित हुई। यूरोपियन देशा म अधिक से अधिक उपनिवेश स्थापित करने की होड लग गई। कोई भी देश इस प्रतियोगिता म पीछे नही रहना चाहता था। साम्राज्य स्थापित करन की प्रतियोगिता के कारण यूरोपियन देशा म आपसी मतभद और तनावपूण वातावरण का सूत्रपात हुआ, जिसने कई शताब्दियो तक ससार को आक्रान्त कर दिया।

(2) यूरोपियन देशा ने इन देशा म निरकुशता पूवक शासन किया और इनका आर्थिक शोषण करके अपनी शक्ति में वद्धि करने में सफल हुये।

(3) यूरोपियन देशो न इन दशा के साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित किय और अपन देश क उद्योग और व्यापार का विकास करने म सफल हुए। वे इन देशो स कम मूल्य पर कच्चा माल प्राप्त करते थे और मशीनो का बना हुआ माल इनम बेचते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि यूरोपियन देश समृद्धशाली होते गये और इनकी आर्थिक दशा शोचनीय होती गई। यूरोप में व्यापारिक और औद्योगिक क्रान्ति हुई और उसका सभी यूरोपियन देशो म धीरे धीरे प्रसार हुआ। जिसके फलस्वरूप यूरोपियन देशो का व्यापार विकसित हुआ और वे समृद्ध बन गय।

(4) भौगोलिक खोजा के कारण यूरोपियन देश अपनी बढती हुई जन सख्या की समस्या को हल करने मे सफल हुए। उन्होने अमरिका आदि कई देशो मे काफी सख्या म यूरोपियन लोगो को बसाया।

(5) यूरोपियन दशों के सम्पर्क के कारण विश्व के असभ्य, अद्ध-सभ्य और पिछडे हुए देश विज्ञान के क्षेत्र म विकास कर सके।

(6) यूरोपियन देशा के सम्पक न उसके अधीन देशा की कला एव साहित्य को बहुत अधिक प्रभावित किया।

(7) दूर देशा म बस यूरोपियनो के लिए धार्मिक क्रियाओ का कठोरता से पालन करना सम्भव नही था। इसके फलस्वरूप वे धम क आडम्बर से मुक्त होने लगे और भौगोलिक खोजो के कारण उनके ज्ञान में वृद्धि हुई। जिसके फलस्वरूप धम सुधार आन्दोलन प्रारम्भ हुआ।

(8) अमेरिका अफ्रीका व आस्ट्रेलिया के मूल निवासियो पर यूरोपियनो द्वारा भयकर अत्याचार किया गया। उन्होने इन देशो के निवासियो को पकड कर यूरोप क बाजारो म गुलाम क रूप म बेचना शुरू कर दिया। यूरोपियनो न वहा की मूल सभ्यता क नष्ट कर ईसाई धम का प्रचार किया।

इस प्रकार अफ्रीका जैसे पिछडे हुए देश म यूरोपियनो ने अपनी सभ्यता एव सस्कृति का प्रसार किया। भारत और चीन आदि देशो मे भी यूरोपियन देश यापार का बहाना लेकर अपना साम्राज्य स्थापित करने मे सफल हुए। इस प्रकार यूरोप सम्पूण ससार का भाग्य विधाता बन गया।

पुनजागरण के प्रभाव,—पुनजागरण के कारण साहित्य, कला एव विज्ञान क क्षेत्र मे आश्चयजनक प्रगति हुई। इससे मनुष्य प्रगति के पथ की ओर अग्रसर हुआ। पुनजागरण क निम्नलिखित प्रभाव हुए —

(1) **राजनीतिक क्षेत्र मे प्रभाव** —

(i) सयुक्त यूरोप का कई राष्ट्रीय राज्यो म विभाजन हो गया।

(ii) यूरोप म सामन्ता की शक्ति समाप्त हो गई और उसके स्थान पर शक्तिशाली राष्ट्रीय राज्या का उत्कष सभव हुआ।

(iii) पोप का राजनीतिक कार्यों म हस्तक्षेप समाप्त हो गया।

(iv) जन-साधारण म राष्ट्रीय भावनाए विकसित हुई।

(v) शक्तिशाली राष्ट्रो म साम्राज्यवादी भावना का विकास हुआ।

(vi) पुनजागरण क कारण जनता राज्य को ईश्वर की कृति के स्थान पर मानव का कृति मानने लगी इसलिए अब जनता शासक के गलत कार्यों की आलोचना करना अपना कत्त य समझने लगी।

(2) **धार्मिक क्षेत्र मे प्रभाव** —

(i) जनता मे धार्मिक अ धविश्वास धीरे धीरे समाप्त होन लगा।

(ii) पोप का प्रभाव जनता पर से धीरे धीरे समाप्त होन लगा। फलस्वरूप यूरोप म धम सुधार आन्दोलन प्रारम्भ हुआ।

(iii) जन साधारण न रोम की अपेक्षा अपने राष्ट्र को अधिक महत्व देना शुरू किया।

(iv) अब लोगा न धम क्षेत्र म भी स्वतन्त्र रूप से चिन्तन करना प्रारम्भ कर दिया।

(3) **सामाजिक क्षेत्र मे प्रभाव** —

(i) मानववाद का विकास सभव हो सका।

(ii) यापारिक वग की शक्ति म वद्धि हुई।

(iii) कुलीन वश के लोगा के सम्मान म कमी आई।

(iv) जनता मे शिक्षा का विकास होने लगा।

इस प्रकार स्पष्ट है कि पुनजागरण मानव सभ्यता के इतिहास म अपना महत्वपूण स्थान रखता है। पुनजागरण एक उदार सास्कृतिक आन्दोलन था, जिसने विज्ञान, कला साहित्य और व्यवसाय के विकास का माग प्रशस्त किया। इसी माग पर चलकर मानव अपनी आधुनिक सभ्यता एव सस्कृति का निर्माण करने म सफल हो सका।

प्रस्तावित सन्दभ पाठ्य पुस्तकें —

1 नेहरू, जवाहरलाल—विश्व इतिहास की झलक
2 मेवाइन–ए हिस्ट्री ऑफ वल्ड सिविलाईजेशन
3 एलिस और जोन—ससार का इतिहास
4 प्लेट, जीन और ड्रमड—विश्व का इतिहास
5 वीच, डब्ल्यू० एन० —हिस्ट्री आफ दी वल्ड

———

4

धर्म सुधार आन्दोलन

धम-सुधार आन्दोलन पुनर्जागरण की देन है। मध्य युग म सर्वोच्च धर्माधिकारी पोप था। उस समय पोप तथा पादरियो का समाज पर बहुत अधिक प्रभाव था। पोप तथा अन्य धर्माधिकारी धार्मिक क्षेत्र के अतिरिक्त राजनीतिक क्षेत्र म भी सर्वोच्च अधिकारी थ। पोप जिस व्यक्ति को चाहता उसे सम्राट बना सकता था और जिसे वह नही चाहता उसे गद्दी से हटा सकता था। उस का व्यक्तिगत जीवन पवित्र नही था। धर्माधिकारियो के पास अपार धन सम्पत्ति होने के कारण वे विलासितापूण जीवन व्यतीत कर रहे थे। उस समय धर्माधिकारी धन सग्रह करने के लिये जनता से नाना प्रकार क कर वसूल करत थे। इतना ही नही उस समय जनता को स्वग म भेजने का प्रलोभन देकर नियत मूल्य पर पोप द्वारा मोचन पत्र भी बेचे जाते थे।

मध्य युग म धर्माधिकारियों ने अपने कत्तव्यों का पालन करना छोड दिया था और उन्होने कई प्रकार के अन्ध विश्वास प्रचलित कर दिये ताकि जनता पर उना प्रभाव बना रहे। चच क बढते हुये प्रभाव का वणन करते हुए वेवेस्टर न ता यहा तक लिखा है कि मध्यकालीन युग मे मनुष्य ने अपनी आत्मा व शरीर को चच को सौंप दिया था।

इस प्रकार वभवता धर्माधिकारियो के चरणो म लौट रही थी। जन साधारण को पादरियो के आदेशो का पालन करना पडता था। कोई भी यक्ति उनके आदेशो की आलोचना नही कर सकता था। निकोलस पचम ने प्रजातान्त्रिक भावना को कुचल दिया। उसके समय म यदि कोई व्यक्ति पोप से वाद विवाद करता था तो उसे या तो फाँसी दी जाती थी या देश मे निर्वासित कर दिया जाता था। उस समय यूरोप मे केवल कथोलिक धम ही लोकप्रिय धम बना हुआ था।

धम सुधार आन्दोलन का अथ—वारनर और मार्टिन ने लिखा है कि धम सुधार आन्दोलन पोप पद की सासारिकता और भ्रष्टाचार के विरुद्ध एक नतिक

विद्रोह था। वास्तव यह एक धार्मिक क्रान्ति थी जिसका सम्बध धम से था। मध्य युग म धर्माधिकारियो द्वारा जनता पर भयकर अत्याचार किये जा रहे थे। मध्य युग के अन्त तक पुनर्जागरण के कारण मानव का बौद्धिक विकास हुआ। जिसके कारण यूरोप का व्यक्ति प्रत्येक विषय पर स्वतन्त्रता पूवक विचार एव चितन करने लगा। अब जनता पोप के अत्याचारो को सहन करने के लिये तयार नही थी। इसलिये उस समय यूरोपियनो ने चच के बन्धनों से मुक्त होने का प्रयास किया। उन्होंने कथोलिक धम में व्याप्त बुराईया और आडम्बरो को दूर करने का हर सम्भव प्रयास किया। अब यूरोपियन विद्वानो न धम में प्रचलित प्रभाव स मुक्त होकर स्वतन्त्र रूप से चितन करना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार पुनर्जागरण ने धम सुधार क आन्दोलन का माग प्रशस्त कर दिया।

प्रोफसर डेविस ने लिखा है कि—यदि पुनर्जागरण और धम सुधार आन्दोलन को एक दूसरे का सहयोगी कहा जाय तो गलत नही होगा।

पुनर्जागरण की तरह यूरोप म 16 वी शताब्दी मे एक धार्मिक क्रान्ति हुई, जिसे धम सुधार आन्दोलन कहा जाता है। पोप का धम के साथ साथ राजनीति में भी अनुचित प्रभाव था। उस समय राजा, प्रजा, अमीर, गरीब ने चच की बुराईया का दूर करना, पादरियो के विलासितापूण जीवन पर प्रतिबध लगाना, पोप के प्रभाव को चुनौती देना, चच के आडम्बर और शोषण से मुक्ति दिलाने के लिये जो आन्दोलन प्रारम्भ किया गया उसे यूरोपियन इतिहास म धम सुधार आन्दोलन के नाम से जाना जाता है।

वेन स्पिगर ने लिखा है कि—प्रोटेस्टेन्ट धम सुधार आन्दोलन को चच की बुराईयो के विरुद्ध सफलता मिली। इतिहासकार डब्ल्यू० एन० वीच ने लिखा है कि—"धम सुधार आन्दोलन ही था, जिसने ईसाई धम सगठन का आखिरी चिह्न भी मिटा दिया, रेनसा का काय पूरा किया और यूरोप के भिन्न भिन्न भागो में जाग्रत मत भेदो को स्पष्ट और स्थाई बना दिया।"[1] एलिस और जौन ने लिखा है कि—"जिन दिनो यूरोप के लोग नये व्यापारिक माग व नये देशो की खोज कर रहे थ और अपने जगत का विस्तार कर रहे थे, उन्ही दिनों ईसाई धम के अन्दर कुछ नये परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहे थे। व्यापार और साम्राज्यवादी भावनाओं के साथ ईसाई धम का सुधार आन्दोलन भी शुरू हुआ।"[2]

मैक्नल बनस न इस क्रान्ति को प्रोटेस्टेन्ट क्रान्ति के नाम से पुकारा है। रोमन कथोलिक धम म व्याप्त दोषो को दूर करने के लिये धम-सुधार आन्दोलन

1—बीच, डब्ल्यू० एन०—हिस्ट्री आफ दी वल्ड, पृ 541
2—एलिस और जौन—ससार का इतिहास, पृ 262

आरम्भ हुआ था। मार्टिन लूथर ने 1517 ई० मे अपने वक्तव्यो म इस आन्दोलन को प्रारम्भ किया जिसने 1600 ई० मे जाकर सफलता प्राप्त की।

धम आन्दोलन के उद्देश्य —धम आन्दोलन के निम्न उद्देश्य थे –

(i) धम सुधारको का पहला उद्देश्य धम म व्याप्त बुराईयो और धर्माधिकारियो म व्याप्त भ्रष्टाचार को दूर करना था।

(ii) धम सुधारको का दूसरा उद्देश्य धम म व्याप्त आडम्बरो को दूर करना और पादरियो क नतिक जीवन को उच्च बनाना था।

(iii) उस समय पादरियो न विलासितापूण जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ कर दिया। इसलिय पवित्र जीवन व्यतीत करने के लिये मनुष्यो के लिये यह सम्भव नही था कि व पादरी के साथ रहकर चच मे ईश्वरोपासना कर सक। इसलिय ऐसे मनुष्यों ने चच में सुधार करने की माग की।

धम सुधार आन्दोलन के कारण – पुनर्जागरण के कारण यूरोप वासियो ने स्वतत्र रूप से चिन्तन करना प्रारम्भ कर दिया था। जिसके कारण मध्य युग की राजनीतिक एव आर्थिक व्यवस्थाओ में काफी परिवतन हुआ। चच का जन साधारण पर अभी तक बहुत अधिक प्रभाव था। इसी प्रभाव के विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई और सुधारो की माग की जाने लगी, जिसक कारण धम सुधार आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। इस धम सुधार आन्दोलन के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे—

(1) **राष्ट्रीय भावना की जाग्रति** —पुनर्जागरण के प्रभाव से यूरोप म राष्ट्रीय भावनाओ का विकास हुआ। इसलिये यूरोपियन जनता यह नही चाहती थी कि उनके राष्ट्र का धन कर के रूप में रोम के पोप के खजाने म जाये। परिणामस्वरूप पोप के विरुद्ध आन्दोलन होना स्वाभाविक हो गया।

(2) **पोप की विलासिता** — *15 वीं शताब्दी म पोप का नतिक स्तर गिर चुका* था और उसने विलासितापूण जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ कर दिया था। पोप जनता पर अनेक प्रकार क कर लगा कर धन सग्रह कर रहा था। इस सग्रहित धनराशि को वह अपने जीवन को सुखी बनाने म खच कर देता था।

सेवोनरोला ने लिखा है कि प्रत्येक भ्रष्ट परम्परा रोम से प्रारम्भ होती है और इसके पश्चात यूरोप मे उसका प्रसार होता है। उसने इस सम्बन्ध म लिखा है कि—'य तुर्क और मुरो से भी निकृष्ट हैं। रोम म तुम पाओगे कि भौतिक उपयोग की सभी वस्तुऐ अनतिक तरीको से प्राप्त की जाती हैं। पोप अपने बच्चो तथा भाईयो को बहुमूल्य वस्तुऐ बाट देते हैं। उनकी महत्वाकाक्षा को कभी सन्तुष्ट नही किया जा सकता है। व सिफ स्वण और पद के लिये ही घटिया बजाते हैं ... यदि कोई पादरी साधारण और सरल जीवन व्यतीत करना चाहता है तो इस पर व्यग कसे जाते हैं। उसे धोखेबाज कहा जाता है। जनता यह कहने

से नहीं चुकती कि यदि तुम अपने बच्चे के जीवन को नष्ट करना चाहते हो तो उसे पादरी बना दो।"

पोप ग्रेगरी सप्तम ने अपने राज्य, जागीरों व धन सम्पत्ति को अपने सम्बन्धियों में बांट दिया था। उस समय पोप ने ऐशो आराम पूर्वक जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ कर दिया था। वैभव के मद में चूर पोप अलेक्जेण्डर षष्टम के बारे में इतिहासकार डेन फिशर ने लिखा है कि—"पोप बनते ही उसने अपना ध्यान धन और शक्ति के संचय में लगाया। वह धनी, चरित्रहीन राजनीतिज्ञ था।"

पोप षष्टम धीरे धीरे इतना अधिक विलासी और भ्रष्ट हो गया कि वह अपने धार्मिक कर्त्तव्यों को भूल गया। उसका जनता पर प्रभाव धीरे धीरे समाप्त होने लगा। इस समय में हर रात को तीन चार लाशें रोम की सड़कों पर पड़ी हुई मिलती थीं। पोप षष्टम उस समय अपनी अलौकिक बीबीयों के साथ रंग रेलियां मना रहा था, जबकि अन्य पादरियों के लिए जीवन यापन करना भी मुश्किल था। बर्नस ने लिखा है कि— अलेक्जेण्डर षष्टम की स्वर्गीय वनसा ने आठ अवैध बच्चों को जन्म दिया, जिनमें से सात बच्चे उसके पोप बनने से पहले ही जन्म ले चुके थे।[1]

(3) पोप का राज्य कार्यों में हस्तक्षेप —

(1) पोप का राज्य के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप—पोप द्वारा राज्य के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने के कारण धार्मिक सुधार आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। उसका इटली के एक बहुत बड़े भाग पर अधिकार था। शालमन के समय से ही पोप ने राज्य के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया था। यूरोपियन राजाओं का राज्याभिषेक पोप की स्वीकृति से किया जाता था। वह राज्यों के आन्तरिक और वैदेशिक मामलों में हस्तक्षेप करता था।

इस प्रकार स्पष्ट है कि पोप जिस व्यक्ति को चाहता वही सम्राट बन सकता था और जिस सम्राट को वह नहीं चाहता उस पर आरोप लगाकर सिंहासन से हटा सकता था। यदि कोई सम्राट पोप के आदेशों का विरोध करता था तो पोप उसे चर्च से निष्कासित कर देता था। जैसे कि पोप ग्रेगरी सप्तम ने राजा हेनरी चतुर्थ को चर्च से बहिष्कृत किया था। इस प्रकार का बहिष्कार उस शासक के लिये सामाजिक मौत के समान था। इतना ही नहीं पोप उस शासक की प्रजा को उसके आदेश का पालन न करने का आदेश दे सकता था। विभिन्न देशों के बिशप भी राज्य कार्यों में हस्तक्षेप करते थे। राजा पोप के खर्चे के लिये प्रतिवर्ष बहुत बड़ी धन राशि उसे देता था। विरोधियों को पोप जिन्दा जलवा देता था। पोप की स्वीकृति के बिना उस समय शासक शादी व तलाक नहीं दे सकते थे। इस प्रकार पोप का राजनीतिक क्षेत्र में असीमित प्रभाव था।

1 मकनल बर्नस—वैस्टर्न सिवलीजेशन, पृष्ठ 39

दूसरी तरफ पुनर्जागरण के प्रभाव के कारण राजाओ की शक्ति म वृद्धि हो चुकी थी और राष्ट्रीय राज्यो का उत्कष हो चुका था। ऐसे समय राजा लोग राज्य कार्यो म पोप के हस्तक्षेप को समाप्त करना चाहते थे। इसलिये दोनो के बीच सघष अवश्यम्भावी हो गया।

रोम का पोप धम का सर्वोच्च अधिकारी होने के कारण विभिन्न देशो के धर्माधिकारियो को नियुक्त करना अपना अधिकार मानता था। परन्तु यह बात राजाओ के लिये असहनीय थी क्योकि राजा अपने अपने राज्यो म अपनी अपनी सत्ता को सर्वोपरि मानते थे। इसलिये वे चाहते थे कि अपने राज्य म चच के धर्माधिकारियो की नियुक्ति वे स्वय करें। इसका एक कारण यह था कि पोप राजा के विरोधी व्यक्तियो को ही धर्माधिकारियो के पद पर नियुक्त करता था। इससे राज्य म वे धर्माधिकारी कई प्रकार की समस्याऐ खडी कर देते थे।

(ii) चर्चों की न्याय व्यवस्था—पोप द्वारा राज्य के समस्त भागो म न्यायालय स्थापित किए जा चुके थे। यह न्यायालय राजाओ और पोप के बीच सघष के कारण बने। सामन्तवाद के समय रोमन न्यायालय और कानून की समाप्ति होने के कारण चच ने लोगो को न्याय प्रदान करने के लिये समस्त देश म अपने न्यायालयो की स्थापना की। पुनजागरण तथा राष्ट्रीय राज्यो की स्थापना के पश्चात भी कई मामलो मे चच के ये न्यायालय अपना फसला देते थे। राजाओ ने अपने न्यायालयो का महत्व कायम करने के लिए चच के न्यायालयो का विरोध करना प्रारम्भ कर दिया।

चच के न्यायालयो को लेकर राजाओ और पोप के बीच वाद विवाद प्रारम्भ हुआ। कई बार ऐसे अवसर भी आते थे कि एक ही मामले पर राज्य का न्यायालय और चच का न्यायालय दोनो ही फसला दे देते थे। तब विचित्र स्थिति उत्पन्न हो जाती थी। चच के न्यायालय राज्य के न्यायालय के फसले को खारिज कर देते थे। जनता इन धार्मिक न्यायालयो से परेशान हो चुकी थी। उस समय चच रिश्वत खोरी और भ्रष्टाचार के केन्द्र बने हुए थे। पुनर्जागरण के कारण जनता की सहानुभूति राजाओ के साथ थी।

(iii) शासकों की महत्वाकाक्षाओं मे वृद्धि—पुनजागरण के कारण राजाओ की शक्ति म वृद्धि हो चुकी थी। अब राजा अपनी इच्छानुसार शासन करना चाहता था। वह नही चाहता था कि पोप उसके कार्यों म किसी प्रकार का हस्तक्षेप करें। राजा धम को अपने प्रभाव क्षेत्र स अलग मानने के लिय तयार नही था। अब राजाओ ने अपने राज्यो म चच की स्थापना की, जिस पर किसी का कोइ नियत्रण नही था। राजा का यह काय पोप और उसके बीच सघष का कारण बना।

(iv) चच द्वारा धार्मिक कर वसूल करना—उस समय चच जनता से धार्मिक कर वसूल कर धन का सग्रह कर रहा था। राजाओ ने पोप के इस काय का

विरोध किया। जनता भी इस कर को चुकाने के विरुद्ध थी, क्योंकि पोप कर से सग्रहित धन का उपयोग अपने व्यक्तिगत जीवन पर करता था।

(v) विरोधियों को राजकीय सरक्षण—उस समय सम्राटों ने पोप के प्रभाव को समाप्त करने के लिये उसके विरोधियों को राजकीय सहायता और सरक्षण देना प्रारम्भ कर दिया। यदि राजा लोग सुधार वादियों की सहायता नहीं करते तो वे अपने आन्दोलन में इस सीमा तक कभी सफल नहीं हो सकते थे। डी० जे० हिल ने लिखा है कि 'यदि प्रोटेस्टेंट आन्दोलन केवल धार्मिक आन्दोलन ही होता तो यह अपने सृजनकर्त्ताओं के जीवन काल तक भी न पनप पाता। जिस वस्तु ने इसे सफल बनाया वह थी, इसके राजनीतिक उद्देश्य तथा प्रभाव और विशेषकर कूटनीति।'

यह सत्य है कि लूथर के पूर्वाधिकारी धर्म सुधारकों को शासकों का सहयोग प्राप्त नहीं होने के कारण पोप ने उन्हें मृत्यु दण्ड दे दिया लेकिन लूथर को राजकीय सहयोग प्राप्त होने से पोप उसे कोई दण्ड नहीं दे सका।

(4) धर्माधिकारियों के नैतिक स्तर में गिरावट धर्माधिकारियों के नैतिक स्तर में गिरावट होना भी धर्म सुधार आन्दोलन का कारण बना। मध्ययुग में पादरी अपने कर्त्तव्यों को भूल चुके थे और पोप की तरह विलासी जीवन व्यतीत कर रहे थे। चर्चों में पादरियों के साथ स्त्रियाँ भी साधु के रूप में रहती थीं। उनके साथ पादरियों के अनैतिक सम्बन्ध स्थापित हो चुके थे। पोप ने जनता पर अत्याचार करने प्रारम्भ कर दिये और भोग विलास में डूबे रहने लगे। उस समय धर्माधिकारी विवाह नहीं करते थे लेकिन चर्चों में उनके अवैध बच्चे 'यीसू' की सन्तान के नाम से पल रहे थे।

उस समय बहुत से पादरियों ने शादियाँ भी कर ली थीं और चर्च का धन वे अपनी विलासिता पर खर्च करने लगे। कालान्तर में ईसाई चर्च व मठ अनाचार के केन्द्र बन गये। पोप की विलासिता इस बात से स्पष्ट हो जाती है कि उस समय का सबसे प्रसिद्ध पोप अलेक्जेंडर षष्टम अपनी बीवियों के साथ भोग विलास में डूबा हुआ था, जबकि अन्य पादरियों के लिये जीवन यापन करना कठिन था। इस प्रकार पोप स्वयं इस सुधार आन्दोलन के लिये जिम्मेदार था। धर्माधिकारियों का नैतिक पतन हो जाने के कारण जनता उन्हें घृणा की दृष्टि से देखने लगी।

(5) रोम के वैभव का विरोध—मध्य युग में रोम ईसाई धर्म का प्रसिद्ध केन्द्र था। ईसाई धर्म का सर्वोच्च अधिकारी पोप रोम में निवास करता था। पोप ने रोम में भव्य गिरजाघरों का निर्माण करवाया। कलाकारों ने अपनी कला कृतियों से रोम को सुन्दर और आकर्षक नगर बना दिया। सभी यह जानते थे कि रोम का पोप जनता के धन पर ऐश आरामपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहा है और रोम के वैभव में वृद्धि कर रहा है। इटली के बाहर वाले यह नहीं चाहते थे कि उनके पैसे

से रोम के वैभव में निरंतर वृद्धि होती रहे। रोम की विलासिता को देखकर स्वयं मार्टिन लूथर ने यह कहा था कि 'रोम का पोप ऐसा चोर व डाकू है जैसा आज तक पृथ्वी पर पैदा नहीं हुआ और न होगा। हम दीन जर्मनों को धोखा दिया गया है। हम पदों तो स्वामी बनने के लिये हुए हैं और हम झुकने के लिये बाध्य किया है।

(6) **चर्च की आंतरिक दुर्बलता**—रोमन चर्च की आंतरिक दुर्बलता के कारण धर्म सुधार आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। चर्च में व्याप्त भ्रष्टाचार को दूर करने के लिये कई धर्म सुधारकों ने पोप तथा पादरियों का ध्यान आकर्षित किया। वाईक्लिफ तथा जान हस ने जब चर्च में सुधार करने की मांग की तो पोप ने उन्हें सजा दी।

15वीं शताब्दी में कौंसिलर आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। उस समय चर्च में सुधारों का प्रारूप तैयार किया गया परन्तु पोप के हस्तक्षेप के कारण यह योजना सफल नहीं हो सकी। धीरे धीरे पोप का ईसाई समाज पर प्रभाव कम होता जा रहा था। कुछ समय के लिये तत्कालीन पोप ने फ्रांस के राजा की शरण ली और बाद में पोप पद के लिये दो उम्मीदवार उठ खड़े हुए। एक उम्मीदवार को फ्रांस का समर्थन प्राप्त था दूसरे को इटली का समर्थन प्राप्त था। पोप पद के लिये होने वाले इस संघर्ष के कारण जनता की पोप के प्रति निष्ठा कम हो गई। इस संघर्ष से पहले जनता पोप को ईश्वर का प्रतिनिधि मानती थी। अब जनता ने सोचा कि पोप धरती पर ईश्वर का प्रतिनिधि कैसे हो सकते हैं? यदि उनका निर्वाचन फ्रांसीसी राजा करा सकते है।'[1]

1377 ई० से 1417 ई० तक चर्च के सदस्यों के सामने यह समस्या थी कि वे किसे अपना पोप मानें। इस घटना से चर्च की एकता को भारी धक्का पहुँचा। पुनर्जागरण के प्रभाव तथा कुछ प्रगतिशील पादरियों के सहयोग के कारण इटली के फ्लोरेंस नामक नगर में राष्ट्रीय तथा स्थानीय देश भक्ति की भावनाएँ जाग्रत हो चुकी थीं और यहाँ के निवासी पोप के प्रभाव से मुक्ति प्राप्त करना चाहते थे।

(7) **मानववादी विचारधारा**—रोमन कैथोलिक चर्च के अनेक पादरियों ने मानववादी विचारधारा को स्वीकार कर लिया था। जिनमें ईरैस्मस भी था। जिसने चर्च में प्रचलित बुराईयों पर प्रकाश डाला। मानववादी विचारधारा के समर्थक धर्म में प्रचलित बुराईयों की आलोचना करते थे। पुनर्जागरण के कारण मनुष्य ने स्वतन्त्रतापूर्वक विचार करना प्रारम्भ कर दिया। अब वह किसी भी बात को तर्क पर सही उतरने के बाद ही स्वीकार करता था। अब मानव पोप के आदेशों

1—प्लेट जीन और ट्रमंड–विश्व का इतिहास–पृष्ठ 277

की और धम मे व्याप्त अध विश्वासो को आंख मूदकर स्वीकार नही करता था। चच म घृणा एव अहकार की भावनाएँ मौजूद थी, जबकि पुनजागरण के काल का मानव, प्रम और सहानुभूति म विश्वास करता था।

मानववाद के विकास के साथ साथ आम जनता म रोमन कैथालिक धम के विरुद्ध असतोप म वद्धि होती जा रही थी। इरस्मस न जब चच मे व्याप्त बुराईया पर प्रकाश डाला तो उसे पाखण्डी की सना गी गई। इस सत्यता को मानने से इकार नही किया जा सकता कि मानववादी विचार धारा न धम सुधार आदोलन की नीव रखी थी और इसी के विचारा को मार्टिन लूथर न साकार रूप प्रदान किया था।

(8) **भौगोलिक अनुसधान का प्रभाव**—यूरोपियन देशा न नय-नय देशो की खाज की ओर वहा पर अनक ईसाई लोग जाकर बस गय। इन नवीन देशो म जाकर बस हुए ईसाईया क लिय घर्माधिकारियो द्वारा बताई गई धार्मिक क्रियाआ का पालन करना असभव था। वे अय देशा स सम्पक मे आये, जिसके कारण उनके ज्ञान में वद्धि हुई। अब वह धार्मिक बधनो मे मुक्त होने का प्रयास करने लगे।

(9) **धर्माधिकारियों का सासारिक जीवन**—धर्माधिकारियो के पास बडी-बडी जागीरें और अपार धन सम्पत्ति थी। इसलिये उन्होन विलासितापूवक जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ कर दिया। पाप पाल तृतीय और अलेक्जेण्डर षष्ठम के समय भेंट म अधिक धन दन वाले पादरी को शाही सम्मान दिया जाता था। उस समय चच भ्रष्टाचार और विलासिता के केन्द्र बन गये थे। पादरी जनता से बलपूवक धन वसूल करते थे।

16वी शताब्दी मे पादरी गिरजाघर म सिफ इसलिये घटिया बजात थ कि उन्हे स्वग और पद प्राप्त हा सक। उस समय पादरियो क द्वारा गिरजाघरो का निर्माण करने के लिय और उन्हे सुन्दर बनान क लिये जनता से बलपूवक धन वसूल किया जाता था। जनता इस प्रकार पादरिया का धन दन क पक्ष म नही थी। उस समय पादरी अपने कार्यों स यूरोप म बुरी तरह स बदनाम हो चुके थे। सज्जन व्यक्ति चच म जान स कतराता था।

पोप लिओ दशम (1513 1521) ने तो चच के पदो को बचकर पसे कमान का धधा शुरु कर दिया। उसन अपने महल को हीरे जवाहरात और सुन्दर कालीनो स सजाया। उस समय अय पादरिया ने भी लिओ दशम का अनुसरण करना प्रारम्भ कर दिया। सवाइन न लिखा है कि 'उन्हान अपने धार्मिक कत्तव्यो की अवहेलना की और साम तो की तरह रहने लगे'[1]

उस समय भ्रष्ट गिरजाघर और पादरी का विलासितापूण जीवन व्यतीत करना धम सुधार आदोलन का आधार बना। पादरियो की दशा का वणन करते

1—सवाइन-ए हिस्ट्री आफ वरल्ड सिविलीजेशन-पृष्ठ 377

हुए मक्नल वनम न लिखा है कि 'अनेक क्थालिक पादरी इतन अनानी थे कि विश्वास नहीं किया जा सकता। व जनता म प्रचलित साधारण लटिन भाषा म भी परिचित नहीं थे। ऐस भी पादरी थे जो प्रभु की प्राथना और दनिक धार्मिक मतव्य भी नहीं बोल सकते थे। इससे भी आगे अधिकाश पादरी बदनाम जीवन बिता रहे थे।" [1]

कई पादरियों न अपने भोग विलास क लिय एस अड्डे बना रखे थे जहा जुआ और शराब आदि बिकता था। अब तक जनता यह जान चुकी थी कि चच म कितन ऐसे भ्रष्ट और निरक्षर धर्माधिकारी हैं। उस समय इस बात की अफवाहें फल रही थी कि कोई भी सांसारिक व्यक्ति धन लेकर चच के ऊँचे स ऊँचे पद को खरीद सकता है और फिर वह जनता का शोषण कर सकता है। एसी घटनाओं से चच की प्रतिष्ठा को भारी धक्का लगा। पादरियों की बदनामी क कारण धम सुधार आन्दोलन तेजी स प्रारम्भ हुआ।

(10) धार्मिक विद्रोही—13वी शताब्दी म पोप इनोसेंट तृतीय क समय दक्षिण फ्रास म चच म व्याप्त बुराईयो के विरुद्ध धार्मिक विद्रोह प्रारम्भ हुए। दक्षिणी फ्रास के एक व्यक्ति आल्बिग ने खुले तौर पर पोप की आलोचना की। उसने सस्कारो के महत्त्व को मानने स इन्कार कर दिया। सासारिक जीवन व्यतीत करने वाले पादरियो की कटु आलोचना की और अपनी एक स्वतन्त्र चच का अलग से स्थापना की। पोप न अपनी शक्ति स आल्बिग और उसक अनुयाईयो को कुचल दिया। आल्बिग क अनुयाई आल्बिग स क नाम स प्रसिद्ध हुए।

पहला धम विद्रोह अभी पूण रूप स समाप्त ही नहीं हुआ था कि दक्षिणी फ्रास म दूसरा धार्मिक विद्रोह प्रारम्भ हो गया। इस धार्मिक विद्रोह का नेतृत्व पादरी वाल्ड स कर रहा था। इसने कहा कि मनुष्य का सिफ उन बातो का पालन करना चाहिये जो बाइबिल म लिखी हुई हैं। पोप जो आदेश देता है उसका पालन नहीं करना चाहिये। उसन अधिक धन सम्पत्ति का सग्रह करना, युद्ध करना बुरा माना और पोप म निष्ठा न रखन की अपील की। पोप ने वाल्डस पर धमद्रोही का अपराध लगाकर उसे जिन्दा जलवा दिया। प्रत्यक्ष रूप स तो यह आन्दोलन समाप्त हो चुका था लकिन अप्रत्यक्ष रूप म क्रांति क बीज धीरे धीरे विकसित होने जा रहे थे। आल्बिग और वाल्ड स क बलिदान महत्वपूर्ण सिद्ध हुए। इन बलिदानो न धम सुधार आन्दोलन को बल प्रदान किया।

फ्रास की तरह इगलण्ड म भी धम सुधार आन्दोलन आरम्भ हुआ। यहा पर इस आन्दोलन का नेतृत्व एक अंग्रेज प्रोफेसर पादरी वाईक्लिफ कर रहा था। उसने यह प्रचार किया कि बाईबिल ही हमारा सर्वोच्च प्रमाणिक धार्मिक ग्रन्थ है न

1—मक्नल बनस–वस्टन सिवलीजेश स–पृष्ठ 291

कि पोप के आदेश। उसने बाईबिल का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया और तीर्थ यात्रा, संस्कारों और सामारिक पादरियों की पूजा की बुराइयों पर प्रकाश डाला। उसका मानना था कि राजनीतिक दृष्टि से राजा पोप से भी अधिक महान है। इससे उसे राजा का समर्थन प्राप्त हो गया। इसके पश्चात उसके शिष्य लोदार्दों ने इस बात का प्रचार किया कि सभी मनुष्य एक समान है। उसने कुलीन वर्ग के व्यक्तियों और युद्धों का विरोध किया। परिणामस्वरूप गरीबों और किसानों ने धनवान व्यक्तियों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। इस पर शासक ने लोदार्दों पर राज्य द्रोह का अपराध लगाया और पोप ने उसे पाखण्डी और धर्मद्रोही घोषित किया। इसके पश्चात लोदार्दों को जिन्दा जलवा दिया गया और उसके साथियों का बुरी तरह से दमन किया गया। इतना ही नहीं पोप ने 1415 ई० में वाईक्लिफ की लाश को कब्र से निकाल कर उसे भी पाखण्डी घोषित किया और इसके बाद उसे जला दिया गया।

वाईक्लिफ के विचारों का प्रसार जौन हस (1373–1415 ई०) ने आधुनिक चकोस्लोवाकिया के एक भाग बोहीमिया में किया। इस पर पोप ने उसे पाखण्डी घोषित किया और उसे पकड़कर जिन्दा जला दिया गया। प्लट और जीन ड्रमंड ने लिखा है कि "अपने अनुयाईयों (हुसवादियों) के लिए प्रोफेसर हस एक जातीय वीर और साथ ही धार्मिक शहीद बन गया।"[1]

ये धार्मिक बलिदान व्यर्थ नहीं गये। इन बलिदानों ने धर्म सुधार आन्दोलन की नींव को मजबूत कर दिया।

(11) साहित्य के क्षेत्र में जागरण—पुनर्जागरण के प्रभाव से साहित्य के क्षेत्र में भी काफी विकास हुआ जिनमें से एक धार्मिक साहित्य भी था। इस समय बाईबिल का सभी भाषाओं में अनुवाद किया जा चुका था। अब कोई भी व्यक्ति बाईबिल को पढ़ सकता था। उसे पादरी की सहायता की आवश्यकता नहीं थी। अब धर्म की वास्तविक बातें जनसाधारण के समक्ष में आ गईं।

इस समय का प्रसिद्ध लेखक इरासमस था जो हॉलेण्ड में धर्म सुधार आन्दोलन का नेतृत्व कर रहा था। इरासमस का जन्म 1466 ई० में हॉलेण्ड के राटड्रम नामक नगर में हुआ था। इटली, जर्मनी पेरिस और आक्सफोर्ड में शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात पादरी बना। वह गिरजाघरों में अनेक परिवर्तन करना चाहता था और पादरियों के जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार को दूर करना चाहता था। उसने तीन पुस्तकें लिखी, जिन्होंने ईसाई जगत में हलचल मचा दी।

उसकी पहली पुस्तक 'पाकिट डगार' का प्रकाशन 1503 ई० में हुआ। इसमें उसने पादरी की आवश्यकता का वर्णन किया है और प्रत्येक व्यक्ति को ईश्वर के प्रति उत्तरदायी माना है। उसने दूसरी पुस्तक दी प्रेज आफ दी फाली (मूर्खता

---

1 प्लट और जीन ड्रमंड—विश्व का इतिहास—पृष्ठ–277

की प्रशंसा) लिखी। इसमें उसने पादरियों के आडम्बरपूर्ण जीवन पर अनेक व्यंग कसे हैं। इस पुस्तक में इरासमस को काफी प्रसिद्धि मिली। उसकी तीसरी पुस्तक "न्यू टेस्टामेंट" 1516 ई० में प्रकाशित हुई। यह धार्मिक साहित्य से सम्बन्धित थी। इस पुस्तक ने उसे अमर बना दिया। इन सभी पुस्तकों से चर्च की प्रतिष्ठा को गहरा धक्का पहुँचा। इसलिए यह कहा जाता है कि इरासमस ने क्रान्ति के अण्डे को जन्म दिया और लूथर ने उन्हें विकसित कर शरीर का रूप प्रदान किया। साहित्य के क्षेत्र में जाग्रति आने के कारण लूथर का काम आसान हो गया। इरासमस ने पोप को जितनी हानि पहुँचाई उतनी लूथर नहीं पहुँचा सका।

(12) शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति—मध्ययुग में मठों या गिरजाघरों में पादरियों के द्वारा शिक्षा दी जाती थी। उस समय की शिक्षा प्रणाली समाज के अनुकूल नहीं थी। पादरी चर्चों में लेटिन भाषा में शिक्षा देते थे। चर्चों में सिर्फ अमीरों और सामन्तों के बच्चे पढ़ते थे। कृषक, गुलाम और कारीगर आदि जनसाधारण के बच्चे शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकते थे। शिक्षा पर धर्माधिकारियों का पूर्ण रूप से नियन्त्रण था। धर्माधिकारी ही शिक्षक के विषय, पाठ्यक्रम और परीक्षा पद्धति निश्चित करता था। चर्चों में किसी विषय पर विद्यार्थी तर्क वितर्क नहीं कर सकता था। इसलिए उस समय जनता चर्च द्वारा दी जाने वाली शिक्षा के विरुद्ध थी।

पुनर्जागरण के प्रभाव से शिक्षा के क्षेत्र में निरन्तर विकास होता जा रहा था। इसलिए उस समय में मानव ने प्रचलित अन्धविश्वासों से मुक्ति प्राप्त करने का प्रयास किया। अब मानव समाज लेटिन भाषा के स्थान पर स्थानीय और प्रादेशिक भाषाओं को अधिक महत्व देने लगा। परिणामस्वरूप प्रादेशिक भाषाओं का बहुत अधिक विकास हुआ और प्रादेशिक भाषाओं में साहित्य की रचना की जाने लगी ताकि जन साधारण उसे आसानी के साथ पढ़ सकें।

1453 ई० में तुर्कों ने कुस्तुनतुनिया पर अधिकार कर लिया। जब यूनान में तुर्की राज्य की स्थापना होने लगी तब यूनानी विद्वान अपने प्राचीन साहित्य को लेकर यूरोप चले गये। इसके पश्चात यूनानी विद्वानों ने यूरोप में प्राचीन ज्ञान का प्रचार किया। फलस्वरूप यूरोपियन विश्वविद्यालयों में प्लेटो, अरस्तु, सोफिस्टा और एपीक्यूरिस आदि दार्शनिकों के विचारों का अध्ययन किया जाने लगा। पुराने रोमन साम्राज्य के विद्वानों के ग्रन्थों का अध्ययन किया जाने लगा। उस समय जिज्ञासा और पुराने ग्रन्थों के अध्ययन से मानव में एक नई जागृति हुई और मानववादी विचारधारा का विकास हुआ। यूनानी तथा रोमन विद्वानों के ग्रन्थों का प्रादेशिक भाषाओं में अनुवाद किया जाने लगा। इस समय विज्ञान के क्षेत्र में प्रगति हुई और व्यक्ति की स्वतन्त्रता का महत्व बढ़ने लगा। अब किसी बात को तर्क सिद्धान्त के आधार पर सत्य उतरने पर ही स्वीकार किया जाता था। अब प्राचीन विश्वास समाप्त होने लगे।

(13) चच की सम्पत्ति पर राजाओं की कुदृष्टि—कुछ विद्वानों का यह मानना है कि पोप और राजाओं के बीच सघर्ष का मुख्य कारण यह था कि राजा लोग चच की धनसम्पत्ति पर अधिकार करना चाहते थे। चच के पास बहुत अधिक भूमि थी, परन्तु उसे इस भूमि का आयकर नहीं चुकाना पडता था। कई शताब्दियों से राजाओं सामन्तों और जनता ने चच को काफी भूमि दान में दी थी। जिसके कारण चच के अधिकार में बहुत सी भूमि थी। इसके अलावा चच जनता से धार्मिक कर वसूल करता था। चच को अपने न्यायालयों से भी काफी आमदनी होती थी। कुल मिलाकर चच अपार धन सम्पत्ति का स्वामी था और इसके धर्माधिकारी भोग-विलास तथा ऐश्वय का जीवन व्यतीत कर रहे थे। दूसरी तरफ राजाओं को, प्रशासन का खच चलाने के लिए और सनिक शक्ति को मजबूत बनाने के लिए धन की जरूरत थी। इसलिए व चच की भूमि व आय पर कर लगाकर अपनी धन की आवश्यकताओं की पूर्ति करना चाहते थे। इसलिए दोनों म सघर्ष अवश्यम्भावी हो गया। शक्तिशाली राष्ट्रीय राजा यह चाहते थे कि चच की सम्पत्ति पर अधिकार कर उसे मध्यम वग, अमीरों और प्रभावशाली व्यक्तियों मे बाट दिया जाये, ताकि वे हमेशा चच के स्थान पर उनका समथन करेंगे।

(14) व्यापारियों का असन्तोष—पुनर्जागरण के कारण व्यापारिक वग का प्रादुर्भाव हुआ, जो चच से असन्तुष्ट था। व्यापारी दूर दूर देशो मे व्यापार करके धन सचित कर जब स्वदेश लौटता तो उसे अपनी आय का एक बहुत बडा भाग चच को भेंट स्वरूप देना पडता था। उस समय शासक वग व्यापारियों की मदद करने म असमथ था, क्योंकि उसके पास इतनी शक्ति नहीं थी कि वह पोप को चुनौती दे सके। इसलिए व्यापारी वग ने शासकों को आर्थिक सहायता देकर उन्हें शक्तिशाली बनाया।

ईसाई धम के अनुसार उस समय कोई भी व्यापारी अधिक लाभ नहीं कमा सकता था और न ही ब्याज पर रकम उधार दे सकता था क्योंकि ब्याज लेने वाले को ईसाई धम म हत्यारे की सजा दी गई थी। जसे जसे व्यापार का विकास होता गया वैसे-वैसे ब्याज पर कज लेना आवश्यक हो गया। इसलिए व्यापारी वग म चचों के प्रति भयकर असन्तोष व्याप्त था। व धम मे परिवतन चाहते थे, ताकि व स्वतन्त्रता-पूवक व्यापार कर सकें। इस प्रकार व्यापारिक वग के असन्तोष ने भी धम सुधार आन्दोलन म महत्वपूण योगदान दिया।

(15) चच द्वारा जनता का आर्थिक शोषण—पोप जनता से अनेक प्रकार के कर वसूल करके गरीबों का शोषण कर रहा था। इस प्रकार के शोषण के कारण जनता का धम मे विश्वास उठ गया। आर्थिक शोषण को समाप्त करने के लिए धम सुधार आन्दोलन आवश्यक हो गया। मेकनाल बनस ने लिखा है कि "दा आर्थिक

कारणा मे सबसे प्रमुख करा के विरुद्ध आवाज उठाना था।"[1]

पोप ने जनता पर अनेक कर लगा रखे थे, उनम सबसे अधिक भारी कर नागवार "पीटस पन्स' था। यह कर प्रत्यक घर को प्रति वप (लगभग एक डालर) पोप को देना पडता था। इसके अतिरिक्त 'टीथी' कर भी ईसाईयो को देना पडता था। जो प्रत्येक ईसाई अपनी आय का एक तिहाई भाग पोप को देता था। इसके अतिरिक्त अपराधा का दण्ड, सस्कारा की फीस और चच के न्यायालय में अपील आदि अनेक तरीको से गिरजाघर जनता की अधिकाश आमदनी को ले लेता था।

राम के न्यायालयो मे अपीला की सुनवाई और उनके निणया की खुले आम बिक्री होती थी। यह धम सुधार आन्दोलन का एक महत्वपूण कारण बन गया, क्योकि इस प्रकार की याय व्यवस्था मे गरीब लोग वास्तविक न्याय से वचित रह *जाते थे और धनी वग अपन धन से इच्छानुसार न्याय पान म सफल हो जाते थे।* मैकनैल बनस ने लिखा है कि 'आन्दोलन का मूल कारण वास्तव म आर्थिक था, नतिक नही।"[2]

(16) **पोप मोचन पत्र का विक्रय**—पोप मोचन पत्र या क्षमा पत्ता के इस विक्रय को 'इडलजेंस' भी कहते हैं। जब चच न धम और मोक्ष का व्यापार प्रारम्भ किया तो उसकी धन लालसा चरमोत्कप बिन्दु पर पहुच गई थी। यद्यपि लूथर से पहले कई ऐसे सुधारक हुये थे जिन्होने धम मे याप्त बुराईयो को दूर करने का प्रयास किया था। लूथर पहला व्यक्ति था, जिसने इस बात का प्रचार किया कि रोम की चच से सम्बन्ध त्याग दिये जाने चाहिये। उसने पोप मोचन पत्र अथवा क्षमा पत्रो की बिक्री के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। इण्डर्जेस का अथ होता है मुक्ति पत्र। यह एक ऐसा मुक्ति पत्र था जिसको प्रत्येक व्यक्ति पोप द्वारा अधिकृत व्यक्ति से धन देकर खरीद सकता था। जो व्यक्ति अपने अपराधो को क्षमा करवाना चाहता हो तो वह व्यक्ति पोप के ऐजेन्ट को धन देकर ऐसा मुक्ति पत्र खरीद लेता था। जिसम उसके सब पापो को क्षमा किये जाने का आश्वासन *था और उस व्यक्ति का स्वग मे स्थान सुरक्षित हो जाता था।*

1513 ई० में फ्लोरेंस क मेडिकी परिवार का सदस्य लियो दशम पाप बना। वह मानववादी विचारधारा, प्राचीन यूनानी साहित्य और पुनजागरण कालीन कला की प्रशसा करता था। *पोप लियो दशम ने ही रोम म स त पीटर* के गिरजाघर का निर्माण करवाया था। जो पुनर्जागरण कालीन कला का एक सुन्दर नमूना है। पोप ने गिरजाघरो के लिये धन एकत्रित करने के लिय क्षमा पत्रा को सस्ते दामो पर बेचने के आदेश दिये। उसने जनता से अपील की कि वह

1 मैकनैल बनस—वस्टन सिविलीजेशनस-पृष्ठ-401
2 मैकनल बनस—वस्टन सिविलीजेशनस-पृष्ठ-398

अधिक से अधिक मात्रा में इन पत्रों को खरीदें और भयानक से भयानक पाप से मुक्ति प्राप्त कर लें। आजकल जिस तरह एम० ए० और पी० एच० डी० की डिग्री लोग मढ़वा कर अपने बैठक के कमरे में टांग देते हैं। उसी प्रकार उस समय चोर और डाकुओं ने बड़ी बड़ी कीमत देकर इन क्षमा पत्रों को खरीदा और अपने बैठक के कमरे में मढ़वा कर टांग दिया।

पोप लियो दशम ने जर्मनी में इन पत्रों के विक्रय का उत्तरदायित्व आर्क बिशप अलबर्ट को सौंपा। अलबर्ट पर बहुत कर्जा था। इसलिये वह इन मुक्ति पत्रों की बिक्री से लाभ उठाना चाहता था। अलबर्ट ने पत्रों के विक्रय का काम पादरी टेटजेल को सौंपा। जो इन पत्रों को बेचने के लिये यूरोप के दौरे पर रवाना हुआ। टेटजेल ने अपने जोशीले भाषणों से इस बात का प्रचार किया कि जो व्यक्ति इन मुक्ति पत्रों को खरीद लेगा, उसे बिना पश्चाताप किये पाप से मुक्ति मिल जायगी। उसने तो यहां तक कहा कि यदि कोई व्यक्ति भविष्य में पाप करना चाहता है तो वह इस पत्र को अभी खरीद ले, ताकि उसे भी पापों से मुक्ति मिल जायगी और उसके लिये स्वर्ग में स्थान सुरक्षित हो जायेगा।

टेटजेल इस प्रकार इन पत्रों को बेचते हुए जब 1517 ई० में जर्मनी के एक नगर विटेनबर्ग में पहुंचा तो उसने वहां के पादरी मार्टिन लूथर को जो विश्वविद्यालय में प्राध्यापक था, इन पत्रों को बेचने के लिये कहा। तब मार्टिन लूथर ने इन पत्रों को बेचने से इन्कार कर दिया। टेटजेल ने लूथर की शिकायत आर्क बिशप अलबर्ट को की। अलबर्ट ने लूथर को चर्च से बहिष्कृत कर दिया। इस पर लूथर ने धर्म सुधार आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। पोप को लूथर का दमन करने में सफलता नहीं मिल सकी। एच० जी० वेल्स ने लिखा है कि—"पोप के राज्य के खिलाफ हस और वाईक्लिफ के समय से चली आ रही क्रांति को असाधारण और कौतूहल पूर्ण क्षमा पत्रों की बिक्री ने और भड़का दिया।"[1]

स्पष्ट है कि भ्रान्ति पहले से चल रही थी लेकिन इन क्षमा पत्रों की बिक्री ने उसमें अग्नि में घी का काम किया। सेवाइन ने लिखा है कि 'क्षमा पत्रों के बारे में बड़ी भ्रान्तियां थीं। इस प्रथा को टेटजेल ने अधिक धन प्राप्ति के लिये और भ्रष्ट बना दिया। लूथर ने इस प्रथा की भर्त्सना की और क्षमा पत्रों की प्रथा को चुनौती दी।"[2]

जब लूथर ने क्षमा पत्रों की बिक्री की आलोचना की और उसको चुनौती दी तो इस चुनौती के साथ ही सारे यूरोप में क्रांति भड़क उठी। उस समय राजा, व्यापारी, सामन्त और गरीब सभी ऐसे ही अवसर की तलाश में थे। वे चर्च के

1—वेल्स, एच० जी०—दी आउट लाईन आफ हिस्ट्री—पृ 787

2—सेवाइन—ए हिस्ट्री आफ वर्ल्ड सिविलाजेशन

बन्धना मे मुक्ति प्राप्त करना चाहते थे। क्षमा पत्रा की बिक्री और लूथर की चुनौती से उन्हे यह अवसर प्राप्त हो गया। लूथर ने धर्म-सुधार आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। कुछ ही समय मे उसके अनुयाईयो ने पोप से सम्बन्ध त्याग दिये। इसके पश्चात उन्होने एक नया मत प्रचलित किया। जो प्रोटेस्टेट कहलाया।

धर्म सुधार आन्दोलन का विकास—इस क्रान्ति के अनेक ऐसे दूत थे, जिन्होने क्रान्ति को अवश्यमभावी बना दिया। इनमे जान वाईक्लिफ, जान हस, आल्दिग, वाल्टेस सेवोनारिला इरासमस आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। जिन लोगो को पोप के विरुद्ध क्रान्ति करने मे सफलता प्राप्त हुई, इनमे लूथर काल्विन और ज्विगली आदि के नाम उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त इगलैण्ड का शासक हैनरी अष्टम, नार्वे का सम्राट फडरिक तथा हालण्ड और फिनलैण्ड के शासको ने भी इस धार्मिक क्रान्ति मे अपना महत्वपूर्ण सहयोग दिया।

(1) मार्टिन लूथर (1483–1546)—धर्म सुधार आन्दोलन का सफल नेता लूथर था, जिसका जन्म 10 नवम्बर 1483 ई० को जर्मनी के इजलबन नामक नगर मे एक साधारण परिवार मे हुआ। उसके पिता खान मे मजदूर थे वह चाहते थे कि उनका लडका बडा होकर वकील बने। लूथर का बचपन से ही धार्मिक शिक्षा दी गई। उसने अपने माता पिता की इच्छा के विरुद्ध इरेफ्ट के विश्वविद्यालय से 1505 ई० मे धर्म शास्त्र मे एम० ए० किया और 1508 ई० मे वह *व्रिटेन वर्ग विश्वविद्यालय मे प्राध्यापक बन गया।* वहा उसने आगस्टाईन की रचनाओ का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। आरम्भ मे वह रोमन कथोलिक चर्च का अनुयायी था। पोप के प्रति उसकी अगाढ श्रद्धा थी। जब कभी उस पोप व पादरियो के सासारिक जीवन के बारे मे कोई व्यक्ति कुछ कहता था तो उसे उस पर विश्वास नही होता था।

1511 ई० मे जब लूथर रोम की यात्रा पर गया। वहा वह पोप से मिला। लूथर पोप के विलासमय जीवन को देख कर आश्चर्य चकित रह गया। अब लूथर को रोमन चर्च से *घृणा हो गई एव उसने बाइबिल का गहन अध्ययन प्रारम्भ* किया और पवित्र संस्कारो को आवश्यक माना। इसके पश्चात 1517 ई० मे जब पोप लियो का दूत क्षमा पत्रो को बेचता हुआ व्रिटन वर्ग नगर मे आया तो लूथर ने इन पत्रो की आलोचना की और पोप के विरुद्ध धर्म सुधार आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया।

लूथर ने 1517 ई० मे व्रिटेन वर्ग विश्वविद्यालय के गिरजाघर के दरवाजे पर 95 सिद्धान्तो का एक वक्तव्य कील से लगा दिया। इस पत्र मे पोप तथा पादरियो के अधिकार तथा धर्म मे व्याप्त बुराईयो पर प्रकाश डाला गया था। लूथर ने अपने सिद्धान्तो को लटिन भाषा मे लिखा। जो आसानी से जन साधारण के समझ मे आ गये। उसने अपने सिद्धान्तो का बहुत प्रचार किया। कुछ ही समय

में जर्मनी में उसके अनुयाईयों की संख्या बढ़ने लगी। जर्मनी में लोगों ने लूथर को अपना धार्मिक नेता स्वीकार कर लिया। वहां के कृषकों ने भी उसका समर्थन किया। कुछ शासकों व सामन्तों ने लूथर के सिद्धान्तों का विरोध किया और कुछ शासकों व सामन्तों ने लूथर को अपना सहयोग दिया। जिसके फलस्वरूप लूथर के आन्दोलन को बल मिला।

1520 ई० में लूथर ने "एन ओपन लेटर टू दी क्रिश्चन स्टेट" (ईसाई जगत को एक खुला पत्र) लिखा। जिसमें उसने गिरजाघरों की अपार धन सम्पत्ति, जागीर और धर्माधिकारियों के सामाजिक जीवन की बुराईयों पर प्रकाश डाला। उसने जर्मनी के लोगों से पोप की सत्ता को उखाड़ फेंकने की अपील की। लूथर ने राजा से यह मांग की कि वह इन बुराईयों को रोकने के लिये कदम उठाये और अपने अधिकारों को प्रयोग करते हुए एक धर्म सभा का आयोजन करें। जिसमें धर्माधिकारियों को उनके कर्त्तव्यों का पालन करने का आदेश दें। परिणामस्वरूप जर्मन शासकों ने रोमन चर्च से सम्बन्ध त्याग दिया और लूथर के अनुयाई बन गये। उन्होंने चर्च की भूमि और धन सम्पत्ति पर भी अधिकार कर लिया, परन्तु कुछ जर्मन शासक पोप के प्रति निष्ठावान थे। इसलिये उन्होंने लूथरवाद को नहीं अपनाया। इस प्रकार जर्मनी में चर्च का विभाजन हो गया। कैथोलिक राज्यों ने रेटिसबोन में अपना एक संघ बनाया। इसी प्रकार लूथर के अनुयाईयों ने भी अपना एक संघ बनाया। ये दोनों संघ एक दूसरे पर दोषारोपण करने लगे। इससे जर्मनी में गृह-युद्ध का वातावरण बन गया। लूथर के आन्दोलन से किसान बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने सामन्तों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और अपनी छीनी हुई भूमि पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया।

लूथर ने अपनी दूसरी कृति "चर्च का बेबीलोनिया का कैदी" में संस्कारों का विरोध किया। उसने अपनी तीसरी कृति "ईसाई स्वतन्त्रता" में पोप को चुनौती दी। इसमें उसने यह लिखा कि वह ईसाई धर्म में व्याप्त भ्रम, भ्रष्टाचार और पाखण्ड के विरुद्ध आन्दोलन करता रहेगा।

टिटजल ने लूथर के कार्यों की पोप तथा आर्क बिशप अलबर्ट से शिकायत की। इस पर पोप ने एक धर्म सभा का आयोजन कर लूथर को उसमें भाग लेने के लिये बुलाया। सैक्सोनी का राजा लूथर का समर्थक था। उसने लूथर की रक्षा का भार अपने कन्धों पर लिया। लूथर पोप की सभा में उपस्थित हुआ और बिना किसी संशोधन के अपने सिद्धान्तों को सभा के सम्मुख पुनः दोहरा दिया। इस पर पोप ने क्रोधित होकर उसको चर्च से निष्कासित किया। उसने सम्पूर्ण ईसाई समाज को लूथर से सम्बन्ध विच्छेद का आदेश दिया। इस समय तक हजारों व्यक्ति और बहुत से शासक लूथर के अनुयाई बन गये थे। इसलिये लूथर ने पोप के आदेश पत्र को एक भरी सभा में जला दिया। धीरे धीरे लूथर के अनुयाईयों की संख्या बढ़ने लगी।

पोप न 1529 ई० की दूसरी धम सभा मे लूथर की आलोचना की और सम्राटो को उसका दमन करने का आन्देश दिया। जमन के सामन्ता ने पोप के इस निणय का प्रतिवाद (प्रोटेस्ट) किया। इसलिए लूथर के अनुयायी प्रोटेस्टेन्ट के नाम से प्रसिद्ध हुए। लूथर की मृत्यु के पश्चात भी उसक अनुयाई उसके सिद्धान्ता का प्रचार करते रहे। धीरे धीरे प्रोटेस्टैन्ट धम सम्पूण यूरोप म फल गया।

लूथरवाद के सिद्धान्त —लूथरवाद क प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित है —

(1) लूथर ने कहा कि व्यक्ति पाप करने क पश्चात पश्चाताप कर ल और इश्वर की भक्ति करे तो ईश्वर उसके पापा को क्षमा कर देता है। पोप की कृपा से या क्षमा याचना पत्रा से यक्ति को क्षमा नही मिल सक्ती। क्षमा सिफ ईश्वर भक्ति के द्वारा ही मिल सक्ती है।

(2) लूथर ने कहा कि पोप सर्वोच्च शक्ति नही है। मध्य युग म जन साधारण की *अज्ञानता का लाभ उठाकर पोप न धीरे धीरे अपनी शक्ति मे वद्धि* कर ली है।

(3) लूथर के अनुसार रोमन प्रभुत्व का अन्त करके राष्ट्रीय चच की शक्ति का विस्तार किया जाना चाहिय, क्योकि पोप की अहकारी भावना ने धम को पगु बना दिया है। लूथर का मानना था कि सभी यक्ति धम ग्रन्थ का अध्ययन कर सकते हैं। धार्मिक ग्रन्थ किसी की भी बपौती नही है।

(4) लूथर के अनुसार पोप की कृपा से मनुष्य मुक्ति प्राप्त नही कर सकता। मुक्ति केवल ईश्वर म श्रद्धा और भक्ति से ही प्राप्त हो सकती है।

(5) लूथर क अनुसार यदि कोई भी धर्माधिकारी अपराध करता है तो उस साधारण लोगो की भाति सजा मिलनी चाहिये, क्योकि कानून क समक्ष सभी व्यक्ति एक समान है।

(6) चच म व्यापक भ्रष्टाचार दूर करन के लिये पादरी लोगो को विवाह करके सभ्य नागरिका की भाति सासारिक जीवन यतीत करना चाहिये।

(7) लूथर अरस्तु को पाखण्डी और विधर्मी मानता था। इसलिय उसने सुझाव दिया कि विश्वविद्यालय के पाठयक्रमो म परिवतन किया जाना चाहिये। उसके अनुसार पाठयक्रम धम पर आधारित होना चाहिय।

(8) ईसाई धम के सात सस्कारा मे से चार—अभिषेक, विवाह, अनुमोदन और अवलेपन को समाप्त कर दिया जाना चाहिय, कवल तीन सस्कार नाम करण प्रायश्चित और यूरकेस्ट को लागू रखना चाहिये।

(9) पादरियो के लिये अलग से अदालतें नहीं होनी चाहिये तथा उन्हे याय करन का अधिकार भी नही दिया जाना चाहिये।

(10) लूथर के अनुसार पादरियो को सिफ धम उपदेश देना चाहिय।

लूथर क इन सिद्धान्ता के कारण जमनी म गह युद्ध प्रारम्भ हो गया।

प्रोटेस्टेंट और रोमन कथोलिक चच के सदस्या के बीच भयकर सघष प्रारम्भ हुआ जिसकी समाप्ति 1555 ई० म आग्सबुग की धामिक सधि से हुई। इस सधि की प्रमुख शर्तें निम्नलिखित थी —

(1) पहली शत के अनुसार यह निश्चित किया गया कि साम्राज्य परिषद मे कथोलिको और प्रोटेस्टेंटो को एक समान प्रतिनिधित्व दिया जायगा।

(2) पासा की सधि से पूव जितनी सम्पत्ति चच के अधिकार म थी, उस पर चच का अधिकार रहगा, लेकिन अब राज्य चच को किसी प्रकार की सम्पत्ति नहीं देगा।

(3) "जो राजा का धम होगा, वही उसकी जनता का धम होगा", इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया गया।

प्रोटेस्टेंट धम का यूरोप पर प्रभाव —जब लूथर ने प्रत्यक्ष रूप से पोप का विरोध किया तो उससे अन्य देशों क धम सुधारकों के साहस म वद्धि हुई। प्रोटेस्टेंट मत का बडी तेजी के साथ यूरोपियन देशो म प्रचार हुआ। विभिन्न देशा के शासको ने अपन हितो को देखते हुये इसका समथन किया अथवा विरोध किया। स्वीट्जरलण्ड फ्रास इगलण्ड, नार्वे, स्वीडन, स्काटलण्ड, पोलैण्ड, हगरी, नीदर लैण्ड और इटली आदि देशो म धम सुधार आन्दोलन की प्रगति के सक्षिप्त इतिहास का वणन निम्न प्रकार है —

(1) स्वीटजरलण्ड पर प्रभाव —(1) ज्विगली (1484–1531 ई०) रोमन कथालिक धम का विरोध जमनी के अतिरिक्त यूरोप के अन्य देशो म भी हुआ था। ज्विगली ने स्वीटजरलैण्ड म कथोलिक धम का विरोध किया। यह भी लूथर का समकालीन था और एक किसान परिवार में पदा हुआ था, परन्तु लूथर के विचारा से यह बहुत प्रभावित था। यद्यपि य दोनो समकालीन धम सुधारक थे, परन्तु उनके विचारा म भारी अतर था। ज्विगली उग्र विचारा का था, जबकि मार्टिन अनुदार विचारा का।

1529 ई० म उसने 67 लेख प्रकाशित किये। जिनम पोप की बुराइयो पर प्रकाश डाला और चच म सामूहिक पूजा, मूर्तिपूजा और चित्र रखने की प्रथा का घोर विरोध किया। इतना ही नहीं ज्विगली ने कैण्टम म बिशप की सत्ता को समाप्त कर दिया और क्षमा पत्र के विक्रय वाले लोगो को उसने अपने राज्य से बाहर निकाल दिया। उसने लटिन भाषा म बाईबिल के अध्ययन पर रोक लगा दी। पादरियो को विवाह करने का अधिकार दिया गया। उसन अपने देशवासियो से अपील की कि कोई भी व्यक्ति पोप की सेना मे भर्ती नहीं होगा।

ज्विगली के प्रतिपादित धम सुधार को केवल पूर्वी स्विटजरलण्ड म ही सफलता मिली, परन्तु इस आन्दोलन से कथोलिक चच के अनुयायी भयकर नाराज हुये। परिणामस्वरूप 1531 ई० मे कथोलिक कैण्टो की लीग और प्रोटेस्टैन्टो **की**

लीग के बीच केपेल नामक स्थान पर युद्ध हुआ, जिसमें कथोलिकों ने प्रोटेस्टण्टों को बुरी तरह पराजित किया। ज्विगली इस युद्ध में लड़ता हुआ 11 अक्टूबर, 1531 ई० को मृत्यु को प्राप्त हुआ। उस वीर सुधारक के अन्तिम शब्द निम्न थे—'वे शरीर को मार सकते हैं आत्मा को नहीं।"

(ii) कालविन (1509–1564) —ज्विगली के अधूरे कार्य को फ्रांसीसी जॉन कालविन ने पूरा किया। वह 11 जुलाई 1509 ई० में पिकार्डी के नोयोन नामक नगर में पैदा हुआ था। यह फ्रांस का रहने वाला था परन्तु प्रोटेस्टेंट मत का समर्थक होने के कारण उसे फ्रांस से निर्वासित कर दिया गया। कालविन ने स्विटजरलैण्ड में शरण ली और अपने विचारों का प्रसार करने लगा। स्वीटजरलैण्ड को कुछ समय पहले ही रोमन साम्राज्य से स्वतन्त्रता प्राप्त हुई थी और ज्विगली के धर्म सुधार आन्दोलन के कारण यहां पर युद्ध भी हो चुका था। इसके पश्चात यह निश्चित हुआ था कि 13 कैन्टनों के लोग अपनी इच्छानुसार धर्म का पालन करने के लिये स्वतन्त्र होंगे। जिनेवा का भाग भी प्रोटेस्टण्ट धर्म का अनुयायी था। इसलिये जान ने यहां पर शरण ली और अपने विचारों का प्रसार करने लगा।

कालविन का मानना था कि बाईबिल का ठीक अर्थ लगाया जाना चाहिये। मनुष्य को चाहिये कि आचार विचार का कठोरता से पालन करें। त्यौहार नहीं मनाऐ और थियेटर बन्द कर दिये जाने चाहिये। धीरे धीरे वह जिनेवा का सम्राट बन गया। उसके शासन काल में स्त्रियों को घुंघराले बाल बनाने या आकर्षक पोशाक पहनने की मनाही थी। ताश खेलना शराब पीना और नाचना उसने गैर कानूनी घोषित कर दिया था।'[1]

उसका यह मानना था कि प्रत्येक मनुष्य को प्रभु ईसा की भांति सादा और सरल जीवन बिताना चाहिये। कोई भी व्यक्ति ईश्वर में श्रृद्धा रखकर मुक्ति प्राप्त कर सकता है। कालविन ने चर्चों की व्यवस्था के लिये वृद्ध पादरियों को नियुक्त किया, जिन्हें "प्रोसीबिटर" कहा जाता था। उसी आधार पर कालविन के अनुयायी प्रोसीबिटेरियन' के नाम से प्रसिद्ध हुये। अन्य देशों में उसके अनुयाई "प्यूरिटियन' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

कालविन ने स्विटजरलैण्ड, जर्मनी पोलण्ड और स्काटलण्ड आदि देशों में अपने मत का प्रचार किया। उसने धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन करने के पश्चात 'इन्सीटयूटिया' नामक पुस्तक लिखी जिसकी गिनती उच्च कोटि के धार्मिक ग्रन्थों में की जाती है। फ्रांस में उसके अनुयायी हुनूजनों के नाम से प्रसिद्ध हुये। 1598 ई० में फ्रांसीसी सम्राट हनरी चतुर्थ ने हुनूजनों को एक आदेश के द्वारा धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान कर दी।

1—प्लेट और जीन ड्रमड—विश्व का इतिहास

(2) फ्रास पर प्रभाव —कालविन के विचारा का पहले तो फ्रास मे भयकर विरोध हुआ, परन्तु कुछ समय पश्चात फ्राम म उसके समयकों की सख्या बढने लगी। उसके अनुयाई हनूजनो के नाम से प्रसिद्ध हुए। इसके समथको पर फ्रासीसी राजा ने भयकर अत्याचार किये।

(3) स्काटलण्ड पर प्रभाव —स्कॉटलैड पर पुनजागरण का प्रभाव बहुत कम पडा था। दूसरे देशा म धम सुधार आन्दोलन प्रारम्भ हो गये थ, परन्तु यहा के निवासियो पर रोमन कैथोलिक धम का बहुत अधिक प्रभाव था। सवप्रथम इगलण्ड के विद्वान वाईक्लिफ ने यहा पर अपने विचारा का प्रसार किया। यहा की जनता उसके विचारो से काफी प्रभावित हुई। अन्य देशा की भांति स्कॉटलैंड म भी धम सुधारको को जिन्दा जला दिया जाता था। 1520 ई० म यहा लूथर की विचारधारा का प्रसार हुआ। 1528 ई० मे यहा पैट्रिक हैमिलटन को इसलिए जीवित जलवा दिया गया, क्योकि उसने कैथोलिक धम में व्याप्त बुराईयो की आलोचना की थी। 1543 ई० म जाज विशहट ने यहा पर नवीन धम के सिद्धान्ता का प्रचार किया। फलस्वरूप इसे भी धम द्रोही घोषित कर जिन्दा जला दिया गया।

जान-नॉक्स—इस प्रकार स्कॉटलैण्ड मे धम सुधार आन्दोलन शनै शनै चल रहा था। इस आन्दोलन को प्रबल रूप देने का श्रेय जॉन नाक्स को दिया जाता है। नाक्स का जन्म 1515 ई० म हुआ था। आरम्भ मे वह जाज विशाट के साथ रहा, परन्तु 1546 ई० तक उसे अपनी प्रतिभा विकसित करन का अवसर नही मिला। इसलिये 1549 म वह इगलण्ड और 1552 मे जिनेवा की यात्रा पर गया और जिनेवा में रहना शुरु कर दिया। इस समय नॉक्स का परिचय कालविन से हुआ।

1555-56 ई० म वह अपने देश स्कॉटलण्ड लौटा और वहा उसने प्रोटेस्टैन्ट धम के सिद्धान्तो का प्रचार करना प्रारम्भ किया, परन्तु अपने जीवन को सकट म देखकर वह पुन जिनवा लौट आया। 1559 ई० म स्कॉटलैन्ड वासियो के निमन्त्रण पर नाक्स पुन वहा आया और वहा प्रोटेस्टैण्ट धम के सिद्धान्तो का प्रचार करना शुरु किया। स्कॉटलैण्ड मे जॉन-नाक्स के अनुयाई प्रसिबिटेरियन के नाम से प्रसिद्ध हुये।

(4) नार्वे पर प्रभाव —नार्वे म धम सुधार आन्दोलन वहा के राजा द्वारा प्रारम्भ किया गया। नार्वे का शासक फ्रेडरिक प्रथम लूथर के विचारो से बहुत प्रभावित हुआ। उसने प्रोटेस्टैंट धम को स्वीकार कर लिया। इसके पश्चात् उसने धम सुधार आन्दोलन को प्रोत्साहन दिया। उसने चच की सम्पत्ति के एक बहुत बडे भाग पर कब्जा कर लिया और उसे जनहित कार्यो म खच कर दिया। 1533 ई० में फ्रेडरिक प्रथम की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के पश्चात नार्वे में

गह युद्ध प्रारम्भ हो गया। 1534 ई० म इस गह युद्ध म फ्रेडरिक प्रथम क ज्यष्ठ पुत्र क्रिश्चियन को सफलता मिली और वह नार्वे का राजा बना। वह भी प्रोटेस्टन्ट धम का समथक था। इसलिए उसके शासन काल म प्रोटेस्टन्ट धम का बहुत अधिक प्रचार हुआ।

(5) **स्वीडन पर प्रभाव** —1521 ई० म गुस्टावस स्वीडन का शासक बना। उस समय राज्य की आर्थिक दशा बहुत शोचनीय थी। उसने राज्य कोष म वद्धि करने के लिए चच के धर्माधिकारियो स धन वसूल करने का निश्चय किया। इसलिये उसने खुले रूप म धर्माधिकारियो की बुराईयो की आलोचना करना प्रारम्भ कर दिया।

1521 ई० म उसने लूथर की विचारधारा स प्रभावित होकर प्रोटेस्टन्ट धम को स्वीकार कर लिया तथा चच की सम्पत्ति पर कब्जा करने के लिये कथोलिक धम की कटु आलोचना की। उसके शासन काल म प्रोटेस्टन्ट धम का बडी तेजी स प्रचार हुआ। उसने बाईबिल का स्वीडन की भाषा म अनुवाद करवाया और उसकी प्रतियां जन साधारण म बटवाइ। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रोटेस्टन्ट धम का प्रचार जमनी क बाद नार्वे और स्वीडन म हुआ।

(6) **पोलण्ड तथा हगरी पर प्रभाव** – कालविन के धार्मिक विचारो का प्रसार पोलण्ड मे भी हुआ। जिससे प्रभावित होकर यहा के सामन्त और मध्यम वग क मनुष्य प्रोटेस्टन्ट धम के अनुयाई बन गये। हगरी के प्रत्येक वग के मनुष्यो ने भी इस नये धम को स्वीकार कर लिया। 16 वी शताब्दी के अन्त तक वहा के अधिकाश व्यक्ति प्रोटेस्टन्ट धम के अनुयाई बन चुके थे। कथोलिक धम को मानने वाले व्यक्तियो की संख्या बहुत कम थी।

(7) **नीदरलण्ड पर प्रभाव** —नीदरलण्ड के धनी एव शिक्षित मनुष्यो न धम सुधार आन्दोलन का समथन किया। यद्यपि फ्रास के राजा ने अपन अधीन प्रदेशो मे इस आन्दोलन को कुचलने का प्रयास किया। फिर भी नीदरलण्ड म कालविन के समथको की संख्या मे निरन्तर वद्धि होती रही।

(8) **इटली पर प्रभाव** -इटली का धम सुधारक सेवीनारोला जो पहले पादरी था और पोप एलेक्जण्डर चतुथ का परम भक्त था। किन्तु आगे चल कर 1494 ई० मे उसने पोप की बुराईयो की आलोचना करना प्रारम्भ कर दिया। पोप न उसे जिन्दा जलवा देने का प्रयास किया, किन्तु वर्षा आ जाने से वह बच गया। अन्त मे पोप ने उसे फासी पर लटकवा दिया। जसे जसे पोप प्रोटेस्टण्ट धम का दमन करता जा रहा था वसे वसे यह धम तजी के साथ यूरोप के अन्य देशो स फलता जा रहा था। ऐसी स्थिति म पोप ने कथोलिक धम म सुधार करने के लिये कुछ प्रयास किय। जिसस प्रति धम सुधार आन्दोलन प्रारम्भ हुआ।

(9) इंगलण्ड पर प्रभाव — मध्य काल से ही इंगलैण्ड में रोमन कैथोलिक चर्च का विरोध प्रारम्भ हो गया था। उस समय "पीयर्स प्लोमैन" और "द कैन्टरबरी टेल्स" नामक दो पुस्तकें प्रकाशित हुईं, जिनमें पादरियों के वैभव और विलासिता के बारे में वर्णन किया गया था। इन पुस्तकों का समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा। तीसरी पुस्तक में धर्माधिकारियों का धन लालसा के बारे में वर्णन किया गया था। जब जनता को यह पता लगा कि इंगलण्ड की एक तिहाई भूमि पर चर्च का अधिकार है तो वह आश्चर्य करने लगी। वैसे चर्च का विरोध तो काफी पहले शुरू हो गया था। 1351 ई० में इंगलण्ड के सम्राट हेनरी अष्टम पोप के हस्तक्षेप को समाप्त करना चाहता था, इसलिए उसने एक आदेश जारी किया जिसके अनुसार इंगलण्ड में पोप द्वारा पादरियों की नियुक्ति पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। हेनरी अष्टम ने एक मामूली विवाह के तलाक के लिए पोप से अपने सम्बन्ध तोड़ लिए। 1534 ई० में उसने इंगलण्ड में पोप की सत्ता को उखाड़ फेंका और स्वयं को धर्म का सर्वोच्च अधिकारी घोषित किया। उसने इंगलण्ड में एंग्लिकन चर्च की स्थापना की।

उस समय सभी स्थानों पर धर्म सुधारकों के द्वारा पोप विरोधी आन्दोलन चलाया जा रहा था। इससे हेनरी अष्टम बहुत प्रभावित हुआ। इन घटनाओं ने उसे पोप से सम्बन्ध तोड़ने के लिए प्रोत्साहित किया। हेनरी का पोप से सम्बन्ध तोड़ने का मुख्य कारण यह था कि पोप अपनी सातवीं रानी कैथरीन को तलाक देकर आठवां विवाह करना चाहता था। पोप ने हेनरी को ऐसा करने की इजाजत नहीं दी, क्योंकि कैथरीन स्पेन के कैथोलिक राजा फर्डीनेण्ड की पुत्री थी और पोप उसे नाराज नहीं करना चाहता था। इसलिए हेनरी ने इंगलण्ड के एक न्यायालय में कैथरीन को तलाक दे दिया और फिर एक 16 वर्ष की लड़की कृष्णांगी सुन्दरी एनबोलीन से शादी कर ली। कैथरीन के सभी पुत्रों की मृत्यु हो जाने से हेनरी ने उत्तराधिकार की समस्या को हल करने के लिए कृष्णांगी से आठवां विवाह किया था। पोप ने कैथरीन के तलाक और हेनरी से कृष्णांगी से हुए विवाह को अवैध घोषित कर दिया।

इस पर हेनरी ने पोप के समर्थक पादरियों का वध करवा दिया और उनकी सम्पत्ति अपने समर्थक नये सामन्तों में बाँट दी। उसने चर्च की अधिकांश भूमि पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार इंगलैण्ड में प्रोटेस्टेन्ट धर्म सुधार आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। एलिम और जौन ने लिखा है कि—"इस प्रकार इंगलण्ड के चर्च ने पोप की शक्ति का जुआ उतार फेंका।"[1]

इस क्रांति के कारण इंगलण्ड के चर्चों में काम करने वाले हजारों पादरी

1—एलिम और जौन, —संसार का इतिहास—पृ 267

और किसान बेरोजगार हो गये, इतना ही नहीं चर्च में जो स्कूल चल रहे थे, वे बन्द हो गये।

हेनरी अष्टम की मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र एडवर्ड षष्टम 1547 ई० में अल्पायु में इंगलैण्ड का सम्राट बना। उसके संरक्षक सोमरसेट और नार्थम्बरलैंड दोनों ही प्रोटेस्टेण्ट धर्म के अनुयाई थे। इसलिये इस समय प्रोटेस्टेण्ट धर्म का बहुत अधिक प्रचार हुआ। क्रेनमर ने धर्म में अनेक परिवर्तन किये। इस समय बाईबिल का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया गया। गिरजाघरों में लेटिन भाषा के स्थान पर अंग्रेजी भाषा में प्रार्थना की जाने लगी। उस समय 42 धाराओं वाला एक कानून पास किया गया। गिरजाघरों से मूर्तियां हटवा दी गई और दीवारों पर चित्रित चित्रों को मिटा दिया गया। मठों व गिरजाघरों की सम्पत्ति पर कब्जा कर लिया गया। इस प्रकार एडवर्ड षष्टम के समय में प्रोटेस्टैन्ट धर्म का काफी प्रचार किया गया।

एडवर्ड षष्टम की मृत्यु के पश्चात मेरी ट्यूडर 36 वर्ष की आयु में इंगलैंड की शासिका बनी। यह कथोरीन की पुत्री थी और कथोलिक धर्म की समर्थक थी। उसने संसद को पोप को मान्यता देने के लिये बाध्य किया। उसने कथोलिक धर्म को राज्य धर्म घोषित किया और पोप की आज्ञा नहीं मानने वाले व्यक्तियों को कठोर सजायें दी। मेरी ने प्रोटेस्टेन्ट धर्म के नेताओं क्रेनमर, लटियर, टिंडले और हुपर आदि को जिन्दा अग्निदेव को चढ़ा दिया। उसने इस प्रकार की दमन नीति का पालन करते हुये प्रोटेस्टेन्ट धर्म को समाप्त करने का प्रयास किया, लेकिन अधिकांश अंग्रेज रोमन कथोलिक धर्म के विरोधी थे। मेरी इस प्रकार के निर्मम अत्याचारों के कारण 'खूनी मेरी' के नाम से प्रसिद्ध हो गई। 1538 ई० में मेरी को बन्दी बना कर प्राण दण्ड दिया गया।

मेरी ट्यूडर की मृत्यु के पश्चात हेनरी अष्टम की लड़की एलिजाबेथ प्रथम इंगलैंड के सिंहासन पर बैठी। वह प्रोटेस्टेन्ट धर्म की समर्थक थी। इसलिये उसने इस नवीन धर्म को राजकीय संरक्षण प्रदान किया। इस प्रकार इंगलैण्ड के लोगों को पोप के प्रभाव से हमेशा के लिये मुक्ति मिल गई।

प्रतिवादी धर्म सुधार—आरम्भ में तो पोप तथा पादरियों ने निर्ममता पूर्वक धर्म सुधार आन्दोलन को कुचलने का प्रयास किया। जब तीस वर्ष का युद्ध भी सुधार आन्दोलन को दबाने में असफल रहा, तो पोप का सिंहासन डोलने लगा। उस समय की परिस्थितियों ने उसे बाध्य किया कि दूसरों को धर्म द्रोही सिद्ध करने के बजाय स्वयं में और कथोलिक धर्म में कुछ सुधार करें। यद्यपि उस समय फ्रांस और स्पेन के शासक पोप के समर्थक थे परन्तु कैथोलिक और प्रजा यह चाहती थी कि धर्म को बचाने के लिये उसमें आन्तरिक सुधार करना आवश्यक है। इसलिये 16 वी शताब्दी में पोप और रोमन कथोलिक चर्च ने प्रोटेस्टेन्ट धर्म के

बढते हुए प्रभाव को रोकने के लिए स्वय मे और क्योलिक धम म जो सुधार किये, उसे इतिहास म प्रति धम सुधार आन्दोलन कहा जाता है।

उस समय रोमन कैथोलिक धम के समथको न कहा कि यदि धम में सुधार नही किय गय तो कुछ ही समय म धम समाप्त हो जायगा। इसलिय कैथोलिक धम म व्याप्त अनतिक, अराजकता और अधार्मिकता को दूर करन क लिय माईकल ए जूलो, कविन्नी विक्टोरिया कोन्लोआ और थामस कजेटन आदि विद्वाना न अपनी कलाकृतियो म धम मे महत्वपूण सुधार किया।

प्रोटेस्टन्ट आन्दोलन के बाद भी यूराप की अधिकाश जनता का कैथोलिक धम म विश्वास था। उस समय सभी लागा का यह मानना था कि प्रोटस्टैन्ट पोप विरोधी आन्दोलन था न कि क्यालिक धम विरोधी आन्दोलन। यदि पोप अपने जीवन म ईसामसीह की शिक्षाओ का पालन करता रहता तो प्रोटेस्टन्टा को धम विरोधी आन्दोलन करने का मौका ही नही मिलता। उसका अनुसरण करत हुए अन्य पादरिया ने भी अनतिक जीवन बिताना शुरू कर दिया था। इसलिय पोप क्लीमेन्ट न कैथोलिक धम म सुधार करने के लिए 1530 ई० म चार तरीके अपनाय —

(1) पोप के व्यक्तिगत जीवन म सुधार —पोप की विलासिता, सासारिक जीवन और तानाशाही के विरुद्ध धम सुधार आ दोलन प्रारम्भ हुआ। यदि पोप सादा जीवन यतीत कर पुन ईसा क बताये हुय माग पर चलना शुरू कर देता, तो यह आ दोलन स्वत ही समाप्त हो जाता। इसलिय पोप क्लीमेन्ट ने 1530 ई० म शाही ठाट बाट को त्याग कर सादा और पवित्र जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ किया। उसक बाद अनक पापो न भी उसका अनुसरण किया। इन सुधारक पोपा ने विभिन्न सम्मेलना म पादरिया और बिशपा को भी सादगीपूण जीवन यतीत करन का आदश दिया।

पोप ने अब अपने आध्यात्मिक कत्तव्या का पालन करना प्रारम्भ कर दिया। पुनजागरण काल के पोपा न साहित्य एव कला का विकास करने के लिय अनक कलाकारों और साहित्यकारो को अपने दरबार म आश्रय दिया। इस प्रकार *फिर म वही प्रगतिशील तरीका अपनाया गया। पाप ने अपने व्यक्तिगत जीवन और* दृष्टिकोण म परिवतन कर धम सुधार आ दोलन की नींव का ठोम बना दिया।

(2) ट्रेन्ट के धार्मिक अधिवेशन—रोमन क्यालिक चच का पुनगठन करने के लिये पोप ने 1545 ई० म इटली के नगर ट्रेन्ट म एक धम सम्मेलन का आयोजन किया। इस ट्रेन्ट नगर म अगले 18 वर्षों म 25 धार्मिक सम्मेलन बुलाये गय। प्रत्येक अधिवेशन या सम्मेलन म 200 मे अधिक कयोलिक पादरियो को आमंत्रित किया जाता था। इन अधिवेशना म चच क पुनगठन, अनुशासन और

व्यवस्था मे सुधार करने के लिये अनेक नियमो का निर्माण किया गया। मध्यकालीन चर्च के उपदेशो की पुष्टि की गई कि —

(i) पोप चर्च का सर्वोच्च अधिकारी है और सभी सिद्धान्तो पर उसका निर्णय अंतिम माना जायेगा।

(ii) चर्च ही धर्म ग्रंथ का अर्थ लगा सकता है।

(iii) बाईबल का अनुवाद लटिन भाषा मे किया जायेगा और इस नई बाईबल का नाम वल्गेट संस्करण रखा जायगा।

(iv) भविष्य में चर्च के पदों को नही बेचा जायगा।

(v) बिशप अपने क्षेत्र मे अपने कर्त्तव्यो का पालन करते रहेगे।

(vi) पादरियो को स्कूलो मे धार्मिक शिक्षा दी जायेगी।

(vii) धर्म के उपदेश सरल भाषा मे दिये जायेंगे।

(viii) कुछ पुस्तको को कथोलिको को पढने के लिये मना कर दिया गया।

इस प्रकार कथोलिक चर्च को संगठित और शक्तिशाली बनाने का प्रयास किया गया।

(3) जेसुइट संस्था—जिन लोगो ने प्रोटेस्टेन्ट धर्म को स्वीकार कर लिया था उन लोगो को पवित्र कर पुन कथोलिक बनाने के लिए एक संस्था स्थापित की गई जिसे जेसुइट संस्था के नाम से पुकारा जाता है। इस संस्था की स्थापना स्पेन मे स्पेन निवासी इग्नेशियस लायेला के द्वारा 1534 ई० मे की गई थी। लायेला एक सैनिक था। उसने 1491 ई० से 1556 ई० तक एक सैनिक के रूप मे काय किया। एक युद्ध मे घायल हो जाने के कारण उसे अस्पताल मे भर्ती करवाया गया। जहा उसने ईसा मसीह और अन्य धार्मिक महात्माओ की जीवनिया पढी। इन धार्मिक पुस्तको से प्रभावित होकर उसने कथोलिक धर्म की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझा। इस समय उसने पोप की स्वीकृति से कथोलिक धर्म की रक्षा करने के लिये जेसुइट नामक संस्था की स्थापना की। इसका गठन सैनिक अनुशासन पर आधारित था। इस संस्था का काम ईसा के आदेशो का पालन करवाना था। इसके अनुयायी जेसुइट के नाम से प्रसिद्ध हुए।

जेसुइट संस्था के सदस्यो को लम्बा प्रशिक्षण दिया जाता था। यह प्रशिक्षण बहुत कठोर होता था। इस संस्था के नेता को जनरल (सेनापति) के नाम से पुकारा जाता था, जो पोप के प्रति वफादारी से कार्य करने की शपथ ग्रहण करता था। इस संस्था का प्रत्येक सदस्य पोप के आदेशो का पालन करने की तथा ब्रह्मचर्य और अनुशासन मे रहने की शपथ लेता था। किसी भी सदस्य को पादरी के पद पर नियुक्ति देने से पहले उसे दस साल का प्रशिक्षण दिया जाता था। इस अवधि मे उन्हे धर्म और मानवतावादी विषयो की शिक्षा दी जाती थी। उन्हें धर्म का प्रचार करने के लिए विश्व के किसी भी कोने मे भेजा जा सकता था।

इस संस्था के सदस्यों का मुख्य काम स्कूलों में छोटे बच्चों के दिल में कैथोलिक धर्म के प्रति श्रद्धा पैदा करना था। जो लोग प्रोटेस्टेंट धर्म स्वीकार कर चुके थे, उन्हें वापस पवित्र कर कैथोलिक बनाना था। इसके सदस्यों को दूर-दूर के देशों में कैथोलिक धर्म का प्रचार करने के लिये भेजा जाता था। वहां पर ये सदस्य गैर ईसाई लोगों को रोमन कैथोलिक धर्म स्वीकार करने के लिये प्रेरित करते थे।

इस संस्था के सदस्य बड़े उत्साह के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान घूम कर धर्म का प्रचार करते रहे और कैथोलिक धर्म की रक्षा करने में सफल हुए। इन सदस्यों के प्रयासों के परिणामस्वरूप बेल्जियम, इटली, स्पेन, फ्रांस और पोलैण्ड के लोग कैथोलिक धर्म के अनुयाई बने रहे। इन्होंने भारत, चीन, अफ्रीका और अमेरिका आदि देशों में भी बड़े उत्साह के साथ कैथोलिक धर्म का प्रचार किया। इंगलैण्ड की शासिका एलिजाबेथ प्रथम जेसुइट संस्था के सदस्यों से परेशान रही क्योंकि इन्हीं के प्रयासों से प्रोटेस्टेन्ट धर्म की प्रगति में बाधा उपस्थित हो गई थी। इस संस्था के बहादुर सदस्य जेक्यूअस मार्क्वेट ने मिसीसिपी घाटी के उत्तरी भागों की खोज की और वहां अनेक अमरिकन आदिवासियों को कैथोलिक धर्म ग्रहण कराया। इसी प्रकार एक अन्य सदस्य फ्रांसिस जेवियर ने जापान पहुंच कर कैथोलिक धर्म का उत्साह के साथ प्रचार किया। यह संस्था चर्च के गठन के लिये बहुत लाभदायक सिद्ध हुई।

(4) धार्मिक अदालतें—मध्यकालीन समय में रोमन कैथोलिक चर्च के अपने न्यायालय थे। जिसमें राजाओं की अदालतों में हुए फैसलों के विरुद्ध अपील की जाती थी। जिस पर धर्माधिकारी अपना अन्तिम निर्णय सुनाते थे और धर्म द्रोहियों को सजा देते थे। धर्म सुधार आन्दोलन के कारण चर्च ने अपने न्यायालयों का फिर से गठन किया जिसे 'इंक्विजीशन' के नाम से जाना जाता है।

जेसुइट संस्था की स्थापना के दो वर्ष पश्चात् पोप पाल तृतीय ने इंक्विजेशन अदालत के छः मुख्य न्यायाधीशों (इंक्विजीशन जनरल) की नियुक्ति की। इस अदालत का मुख्य कार्य धर्म पाखंडियों को कठोर से कठोर दण्ड देना था। इसके अतिरिक्त संदेहजनक व्यक्तियों को गिरफ्तार करना उन्हें शारीरिक यातनाएं देना, धर्म विरोधी पुस्तकों को जलवा देना इसके मुख्य कार्य थे। इस अदालत ने धर्म विरोधियों का दमन बड़ी निर्ममता पूर्वक किया। स्पेन, हालण्ड, बेल्जियम और इटली आदि देशों में हजारों व्यक्तियों को धर्म द्रोही घोषित कर जिन्दा अग्नि को भेंट कर दिया गया और लाखों व्यक्तियों को शारीरिक दण्ड दिये गये।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रति धर्म सुधार आन्दोलन कैथोलिक धर्म की रक्षा करने में सफल हुआ। इस समय कैथोलिक धर्म प्रगति के पथ की ओर निरंतर बढ़ता रहा।

धर्म सुधार आन्दोलन के परिणाम—यद्यपि धर्म सुधार आन्दोलन एक धार्मिक

आन्दोलन था, तथापि इसका प्रभाव शासन स्वरूप तथा मानव समाज के विभिन्न क्षेत्रों पर पड़ा। धर्म-सुधार आन्दोलन का निम्नलिखित क्षेत्रों पर प्रभाव पड़ा—

(1) एकता की समाप्ति—मध्य युग में धर्म ने यूरोपवासियों को एकता के सूत्र में बांध दिया था। धर्म सुधार आन्दोलन के कारण यह एकता समाप्त हो गई। इस आन्दोलन से पहले सम्पूर्ण यूरोप पर कथोलिक धर्म की धाक जमी हुई थी, परन्तु प्रोटेस्टेन्ट धर्म ने पोप की सर्वोच्च सत्ता को मानने से इन्कार कर दिया। अब पोप के लिये सम्भव नहीं था कि सम्पूर्ण यूरोप के लोगों को धर्म के नाम पर एकता के सूत्र में बांध सकें। इस आन्दोलन के कारण ईसाई धर्म दो सम्प्रदायों कथोलिक और प्रोटेस्टेन्ट में विभाजित हो गया। धीरे धीरे प्रोटेस्टेन्ट धर्म भी अनेक सम्प्रदायों में विभाजित हो गया। इस तरह बार-बार धर्म का विभाजन होने के कारण धर्म की एकता समाप्त हो गई।

(2) कथोलिक धर्म में आंतरिक सुधार—प्रोटेस्टेन्ट धर्म ने कथोलिक धर्म की प्रगति में बाधा उपस्थित कर दी थी। इसलिये कथोलिक धर्म के धर्माधिकारियों ने प्रोटेस्टेन्ट धर्म की गति को रोकने के लिये प्रयास करने प्रारम्भ कर दिये थे।

1545 ई०–1560 ई० तक ट्रेन्ट नामक नगर में रोमन कथोलिक धर्म में व्याप्त बुराइयों को दूर करने तथा धर्म के सिद्धान्तों पर पुनः विचार करने के लिये विभिन्न धर्म सम्मेलन आयोजित किये जाते रहे। जिसमें अनेकों पादरियों ने भाग लिया। इन धर्म अधिवेशनों में कथोलिक धर्म में सुधार करने के सम्बन्ध में अनेक निर्णय लिये गये। रोम के पोप ने इन धार्मिक सम्मेलनों में भाग लिया तथा कौंसिल के निर्णय को लागू करने का वचन दिया।

इस कौंसिल के निर्णयानुसार पोप ने सादगीपूर्ण जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ कर दिया। अब पादरी के पद पर योग्य एवं चरित्रवान व्यक्तियों को ही नियुक्ति दी जाने लगी और क्षमा पत्रों की बिक्री बंद कर दी गई। स्कूलों में छात्रों को बाईबल का विषय पढ़ाया जाने लगा। चर्च में इन सुधारों के कारण एक नई स्फूर्ति आ गई। और प्रोटेस्टेन्ट धर्म की प्रगति धीमी हो गई। इतिहास में रोमन कथोलिक धर्म के आंतरिक सुधार को प्रति धर्म सुधार आन्दोलन के नाम से पुकारा जाता है।

कथोलिक धर्म में व्याप्त बुराइयों को दूर करने के लिये लायेला द्वारा जेसुइट संस्था की स्थापना की गई थी। इस प्रकार धर्म सुधार आन्दोलन के कारण पोप के व्यक्तिगत जीवन में सुधार किया गया और रोमन चर्च में व्याप्त आंतरिक कमजोरियों को दूर करने का प्रयास किया गया। इस प्रकार प्रतिधर्म सुधार आन्दोलन ने जहां एक ओर धार्मिक सुधार आन्दोलन की गति धीमी कर दी, वहां दूसरी ओर चर्च का पुनर्गठन किया गया और उसके आचरण में सुधार किया गया।

(3) ईसाई धर्म की एकता का नष्ट होना धर्म सुधार आन्दोलन ने

ईसाई धर्म की एकता को नष्ट कर दिया, जिससे अनेक सम्प्रदायों का विकास हुआ। सम्पूर्ण यूरोप पर रोमन चर्च का एक छत्र शासन नहीं रहा और अनेक देशों में राष्ट्रीय चर्च की स्थापना की गई। ईसाई धर्म दो बड़े सम्प्रदायों में विभाजित हो गया। पहला, रोमन के कैथोलिक सम्प्रदाय और दूसरा, प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदाय। प्रोटेस्टेन्ट धर्म में भी अनेक सम्प्रदाय बन गये, क्योंकि इस सम्प्रदाय के लोग बाईबल को ही धर्म का आधार मानते थे और प्रत्येक विद्वान् बाईबल का अलग-अलग अर्थ लगाता था। इसलिये प्रोटेस्टेन्ट धर्म में भी अनेक सम्प्रदाय बन गये।

(4) **धार्मिक असहिष्णुता की भावना का विकास**—धर्म सुधार आन्दोलन के कारण धार्मिक असहिष्णुता की भावनायें विकसित हुई और धार्मिक सहिष्णुता की भावनाएँ समाप्त हो गईं। उस समय प्रत्येक सम्प्रदाय अपने सिद्धान्तों को सच्चे सिद्धान्त बताते हुए प्रचार कर रहा था और दूसरे सम्प्रदाय के सिद्धान्तों की आलोचना कर रहा था। उस समय एक सम्प्रदाय ने दूसरे सम्प्रदाय को समाप्त करने का हर सम्भव प्रयास किया।

इसके परिणामस्वरूप यूरोप में धार्मिक असहिष्णुता और कट्टरता की भावनाओं का विकास हुआ। जिसके कारण 30 वर्ष तक यूरोप में संघर्ष चलता रहा। इस संघर्ष की समाप्ति 1555 ई० की आग्स बर्ग की सन्धि से हुई। धर्म के नाम पर हजारों लाखों लोगों का कत्ल कर दिया गया। यदि किसी राज्य में शासक प्रोटेस्टेन्ट धर्म का अनुयाई होता तो वह अपने अधीन कैथोलिक धर्म के अनुयाईयों पर निर्मम अत्याचार करता था और यदि कैथोलिक धर्म का अनुयाई होता तो वह अपने अधीन प्रोटेस्टेन्ट धर्म को मानने वाले लोगों पर भयंकर अत्याचार करता था।

इंग्लैण्ड की शासिका मेरी ने कई प्रोटेस्टेन्टों को जिन्दा जलवा दिया। इसके पश्चात् शासकों ने हजारों कैथोलिकों को धर्मद्रोही घोषित कर उनको मौत के घाट उतार दिया। जर्मनी में कैथोलिकों और प्रोटेस्टेन्टों के बीच में 30 वर्ष तक भयंकर संघर्ष चलता रहा। फ्रांस के शासकों ने भी प्रोटेस्टेन्टों पर अमानुषिक अत्याचार किये। इस प्रकार धार्मिक असहिष्णुता के कारण लम्बे समय तक के लिये यूरोपियन शान्ति भंग हो गई।

(5) **राजाओं की शक्ति में वृद्धि**—धर्म सुधार आन्दोलन के कारण यूरोपियन राजा अपनी शक्ति में वृद्धि करने में सफल हुए। अब राजाओं में निरंकुश और शक्तिशाली बनने की भावनायें विकसित हुई। राजाओं ने अपनी शक्ति में वृद्धि करने के लिये और अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिये पोप से सम्बन्ध तोड़ना शुरू कर दिये। इस प्रकार इस आन्दोलन के कारण यूरोप में निरंकुश राजतन्त्रात्मक शासन पद्धति का विकास हुआ।

पहले सम्पूर्ण यूरोपियन देशों के राजा पोप की अधीनता में शासन कर रहे थे, परन्तु प्रोटेस्टेन्ट धर्म को स्वीकार करने वाले राजा पोप की अधीनता से मुक्त हो

चुके थे। इन राजाओं की संख्या बहुत अधिक थी। इन शासकों ने अपने राज्यों में राष्ट्रीय चर्च की स्थापना की जिसका सर्वोच्च अधिकारी सम्राट हुआ करता था। अब प्रोटेस्टैंट धर्म को मानने वाले राजाओं पर किसी का नियन्त्रण नहीं था और राज्य की सार्वभौम शक्ति उनके हाथों में केन्द्रित थी। इसलिये अब राजा धीरे धीरे निरंकुश होने लगे।

(6) राष्ट्रीयता का विकास—धर्म सुधार आन्दोलन के कारण जनता में राष्ट्रीयता की भावनाओं का तेजी से विकास हुआ। इस भावना ने लोगों को एक सूत्र में बाँध दिया। राष्ट्रीयता के सिद्धान्त के आधार पर सभी देशों ने पोप विरोधी आन्दोलन चलाया। अब चर्च का स्थान सम्राट ने और धर्म का स्थान राज्य ने ले लिया। सेवाइन ने लिखा है कि "राष्ट्रीयता का जन्म इसी विद्रोह में हुआ था। प्रोटेस्टेण्ट सम्प्रदाय कई प्रकार से राष्ट्रीयता का निर्माता सिद्ध हुआ। व्यापार पर से मध्यकालीन प्रतिबन्ध उठ गये, अधिक ब्याज लेना जायज व्यापार *बन गया और पुरानी बाईबिल के विचारों के विपरीत सम्पत्ति प्रभु का आशीर्वाद* समझी जाने लगी।"[1]

(7) कैथोलिक धर्म का प्रसार—प्रति धर्म सुधार आन्दोलन के कारण जेसुइट संस्था के सदस्य कैथोलिक धर्म का प्रचार करने के लिये विश्व में सभी भागों में पहुँचे। उन्होंने बड़े साहस और उत्साह के साथ अपने धर्म का प्रचार किया। परिणामस्वरूप कैथोलिक धर्म का चीन, जापान, अफ्रीका और अमरीका आदि देशों में भी प्रचार हुआ।

(8) शिक्षा के क्षेत्र में विकास—धर्म सुधार आन्दोलन के कारण शिक्षा के क्षेत्र में बहुत अधिक विकास हुआ। जब कैथोलिक धर्म का पतन होने लगा तो पोप ने शिक्षा के विकास की ओर विशेष ध्यान दिया। स्कूलों में छात्रों को धार्मिक विषयों की शिक्षा दी जाने लगी। दूसरी तरफ धर्म सुधारकों ने भी शिक्षा के विकास की ओर ध्यान दिया ताकि कैथोलिक धर्म में व्याप्त बुराइयों का निवारण किया जा सके। प्रोटेस्टेन्ट तथा प्यूरिटन के धर्म प्रचारकों ने चर्चों की सम्पत्ति को जब्त करके शिक्षा का विकास किया। उनका यह मानना था कि शिक्षा के विकास से जनता को धार्मिक अंध विश्वासों से मुक्ति मिल जायेगी।

स्कूलों में लोक भाषा में शिक्षा दी जाने लगी ताकि अधिक से अधिक शिक्षा का विकास हो सके। उस समय लोक भाषा में ही साहित्य को प्रकाशित करवाया गया ताकि अधिक से अधिक लोग उसका अध्ययन कर फायदा उठा सकें। लूथर ने जर्मनी की भाषा में बाईबल का अनुवाद किया था। उसका अनुसरण करते हुए अन्य देशों में लोक भाषाओं में बाईबल का अनुवाद किया गया। धर्म प्रचारकों ने

1 सेबाइन—ए हिस्ट्री आफ वर्ल्ड सिवलीजेशन पृष्ठ—332

अपने अपने क्षेत्रो म क्षेत्रीय भाषाओ को शिक्षा का माध्यम बनाया। जिसके फलस्वरूप लोगा म अपनी स्थानीय भाषा क प्रति श्रद्धा की भावनाऐ विकसित हुई। मक्नल बनस न लिखा है कि इसन "इसन व्यक्तिवाद और लोकप्रिय शिक्षा के विस्तार को गति प्रदान की। शिक्षा का प्रभावशाली प्रसार हुआ। लूथरवादी, कनवरिप्ट और जम्विटन सभी समाज को शिक्षित बनान म लग गये।"

(9) नतिक जीवन म सुधार —धम सुधार आन्दोलन के कारण पादरियो के नतिक जीवन म सुधार हुआ। अब उन्हान आदश और सादगीपूण जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ कर दिया। पोप न क्षमा पत्रो की बिक्री पर रोक लगा दी। प्रोटस्टेण्ट धम के पादरियो का विवाह करने की अनुमति देदी, परन्तु उन्ह सादगीपूण जीवन व्यतीत करना पडता था। प्रोटस्टेण्ट धम के गिरजाघर सादे बन हुए होत थे, ताकि पादरी गिरजाघर को देखकर अपन जीवन म सादगी और सचरित्रता आदि गुणो का समावेश कर सकें। गिरजाघरो म नत्य पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। इसम प्रभावित होकर जन साधारण न नतिक जीवन की ओर विशेष ध्यान देना प्रारम्भ कर दिया।

इस प्रकार स्पष्ट है कि यूरोपीय इतिहास मे धम सुधार आन्दोलन महत्वपूण स्थान रखता है। जिस काम को पुनर्जागरण ने प्रारम्भ किया था उस काम को धम सुधार आन्दोलन ने पूरा किया। इसने समाज और राष्ट्र को प्रगति की ओर अग्रसर किया। यह धमसुधार आन्दोलन ही था जिसने यूरोप को आधुनिक रूप प्रदान किया। क्रेन ब्रिन्टन न लिखा है कि प्रोटेस्टेन्ट धम के अनुयाईयो न आधुनिक एव प्रगतिशील विचारधारा का विकास किया।

1 मक्नल बनस—वस्टन सिवलीजेशन्स, पृष्ठ 417 18

प्रस्तावित सदभ पाठ्य पुस्तकें —

1 वीच डब्ल्यू० एन०—हिस्ट्री आफ दी वल्ड
2 एलिस और जौन—ससार का इतिहास
3 मक्नल बनस—वस्टन सिवलीजेशन्स
4 प्लट जीन और डमड—विश्व का इतिहास
5 सेवाइन—ए हिस्ट्री आफ वल्ड सिवलीजेशन
6 वेल्स एच० जी०—दी आउट लाइन आफ हिस्ट्री।

5

फ्रांस की राज्य-क्रान्ति

फ्रांस की राज्य क्रान्ति का विश्व के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। इस क्रान्ति ने नये समाज के निर्माण में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। मध्य युग में राजा लोग दैविक सिद्धान्त के अनुसार प्रजा पर शासन करते थे। वे अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि मानते थे। उनकी इच्छा ही कानून थी और राज्य की सारी शक्ति उनके हाथों में केन्द्रित होती थी। उनका निर्णय अन्तिम निर्णय समझा जाता था। वे जनता पर निरंकुश रूप से शासन करते थे। जनता को आंख मूंद कर उनकी आज्ञा का पालन करना पड़ता था। राजा के कार्यों की आलोचना करने का अधिकार जनता को प्राप्त नहीं था।

मध्यकाल में कुलीन वर्ग के सदस्य राजा का निरन्तर समर्थन करते थे। इसलिए सम्पूर्ण प्रशासन की बागडोर इसी वर्ग के हाथ में थी। राजा ने इस वर्ग को विशेषाधिकार दे रखे थे। कुलीन वर्ग अपने स्वार्थों की पूर्ति करने के लिए जनता का शोषण करते थे।

व्यापारिक क्रान्ति और पूंजीवाद के उदय के कारण एक नये वर्ग, मध्यम वर्ग का जन्म हुआ। जिसके पास धन सम्पत्ति और बुद्धि थी। मध्यम वर्ग के व्यक्तियों को समाज में भी प्रतिष्ठा प्राप्त थी। इस वर्ग को कुलीन वर्ग की भांति राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं थे इसलिये मध्यम वर्ग ने देश में प्रतिनिधि सरकार की स्थापना के लिए मांग की। इतना ही नहीं इस वर्ग ने भाषण, लेखन और धार्मिक स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष प्रारम्भ कर दिया। परिणामस्वरूप जनता राजनैतिक अधिकारों की मांग करने लगी और सभी स्थानों पर लोग एक ही नारा लगा रहे थे कि 'जनता की आवाज ही परमेश्वर की आवाज है।'

यह संघर्ष सर्व प्रथम हालैंड में प्रारम्भ हुआ। इंगलैंड की रक्तहीन क्रान्ति और अमेरिका के स्वतन्त्रता संग्राम ने इस संघर्ष को प्रोत्साहित किया। उत्तरी

अमेरिका अग्रेजो का गुलाम था। यहा के निवासियो ने अग्रेजो के अत्याचारो से परेशान होकर 1779 ई० म स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए सघष प्रारम्भ कर दिया। परिणामस्वरूप 1783 ई० मे उ होने अग्रेजों की दासता से मुक्ति प्राप्त कर ली। इसी समय फ्रास म भी सामाजिक और राजनतिक सकट उत्पन्न हुआ, जिसन समस्त विश्व का राजनीतिक वातावरण अशान्त बना दिया।

फ्रास की राज्य क्रान्ति का मुख्य आधार आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था थी, जबकि अग्रेजी व अमेरिकन स्वतन्त्रता क्रान्ति का मुख्य आधार राजनीतिक व्यवस्था थी। इसलिय फ्रासीसी क्रान्ति तत्कालीन समाज के लिए भयकर सिद्ध हुई। इस क्रान्ति से अग्रेजी व अमेरिकन क्रान्ति की अपेक्षा किसानो को अधिक लाभ पहुचा था।

इतिहासकारो न अठारहवी शताब्दी को एक क्रान्ति की शताब्दी माना है क्योकि इस शताब्दी म अनेक क्रान्तिया हुई, जिसके कारण यूरोप म अनेक महत्व पूण परिवतन हुए। परन्तु फ्रास की राज्य क्रान्ति के कारण सम्पूण ससार के देश प्रभावित हुए बिना नही रह सके।

फ्रास मे क्रान्ति पहले निरकुश राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था कायम थी। राज्य की सारी शक्ति सम्राट के हाथो म केन्द्रित थी। उस समय फ्रास पर लुई सोलहवा जसा अयोग्य शासक शासन कर रहा था, इसलिये फ्रास म अराजकता एव अव्यवस्था फैली हुई थी। उस समय पादरी और सामन्त जनता का शोषण कर रहे थे। जनता को अनेक कर देने पडते थे। इसलिये जनता बहुत परेशान थी। जनता को न्याय नही मिल पा रहा था। 175 साल के तानाशाही शासन से परेशान होकर धर्माधिकारियो के प्रभाव स मुक्त होने के लिए फ्रास की जनता के सामने क्रान्ति के सिवाय अन्य कोई विकल्प नही था। इसलिय फ्रासीसियो ने 1789 म इस निकम्मे शासन के जुए को उतार फैकने के लिये जो प्रयत्न किया, उसे इतिहास म 'फ्रास की राज्य क्रान्ति' के नाम से जाना जाता है।

प्रोफेसर डेविस ने लिखा है कि फ्रास की राज्य क्रान्ति स मानव जाति के इतिहास म एक नया युग आरम्भ हुआ। इसने सामन्तवाद की समाप्ति म महत्व पूण सहयोग दिया और व्यक्तियो को सामाजिक व धार्मिक स्वतन्त्रता एव समानता का अधिकार दिलवाया। इस क्रान्ति ने यह स्पष्ट कर दिया कि सभी मनुष्य एक समान हैं इसलिये सभी को एक समान अधिकार मिलने चाहिये।

प्रोफेसर ल्यूकस ने इस क्रान्ति के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि फ्रास की राज्य क्रान्ति आधुनिक युग की एक महत्वपूण घटना है जिसने मध्य युग की परम्पराओ को पूण रूप से नष्ट कर दिया।

सभी इतिहासकार फ्रास की राज्य क्रान्ति को आधुनिक युग की सवम

महत्वपूर्ण घटना मानते हैं। यूरोप के अन्य देशों में फ्रांस की भांति राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था विद्यमान थी, फिर प्रश्न यह उठता है कि यह क्रांति सर्व प्रथम फ्रांस में ही क्यों आरम्भ हुई थी ? इस क्रांति के कारणों का हम नीचे वर्णन करेंगे।

कुछ इतिहासकार फ्रांस की राज्य क्रांति को सामाजिक क्रांति के नाम से भी पुकारते हैं क्योंकि सामाजिक परिस्थितियों के कारण यह क्रांति प्रारम्भ हुई थी। फ्रांस के शासक लुई सोलहवें की मूर्खता के कारण क्रांति अवश्यम्भावी हो गई। इस क्रांति के द्वारा कुलीन वर्ग और पादरियों के विशेष अधिकारों की समाप्ति की मांग की गई थी। इसको निम्न दो तत्वों ने प्रेरित किया। पहला, पुरानी व्यवस्था की बुराइयां और दूसरा फ्रांस के मध्यम वर्ग में बढ़ता हुआ असंतोष।

18 वीं शताब्दी के अन्त में मध्यम वर्ग के लोगों ने सामंतों के विशेष अधिकारों के विरुद्ध आंदोलन आरम्भ कर दिया। इस आन्दोलन से फ्रांस में राष्ट्रीय भावना का विकास हुआ, जिससे नये समाज का निर्माण सम्भव हो सका।

फ्रांस की क्रांति से पूर्व की स्थिति —इतिहासकारों ने सत्रहवीं शताब्दी को फ्रांस के उत्थान की और अठारहवीं शताब्दी को उसके पतन की शताब्दी बताया है। लुई चौदहवें के शासन काल में फ्रांस अपनी उन्नति के चरम शिखर पर पहुंच गया था। लुई चौदहवें की मृत्यु के पश्चात उसके उत्तराधिकारी अयोग्य और दुर्बल सिद्ध हुये, जिसके कारण फ्रांस के विशाल साम्राज्य का पतन प्रारम्भ हो गया। इतिहासकार वेन फिगर ने लिखा है कि लुई चौदहवां विलासी शासक था। लुई पन्द्रहवां अयोग्य शासक था जबकि लुई सोलहवां एक दुर्बल शासक था।

इस प्रकार फ्रांस के प्रशासन में अव्यवस्था फैल रही थी। लुई सोलहवें के समय फ्रांस की आर्थिक दशा बहुत शोचनीय थी। इस पर भी वह दैविक सिद्धांत के अनुसार निरंकुश शासक की तरह शासन कर रहा था। उसने गर्व से कहा था कि 'सार्वभौमिक सत्ता मेरे में निवास करती है। कानून बनाने की सारी शक्ति मेरे में हैं।'

लुई सोलहवां में शासन करने की योग्यता का अभाव था। इसलिये उसके शासन काल में उसके दरबारियों और चाटुकारों के द्वारा शासन चलाया जाता था। उस समय फ्रांस का समाज तीन वर्गों में विभक्त था। पहला वर्ग सामन्तों का और दूसरा वर्ग धर्माधिकारियों का एवं तीसरा वर्ग जन साधारण था। पहले और दूसरे वर्ग के लोग किसानों का एवं मध्यम वर्ग के लोगों का शोषण कर रहे थे और वैभवतापूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे थे। मध्यम वर्ग और किसानों से अत्यधिक मात्रा में सरकारी कर वसूल किया जाता था। किसानों को बेगार भी देनी पड़ती

थी तथा अपने शासन वग के आमोद प्रमोद के खच का भार भी उन्हे वहन करना पडता था ।

शिक्षा पर धर्माधिकारियो का नियन्त्रण था, इसलिये शिक्षा का क्षेत्र अनुदार बना हुआ था। नवीन विचारो की पुस्तको के प्रकाशन पर सरकार ने प्रतिबन्ध लगा रखा था। इस समय फ्रास मे कई अच्छे विचारक और विद्वान पैदा हुए थे परन्तु सरकार ने उनके विचारो के प्रसार पर कठोर नियन्त्रण लगा रखा था ।

फ्रास के शहरो के कारखानो मे उस समय लगभग 25 लाख मजदूर काम कर रहे थे, लेकिन औद्योगिक विकास नही होने के कारण इन मजदूरों की आर्थिक दशा बहुत शोचनीय थी। उन्हे बहुत घटो तक कारखानो मे काम करना पडता था। इस प्रकार स्पष्ट है कि 18 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे फ्रास मे राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन के प्रति भयकर असन्तोष व्याप्त था। इसे फ्रास वाले प्राचीन व्यवस्था भी कहते हैं। इस प्रकार की परिस्थितियो म फ्रासीसी जनता का दम घुटा जा रहा था। इसलिये 1789 ई० मे फ्रास की जनता ने अपनी सरकार के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खडा कर दिया ।

फ्रास की राज्य क्राति के कारण —1789 ई० म हुई फ्रास की राज्य क्राति के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे —

(1) राजनीतिक कारण —फ्रासीसी क्राति सम्राट की सत्ता को समाप्त करने के लिए आरम्भ नही हुई थी। इस क्राति के नेता यह चाहते थे कि राजा की शक्ति को सीमित कर दिया जाये। उस समय फ्रास के शासक लुई सोलहवें ने कुछ ऐसे मूर्खतापूर्ण कदम उठाये, जिसके कारण क्राति का स्वरूप ही बदल गया तथा फ्रास म निरकुश राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था की समाप्ति कर दी गई। इससे यह स्पष्ट है कि उस समय की फ्रासीसी जनता न शासन व्यवस्था मे व्याप्त बुराइयो को दूर करने का प्रयास किया ।

(1) राजा की निरकुशता —फ्रास की भाति यूरोप के कई अन्य देशो म भी निरकुश राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था विद्यमान थी। सम्राट की इच्छा ही कानून था। आरम्भ मे जनता सिर्फ यह चाहती थी कि सम्राट जन हित के कार्यों की ओर भी ध्यान देता रहे। प्रशा, आस्ट्रिया, रूस और स्पेन आदि देशो के शासको ने भी जनता पर स्वेच्छाकारी शासन किया। परन्तु उनके विरुद्ध विद्रोह इसलिये नही हुआ, क्योंकि वे जनता के हित का ध्यान रखते थे। फ्रास के सम्राट जन हित कार्यों की उपेक्षा करते हुए जब निरकुश रूप से शासन करते रहे, फलस्वरूप उनके विरुद्ध विद्रोह होना अवश्यम्भावी हो गया ।

फ्रास के ये निरकुश राजा दैवी सिद्धान्त के अनुसार अपनी प्रजा पर शासन करते थे। लुई चौदहवें ने फ्रास म सुदृढ रूप से निरकुश राजतन्त्रात्मक शासन

महत्वपूर्ण घटना मानते हैं। यूरोप के अन्य देशों में फ्रांस की भांति राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था विद्यमान थी, फिर प्रश्न यह उठता है कि यह क्रांति सर्व प्रथम फ्रांस में ही क्यों आरम्भ हुई थी ? इस क्रांति के कारणों का हम नीचे वर्णन करेंगे।

कुछ इतिहासकार फ्रांस की राज्य क्रांति को सामाजिक क्रांति के नाम से भी पुकारते हैं क्योंकि सामाजिक परिस्थितियों के कारण यह क्रांति प्रारम्भ हुई थी। फ्रांस के शासक लुई सोलहवें की मूर्खता के कारण क्रांति अवश्यम्भावी हो गई। इस क्रांति के द्वारा कुलीन वर्ग और पादरियों के विशेष अधिकारों की समाप्ति की मांग की गई थी। इसको निम्न दो तत्वों ने प्रेरित किया। पहला पुरानी व्यवस्था की बुराइयां और दूसरा फ्रांस के मध्यम वर्ग में बढ़ता हुआ असंतोष।

18 वीं शताब्दी के अन्त में मध्यम वर्ग के लोगों ने सामन्तों के विशेष अधिकारों के विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ कर दिया। इस आन्दोलन से फ्रांस में राष्ट्रीय भावना का विकास हुआ, जिससे नये समाज का निर्माण सम्भव हो सका।

फ्रांस की क्रांति से पूर्व की स्थिति —इतिहासकारों ने सतरहवीं शताब्दी को फ्रांस के उत्थान की और अठारहवीं शताब्दी को उसके पतन की शताब्दी बताया है। लुई चौदहवें के शासन काल में फ्रांस अपनी उन्नति के चरम शिखर पर पहुंच गया था। लुई चौदहवें की मृत्यु के पश्चात उसके उत्तराधिकारी अयोग्य और दुर्बल सिद्ध हुये, जिसके कारण फ्रांस के विशाल साम्राज्य का पतन प्रारम्भ हो गया। इतिहासकार वेन फिगर ने लिखा है कि लुई चौदहवां विलासी शासक था। लुई पन्द्रहवां अयोग्य शासक था जबकि लुई सोलहवां एक दुर्बल शासक था।

इस प्रकार फ्रांस के प्रशासन में अव्यवस्था फैल रही थी। लुई सोलहवें के समय फ्रांस की आर्थिक दशा बहुत शोचनीय थी। इस पर भी वह दैविक सिद्धान्त के अनुसार निरंकुश शासक की तरह शासन कर रहा था। उसने गर्व से कहा था कि सार्वभौमिक सत्ता मेरे में निवास करती है। कानून बनाने की सारी शक्ति मेरे में हैं।'

लुई सोलहवें में शासन करने की योग्यता का अभाव था। इसलिये उसके शासन काल में उसके दरबारियों और चाटुकारों के द्वारा शासन चलाया जाता था। उस समय फ्रांस का समाज तीन वर्गों में विभक्त था। पहला वर्ग सामन्तों का और दूसरा वर्ग धर्माधिकारियों का एवं तीसरा वर्ग जन-साधारण था। पहले और दूसरे वर्ग के लोग किसानों का एवं मध्यम वर्ग के लोगों का शोषण कर रहे थे और वैभवतापूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे थे। मध्यम वर्ग और किसानों से अत्यधिक मात्रा में सरकारी कर वसूल किया जाता था। किसानों को बेगार भी देनी पड़ती

थी तथा अपने शासन वर्ग के आमोद प्रमोद के खर्च का भार भी उन्हें वहन करना पड़ता था।

शिक्षा पर धर्माधिकारियों का नियन्त्रण था, इसलिये शिक्षा का क्षेत्र अनुदार बना हुआ था। नवीन विचारों की पुस्तकों के प्रकाशन पर सरकार ने प्रतिबन्ध लगा रखा था। इस समय फ्रांस में कई अच्छे विचारक और विद्वान पैदा हुए थे, परन्तु सरकार ने उनके विचारों के प्रसार पर कठोर नियन्त्रण लगा रखा था।

फ्रांस के शहरों के कारखानों में उस समय लगभग 25 लाख मजदूर काम कर रहे थे, लेकिन औद्योगिक विकास नहीं होने के कारण इन मजदूरों की आर्थिक दशा बहुत शोचनीय थी। उन्हें बहुत घंटों तक कारखानों में काम करना पड़ता था। इस प्रकार स्पष्ट है कि 18 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में फ्रांस में राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन के प्रति भयंकर असन्तोष व्याप्त था। इसे फ्रांस वाले प्राचीन व्यवस्था भी कहते हैं। इस प्रकार की परिस्थितियों में फ्रांसीसी जनता का दम घुटा जा रहा था। इसलिये 1789 ई० में फ्रांस की जनता ने अपनी सरकार के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया।

फ्रांस की राज्य क्रान्ति के कारण —1789 ई० में हुई फ्रांस की राज्य क्रान्ति के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे —

(1) **राजनीतिक कारण** —फ्रांसीसी क्रान्ति सम्राट की सत्ता को समाप्त करने के लिए आरम्भ नहीं हुई थी। इस क्रान्ति के नेता यह चाहते थे कि राजा की शक्ति को सीमित कर दिया जाये। उस समय फ्रांस के शासक लुई सोलहवें ने कुछ ऐसे मूर्खतापूर्ण कदम उठाये, जिसके कारण क्रान्ति का स्वरूप ही बदल गया तथा फ्रांस में निरंकुश राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था की समाप्ति कर दी गई। इससे यह स्पष्ट है कि उस समय की फ्रांसीसी जनता ने शासन व्यवस्था में व्याप्त बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया।

(i) **राजा की निरंकुशता** —फ्रांस की भांति यूरोप के कई अन्य देशों में भी निरंकुश राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था विद्यमान थी। सम्राट की इच्छा ही कानून था। आरम्भ में जनता सिर्फ यह चाहती थी कि सम्राट जन हित के कार्यों की ओर भी ध्यान देता रहे। प्रशा, आस्ट्रिया, रूस और स्पेन आदि देशों के शासकों ने भी जनता पर स्वेच्छाचारी शासन किया। परन्तु उनके विरुद्ध विद्रोह इसलिये नहीं हुआ, क्योंकि वे जनता के हित का ध्यान रखते थे। फ्रांस के सम्राट जन हित कार्यों की उपेक्षा करते हुए जब निरंकुश रूप से शासन करते रहे, फलस्वरूप उनके विरुद्ध विद्रोह होना अवश्यम्भावी हो गया।

फ्रांस के ये निरंकुश राजा दैवी सिद्धान्त के अनुसार अपनी प्रजा पर शासन करते थे। लुई चौदहवें ने फ्रांस में सुदृढ़ रूप से निरंकुश राजतन्त्रात्मक शासन

व्यवस्था की स्थापना कर दी थी। वह तो यहां तक कहता था कि "मैं ही राज्य हूं' तथा 'मेरे शब्द ही कानून हैं।' फ्रांस के शासक जनता को राज्य कार्यों में भाग देने के विरोधी थे।

फ्रांस का राजा कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और न्यायपालिका का सर्वोच्च अधिकारी था। राजा शासन के सभी अधिकारियों की नियुक्ति स्वयं करता था और जिसे चाहता उसे पदच्युत कर सकता था। उसकी इच्छा से कानूनों का निर्माण करता था और इच्छानुसार उन्हें समाप्त कर देता था। न्यायपालिका के क्षेत्र में उसका निर्णय अंतिम समझा जाता था। वह जिसे चाहता दण्ड दे सकता था। उसकी स्वीकृति के बिना गिरजाघरों की मरम्मत भी नहीं की जा सकती थी।

फ्रांस में उस समय किसी भी व्यक्ति की स्वतन्त्रता सुरक्षित नहीं थी। राजा जिस व्यक्ति को चाहता, गिरफ्तार करवा सकता था और बिना मुकदमा चलाये उस व्यक्ति को जितनी सजा वह देना चाहता दे सकता था। राजा के चाटुकार भी इस अधिकार का उपयोग कर रहे थे। वे राजा द्वारा बेचे जाने वाले "लटर्स डी कचेट" (गिरफ्तारी पत्र) को धन देकर खरीद लेते थे। इसमें गिरफ्तार किये जाने वाले व्यक्ति के नाम का स्थान रिक्त रखा जाता था ताकि इस पत्र को खरीदने वाला व्यक्ति, जिस व्यक्ति को गिरफ्तार करवाना चाहे उस व्यक्ति का नाम रिक्त स्थान में भर देता था जिससे कि उस व्यक्ति को गिरफ्तार किया जा सके।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि राज्य की सारी शक्ति राजा के हाथों में केन्द्रित थी और राजा निरंकुश रूप से जनता पर शासन कर रहे थे। इसलिये फ्रांस के शासकों ने 175 वर्ष तक स्टेटस जनरल (प्रतिनिधि संस्था) की बैठक नहीं बुलाई थी। यही कारण था कि फ्रांस की जनता राजा की निरंकुश शक्ति का विरोध करने लगी।

(ii) शासकों की अयोग्यता :—लुई चौदहवें के उत्तराधिकारी अयोग्य एवं दुर्बल सिद्ध हुए। उन्होंने भोग विलास पूर्ण जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ कर दिया और राजकीय कार्यों के प्रति उदासीन हो गये। वे अपने चापलूस और स्वार्थी सलाहकारों की सलाह से शासन चला रहे थे, जो अपने स्वार्थ की पूर्ति करने में लगे हुये थे।

लुई चौदहवें की मृत्यु के पश्चात् लुई पन्द्रहवां फ्रांस का शासक बना। वह स्वयं आलसी और विलासी था। उसके मन्त्री भी दुर्बल तथा अयोग्य थे। उसमें शासन करने की योग्यता का अभाव था। उसके दरबारी विलासिता पूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे थे। उसके समय में हुए युद्धों के कारण फ्रांस की राजनीतिक और आर्थिक दशा शोचनीय हो गई। जब 1774 ई० में लुई पन्द्रहवें की मृत्यु हुई तो लोगों ने शोक के स्थान पर खुशी जाहिर की और उसकी शव यात्रा के समय लोगों ने गन्दे नारे लगाये एवं अशिष्ट गान गाये।

लुई पन्द्रहवें की मृत्यु के पश्चात लुई सोलहवा 16 वष की आयु म फ्रास का शासक बना। वह राज्य की समस्त शक्ति को अपने हाथों म केन्द्रित करना चाहता था परन्तु उसम शासन करने की योग्यता का अभाव था। उसके शासनकाल म सलाहकारो का प्रभाव प्रशासन पर इस तरह छाया हुआ था कि वह चाहते हुए भी जनहित के लिए कोई काय नही कर सका। वह अपने छोटे भाई व अपनी रानी की सलाह से शासन चला रहा था। ये लोग अपने स्वाथ पूर्ति में लगे हुए थे। इसलिये लुई सोलहवें के शासनकाल म राज्य की आर्थिक स्थिति बहुत दयनीय हो गई। प्रोफेसर हेस ने सत्य ही लिखा है कि फ्रासीसी सम्राट इतने अयोग्य और दुर्बल थे कि व समस्या को हल करने म असफल रहे, जिसके कारण फ्रास म क्रांति हुई।

(iii) शासन व्यवस्था के दोष—फ्रास की प्रशासनिक व्यवस्था मे अनेक दोष विद्यमान थे। फ्रासीसी सम्राट ने इन दोषो को दूर करने का कभी प्रयास नही किया। कई शताब्दियो से फ्रासीसी सम्राट अपने चापलूस और स्वार्थी सलाहकारो की सहायता से निरकुश रूप से करते आ रहे थे। फ्रास की शासन व्यवस्था अत्यन्त दूषित थी। यहा के सम्राट ने बिना किसी आधार के जिलो तथा प्रान्तो का विभाजन कर दिया था। प्रत्येक प्रान्त व जिले म भिन्न भिन्न प्रकार की शासन व्यवस्था व क्रूर प्रणाली विद्यमान थी। प्रान्तीय शासको पर केन्द्र का नियन्त्रण नाम मात्र का था। व अपने प्रान्त म निरकुश रूप से शासन कर रहे थे। वे किसी भी मनुष्य को बिना जाच किये जेल म डाल सकते थे।

(iv) दोषपूर्ण न्याय व्यवस्था—फ्रास की न्याय व्यवस्था मे व्याप्त अन्याय और निरकुश न्याय प्रणाली ने भी जनता को क्रांति करने के लिए प्रेरित किया। यहा के प्रत्येक प्रात म भिन्न भिन्न न्याय प्रणालियाँ प्रचलित थीं। देश के भिन्न भिन्न भागो म अलग अलग कानून प्रचलित थे। यदि किसी एक राज्य म जमन कानून प्रचलित था तो दूसरे राज्य म रोमन कानून प्रचलित था। सम्पूण फ्रास म 400 न्याय प्रणालियाँ प्रचलित थीं। इस प्रकार फ्रास म एक जैसी न्याय व्यवस्था नही थी, इसलिये किसी प्रात म एक अपराध के लिये कठोर सजा दी जाती थी तो दूसरे प्रात म उसी अपराध के लिये साधारण सजा दी जाती थी।

फ्रास म दण्ड विधान बहुत कठोर था। कानून निर्दयी और न्याय हीन थे। साधारण अपराध के लिए भी कडी से कडी सजा दी जाती थी। उस समय अपराधी को चक्र के नीचे पीसकर उसकी हड्डियो का चूरा बना दिया जाता था, अथवा नाक या कान काट लिए जाते थे। प्रभावशाली व्यक्ति जिस व्यक्ति को जेल भिजवाना चाहते उसे बिना मुकदमा चलाये अनिश्चितकाल के लिए जेल भिजवा सकते थे। फ्रांस मे जीवन पयन्त काय करने वाले न्यायाधीश को "चोगे वाले सामन्त" के नाम से पुकारा जाता था। यह पद बेचा व खरीदा जा सकता था। ये न्यायाधीश अपराधियों से भारी जुर्माने वसूल करते थे और अपनी जेबें भरते थे। फ्रास म ऐसे

न्यायाधीशों की संख्या लगभग पचास हजार थी। इस प्रकार यह वर्ग फ्रांस के समाज के लिये एक अभिशाप बना हुआ था।

(v) **शासकों का विलासी जीवन**—लुई चौदहवें ने पेरिस से 12 मील दूर वर्साय नामक नगर में 30 करोड़ रुपये खर्च करके एक सुन्दर शीश-महल का निर्माण करवाया था, जिसमें सम्राट बड़ी शान से विलासितापूर्वक जीवन व्यतीत करता था। लुई चौदहवां और उसके उत्तराधिकारी वर्साय के शीश महल में अय्याशी जीवन व्यतीत करते रहे।

लुई सोलहवें के लिये 1600 दास तथा महारानी मेरी के लिये 800 दासियां काम करती थी। सम्राट लुई सोलहवें ने अपने दरबार में अनेक चापलूस सामन्त और जागीरदार नियुक्त कर दिये थे, जो राज्य के पैसे पर गुलछर्रे उड़ा रहे थे। 1789 ई० में राजा के विलासी जीवन पर लगभग 6 करोड़ रुपया खर्च हो रहा था। महारानी मेरी एन्टोयनेट बहुमूल्य वस्तुएँ खरीदने के लिये प्रजा का पैसा पानी की तरह बहाती थी। ऐसा अनुमान है कि क्रान्ति से पूर्व पन्द्रह वर्षों में लुई सोलहवें ने 30 करोड़ रुपये अपने चापलूसों और कृपापात्रों में बांट दिये थे। इस प्रकार धन के अपव्यय के कारण राजकीय कोष रिक्त होता जा रहा था।

(vi) **सम्राटों की साम्राज्यवादी नीति**—प्रोफेसर एच जी वल्स ने लिखा है कि इंगलैण्ड और अमेरिका की भांति फ्रांसीसी क्रान्ति का एक कारण यह था कि यहां के सम्राट साम्राज्यवादी नीति का पालन कर रहे थे। लुई चौदहवें के उत्तराधिकारी उसकी साम्राज्यवादी नीति पर चल रहे थे, जिसके कारण फ्रांस को अनावश्यक रूप से यूरोप के कई युद्धों में भाग लेना पड़ता था।

इन युद्धों में राज्य का काफी धन खर्च होता था। दूसरी तरफ सम्राट अपने वैभव पर अत्यधिक धन खर्च कर देता था। इस धन की पूर्ति करने के लिये जनता पर अधिक से अधिक कर लगाये जाते थे। जनता इन बढ़ते हुए करों के भार से तंग हो चुकी थी।

(vii) **फ्रांस की विदेश नीति की असफलता**—फ्रांस के सम्राट लुई चौदहवें ने विशाल साम्राज्य की स्थापना की। उसकी विदेश नीति पूर्णरूप से सफल रही। उसके समय फ्रांस की अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रतिष्ठा बढ़ी। लुई चौदहवें की मृत्यु के पश्चात उसके दुर्बल उत्तराधिकारियों के शासन काल में फ्रांस का साम्राज्य घटने लगा। इसलिये सम्राट की जनता में बहुत बदनामी हुई। जनता ने उन अयोग्य सम्राटों का विरोध करना प्रारम्भ कर दिया।

(viii) **स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध**—फ्रांस की जनता को भाषण, विचार, लेखन प्रकट करने और धर्म की स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं थी। इसलिये जनता के सामने क्रान्ति के सिवाय अन्य कोई विकल्प नहीं था। जनता सम्राट की निरंकुशता के

विरुद्ध किसी प्रकार की आवाज नहीं उठा सकती थी, इसलिये जनता में भयंकर असन्तोष व्याप्त था। यह असन्तोष क्रांति के रूप में प्रकट हुआ।

यदि फ्रांस में लोगों को विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता प्राप्त होती तो संभव था कि क्रांति कुछ समय के लिये टल जाती। लोग निरंकुश शासन के विरुद्ध अपने विचार प्रकट कर अपने गुस्से को शांत कर लेते। फ्रांस के लोगों को न तो राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त थी और न ही धार्मिक स्वतन्त्रता। उस समय फ्रांस का राज धर्म कैथोलिक था, इसलिये प्रोटेस्टेन्ट धर्मावलम्बियों पर भयंकर अत्याचार किये जाते थे। उनको कठोर से कठोर सजायें दी जाती थी। यदि कोई व्यक्ति फ्रांस में प्रोटेस्टेंट धर्म में विश्वास रखता था तो उसे धर्म द्रोही घोषित कर मौत की सजा दी जाती थी। उस समय राजा के कृपापात्रों को यह अधिकार था कि वे जिस व्यक्ति को चाहते बिना मुकदमा चलाये गिरफ्तार कर सकते थे और उसे इच्छानुसार सजा दे सकते थे।

फ्रांस की राजनीतिक व्यवस्था के अध्ययन से स्पष्ट है कि क्रांति से पूर्व सम्पूर्ण फ्रांसीसी साम्राज्य में अराजकता एवं अव्यवस्था फैली हुई थी। ऐसी स्थिति में क्रांति होना स्वाभाविक सी बात थी। प्रो० केटलबी ने इस स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है कि 'विशेषाधिकार, रियासत विमुक्ति, कानून नहीं, फ्रांसीसी समाज के आधार थे। उनके शासकों की नीति इच्छानुकूल थी सिद्धान्त नहीं। इसलिये कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिये कि क्रांतिकारियों की सबसे पहली माँग संविधान के लिये थी, जिससे उनका अभिप्राय था कि देश में कुछ व्यवस्था, कुछ संगठन हो।

(2) सामाजिक कारण—फ्रांस की राज्य क्रांति का दूसरा महत्वपूर्ण कारण सामाजिक था। "1789 की क्रांति स्वेच्छाचारी एवं दमनपूर्ण शासन पद्धति के विरुद्ध युद्ध होने की अपेक्षा फ्रांसीसी समाज की असमानता के विरुद्ध एक महान संघर्ष था।" फ्रांस में सामाजिक असमानता ने सामाजिक अन्याय और वर्गवाद को जन्म दिया। पुरातन व्यवस्था के अनुसार फ्रांस का समाज तीन भागों में बंटा हुआ था।

(i) प्रथम इस्टेट—पादरी वर्ग

(ii) द्वितीय इस्टेट—कुलीन वर्ग

(iii) तृतीय इस्टेट—साधारण जनता, कृषक, और दास आदि।

(i) पादरी वर्ग—प्रथम वर्ग धर्माधिकारियों या पादरियों का था, जिनका समाज पर बहुत अधिक प्रभाव था। इन धर्माधिकारियों को कई प्रकार के विशेषाधिकार प्राप्त थे। पादरी किसी भी व्यक्ति को चर्च से निकाल सकते थे। ऐसे व्यक्ति का सामाजिक बहिष्कार समझा जाता था। पादरी ही सामाजिक संस्कारों को सम्पन्न करवाते थे। इन धर्माधिकारियों के पास अपार धन सम्पत्ति थी और फ्रांस

80 प्रतिशत भाग करों के रूप में चुका देता था और बकाया 20 प्रतिशत से वह बड़ी मुश्किल से अपने परिवार का गुजारा चलाता था। इस प्रकार इस वर्ग की दशा बहुत दयनीय थी।

(ख) मध्यम वर्ग का उत्थान—आधुनिक काल में यूरोप के कई देशों में मध्यम वर्ग अथवा बुर्जीय वर्ग का उत्कर्ष हुआ। फ्रांस में लगभग $2\frac{1}{2}$ लाख व्यक्ति मध्यम वर्ग के थे। इस वर्ग ने काफी उन्नति कर ली थी और ये लोग शिक्षित और बुद्धिमान थे। उनका समाज में अच्छा प्रभाव था। इस वर्ग में व्यापारी, डाक्टर, वकील, प्राध्यापक बैंकों के अधिकारी जज और सभी शिक्षित लोग आते थे।

मध्यम वर्ग के लोग शिक्षित और बुद्धिमान थे उनके पास धन का अभाव नहीं था। समाज में उनकी अच्छी प्रतिष्ठा थी, फिर भी उन्हें कुलीन वर्ग की भांति राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं थे और न ही कुलीन जैसा सम्मान प्राप्त था। मध्यम वर्ग के असंतोष का एक अन्य कारण यह भी था कि इस वर्ग के लोग योग्य थे। फिर भी उनको राज्य के उच्च पदों पर नियुक्त नहीं किया जाता था। इसलिए मध्यम वर्ग ने शासन में जनता के अधिकारों की मांग को लेकर क्रांति को प्रारम्भ कर दिया। इस क्रांति का नेतृत्व मध्यम वर्ग के द्वारा किया गया और सर्वाधिक लाभ भी इसी वर्ग को प्राप्त हुआ।

(3) आर्थिक कारण—(1) फ्रांस की दुर्बल आर्थिक स्थिति—फ्रांस की क्रांति के समय आर्थिक दशा बहुत शोचनीय थी। फ्रांसीसी सम्राट लुई चौदहवें ने बहुत से युद्धों में भाग लिया। जिसके कारण बहुत अधिक धन खर्च हुआ जिससे राजकीय कोष खाली हो गया था। इतना ही नहीं लुई चौदहवां ने वैभव और भोग विलास पर अत्यधिक धन का अपव्यय कर राज्य की आर्थिक दशा को शोचनीय बना दिया।

लुई पन्द्रहवें ने भी फ्रांस की आर्थिक दशा में सुधार करने का कोई प्रयास नहीं किया। उसने भी कई युद्धों में भाग लिया जिसके कारण अपार धन खर्च हुआ। इसके अतिरिक्त उसने अपने महलों और रखैलों पर धन का बहुत अधिक अपव्यय किया। सप्तवर्षीय युद्ध के कारण फ्रांस की आर्थिक व्यवस्था शोचनीय हो गई।

इतिहासकार वन फिशर ने लिखा है कि फ्रांस की राज्य क्रांति से पूर्व तक फ्रांस का धन सम्पत्ति पर धर्माधिकारियों और सामन्तों का अधिकार था। लुई चौदहवां पन्द्रहवां और लुई सोलहवें के शासनकाल में जन साधारण की आर्थिक दशा बहुत शोचनीय हो गई। साधारण वर्ग के मनुष्यों के पास बहुत कम भूमि थी। उनके साथ सामान ढोने वाले पशुओं की भांति व्यवहार किया जाता था।

जब लुई सोलहवां फ्रांस का सम्राट बना। तब फ्रांस आर्थिक दृष्टि से दिवा लिया हो चुका था। उसने फ्रांस की आर्थिक दशा को सुधारने के लिए टरगो और

नेकर जस योग्य अथ शास्त्रियो को मत्री के पद पर नियुक्त किया। लेकिन आर्थिक दशा म कोई सुधार नही हो सका। इसलिये लुई सोलहवें ने विवश होकर 1789 ई म स्टेटस जनरल की बठक बुलाई, जो क्रान्ति का कारण सिद्ध हुई।

(ii) **सम्राटो का अत्यधिक खर्चा**—फ्रांस के शासक व सामन्त विलासिता पूर्ण जीवन बिता रहे थे। लुई चौदहवें के समय से ही फ्रासीसी सम्राटो ने अपने वभव प्रदशन और भोग विलास पर धन का बहुत अधिक अपव्यय किया। लुई पन्द्रहवें ने भी अपने महलो और रखलो पर राज्य का बहुत अधिक धन अपव्यय किया। एक तरफ राज्य की आर्थिक दशा *शोचनीय थी दूसरी तरफ फ्रांसीसी* सम्राट ऐश्वय पूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे थे। इसलिय फ्रासीसी जनता म सम्राट के विरुद्ध असतोष व्याप्त था। फ्रास के सम्राट अपने को सुखी बनाने के लिये जनता स नाना प्रकार के कर वसूल करते थे और वह धन अपने ऐश आराम पर खच करते थे। इस प्रकार सम्राटो के द्वारा धन का बहुत अधिक अपव्यय करने के कारण राज्य का कोष खाली हो चुका था।

(iii) **करों मे असमानता**—फ्रास की कर प्रणाली मे असमानता थी। कुलीन वग के व्यक्तियो को किसी प्रकार का कर नही देना पडता था। राजा, सामन्त और पादरी तीनो ही कृषको स कर वसूल करते थे। सामन्त कृषको से मनमाना कर वसूल करता था। केन्द्रीय सरकार कृषको से टक्स ठेकेदारों के माध्यम से वसूल करती थी। ठेकेदार कर की निश्चित रकम राज कोष म जमा करा देते थे। इसके पश्चात वे जनता से मनमाने रूप से कर वसूल करते थ। इससे जनता म असन्तोष व्याप्त था परन्तु ठेकेदार राज्य कोष म उतना पसा जमा नही करवाते थे जितना कि राज्य को मिलना चाहिये।

प्रोफेसर हेज ने लिखा है कि फ्रास का कृषक राज्य सामन्त व पादरियो को कर चुकाता था। इसके पश्चात उसके पास सिर्फ इतना पैसा बचता था जिससे कि वह बडी मुश्किल स अपने परिवार का निर्वाह कर पाता था। कर प्रणाली की असमानता न कृषको और मध्यम वग के लोगो को विद्रोह करने के लिये प्रेरित किया।

(iv) **करो का अत्यधिक बोझ**—कृषको पर करो का अत्यधिक बोझ था। उन्ह राजा सामन्त और पादरी तीनो को ही कर देने पडते थे। फ्रास म भूमि कर निश्चित नही था। इसलिये प्रान्तीय शासक किसानो से अपनी इच्छानुसार कर वसूल करता था। यह भूमि कर पान्ट टक्स कहलाता था। प्रान्तीय शासक किसानो से मनमाना कर वसूल करते थ। इसके अतिरिक्त किसान को प्रतिवर्ष अपनी आय का 20 प्रतिशत कर के रूप म देना पडता था।

प्रत्येक फ्रांसीसी कृषक के लिये यह आवश्यक था कि वह सरकार से दस गुनी कीमत पर सात पौंड नमक प्रतिवर्ष खरीदे। प्रत्यक किसान सामन्तो की भूमि का

किराया देना था। इसके अतिरिक्त अपनी रक्षा के बदले किसान एक निश्चित राशि सामन्त को अदा करता था। सामन्त किसान से एक सप्ताह मे तीन बार बेगार ले सकता था। कृषक की मृत्यु के पश्चात सामन्त उसके पुत्र से एक बार भूमि का दोगुना किराया लेता था। यदि कोई कृषक अपनी भूमि बेचता था तो उस भूमि का जो मूल्य प्राप्त होता था, उसका पाचवा भाग उसे सामन्त को देना पडता था। कृषक प्रतिवर्ष अपनी आय का बारहवा भाग चर्च को देता था। इस प्रकार कृषक अपनी आय का 4/5 भाग कर के रूप मे दे देता था। इसके पश्चात् उसके पास सिर्फ इतना धन बचता था जिससे वह बडी मुश्किल से अपने परिवार का भरण-पोषण करता था।

(4) सैनिक असतोष—सैनिको म व्याप्त असतोष भी फ्रास की राज्य क्रान्ति का मुख्य कारण बना। उस समय किसानो को भी सेना मे भर्ती किया जाता था। जिनकी स्थिति काफी दयनीय थी। कठोर अनुशासन, कम वेतन और खराब भोजन आदि असुविधाओ के कारण सैनिको के असन्तोष मे निरन्तर वृद्धि होती जा रही थी। सेना म कुलीन वर्ग का लडका अयोग्य होते हुए भी उच्च पद पर नियुक्त कर दिया जाता था, जबकि साधारण वर्ग के सैनिको के योग्य होते हुए भी उन्हे उच्च पद पर नियुक्त नही किया जाता था। सेना मे उच्च पदो पर अयोग्य व्यक्तियो की नियुक्ति होने से सैनिकों के मन म उनके प्रति कोई सम्मान नही था। फ्रास के सैनिक रूसो के विचारो का अध्ययन कर रहे थे। इसके अतिरिक्त फ्रास की सेना मे प्रजातन्त्रवादी विचारधारा का तेजी से प्रसार हो रहा था।

(5) वैदेशिक घटनाएँ—(i) इगलैड का प्रभाव—फ्रास का सबसे बडा प्रतिद्वन्दी इगलैण्ड था। इगलण्ड म कुछ वर्षों पूर्व ही जनता के प्रयासों से वैधानिक सरकार की स्थापना हो चुकी थी। इगलैण्ड के सम्राट को बाध्य होकर जनता की माग को स्वीकार करनी पडी। वहा द्विसदनात्मक शासन व्यवस्था लागू की गई। जिसके अनुसार राजा के अधिकारो को सीमित कर दिया गया और सभी को व्यक्तिगत स्वतन्त्रता प्रदान की गई। अपने पडौसी देश की भाति फ्रासीसी जनता ने भी राजा की नीति के विरुद्ध क्रान्ति करने का निश्चय किया।

(ii) आयरलैण्ड का प्रभाव—आयरलण्ड की जनता पर वहा का सम्राट एक शताब्दी से अधिक समय तक अत्याचार करता रहा। परिणामस्वरूप वहां की जनता ने 1779–1782 निरकुश शासन के विरुद्ध आदोलन किया। जिसके कारण उन्हे काफी सुविधाएँ प्राप्त हुई। इस घटना ने फ्रास को भी अपने कष्टो से मुक्ति प्राप्त करने के लिये आन्दोलन करने के लिये प्रेरित किया।

(iii) सप्तवर्षीय युद्ध का प्रभाव—सप्तवर्षीय युद्ध मे इगलण्ड ने फ्रास को बुरी तरह से पराजित किया था। जिसके कारण फ्रास का साम्राज्य घटा। उसकी अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र म जो प्रतिष्ठा बनी हुई थी उसे काफी धक्का पहुचा और युद्ध म

काफी धन खर्च हुआ। इसलिये फ्रांस की आर्थिक दशा शोचनीय हो गई। इस युद्ध में फ्रांस की असफलता ने शासक की दुर्बलता को स्पष्ट कर दिया। इतना ही नहीं इसमें विश्व के सामने भी फ्रांस की शक्ति भी स्पष्ट हो गई। युद्ध में पराजय का कारण फ्रांसीसी जनता ने शासकों की अयोग्यता को माना और उन्हें सिंहासन से हटाने का निश्चय किया।

(iv) अमेरिका की क्रांति का प्रभाव—अमेरिका के स्वतन्त्रता संग्राम ने भी फ्रांस को क्रांति करने की प्रेरणा दी। उत्तरी अमेरिका पर इंगलैण्ड का अधिकार था। यहाँ पर इंगलैण्ड द्वारा भयंकर अत्याचार किये जा रहे थे और वहाँ की जनता का शोषण किया जा रहा था। इसलिये उत्तरी अमेरिका के उपनिवेशों ने ब्रिटिश साम्राज्य से मुक्ति प्राप्त करने के लिये विद्रोह कर दिया। अन्त में 1787 ई० में अमेरिका ने ब्रिटिश दासता से स्वतन्त्रता प्राप्त की।

फ्रांस इंगलैण्ड से सप्तवर्षीय युद्ध की पराजय का बदला लेना चाहता था, इसलिये फ्रांस के शासक ने हजारों सैनिकों और स्वयं सेवकों को अमेरिका की स्वतन्त्रता में सहायता देने के लिये भेजे थे। अमेरिका के स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेकर लौटे हुए सैनिकों ने फ्रांस की जनता को क्रांति करने की प्रेरणा दी। क्योंकि उन पर अमेरिका के स्वतन्त्रता संग्राम का काफी प्रभाव पड़ा था। लौटे हुए फ्रेंच सैनिकों ने कहा कि जब वे लोग अमेरिका को दासता से स्वतन्त्र करवा सकते हैं तो अपने देश में अत्याचारों का विरोध निश्चित रूप से कर सकते हैं। अमेरिका स्वतन्त्रता संग्राम पर फ्रांस की सरकार का बहुत अधिक धन खर्च हुआ। जिसके कारण फ्रांस का राजकोष खाली हो गया। सम्राट ने आर्थिक व्यवस्था में सुधार लाने का प्रयास किया परन्तु उसे सफलता नहीं मिली। अब फ्रांसीसी जनता के सामने क्रांति के सिवाय अन्य कोई विकल्प नहीं था।

(6) बौद्धिक क्रांति—फ्रांस की जनता में उपरोक्त कारणों से भयंकर असंतोष व्याप्त था। उस समय के फ्रांस के विचारकों और लेखकों ने उस व्याप्त असंतोष को अपने लेखों में प्रकाशित कर जनता को क्रांति करने के लिये प्रोत्साहित किया। केटलबी ने लिखा है कि "फ्रांस के लेखकों ने वहाँ की जनता को क्रांति करने के लिये प्रोत्साहित किया। इस काल में ऐसे साहित्य का सृजन हुआ, जो गोला बारूद के समान राज्य को नष्ट कर सकता था। इससे पूर्व क्रांति इतनी शान्ति और सूक्ष्मता से कभी सृजित नहीं हुई थी।

फ्रांस के तत्कालीन विचारकों में मान्टेस्क्यू, वाल्टेयर, रूसो और दिदरो का नाम उल्लेखनीय है।

(1) माटेस्क्यू (1689–1755 ई०)—माटेस्क्यू 1689 ई० में एक कुलीन परिवार में पैदा हुआ था। वह कानून द्वारा सर्वसत्ता में विश्वास करता था। वह राजा के दैविक सिद्धान्त का विरोधी था। उसने कहा था कि राजा ईश्वर

क्रान्ति नहीं होकर आवश्यकता की उपज है। वह फ्रांस की शासन व्यवस्था विरोधी था। उसे इंगलैण्ड की शासन व्यवस्था बहुत अच्छी लगी।

माटेस्क्यू ने "विधि की आत्मा" (The Spirit of law) नामक पुस्तक लिखी, जिसमे उसने वैधानिक शासन की स्थापना पर अधिक जोर दिया। उसका यह मानना था कि कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और न्यायपालिका पर अलग-अलग व्यक्तियों का नियन्त्रण होना चाहिये। यदि इन तीनों पर एक ही व्यक्ति का अधिकार रहेगा, तो उससे शासन व्यवस्था नष्ट हो जायेगी। इस ग्रन्थ मे उसने राजा के दैविक अधिकारों की कटु आलोचना की और जनता को राजा के निरंकुश शासन को उखाड फेंकने के लिये क्रान्ति करने के लिये प्रोत्साहित किया।

(ii) वाल्तेयर (1694–1778)—वाल्तेयर उस समय का महान लेखक, कवि एवं प्रसिद्ध विचारक था। उसका जन्म मध्यम वर्ग के परिवार मे हुआ था। उसकी शैली व्यंगात्मक थी। वह प्रजातन्त्र का समर्थक नहीं था। उसने निरंकुश शासन और चर्च मे व्याप्त बुराइयों का विरोध किया। परिणामस्वरूप उसे फ्रांस छोड़कर इंगलैण्ड जाना पड़ा। इसके चले जाने के पश्चात् भी उसके विचारों का प्रसार फ्रांस मे होता रहा। उसका मानना था कि पुराने जमाने को मिटाने के पश्चात ही नवीन युग की आधार शिला रखी जा सकेगी।

(iii) रूसो (1712–1778 ई०)—क्रान्ति की भावना का प्रादुर्भाव करने का श्रेय रूसो को दिया जाता है। यह शासक वर्ग की आलोचना करते हुए जन साधारण के समक्ष नवीन युग का चित्र भी प्रस्तुत करता था। उसका जन्म 1712 ई० मे एक घड़ी साज के घर में हुआ। वाल्तेयर बुद्धि प्रधान लेख लिखता था, जबकि रूसो भावना प्रधान। वह एक नवीन समाज का गठन करना चाहता था।

रूसो ने 1762 में "सामाजिक संविदा (Social Contract) नामक ग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थ ने राजतन्त्र को धराशायी करने मे महत्वपूर्ण योगदान दिया। यह ग्रन्थ उस समय बहुत प्रसिद्ध हुआ। रूसो ने ग्रन्थ के आरम्भ मे लिखा है कि "मनुष्य स्वतन्त्र उत्पन्न होते हैं पर वे सर्वत्र जंजीरो से जकड़े हुए पाये जाते हैं। कुछ लोग अपने को दूसरों का मालिक समझते हैं, पर वस्तुत वे दूसरो की अपेक्षा अधिक गुलाम होते हैं।"

रूसो ने अपनी पुस्तक में निरंकुश राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था का विरोध किया। उसका यह मानना था कि जनता की इच्छा ही सर्वोपरि होती है, इसलिये शासन की सम्पूर्ण शक्ति किसी एक व्यक्ति अथवा वर्ग के हाथ में न होकर सम्पूर्ण जनता के हाथ में होनी चाहिये। उसके अनुसार सार्वभौम सत्ता जनता की इच्छा में निहित होती है। रूसो ने इन विचारों को "सामान्य इच्छा" (General will) की संज्ञा दी।

रूसा के अनुसार मूल संविदा वह थी जिसके द्वारा राज्य का प्रादुर्भाव हुआ था। समाज के सभी व्यक्तियों ने मिलकर एक समझौता किया था। उस समझौते के अनुसार एक व्यक्ति को राजा बनाया गया था। जिसने जनहित में शासन संचालन करने की प्रतिज्ञा की थी। अब राजा ने इस मौलिक समझौते का उल्लंघन कर निरंकुश रूप से शासन करना प्रारम्भ कर दिया, जिसे अब जनता स्वीकार नहीं कर सकती थी।

रूसो के इन विचारों ने जनता को क्रान्ति करने के लिये प्रोत्साहित किया। उसके विचारों के कारण फ्रांस की राज्य क्रान्ति में नव चेतना जाग्रत हुई। समानता, स्वतन्त्रता और विश्व-बन्धुत्व की भावना ही फ्रांस की राज्य क्रान्ति के मूल आधार थे। इसलिये नेपोलियन ने कहा था कि 'यदि रूसो का अविर्भाव नहीं होता तो फ्रांस की राज्य क्रान्ति कभी नहीं होती।"

(iv) दिदरो (1713–1784)—फ्रांस की राज्य क्रान्ति की ज्वाला को प्रज्ज्वलित करने में दिदरो ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। दिदरो ने एक विशाल विश्व कोष (इनसाइक्लोपीडिया) नामक ग्रन्थ लिखा, जो 1750–1760 के बीच प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थ में उसने विश्व प्रसिद्ध विद्वानों एवं वैज्ञानिकों की जीवनियों का वर्णन किया। फ्रांसीसी जनता ने इस विश्व-कोष में सकलित महानपुरुषों की जीवनियां पढ़ी तो जनता प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकी। अब फ्रांसीसी जनता ने विश्व कोष में संकलित महापुरुषों के उच्च आदर्शों पर चलने का प्रयास किया। उन राजनीतिक विचारकों के विचारों से फ्रांसीसी जनता में क्रान्ति की भावना प्रस्फुटित हो रही थी। यही कारण था कि फ्रांसीसी सरकार ने दिदरो को जेल में डाल दिया, परन्तु उसका विश्व कोष जनसाधारण को क्रान्ति की ओर अग्रसर करता रहा।

(v) अर्थशास्त्रियों का योगदान—उस समय क्वेसने और तुर्जो आदि प्रसिद्ध अर्थ शास्त्रियों ने सरकार की आर्थिक नीति की कटु आलोचना की और जनता को क्रान्ति करने के लिये उत्तेजित किया। इन दोनों अर्थ शास्त्रियों ने व्यापार पर सरकारी नियन्त्रण हटाने की अपील की और मुक्त व्यापार नीति को राज्य के हित में बताया।

(7) तत्कालीन कारण—यद्यपि 1789 ई० में फ्रांस में क्रान्ति के लिये वातावरण तैयार हो चुका था, फिर भी यह सत्य है कि कोई भी वर्ग क्रान्ति करने के लिये तैयार नहीं था। फ्रांस की राज्य क्रान्ति किसी निश्चित योजना का परिणाम नहीं थी, अपितु कुछ तात्कालिक कारणों से यह क्रान्ति प्रस्फुटित हो गई थी। ये तात्कालिक कारण निम्नलिखित थे —

(i) लुई सोलहवें की अदूरदर्शिता— फ्रांस के तत्कालीन राजा लुई सोलहवें के मूर्खतापूर्ण कार्यों ने क्रान्ति को अनिवार्य बना दिया। यदि लुई दूरदर्शी और

बुद्धिमान होता तो क्रान्ति को कुछ समय के लिये टाला जा सकता था। डी-टोक्यूविले ने लिखा है कि "इस रक्त रंजित क्रांति का समस्त उत्तरदायित्व लुई चौदहवें पर था। युद्ध में वह दृढ़ता और समझदारी से काम लेता तो क्रान्ति नहीं होती।'

वास्तव में लुई की अयोग्यता, अनुभवहीनता तथा विलासिता ने 1789 में ही क्रांति को अवश्यम्भावी बना दिया। क्रान्ति के लिये वातावरण पहले से तैयार हो चुका था। लुई में शासन करने की योग्यता का अभाव था। शासन कार्यों में वह रुचि नहीं लेता था। वह भीरु स्वभाव और अस्थिर प्रकृति का व्यक्ति था। लुई 'खाओ पीओ और मौज उड़ाओ' के सिद्धांत के आधार पर अपना जीवन व्यतीत कर रहा था।

(ii) एन्त्वायनेत का प्रशासन में हस्तक्षेप—लुई के जीवन पर उसकी रानी एनत्वायनेत का बहुत अधिक प्रभाव था। लुई एनत्वायनेत के इशारों पर नाचता था। रानी राज्य के कार्यों में अनुचित हस्तक्षेप करती थी। एनत्वायनेत का राज्य प्रबन्ध पर पूर्ण नियन्त्रण था। साम्राज्य के कर्मचारियों की नियुक्ति तथा उनकी तबदीली उसकी अनुमति से की जाती थी। उन्हें उन्नत पद देने, पदच्युत करने तथा पुनः उदासीन करने में भी रानी का हाथ रहता था। रानी का फिजूल खर्चा बहुत अधिक था। वह बहुमूल्य वस्तुएँ खरीदने में और अपने मित्रों को उपहार देने में सरकार का पैसा पानी की तरह खर्च करती थी।

फ्रांस की जनता की निगाह में सारी बुराइयों की जड़ रानी एनत्वायनेत थी। देश में व्याप्त भ्रष्टाचार, सुधार योजनाओं की असफलता और करों का भारी बोझ आदि के लिये जनता ने उसे दोषी माना। यदि इसी समय एनत्वायनेत के बजाय कोई दूसरी रानी होती तो क्रांति भी कुछ समय के लिये टल जाती। जनता में पहले से भयंकर असंतोष व्याप्त था। एनत्वायनेत ने इस असंतोष को पराकाष्ठा पर पहुंचा दिया। जिसके फलस्वरूप क्रांति प्रारम्भ हो गई।

(iii) शोचनीय आर्थिक दशा—फ्रांस की क्रान्ति का एक अन्य तात्कालिक कारण देश की शोचनीय आर्थिक दशा थी। लुई सोलहवें के समय राज्य की आर्थिक दशा बहुत शोचनीय थी। 1788 ई० में राज्य पर इतना कर्जा हो गया था कि उसकी आमदनी से भी अधिक पैसा ब्याज का देना पड़ता था।

लुई चौदहवें ने अपने समय में कई युद्ध लड़े, जिसमें अपार धन खर्च हुआ। उसके समय फ्रांस पर वार्षिक आमदनी का 16 गुना कर्जा हो गया था। लुई पन्द्रहवें ने सप्तवर्षीय युद्ध में भाग लेकर फ्रांस की आर्थिक दशा को और शोचनीय बना दिया। इसके अतिरिक्त कई उपनिवेश फ्रांस की अधीनता से स्वतन्त्र हो गये। इस लिये अब फ्रांस के लिये एक कठिन समस्या पैदा हो गई कि वह क्षति पूर्ति कहां से करे। परिणामस्वरूप फ्रांस पर कर्जा निरंतर बढ़ता रहा। लुई सोलहवें ने अमेरिका के स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया। इस संग्राम में फ्रांस का अपार धन व्यय हुआ।

इस प्रकार लुई सोलहवें ने आर्थिक सकट मे और वद्धि की, और फ्रांस का राजकोष रिक्त हो गया। वहा की सरकार दिवालिया हो गई और सरकार को ऋण मिलना बद हो गया।

(iv) सुधारों की ओर ध्यान न देना - लुई सोलहवें ने देश की आर्थिक दशा मे सुधार लाने के लिये पहले अनेक योजनाऐं प्रारम्भ की लेकिन बाद मे उन योजनाओ को छोड दिया। जिससे जनता म असतोष बढा। केटलबी ने लिखा है कि लुई सोलहवें ने पहले सुधार करने की चेष्टा की किन्तु जब उसे इस काय म असफलता मिली तो क्रान्ति अवश्यम्भावी हो गई।

लुई सोलहवें पर चापलूस दरबारियो और उसकी रानी का अत्यधिक प्रभाव था। वह इन्ही से परामश लेकर शासन का सचालन कर रहा था। इनका परामश जनहित के अनुकूल नही था। इसलिये लुई एक के बाद एक गलतिया करता रहा। लुई ने शासक बनते ही तुर्जो नामक प्रसिद्ध अथ शास्त्री को वित्तमन्त्री बनाया था। जिसने 20 महीने के अल्प समय म फ्रास की आर्थिक दशा मे अनेक सुधार कर जन साधारण का विश्वास प्राप्त कर लिया। लेकिन दरबारियो और अपनी रानी के प्रभाव म आकर लुई ने तुर्जो को मत्री पद से हटा दिया।

इसके पश्चात् लुई ने प्रसिद्ध अथशास्त्री नेकर को अथ मत्री के पद पर नियुक्त किया। उसने भी तुर्जो की भाति अनेक सुधार किये। 1781 ई० म उसने राज्य के आय-व्यय का विवरण समाचार पत्रो मे प्रकाशित करवा दिया। जब जनता ने इस विवरण को पढा तो उसे राजमहल के फिजूलखर्चो का पता चल गया। इस पर लुई सोलहवें ने अपने दरबारियो के प्रभाव मे आकर नेकर को भी अथ मत्री के पद से पदच्युत कर दिया। नेकर के हटते ही सुधारो का काल समाप्त हो गया और जनता के लिये क्रान्ति का माग प्रशस्त हो गया।

नेकर के पश्चात लुई सोलहवें ने केलोन को अथ मत्री के पद पर नियुक्त किया। उसने यह प्रस्ताव रखा कि बजट के घाटे की पूर्ति करने के लिये सम्पूण फ्रासीसी जनता पर सामान्य कर लगाया जाये। इस पर कुलीन वग के व्यक्तियो ने इस कर का विरोध किया क्योकि यह वग सभी प्रकार के करो से मुक्त था। केलोन ने राजा के समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि विशिष्ट व्यक्तियो की बठक बुलाई जाय, ताकि सभी व्यक्तियों से समान कर वसूल कर देश की आर्थिक दशा म सुधार किया जा सके। राज्य व्यवस्था मे किसी प्रकार का परिवतन करने के लिये यह आवश्यक था कि इस्टेटस जनरल की मीटिंग बुलाई जाय। इस पर केलोन ने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया।

इस्टेटस जनरल एक ससदीय सस्था थी। 1302 ई० म इस सस्था की स्थापना हुई थी। इस सस्था का मुख्य काय राजा को सलाह देना था। यह राजा की इच्छा पर निभर करता था कि वो इसकी बठक बुलाये या न बुलाये। 1610

ई० तक नियमित अनियमित रूप से राजा इस सस्था की बैठक बुलाता रहा, लेकिन उसके बाद 175 वर्षों तक इसकी कोई मीटिंग नही बुलाई गई। अत यह सस्था मृतप्राय हो चुकी थी। 1788 ई० मे इस सस्था के अधिवेशन बुलाने की माग इतनी प्रबल रूप से उठी कि अब राजा के लिये टालना असम्भव था।

लुई सोलहवें ने कॅलोन के पश्चात ब्रियन को अर्थ मन्त्री के पद पर नियुक्त किया। इसने बजट के घाटे की पूर्ति करने के लिये कुछ नये कर लगाने का सुझाव दिया। किन्तु पेरिस की पार्लेमा ने इन नये करो का विरोध किया एव इन करो को अपने रजिस्टर मे दर्ज करने से मना कर दिया। पार्लेमा ने यह तक दिया कि बिना इस्टेट्स जनरल की अनुमति के राजा को नये कर लगाने का अधिकार नही है। इस पर राजा ने पार्लेमा को भग कर दिया किन्तु जनता द्वारा पार्लेमा का समर्थन किया गया। फलस्वरूप राजा को पार्लेमा को दुबारा आमन्त्रित करना पडा। पार्लेमा ने फिर अपनी पुरानी माग को दोहरा दिया। प्रान्तों की पार्लेमाओ ने भी पेरिस की पार्लेमा का समर्थन किया। अन्त मे राजा को बाध्य होकर 1788 ई० मे इस्टेट्स जनरल का अधिवेशन बुलाने की माग स्वीकार करनी पडी।

जनवरी 1789 ई० मे उत्तेजनापूर्ण वातावरण में इस्टेटस जनरल के चुनाव करवाये गये। 5 मई 1789 ई0 में वर्साय के महल मे इस सभा का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। यही से फ्रास की राज्य क्रान्ति प्रारम्भ होती हैं। इस अधिवेशन से फ्रास के इतिहास में एक ऐसा अध्याय प्रारम्भ हुआ, जिसकी कोई कल्पना नही कर सकता था। इस समय नेकर को पुन मन्त्रि परिषद के प्रधान के पद पर नियुक्त किया गया और आगामी बैठक की तैयारी की जाने लगी।

क्रान्ति की मुख्य घटनायें—लुई सोलहवें ने राज्य की आर्थिक दशा मे सुधार करने के लिये टरगो व नेकर को अर्थ मन्त्री के पद पर नियुक्त किया था। 5 मई 1789 ई० को आर्थिक परिस्थितियो से विवश होकर लुई को स्टेटस जनरल की बैठक बुलानी पडी। इस सस्था की पिछले 175 वर्षों से कोई बैठक नही बुलाई गई थी। लुई सोलहवें का यह मानना था कि स्टेटस जनरल राज्य द्वारा लगाये गये नये करो पर अपनी अनुमति दे देगी और शान्तिपूर्वक इसका अधिवेशन समाप्त हो जायेगा।

(1) स्टेटस जनरल का अधिवेशन—इस सभा के अधिवेशन ने फ्रास की राज्य को एक नई प्रेरणा दी। 5 मई 1789 ई० को स्टेटस जनरल का प्रथम अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। इस सभा मे तीन सदन थे। पहला कुलीन वर्ग दूसरा पुरोहित वर्ग और तीसरा साधारण सदन था। इस सभा के अधिवेशन में लुई सोलहवें ने यह आदेश दिया कि तीनो सदन पृथक-पृथक रूप से कार्य करें। इस पर साधारण सदन के सदस्यों ने यह माग की कि तीनो सदनो के सदस्य एक साथ बैठकर

बहुमत स निणय करें, परन्तु प्रथम (सामन्त) और द्वितीय (पुरोहित या पादरी वग) सदन के सदस्या ने इस माग का विरोध किया।

17 जून 1789 ई० को साधारण सदन के सदस्या ने अपन आपको राष्ट्र का प्रतिनिधि घोषित करते हुए एक नया सदन 'राष्ट्रीय महासभा' का निर्माण किया। 19 जून को दूसरे सदन के सन्स्या (पादरी वग) न बहुमत से राष्ट्रीय महासभा म मिलने का निश्चय किया। 20 जून को लुई सोलहवें न राष्ट्रीय महा सभा क सदस्या को स्टेटस जनरल म निकाल दिया। इस पर राष्ट्रीय महासभा के सदस्यो न टेनिस कोट के मैदान मे यह प्रतिज्ञा की कि राष्ट्र म वधानिक सरकार की स्थापना होने तक हम डटे रहेगे। *सम्राट न स्टेटस जनरल को अधिवेशन स्थगित* करने का आदेश दिया। इस पर राष्ट्रीय महासभा क नेता काउण्ट मिराबो न कहा कि "हम यहा जनता की इच्छा से हैं। जब तक हम बन्दूक के कुन्दो से नहीं हटाया जायेगा, हम नहीं हटेंगे।' विवश होकर लुई सोलहवें का महासभा का निणय स्वीकार करना पडा और तीनो सदनो का सयुक्त अधिवेशन बुलाना पडा। जनता की राजा के विरुद्ध यह प्रथम विजय थी।

(ii) **बेस्टाइल के कारागह का पतन जुलाई 1789**—महासभा की काय *वाही स घबराकर राजा ने अपनी सुरक्षा के लिये विदेशी सनिको को नियुक्त किया।* इस समय जनता मे यह अफवाह फली कि राजा क्रान्ति का दमन करने के लिये विदेशी सना की सहायता ले रहा है। इस अफवाह के फलने ही भूखी नगी और निहत्थी बेस्टाइल की जनता ने वहाँ के प्राचीन किले को नष्ट करने का निश्चय किया। अब जनता किले की ओर बढी। सनिक दृष्टिकोण स इस किले का कोई महत्व नही था, परन्तु जेल के रूप म इस किले की काफी बदनामी हो चुकी थी। इसे जनता अत्याचार का प्रतीक समझती थी। यह जेल उस समय बूर्बों वश के *निरकुश शासन का प्रतीक बनी हुई थी,* इसलिये क्रान्तिकारी लोग इस किले पर हमला करन के लिये निहत्थे रवाना हुये। किले के रक्षकों ने तोपो स बारूद के गोले बरसाये, परन्तु जनता न क्रुद्ध होकर बेस्टाइल की ईंट से ईंट उखाड दी और राज नतिक कदियो को रिहा कर दिया। बेस्टाइल के कारागृह का पतन राजनीतिक दृष्टिकोण से बहुत महत्व रखता था। यह जनता की दूसरी विजय थी।

इतिहासकार फिशर ने इस स्वतन्त्रता के नूतन प्रात काल की सज्ञा दी है। इस कारागह के पतन क पश्चात पेरिस और सम्पूण फ्रास मे क्रान्ति प्रारम्भ हो गई। बेस्टाइल के पतन क साथ ही फ्रास मे निरकुश शासन का प्रतीक सुदृढ दुग नष्ट हो गया। फ्रास में इस दिन को राष्ट्रीय दिवस के रूप म मनाया जाता है और इसी दिन (14 जुलाई) सावजनिक अवकाश रखा जाता है। इस प्रकार इस घटना का फ्रास के इतिहास मे बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। अब सविधान सभा अधिक शक्तिशाली हो गई और क्रान्ति का नतृत्व पेरिस के हाथ म आ गया।

क्रान्ति की प्रगति—क्रांति का प्रभाव दिनों दिन बढ़ता ही रहा। इस क्रान्ति में कृषक वर्ग ने भी भाग लिया। किसानों ने बदले की भावना से प्रेरित होकर सामन्तों के घर लूट लिये और उनके दुर्गों को धराशायी कर दिया। जनता की भारी भीड़ ने क्रुद्ध होकर टैक्स वसूल करने वाले व्यक्तियों को पानी में डुबो दिया। इस प्रकार के अशान्त वातावरण में 4 अगस्त को राष्ट्रीय सभा का अधिवेशन बुलाया गया। यह अधिवेशन फ्रांस के इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

इस अधिवेशन में कई प्रस्ताव पारित किये गये। सामन्तों व धर्माधिकारियों के विशेष अधिकार समाप्त कर दिये गये। सामन्त लोगों ने अपनी जान बचाने के लिये विदेशों में शरण ली। देश में आन्तरिक शांति बनाये रखने के लिये राष्ट्रीय रक्षक नियुक्त किये गये। लफायत नामक व्यक्ति को राष्ट्रीय रक्षक दल का नेता बनाया गया, जो कि अमेरिका के स्वतन्त्रता संग्राम में अपनी वीरता का प्रदर्शन कर चुका था। पेरिस का प्रबन्ध नागरिक सभा को सौंप दिया गया।

(i) सम्राट को पेरिस आने के लिये बाध्य करना—बेस्टाइल जेल का पतन होने के पश्चात् भी जब लुई सोलहवां पेरिस में नहीं आया तो जनता को यह सन्देह होने लगा कि कहीं वह वर्साय में नया षड्यन्त्र तो नहीं रच रहा है, इसलिये 5 अक्टूबर 1789 ई० को दस हजार स्त्रियों का एक दल राजा के महल की ओर रवाना हुआ। जिसका उद्देश्य राजा को सपरिवार पेरिस की जनता के सामने लाना था। स्त्रियों के इस दल ने वर्साय के शीशमहल को घेर लिया, जिसमें राजा अपने परिवार सहित रहता था। 6 अक्टूबर को स्त्रियों का यह दल राजा, रानी और राजकुमार को पकड़ कर पेरिस ले आया। जब लुई सोलहवें को यह दल पेरिस ला रहा था, तो उस समय जनता प्रसन्नता से चिल्ला चिल्लाकर कह रही थी कि "हमारे पास खाना पकाने वाला, पकाने वाले की स्त्री है और छोटा बावर्ची लड़का भी, अब हमको रोटी मिलेगी।"

(ii) जनता के मौलिक अधिकारों की घोषणा—अगस्त महीने में राष्ट्रीय महासभा का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ, जिसमें कई महत्वपूर्ण विषयों पर निर्णय लिये गये। कुलीन वर्ग और पादरी वर्ग के विशेषाधिकार समाप्त कर दिये गये। धार्मिक कर तथा खेती की उपज का कर समाप्त कर दिया गया। शिकार सम्बन्धी कानून हटा दिया गया। इसके पश्चात महासभा ने मनुष्य के अधिकारों की घोषणा की। जनता को सभी प्रकार के अधिकार प्रदान किये गये। जनता की प्रभुसत्ता को मान्यता दी गई।

इस घोषणा पत्र के अनुसार सभी मनुष्यों को स्वतन्त्रता प्रदान की गई। इस तरह की व्यवस्था की गई थी यदि एक मनुष्य अपनी स्वतन्त्रता का उपभोग करे तो उससे दूसरे मनुष्य की स्वतन्त्रता में किसी तरह की बाधा उपस्थित न हो। प्रत्येक व्यक्ति को भाषण और लेखन की स्वतन्त्रता प्रदान की गई। वह कानून द्वारा

निश्चित सीमा का उल्लघन नही कर सकता था। अब किसी भी व्यक्ति को मनमाने ढग से कद नही किया जा सकता था।

इस घोषणा पत्र म 17 धाराएँ थी। इन धाराओ पर अमेरिकन सविधान का बहुत अधिक प्रभाव था। इस घोषणा पत्र म जनता की प्रभुसत्ता को बहुत अधिक महत्व दिया गया था। इस प्रकार इस घोषणा पत्र ने क्रान्ति का वास्तविक उद्देश्य प्रस्तुत कर दिया। ग्राट एव टेम्परले ने लिखा है कि 'यह घोषणा क्रान्ति के उज्ज वल रूप का परिचालक है, इसके बिना यह यूरोपीय इतिहास की इतनी बडी घटना नही होती।"

इस घोषणा पत्र म उन सिद्धान्तो का वणन था, जिसके आधार राष्ट्रीय महासभा फ्रासीसी शासन व्यवस्था म सुधार कर सकती थी। इस पत्र म केवल मानव क अधिकारो की घोषणा की गई थी, कत्तव्यो की नही। इसमें नई मागो को प्रोत्साहन दिया गया था। इसके अतिरिक्त एक अच्छी शासन प्रणाली के राजनीतिक, सवधानिक तथा सामाजिक अधिकारो का वणन किया गया था।

इस घोषणा पत्र मे मानव के ऐसे अधिकारो की घोषणा की गई थी जिसे दुनिया के किसी भी कोन म लागू किया जा सकता था। कही भी निरकुश राज तन्त्रात्मक शासन व्यवस्था या सामन्तो के विशेषाधिकारो से मुक्त होने के लिये इस घोषणा पत्र का प्रयोग किया जा सकता था। इसम नागरिक अधिकारो का भी वणन किया गया था। फ्रास के इस घोषणा पत्र ने अन्य यूरोपियन देशो को एक भयकर चुनौती दी। 19वी शताब्दी के अन्तिम वर्षों तक इस घोषणा पत्र को 'उदारता का चाटर' समझा जाता रहा।

(iii) राजा द्वारा भागने का प्रयास—6 अक्टूबर 1789 ई० का सम्राट लुई को बन्दी बनाकर तुईलरी के महल म रखा गया था। 1791 ई० तक नये सविधान का निर्माण हो चुका था। इस नये शासन विधान में राजा के अधिकार बहुत कम कर दिये गये, जिस लुई सालहवें ने विवश होकर स्वीकार कर लिया। अब राष्ट्रीय महासभा अपना शासन विधान फ्रास म कठोरता से लागू करना चाहती थी।

इस समय राजा के परिवार के लोगो ने एक योजना बनाई कि फ्रास के बाहर क्रान्ति विरोधी लोगो से सहायता प्राप्त की जाय, फिर एक सेना का निर्माण कर नई ससदीय सरकार को समाप्त कर दिया जाये। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये 1791 ई० म लुई अपनी पत्नी और राजकुमार के साथ भेष बदल कर रात्रि म तुईलरी महल से भाग निकला। वह फ्रास की सीमा को छोडकर भागना चाहता था कि वरेनीज नामक स्थान पर उसे किसी ने पहचान लिया। उसे गिरफ्तार कर पेरिस लाया गया। अब उसकी स्थिति नजरबन्द कदी जैसी हो गई थी। जनता का राजा के प्रति विश्वास समाप्त हो चुका था। इस घटना ने क्रान्ति को एक नया मोड

दिया। अब फ्रांस में प्रजातन्त्रात्मक शासन व्यवस्था की स्थापना करने के प्रयास प्रारम्भ हुए।

(iv) व्यवस्थापिका सभा का पतन—नये संविधान के अनुसार व्यवस्थापिका सभा का निर्वाचन हुआ। 1 अक्टूबर 1791 को नई व्यवस्थापिका सभा की बैठक बुलाई गई। इस समय व्यवस्थापिका सभा को विदेशों के साथ युद्ध में उलझ जाना पड़ा। यूरोप के शासक फ्रांस की क्रांति को कुचलने के लिए लुई को सहायता देने के लिए प्रयास कर रहे थे। आस्ट्रिया और प्रशा ने फ्रांस से भागे हुए कुलीनों की पूरी सहायता की। इस समय कुछ घटनायें इस प्रकार घटीं कि इनसे फ्रांस और आस्ट्रिया में युद्ध प्रारम्भ हो गया। इस युद्ध में प्रशा ने आस्ट्रिया को सहायता दी। फलस्वरूप जगह जगह पर फ्रांसीसी क्रांतिकारी सेनाओं को पराजय हाथ लगी।

इस युद्ध के दौरान प्रशा के सेनापति ने फ्रांसीसी क्रांतिकारी सेना के नेता को चेतावनी दी कि यदि लुई सोलहवें को कुछ हो गया तो पेरिस का नामोनिशान मिटा दिया जायगा। इससे फ्रांसीसी जनता को यह पता चल गया कि हमारा राजा दुश्मनों से मिला हुआ है और क्रांति को कुचलकर फिर से निरंकुश राजतन्त्र कायम करना चाहता है। अब क्रांतिकारी नेताओं ने फ्रांस की रक्षा के लिये लुई सोलहवें को हटाने का निश्चय कर लिया। अब मांग में व्यवस्थापिका सभा के स्थान पर वयस्क मताधिकार के आधार राष्ट्र पर नेशनल कन्वेंशन का निर्वाचन हुआ। इस निर्वाचन के कारण क्रांति ने एक नये युग में प्रवेश किया।

(v) नेशनल कन्वेंशन का अधिवेशन—नेशनल कन्वेंशन में 782 सदस्य थे। इसमें उग्रवादियों और गणतन्त्र के समर्थक सदस्यों का बहुमत था। 21 सितम्बर 1792 ई० में नेशनल कन्वेंशन का पहला अधिवेशन बुलाया गया।

नेशनल कन्वेंशन के सामने लुई सोलहवें के भविष्य पर निर्णय लेना, देश की गृह युद्ध एवं विदेशी आक्रमण से रक्षा करना आदि कई समस्याएँ थीं। कन्वेंशन ने अपने प्रथम अधिवेशन में कई महत्वपूर्ण निर्णय लिए। फ्रांस में निरंकुश राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था को समाप्त करके गणतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था स्थापित करने की घोषणा की गई। लुई पर देश द्रोह का अभियोग लगाकर नेशनल कन्वेंशन ने बहुमत से यह निर्णय लिया कि लुई को मृत्यु दण्ड दिया जाय। 21 जनवरी 1793 ई० में लुई को गिलोटीन पर चढ़ा दिया गया और उसका सिर धड़ से अलग कर दिया गया। इस प्रकार फ्रांस राजतन्त्र का अन्तिम अवशेष भी समाप्त हो गया और गणतन्त्र की स्थापना हुई।

(vi) फ्रांस में तानाशाही राज्य—नवम्बर 1792 ई० में फ्रांस के क्रान्तिकारियों ने गणतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था की घोषणा की और यह प्रचार किया कि यह गणतन्त्र स्वतन्त्रता, समानता एवं विश्व बन्धुत्व के सिद्धान्तों पर आधारित है। फ्रांस के क्रांतिकारियों ने कहा कि गणतन्त्र के इन सिद्धान्तों का प्रचार करना वे

अपना कर्त्तव्य समझते हैं। आस्ट्रिया और प्रशा के सम्राटों ने लुई को पुनः फ्रांस का सम्राट बनाने के लिये 1792 ई० में फ्रांस पर आक्रमण कर दिया। इससे फ्रांस की जनता में प्रतिरोध की ज्वाला भड़क उठी और क्रान्तिकारियों ने राजा के समर्थकों को मौत के घाट उतार दिया।

अब क्रांतिकारी परिषद् इस निर्णय पर पहुंची कि राजा और रानी के जीवित रहते हुए फ्रांस में संवैधानिक शासन सफल नहीं हो सकता। 1792 ई० में राष्ट्रीय विधान सभा ने फ्रांस में गणतन्त्र की स्थापना की घोषणा की। इसके पश्चात एक तरफ तो सम्राट लुई सोलहवें पर देशद्रोह का अभियोग लगाकर 21 जनवरी 1793 ई० में उसको फांसी पर लटका दिया गया। उसके कुछ महीनों पश्चात उसकी रानी एन्तवायनत को भी फांसी पर चढ़ा दिया गया और दूसरी तरफ फ्रांस ने आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया। इस युद्ध में फ्रांस के क्रांतिकारियों ने आस्ट्रिया और प्रशा की संयुक्त सेना को बुरी तरह पराजित किया। इस समय फ्रांस में आतंक राज्य आरम्भ हुआ। इस आतंक राज्य के प्रधान दांते और रोब्सपियर थे।

दांते—फ्रांस में राजतन्त्र की समाप्ति के पश्चात भी कुछ लोग ऐसे थे जिन्होंने राजतन्त्र को पुनः कायम रखने के लिये हर सम्भव प्रयास किये। इसी समय फ्रांस में एक नया रिपब्लिक दल का उत्कर्ष हुआ। इस दल का नेता दांते था। दांते का जन्म फ्रांस के मध्यम वर्ग के परिवार में हुआ था। वह श्रमिक वर्ग के हितों का समर्थक था। दांते भाषण देने की कला में प्रवीण था। इसलिये जेकोबिन दल को नेतृत्व प्रदान कर सका। इसके ओजस्वी भाषणों से जनता बहुत प्रभावित थी। इसने अपने भाषणों के माध्यम से प्रजातन्त्र के पक्ष में भारी समर्थन प्राप्त कर लिया।

22 जून 1792 को पेरिस की जनता ने दांते के नेतृत्व में सम्राट के महल को घेरा था। उस दिन जनता ने राजा के विरुद्ध सिर्फ नारे लगाये और कोई हिंसात्मक घटना नहीं घटी। जनता ने राजा को नीचे आने के लिये बाध्य किया। परिणामस्वरूप राजा को क्रान्ति की प्रतीक लाल टोपी पहन कर जनता के सामने आना पड़ा। उसने ऐसा करके बाध्य होकर क्रांति को मान्यता प्रदान की पर उसके हृदय में क्रांति को कुचलने की प्रबल इच्छा थी।

25 जुलाई 1792 ई० को ड्यूक आफ ब्रुंसविक ने क्रांतिकारी जनता को भयभीत करने के लिये राजा के समर्थन में यह घोषणा की कि जो व्यक्ति राजा को नुकसान पहुंचाने का प्रयास करेगा, उससे ऐसा बदला लिया जायेगा कि वह जिन्दगी भर नहीं भूल सकेगा। ड्यूक की इस घोषणा से जनता ने उत्तेजित होकर 10 अगस्त 1792 ई० में राजा के महल पर पुनः हमला कर दिया। इस बार भी केन्द्रित जनता का नेतृत्व दांते कर रहा था। जनता हिंसात्मक कार्य पर उतर आई

और उसने राजा के स्विस अंग रक्षकों को मौत के घाट उतार दिया। परिणामस्वरूप राजा सभा भवन में जाकर छिप गया। इस बार जनता ने महल को लूटा। इस लूट में दांतों को राजा के कमरे में एक लोहे का सन्दूक मिला। इस सन्दूक में प्राप्त पत्रों के आधार पर ही दांते ने नेशनल कन्वेंशन में राजा पर देशद्रोह का अपराध सिद्ध कर दिया और उसे फांसी पर लटका दिया था। महल की लूट के पश्चात चारों तरफ अराजकता फैल गई थी। जनता ने राजा के समर्थकों का भारी संख्या में कत्ल किया। यह घटना सितम्बर के महीने में घटित हुई। दांते अराजकता का लाभ उठा कर तानाशाह बन गया था। उसने कहा था कि साहस के द्वारा ही सम्राट के समर्थकों को भयभीत करके युद्ध में विजय प्राप्त की जा सकती है। दांते की इस नीति पर चलते हुये जनता ने भारी संख्या में राजा के समर्थक लोगों को मौत के घाट उतार दिया। इसके बाद 22 सितम्बर को फ्रांस में गणतन्त्र की स्थापना की घोषणा की गई।

दांते के उपरोक्त कार्यों की समीक्षा करते हुए कई इतिहासकारों ने उसे "रक्त पिपासु' की संज्ञा दी है। यदि हम गम्भीरता से उसके कार्यों का परीक्षण करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वह रक्त-पिपासु नहीं था, अपितु वह तो फ्रांस का एक व्यवहारिक राजनीतिज्ञ था, जिसने कठिन परिस्थितियों में फ्रांस की सुरक्षा की। अन्त में उसे भी आतंक राज्य का शिकार बनना पड़ा।

रोब्सपियर—रोब्सपियर का जन्म 6 मई 1752 ई० को आरासनगर में हुआ था। क्रान्ति से पूर्व वह वकालत का काम करता था। यह रूसो के विचारों से प्रभावित होकर उग्र विचारों का समर्थक बन गया था। 1789 ई० में यह तीसरे सदन का सदस्य चुना गया। इसके बाद यह जन रक्षक समिति का सदस्य बना और अपने उग्र विचारों का प्रसार करता रहा। दांते को मृत्यु दण्ड देकर वह तानाशाह बन गया था। यद्यपि यह जेकोबिन दल का सदस्य था परन्तु उग्र विचारों का होने के कारण राजतन्त्र का भी समर्थक था। इसका मानना था कि यदि शांति के समय में शासन लोकहित पर आधारित होता है तो क्रान्ति के समय में जनहित और आतंक दोनों पर ही आधारित होना चाहिये। उसकी यह भी धारणा थी कि यदि शासक तर्क के आधार पर अपनी जनता पर शासन करता है तो शत्रु को भय के माध्यम से शासित करना चाहिये।

यद्यपि धर्म के क्षेत्र में वह नास्तिक नहीं था परन्तु चर्च का अनुयायी भी नहीं था। उसका राजनीतिक जीवन बड़ा भ्रष्ट था। गणराज्य और आतंक राज्य की सफलता के लिये वह सदाचार को आवश्यक समझता था। 1793 ई० में जब नेशनल कन्वेंशन का तीन गुटों में विभाजन हो गया तो इसका लाभ उठाकर उसने कम्यून के गुट को समाप्त कर दिया। इस कार्य में उसे दांते ने सहयोग दिया था।

जब इस काय मे उसे सफलता मिल गई तो उसने दाते और उसके समथकों पर देश द्रोह का अपराध लगाकर मौत के घाट उतार दिया।

रोसपियर अप्रल 1794 से जुलाई 1794 ई० तक फ्रास पर तानाशाह की तरह शासन करता रहा। इस अल्पकाल म उसने हजारो व्यक्तियो को मौत के घाट उतरवा दिया। 8 जून को उसन परम पुरुष भगवान की प्रतिष्ठा की। इस अवसर पर उसने कहा कि यदि ईश्वर इस ससार म विद्यमान नही है तो उसका आविष्कार करना पडेगा। उसने 10 जून को एक ऐसा कानून बनाया जिससे कन्वेन्शन के किसी भी सदस्य को बन्दी बनाया जा सकता था। जब रोस्पियर ने कन्वेन्शन के सदस्यो को बन्दी बनाना शुरू किया तो इससे कन्वेन्शन के सदस्यो म हलचल मच गई। इस पर कन्वेन्शन के सदस्यो ने रोसपियर को राज्य की रक्षा के भार से वचित कर दिया और उस पर हमला कर दिया। इस आक्रमण म रोब्सपियर के जबडे म गोली लग गई और 28 जुलाई को उसकी मृत्यु हो गई। इस प्रकार रोसपियर का भी वसा ही अन्त हुआ जसा कि उसने दाते का किया था। रोब्स पियर को खुद की प्रशसा बहुत अच्छी लगती थी।

मारा—फ्रास की राज्य क्राति के समय मारा राजतन्त्र का समथक था। इसीलिए उसकी सम्राट लुई सोलहवें के प्रति पूण निष्ठा थी। जब सम्राट को फासी पर चढा दिया गया तो वह गणतन्त्र का समथक बन गया। वह अपने समय का प्रसिद्ध पत्रकार था। उसने लोकप्रिय (The Friend of the People) नामक समाचार पत्र निकाला। जिसने शीघ्र ही जनसाधारण म लोकप्रियता प्राप्त कर ली। वह रोसपियर के उग्र विचारो का समथक थी। उसने लोकप्रिय पत्र के माध्यम से उग्र विचारो का प्रसार किया। माटेस्क्यू की भाति वह भी फ्रास म इगलण्ड जसी शासन व्यवस्था स्थापित करने का पक्षपाती था। उसने इसके लिए फ्रासीसियो को परामश दिया। उसका यह मानना था कि जब तक जनसाधारण म समानता की भावना नही आयेगी तब तक कोई सुधार सभव नही हो सकता। उसने जनता को क्राति पूण काय करने के लिये प्रोत्साहित किया।

वह राजनीतिक व रिपब्लिकन दल का नेता ही नही था, वरन बहुत बडा विद्वान भी था। वह अग्रेजी स्पनिश जमन तथा इटालियन भाषाओ का विद्वान था। इगलैंड म रह कर उसने एम० डी० की उपाधि प्राप्त की। वैज्ञानिक विषयो पर उसने बहुत सी पुस्तकें लिखी। वह अपने समय का प्रसिद्ध चिकित्सा शास्त्री भी था। उसने साहित्यिक एव वैज्ञानिक जीवन म वराग्य लेकर राजनीति मे प्रवेश किया था। निर्दलीय होते हुए भी उसने जन साधारण म बहुत लोकप्रियता प्राप्त की। 1792 ई० म फ्रास का शासक वग उस पर नाराज हो गया और 1793 ई० म एक लडकी ने उसका कत्ल कर दिया।

(vii) डाइरेक्टरी (1796–1799)—आतक राज्य से फ्रास की जनता परेशान हो चुकी थी। 1794 ई० म फ्रास मे एक नये सविधान का निर्माण किया

गया जिसके द्वारा शासन संचालन का भार पाँच आफ डाइरेक्टर्स के हाथ में सौंप दिया गया। इसमें पाँच व्यक्तियों की एक संस्था थी जिसे डाइरेक्टरी कहते थे। डाइरेक्टरी के शासन काल की अधिकांश इतिहासकारों ने कटु आलोचना की है।

एच० जी० वेल्स ने लिखा है कि डाईरेक्टरी प्रशासन इतना कठोर था कि उसे देखकर ऐसा लगता था कि जैसे फ्रांस में कोई क्रान्ति ही नहीं हुई। डाइरेक्टरी ने चार वर्ष तक शासन किया। इस काल को मध्यवर्ग काल के नाम से पुकारा जाता है। डाइरेक्टरी के शासन काल में नेपोलियन बोनापार्ट का उत्कर्ष हुआ। नवम्बर, 1799 ई० में नेपोलियन ने नाटकीय ढंग से डाइरेक्टरी का पतन कर दिया और फ्रांस के शासन की बागडोर उसने अपने हाथ में ले ली। प्लेट जीन और ड्रमंड ने लिखा है कि 'नेपोलियन ने फ्रांसीसी क्रांति का उपयोग सैनिक तानाशाही की स्थापना के लिये किया।"[1]

फ्रांस की राज्य क्रान्ति के परिणाम—*फ्रांस की राज्य क्रान्ति का यूरोप के* इतिहास में नहीं वरन संसार के इतिहास में भी महत्वपूर्ण स्थान है। इस क्रान्ति से मध्यकालीन व्यवस्था की समाप्ति हुई और आधुनिक युग का सूत्रपात हुआ। इतिहासकार डविस ने लिखा है कि फ्रांस की राज्य क्रांति का 1917 की रूसी क्रांति के पूर्व और उसके बाद भी संसार की अधिकांश महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं पर प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। इस क्रांति के प्रमुख परिणाम निम्न लिखित थे —

(1) राष्ट्रीयता का विकास—इस क्रांति से पूर्व फ्रांस वाली राजतन्त्र और सामन्तवाद में बुरी तरह जकड़े हुए थे। इस क्रान्ति के कारण फ्रांस में राष्ट्रीयता की भावना का विकास हुआ। *राष्ट्रीयता की यह भावना केवल फ्रांस तक ही सीमित* नहीं रही वरन जैसे-जैसे क्रांति का विस्तार होता गया वैसे-वैसे यूरोप के अन्य देशों में भी इस भावना का प्रसार होता गया। यही कारण था कि फ्रांस में 1830 व 1848 में क्रांति हुई और इसका सम्पूर्ण यूरोप पर प्रभाव पड़ा। फ्रांसीसी क्रांतियों से प्रभावित होकर यूरोप के अन्य देशों ने भी क्रांतियाँ की। इटली, जर्मनी और रूस में क्रांतियाँ हुई और वे सफल रहीं। यद्यपि 1789 ई० की क्रांति का फ्रांस में पूर्ण रूप से सफलता नहीं प्राप्त हुई फिर भी इस बात को मानने से इन्कार नहीं किया जा सकता कि फ्रांस की इस क्रान्ति ने यूरोप के अन्य देशों को क्रांति करने के लिये प्रोत्साहित किया।

(2) तानाशाही शासन की समाप्ति—अब राजाओं का युग समाप्त हो गया उनके स्थान पर जनता के प्रतिनिधियों का युग आरम्भ हुआ। क्रांति से पूर्व फ्रांस निरंकुश राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था का सुदृढ़ गढ़ था, लेकिन इस क्रांति ने

1—प्लेट और जीन ड्रमंड—विश्व का इतिहास पृष्ठ 389

उसे धराशाही कर दिया। अब जन साधारण ने देश की राजनीति में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। इससे जनता में आत्म विश्वास की एक नई भावना का संचार हुआ। इस समय फ्रांस में विशाल पैमाने पर राजनीतिक दलों का उत्कर्ष हुआ।

(3) **सामन्तवाद की समाप्ति**—मध्य युगीन सामन्ती प्रथा की समाप्ति फ्रांस की राज्य क्रान्ति की सबसे महत्वपूर्ण देन है। क्रान्ति से पूर्व समाज में असमानता विद्यमान थी और समाज में सामन्तों का वर्चस्व कायम था। ये सामन्त कृषकों का शोषण करते थे तथा उनसे बेगार लेते थे। इस प्रकार क्रान्ति से पूर्व सदियों तक कृषक वर्ग और मध्यम वर्ग के करोड़ों व्यक्तियों का सामन्तों द्वारा शोषण किया जाता रहा, इसलिए कृषक वर्ग और मध्यम वर्ग की आर्थिक दशा बहुत शोचनीय हो गई थी।

इसके अतिरिक्त क्रान्ति से पूर्व सामान्य व्यक्ति का कोई महत्त्व नहीं था। फ्रांस की क्रान्ति ने सामन्ती प्रथा का अन्त कर दिया और समानता के सिद्धान्त को लागू किया। इस क्रान्ति से प्रभावित होकर यूरोप के अन्य देशों ने भी क्रान्तियाँ कीं और सामन्तवाद को जड़ से उखाड़ फेंका।

(4) **धार्मिक सहिष्णुता का प्रादुर्भाव**—इस क्रान्ति के कारण धर्म के क्षेत्र में *उदारता की भावनाएँ विकसित हुईं। फ्रांसीसी क्रान्ति के कारण यूरोप के अन्य* देशों में धार्मिक सहिष्णुता की विचारधारा का विकास हुआ और लोगों को धार्मिक उपासना की स्वतन्त्रता प्रदान की गई। मध्यकालीन युग में जिस धर्म को राजा मानता था, उसी धर्म को मानने के लिये वह अपनी प्रजा को बाध्य करता था। राजा की इच्छा के विरुद्ध यदि कोई व्यक्ति अन्य धर्म की उपासना करता था तो वह उसे कठोर से कठोर दण्ड देता था। इस प्रकार क्रान्ति ने धर्म निरपेक्ष राज्य की स्थापना का मार्ग प्रशस्त कर दिया। अब प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छानुसार धर्म की उपासना कर सकता था।

(5) **प्रजातन्त्र का उदय**—क्रान्ति से पूर्व फ्रांस निरंकुश राजतन्त्र का सुदृढ़ गढ़ था लेकिन इस क्रान्ति ने इस गढ़ को धराशायी कर दिया। यह सत्य है कि आतंक राज्य डाइरेक्टरी और नेपोलियन ने प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों का उल्लंघन किया। उस समय फ्रांस की दशा निरंकुश राजतन्त्र से भी अधिक शोचनीय हो गई थी। अन्त में फ्रांस में गणतन्त्र की स्थापना हुई। फ्रांसीसी क्रान्ति के मुख्य सिद्धान्त स्वतन्त्रता समानता और विश्व बन्धुत्व की भावना आदि थे। इससे विश्व में सभी स्थानों पर समानता के अधिकार की माँग की जाने लगी। इससे समाज में समानता स्थापित हुई। स्वतन्त्रता मनुष्य का जन्म सिद्ध अधिकार माना गया और प्रत्येक मनुष्य को सामाजिक आर्थिक धार्मिक और राजनीतिक स्वतन्त्रता प्रदान की गई। अब मनुष्यों को भाषण, लेखन प्रेस की स्वतन्त्रता प्राप्त थी। मनुष्य अपने विचार

प्रकट करने के लिए स्वतन्त्र था। न्याय के समक्ष सभी लोगों को एक समान समझा गया और सार्वजनिक पदों पर योग्य व्यक्तियों की नियुक्तियाँ की गई।

इस क्रांति ने विश्व बन्धुत्व की भावना पर अधिक जोर दिया। इस सिद्धांत के अनुसार संसार का प्रत्येक मनुष्य एक दूसरे का भाई है। इसलिए उसे परस्पर सहयोग, प्रेम और सहानुभूति का व्यवहार करना चाहिये। इस क्रांति के सिद्धान्तों से लोगों में राजनीतिक व सामाजिक समानता की भावनाएं विकसित हुईं। इससे आगे चलकर संसार में प्रजातन्त्र की जड़ें मजबूत हो गई।

(6) **व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का विकास**—इस क्रांति ने व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। मानव के अधिकारों की घोषणा एवं समानता तथा स्वतन्त्रता के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। जिसके कारण सामान्य व्यक्ति की गरिमा में भी वृद्धि हुई। क्रांति से पूर्व सामान्य व्यक्ति का कोई महत्व नहीं था। क्रांति के पश्चात सामान्य व्यक्ति का महत्व कायम हुआ। अब राज्य की सर्वोच्च सत्ता जन प्रतिनिधि के हाथों में केन्द्रित थी तथा शासन का स्वरूप जन प्रतिनिधियों की इच्छा पर निर्भर था।

(7) **न्याय एवं कानून के समक्ष समानता**—फ्रांस की क्रांति के समानता के सिद्धान्त ने कानून एवं न्याय के समक्ष अमीरों और गरीबों को समानता प्रदान की। अब कानून के समक्ष सभी समान थे। कोई छोटा और बड़ा नहीं था। राजतन्त्र के समय फ्रांस के कानून में असमानता विद्यमान थी। उस समय फ्रांस में सामन्ता, पादरियों मध्यमवर्ग और कृषक वर्ग के लिये अलग अलग कानून थे और एक ही अपराध के लिये अलग अलग सजाएं दी जाती थी। अब इस क्रांति के पश्चात सामन्तों और चर्चों के विशेषाधिकार समाप्त कर दिये गये। सामन्त किसानों से जितना रुपया मांगता था उसे माफ कर दिया गया। दास प्रथा को समाप्त कर दिया। गिरजाघरों ने जनता से किसी भी प्रकार का कर न लेने का वायदा किया। इस प्रकार सामन्तवाद का अन्त विशेषाधिकारों की समाप्ति और चर्च की शक्ति का पतन हो जाने से समाजवादी शासन व्यवस्था का मार्ग प्रशस्त हो गया।

(8) **सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्र में सुधार**—नेशनल एसेम्बली और नेशनल कन्वेंशन ने सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण सुधार किए, जिससे फ्रांस में एक नया युग आरम्भ हुआ। इससे दास प्रथा को समाप्त कर दिया गया। कर्जदारों को जेल में बन्द करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। स्त्रियों को पुरुष के समान अधिकार प्रदान किये गये। पहले ज्येष्ठ पुत्र ही पिता की सम्पत्ति का मालिक होता था किन्तु अब एक पिता की सभी सन्तानों को सम्पत्ति का बराबर बँटवारा किया जाता था। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि फ्रांस की राज्य क्रांति ने फ्रांस में कई महत्वपूर्ण और उपयोगी सुधार किये।

(9) **फ्रांस की क्रान्ति का अन्य देशों पर प्रभाव**—फ्रांस की राज्य क्रांति

के कारण जब निरंकुश राजतन्त्र धराशाही हो गया तो पडोसी देशों के निरंकुश शासक घबरा गये । इसलिये इंगलण्ड जैसे देश ने अपने देश में फ्रांसीसी क्रान्ति के प्रभाव को रोकने के लिये सख्त कानून पास किये । फ्रांसीसियों ने इस समय घोषणा की कि जो देश निरंकुश राजतन्त्र के विरुद्ध क्रान्ति करेगा उसे फ्रांस सहायता देगा । इस घोषणा के कारण फ्रांस के कई पडोसी देशों में निरंकुश राजतन्त्र धराशायी हो गया और उसके स्थान पर प्रजातन्त्रात्मक शासन व्यवस्था की स्थापना हुई ।

फ्रांस की क्रान्ति का महत्व फ्रांस की राज्य क्रान्ति अपने ढंग का अनूठा प्रयास थी । यह पहला अवसर था जब कि जनता ने राजा को समाप्त करने के लिये खुले रूप से क्रान्ति की । इंगलण्ड की जनता ने राजतन्त्र के विरुद्ध नहीं वरन तत्का लीन राजाओं के विरुद्ध क्रान्ति की थी । अमेरिका की जनता ने अंग्रेजों की दासता से मुक्ति प्राप्त करने के लिए स्वतन्त्रता संग्राम लडा था । फ्रांस की राज्य क्रान्ति के एतिहासिक महत्व के विषय में इतिहासकारों ने अलग अलग मत प्रकट किये हैं । कुछ इतिहासकारों का मानना है कि फ्रांस की राज्य क्रान्ति को स्वतन्त्रता प्राप्त करने के उद्देश्य में पूर्ण रूप से सफलता नहीं मिली । उसने केवल हिंसा और बदले की भावना को ही प्रोत्साहित किया परन्तु यह बात पूर्णतया से सत्य प्रतीत नहीं होती । वास्तव में फ्रांस की राज्य क्रान्ति ने सोलहवी शताब्दी के पुनर्जागरण के अधूरे कार्य को पूरा कर दिया ।

प्रोफेसर ल्यूकस ने लिखा है कि फ्रांस की राज्य क्रान्ति ने मध्ययुगीन परम्पराओं को समाप्त कर दिया । डेविस ने लिखा है कि फ्रांस की राज्य क्रान्ति के कारण मानव सभ्यता के इतिहास में एक अध्याय प्रारम्भ हुआ । इस क्रान्ति के द्वारा जन साधारण में स्वतन्त्रता व प्रेम की भावना पैदा की गई थी । यदि इंगलैण्ड और अमेरिका की क्रान्तियों ने स्वतन्त्रता का बीजारोपण किया तो फ्रांस की राज्य क्रान्ति के द्वारा उस बीज का विकास किया गया ।

पिछले दो सौ वर्षों में विद्वान स्वतन्त्रता समानता और विश्व बन्धुत्व के सिद्धान्तों की स्थापना पर जोर दे रहे थे । फ्रांस की राज्य क्रान्ति ने इन सिद्धान्तों का प्रचार किया । फ्रांस की जनता ने विश्व के सामने यह उदाहरण रखा कि यदि राजा स्वतन्त्रता प्राप्ति के मार्ग में बाधक बनता है तो उसे क्रान्ति करके हटा दिया जाना चाहिये । इस उदाहरण का यूरोप के स्वेच्छाचारी शासकों पर बहुत प्रभाव पडा । अब बहुत से निरंकुश शासकों ने जनहित के लिये कार्य करना प्रारम्भ कर दिया ।

इंगलण्ड की राज्य क्रान्ति का प्रभाव राजनीतिक क्षेत्र तक ही सीमित था, जबकि फ्रांस की राज्य क्रान्ति का राजनीतिक क्षेत्र के साथ-साथ सामाजिक संस्थाओं पर भी गहरा प्रभाव पडा । इस काल में शिक्षा और विज्ञान के क्षेत्र में काफी विकास हुआ । वायरन तथा एन जैसे महान् दार्शनिक व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के समर्थक बन

गये। फ्रांस की राज्य क्रांति यूनान पोलण्ड जर्मनी, इटली और रूस आदि देशो की जनता के लिये मार्ग दर्शक बन गई।

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने इस क्रांति के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि यद्यपि क्रांति समाप्त हो गई परन्तु समस्त यूरोप म प्रजातान्त्रिक विचारो का प्रसार हो गया। प्रोफेसर गूच न लिखा है कि फ्रांस की राज्य क्रांति ने सम्पूर्ण विश्व क मानव क विचारो और कार्यों म क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया। हेज व मून ने लिखा है कि "यूरोप म राष्ट्रीयता और प्रजातन्त्र बहुत कुछ फ्रांस से ही विकसित हुए हैं।"

फ्रास की राज्य क्रांति अमानवीय कार्यों के विरुद्ध हुई थी। इस क्रांति ने मध्य युगीन व्यवस्था को नष्ट कर दिया और एक नये समाज की आधार शिला रखी। मेकाइन ने लिखा है कि 19वी और 20वीं शताब्दी की सभी महत्वपूर्ण घटनाओ को फ्रास की राज्य क्रांति स जोडना गलत है।

प्रस्तावित सदभ पाठ्य पुस्तकें

1—प्लेंट और जीन इमड—विश्व का इतिहास
2—सवाइन–ए हिस्ट्री आफ वल्ड सिवलीजेशन
3—नेहरू–जवाहरलाल–विश्व इतिहास की झलक
4—वेरस, एच० जी०–दी आउट लाईन ऑफ हिस्ट्री।

6

नेपोलियन बोनापार्ट

(नवम्बर 1799 से जून 1815 ई० तक)

सेवाइन ने लिखा है कि "नेपोलियन बोनापाट इतिहास के सबसे अधिक टिप्पणी किये जाने वाले आदमियो मे से हैं।"[1]

नेपोलियन का आरम्भिक जीवन—नेपोलियन का जन्म 1769 ई० में इटली के नजदीक कोर्सिका नामक द्वीप के एक छोटे से नगर म हुआ था। उसके पिता का नाम कार्लोमेरिया बोनापाट था, जो एक साधारण वकील थे। उसकी माता का नाम लोर्टीशिया था, जो कठोर परिश्रमी महिला थी। नपोलियन की मातृ भाषा इटालियन थी उसके तीन बहनें और चार भाई थे। जब नेपोलियन 10 वष का हो गया तो उसे पढने के लिये फ्रास के स्कूल म भेजा गया। इसके पश्चात नेपोलियन ने वियना और परिस के सनिक स्कूलो मे सनिक प्रशिक्षण प्राप्त किया। सनिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात उसे फ्रास की सेना क मेले स शहर के द्वितीय तोपची के पद पर नियुक्त किया गया। नपोलियन रूसो के विचारा स बहुत प्रभावित था, इसलिये उसने क्रान्ति के प्रारम्भ म गणतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था का समथन किया और इस समय वह अपने परिवार को लकर फ्रास म आ गया। इसके पश्चात वह क्रान्तिकारी सेना म भर्ती हो गया।

नेपोलियन के कार्यों से प्रभावित होकर 1793 ई० म उसे तूलोन शहर के मुख्य तोपची के पद पर नियुक्त किया गया। महासभा की बठक इसी नगर म हो रही थी। इस समय तूलोन मे उपद्रव प्रारम्भ हा गया। उपद्रवकारियो ने महा सभा के भवन पर हमला कर दिया। ऐसे कठिन अवसर पर नपोलियन न अपनी योग्यता का प्रदशन किया और भीड पर नियन्त्रण स्थापित करने मे सफल हुआ। इस प्रकार उसने महा सभा के सदस्यो की जान बचाई। आतक राज्यकाल मे नेपोलियन पर क्रान्ति विरोधी होने का अभियोग लगा कर उसे जेल मे डाल दिया

---

1 सेवाइन—ए हिस्ट्री आफ वल्ड सिविलीजेशन पृष्ठ 493

गया। उसने अपने जीवन की पच्चीसवीं वर्षगांठ जेल में व्यतीत की। इसके बाद उसे जेल से मुक्त कर दिया गया।

डाईरेक्ट्री की स्थापना, पेरिस की नागरिक सभा और जनता द्वारा आन्दोलन करना आदि बातों ने नपोलियन को एसा सुनहरा मौका दिया जब कि वह अपनी योग्यता एव सैनिक प्रतिभा का परिचय दे सका। 5 अक्टूबर 1795 ई० मे उपद्रव कारियों ने चारो और अराजकता का वातावरण पैदा कर दिया। इस समय राष्ट्रीय ससद के सदस्यों की जान को खतरा हो गया। एस अवसर राष्ट्रीय ससद ने नपोलियन को उपद्रव शान्त करने का काय सौंपा। इस काय म उसे सफलता मिली। उसकी इस सफलता से प्रभावित होकर फ्रांस के युद्ध मंत्री कार्नो ने उसे इटली भेजे जाने वाले अभियान के मुख्य सेनापति के पद पर नियुक्त किया। मैकनेल बनस ने लिखा है कि इटली म उसकी प्रबल सफलता ने उसे राष्ट्रीय नायक का स्थान दिला दिया। हर जबान पर उसका नाम था और राजनीतिक नेता उससे डरने लगे।'[1] नेपोलियन की उन्नति मे उसकी पत्नी जोसेफाइन ने महत्वपूर्ण सहयोग दिया। इसका कारण यह था कि वह प्रभावशाली महिला थी और अनेक बड़े सरकारी अधिकारी उसके दोस्त थे।

नेपोलियन के युद्ध—इटली अभियान मे नेपोलियन ने अपने शत्रुओं को पराजित करने के लिये नये नये तरीकों का प्रयोग किया और अपने शेष जीवन मे उन्ही तरीकों से अनेक युद्धों म विजय प्राप्त की। वह शत्रु पर अचानक आक्रमण करता था। यदि शत्रु की सेना छोटी होती, तब भी वह अपनी सम्पूर्ण सेना को युद्ध के मैदान म उतार देता था। यदि युद्ध के दौरान शत्रु पीछे हटने लगता तो वह उस समय तक शत्रु का पीछा करता था, जब तक कि वह हथियार नही डाल दे या वह उसे पूरी तरह से नष्ट नही कर दे। उसे इटली अभियान मे भारी सफलता मिली। सार्डीनिया ने फ्रांस को नीस तथा सवाय के प्रदेश दिये। आस्ट्रिया ने उसे नीदरलैंड का प्रदेश दिया। इसके अतिरिक्त आस्ट्रिया ने यह भी स्वीकार कर लिया कि फ्रांस उत्तरी इटली के गणराज्यों का सरक्षण बना रहेगा।

नेपोलियन अपनी विजयों की सूचनाएँ समय समय पर फ्रांस भिजवाता रहता था ताकि जनता को उसकी विजयों के बारे म जानकारी मिल सके। इसलिये जब नेपोलियन फ्रांस लौटा तो फ्रांस की जनता ने उसका बहुत अच्छा स्वागत किया। फ्रांस म उसकी जय जयकार से वायुमडल गूज उठा। उस समय फ्रांस म उसकी वीरता की कई कहानियां प्रचलित हुई, जिनम वास्तविकता कम और अतिशयोक्ति अधिक थी।

---

1 मैकनेल बर्नस—वेस्टर्न सिविलीजेशन्स—पृष्ठ 538

अब नेपोलियन को मिश्र विजय करने का काम सौंपा गया। 1798 ई० मे नेपोलियन एक शक्तिशाली सेना के साथ मिश्र को विजय करने के लिये रवाना हुआ। उसने मिश्र पहुचते ही वहा के प्रसिद्ध ब दरगाह अलक्जड्रिया पर अधिकार कर लिया। यह तो नेपोलियन का सौभाग्य था कि अंग्रेज जल सेनानायक नेल सन ने उसकी तलाश करने के लिए तीन दिन पहल अलक्जड्रिया छोड दिया था। यदि रास्ते म नेपोलियन की नेलसन स मुठभेड हो जाती तो आज का इतिहास ही शायद दूसरा होता।

1 अगस्त 1798 ई० मे नेलसन और नेपोलियन के बीच नील नदी के पास निर्णायक युद्ध हुआ। जिसम नेलसन ने फ्रास के जहाजी बेडो को बुरी तरह से नष्ट कर दिया और नेपोलियन का फ्रास से सम्ब ध विच्छद कर दिया। नेपोलियन न साहस से काम लेते हुए सीरिया पर आक्रमण कर दिया। प्रारम्भ म उसे कुछ सफलता प्राप्त हुई। उसको जाका नगर पर अधिकार करने म सफलता मिली पर तु बाद मे उसकी स्थिति निर तर बिगडती रही। इसलिए उसने एकर नगर को घेर लिया लेकिन उसको अधिकार करने म उसे सफलता नही मिली। इस समय उसकी सेना म महामारी का प्रकोप बढता जा रहा था और गोला बारूद भी समाप्त हो गया था। 25 जुलाई 1799 ई म उसका अबूकर की खाडी मे तुर्की सेना से युद्ध हुआ। जिसमे उसन तुर्की सेना का बुरी तर(से पराजित किया। इस अभियान की उसकी यह अ तिम विजय थी।

21 अगस्त 1799 ई० म उसन अपनी सेना को वही छोड दिया और अपन कुछ चुने हुए साथियो को लेकर वह फ्रास के लिये रवाना हो गया क्योकि इस समय उसे यह सूचना मिली थी कि फ्रास म डाइरेक्टरी का पतन नजदीक है। 9 अक्टूबर को नेपोलियन फ्रास पहुच गया। लोगा न उसका भव्य स्वागत किया। नेपोलियन ने इस समय जनता के सामने ऐसा व्यवहार किया जसे कि वह फ्रास का मुक्ति दाता हो। उसने अपने एक मित्र से उस समय यह कहा था कि ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्येक व्यक्ति मरा इ तजार कर रहा था यदि मैं तनिक पहले आता तो वह ठीक न होता और यदि मैं बाद म आता तो बहुत देर हो जाती। मैं ठीक समय पर आया हू।'

इसके बाद नेपोलियन न तत्कालीन सरकार का तख्ता पलटने के लिय एक षडय त्र रचा। नेपोलियन के समथका न नियम निर्मात्री सभा के सदस्यो को चारो ओर से घेर लिया और उनको प्रशासन की बागडोर नेपोलियन के हाथ म सौपने के लिए बाध्य किया। विरोधी सदस्या को ब दूक की नाक पर भवन से बाहर निकाल दिया गया। शेष सदस्यो ने प्रशासन व्यवस्था का सचालन तीन कौसिलो के हाथ मे सौंप दिया। नेपोलियन को प्रधान कौसलर क पद पर नियुक्त किया गया। इस प्रकार गैर कानूनी तरीके से नेपोलियन न फ्रास की सत्ता पर अधिकार कर लिया।

सेवाइन ने लिखा है कि "एक मामूली पतले परदे की आड में तानाशाही स्थापित हो गयी।'[1]

नेपोलियन का कोंस्यूलेट काल (1799-1804)—इस काल म उसकी सैनिक विजयो और प्रशासनिक सुधार के कारण लोकप्रियता म वृद्धि हुई। 1800 ई म नपोलियन ने इटली मे स्थित आस्ट्रिया की सेना को युद्ध म पराजित किया। 1802 ई म उसने अपने शक्तिशाली शत्रु इगलैण्ड का अपनी इच्छानुकूल सधि पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य किया। नेपोलियन एक कुशल सेनापति था। सबाइन ने लिखा है कि "ससार के अत्यधिक विख्यात सेनानी के चिनाव के लिये वह सिकन्दर महान का प्रतिद्वन्दी है।'[2]

नपोलियन एक महान योद्धा होने के साथ साथ एक कुशल प्रशासक भी था। जिसने युद्धो मे व्यस्त रहते हुए भी फ्रास के प्रशासन म कई महत्वपूर्ण सुधार किय। जिन सस्थाओ की उसने स्थापना की उसी आधार पर आधुनिक सस्थाओ का निर्माण किया गया। इसलिए नपोलियन को आधुनिक फ्रास का जन्मदाता भी कहा जाता है। उसने अपने सुधारो म यथासम्भव यह प्रयास किया कि क्रान्ति के सिद्धान्तो का पालन हो सके। उसने केन्द्र को सुदृढ बनाने का प्रयास किया।

प्रोफेसर डेविस ने लिखा है कि नेपोलियन लुई चौदहवें की भाति निरकुश था, परन्तु फ्रास की जनता न नपोलियन की निरकुशता को इसलिए सहन किया क्योकि वह नपोलियन की असाधारण सैनिक विजयो स बहुत प्रभावित थी और वह फ्रास की क्रान्ति के सिद्धान्तो का विदेशो म प्रचार कर रहा था।

नेपोलियन के शासन सम्बन्धी सुधार

उसने शासन के क्षेत्र म निम्न सुधार किय —

1 प्रशासनसम्बन्धी सुधार

नेपोलियन ने केन्द्र को सुदृढ बनाने के लिए प्रान्तो और जिलो का विभाजन किया। उसने उन लोगो को प्रान्तो जिलो और तहसीलो म शासन करने के लिए नियुक्त किया जो उसकी कृपा पर निभर करते थे। जिनकी नियुक्ति वह स्वय करता था। उन अफसरो को क्रमश प्रीफेक्टस, सब प्रीफेक्टस तथा मेयस कहा जाता था। नेपोलियन द्वारा किया गया प्रान्तो और जिलो का विभाजन आज भी फ्रासीसी शासन व्यवस्था का आधार बना हुआ है।

नपोलियन न अनेक क्षेत्रो म क्रान्तिकारी सुधार किय परन्तु वह केन्द्रीय सरकार के अधिकारो को कम करने के पक्ष म नही था। प्रान्तो के अधिकारियो को

---

1 सेबाइन—ए हिस्ट्री आफ वर्ल्ड सिविलीजेशन, पृष्ठ 494

2 ,, , 496

नियुक्ति वह स्वय करता था और प्रान्तीय अधिकारी कम्यून के अधिकारियो को नियुक्त करता था। फ्रास म सभी प्रकार के मुख्य अधिकारियो की नियुक्ति नेपोलियन के द्वारा की जाती थी। नेपोलियन केन्द्रीय सत्ता का सुदृढ कर फ्रास मे अशान्ति और ावयवस्था को समाप्त कर शाति स्थापित करन मे सफल हुआ। इस प्रकार नेपोलियन न नागरिका की सुरक्षा प्रदान करन म सफलता प्राप्त की।

उसने सामाजिक समानता स्थापित करने का प्रयास किया। इसलिय उसन पुरान मतभेद दलव दी और झगडा को समाप्त करने के लिये सभी वर्गों एव दला का एक समान अधिकार प्रदान दिय। क्राति के कारण देश से भागे हुए बुलीना एव सामन्तो को नेपालियन न पुन फ्रास मे आने के लिये आमन्त्रित किया। इस प्रकार उसने क्राति क कार्यों को ठोस रूप प्रदान किया।

(2) आर्थिक क्षेत्र मे सुधार—क्राति से पूव फ्रास की आर्थिक दशा खराब थी। पिछले दस वर्षो म हो रहे युद्धो ने उसकी आर्थिक दशा को दयनीय बना दिया था। क्राति क उथल पुथल क कारण फ्रास की आर्थिक दशा निरन्तर बिगडती जा रही थी। वहा पर उद्योग धधे बिल्कुल चौपट हो चुके थे। राज्य के कर नियमित रूप स वसूल नही हो पा रहे थ जिसस राज्य की आय मे भारी कमी हो गई थी। नेपोलियन ने फ्रास की इस बिगडती हुई आर्थिक दशा मे सुधार करने के लिये निम्न प्रयास किये—

(i) नेपोलियन न राज्य की कर प्रणाली मे सुधार किया, जिसस राज्य की आय म वद्धि हुई। उसन केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त कमचारियो को कर वसूल करने का अधिकार दिया। यापार को हानि पहुचाने वाली वस्तुओ पर राज्य कर कम कर दिया। यदि काई सरकारी कमचारी कर वसूल करने के पश्चात राजकोष म जमा नही करवाता था अथवा घूस लेकर कम लगान व चुगी वसूल करता था तो उस कडी स कडी सजा दी जाती थी। इन सुधारो का परिणाम यह हुआ कि राज्य की आय म वद्धि हुई।

(ii) नेपोलियन ने फ्रास का आर्थिक दृष्टिकोण स विकास करने क लिये 1800 ई० म फ्रासीसी बक की स्थापना की। कुछ ही समय म फ्रास क प्रमुख नगरो म उसकी शाखाएँ खोली गई। इस बक का उसन मुद्रा प्रचलन एव नियन्त्रण का अधिकार प्रदान किया।

(iii) उसने कृषि के क्षेत्र म सुधार करने के लिय अनेक महत्वपूण कदम उठाय। कई दलदलो को सुखाकर कृषि योग्य बनाया गया। कृषि के नये तरीको का प्रयाग कर उत्पादन म वद्धि करने का प्रयास किया गया। उसने सिचाई के लिए अनेक नई नहरो का निर्माण कराया तथा पुरानी नहरो की मरम्मत करवाई। नपोलियन द्वारा सिचाई व्यवस्था उपलब्ध कराने के कारण उत्पादन म काफी वद्धि हुई।

(iv) उसने व्यापार और व्यवसाय का प्रोत्साहन देन के लिए अनक कदम उठाय। व्यापार के विकास के लिय "राष्ट्रीय उद्योग निगम" की स्थापना की। खाद्य सामग्री के वितरण के लिये समुचित व्यवस्था की और दशमलव प्रणाली को लागू किया गया। इ गलण्ड के नए नए औद्योगिक तरीका को फास के उद्योगपतियो न अपना कर उत्पादन मे वृद्धि की। इ गलण्ड के माल पर आयात कर म भारी मात्रा मे वृद्धि की गई ताकि जनता फास की बनी हुई वस्तुएँ ही अधिक मात्रा म खरीदे और फ्रासीसी वस्तुओ के मुकाबले मे इ गलैण्ड की वस्तुएँ सस्ती नही पड । व्यापार म वृद्धि करने के लिये उसने यातायात के साधना का विकास किया। उसन विदशी व्यापारियो की सुविधा के लिए कई बन्दरगाहो का विकास किया।

इन सुधारो के फलस्वरूप फ्रास की आर्थिक स्थिति काफी अच्छी हो गई थी।

(3) पोप के साथ सम्बन्ध—नेपोलियन धम के क्षेत्र म तटस्थ था, परन्तु उसने धम का उपयोग अपनी राजनीतिक स्थिति को मजबूत बनान क लिए किया। फ्राम की अधिकाश जनता रोमन कथोलिक धम म विश्वास करती थी। क्रान्ति से पूव फासीसी जनता मे रोमन चच क प्रति प्रगाढ श्रद्धा थी। क्रान्ति के पश्चात पादरियो के विशेषाधिकारो को समाप्त कर दिया गया और वधानिक पादरी वग की स्थापना की गई। क्रान्ति काल मे चच की जागीरें जब्त करली गई। इन कार्यों से फ्राम की कथोलिक जनता मे असतोष विद्यमान था। पोप भी अपनी शक्ति नष्ट हो जाने के कारण क्रान्ति का विरोधी था।

नेपोलियन ने इस धार्मिक समस्या का राजनतिक दृष्टिकोण से समाधान किया। उसन कथोलिक जनता का समथन प्राप्त करने के लिये जेल मे पडे हुए पादरियों को रिहा कर दिया। रविवार का दिन फिर स महत्वपूण दिन घोषित किया। इसके पश्चात नेपोलियन न पोप के साथ 1810 ई० म एक सधि की जो "कान्कार्डेट" क नाम से प्रसिद्ध है। इस सधि क अनुसार निम्न शर्तें निश्चित की गई —

(i) इस सधि क अनुसार नेपोलियन न कथोलिक धम को फ्रास का राज्य धम घोषित कर दिया। इसके बदले में पोप ने क्रान्ति काल में राज्य द्वारा छीनी गई चच की जागीरो पर से अपना अधिकार त्याग दिया।

(ii) फ्रास की सरकार पादरियो की नियुक्ति के लिए एक सूची पोप को देगी। पोप उस सूची म अकित व्यक्तियों को ही पादरी के पद पर नियुक्त कर सकगा। इस प्रकार पोप अब बिना राज्य की इच्छा स अपने मनमाने ढग से पादरियो को नियुक्त नहीं कर सकता था।

(iii) पादरियों पर राज्य का नियन्त्रण रखने के लिये उन्ह राज्य की ओर से वतन दिया जाने लगा। अब प्रत्येक पादरी को फ्रांस के सविधान के प्रति भक्ति

की शपथ लेनी पड़ती थी। इस प्रकार नपोलियन न रोमन कैथोलिक धर्म के अनुयायियों का समर्थन प्राप्त कर लिया। उसने सभी व्यक्तियों को धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की।

(4) शिक्षा के क्षेत्र म विकास—नपोलियन ने शिक्षा के क्षेत्र म विकास के लिये विशेष प्रयास किये। उसने शिक्षा को तीन भागों म विभाजित कर दिया। 1 प्रारम्भिक 2 उच्च माध्यमिक और 3 विश्वविद्यालय। उसके समय म प्रत्येक नगर म प्राईमरी और उच्च माध्यमिक विद्यालय खोले गये। उच्च माध्यमिक विद्यालयों के प्रबन्ध का भार नपोलियन न प्रभावशाली व्यक्तियों के हाथों म सौंप दिया। इसी प्रकार प्राईमरी शिक्षा का प्रबन्ध उसने कम्यून के हाथों म सौंप दिया। प्राईमरी और उच्च माध्यमिक शिक्षा पर विश्वविद्यालय का नियन्त्रण था। उसने कई नगरों म राज्य के नियन्त्रण म सनिक और व्यावसायिक स्कूलों की स्थापना की।

1808 म नपोलियन न फ्रांस म केन्द्रीय विश्वविद्यालय की स्थापना की। इस विश्वविद्यालय का समस्त देश की शिक्षा संस्थाओं पर नियन्त्रण था। यही विश्वविद्यालय स्कूलों का पाठयक्रम निर्धारित करता था और वहां अध्यापकों की नियुक्तियां करता था। विश्वविद्यालय के प्रमाणपत्र देने के बाद कोई भी नया विद्यालय खोला जा सकता था। इस विश्व विद्यालय के प्रमुख अधिकारियों की नियुक्ति नपोलियन के द्वारा की जाती थी। शिक्षकों को राज्य की ओर से वेतन दिया जाता था। देश के सभी उच्च विद्यालयों को विश्वविद्यालय के साथ सम्बन्धित कर दिया गया।

शिक्षकों को प्रशिक्षण देने के लिये एक शिक्षक विद्यालय की स्थापना की गई। नपोलियन ने गरीब और योग्य छात्रों के लिये छात्रवृत्तियां देने की व्यवस्था की। शोध कार्य के लिए एक संस्थान की स्थापना की गई। जिसने कला और साहित्य के विकास को प्रोत्साहन दिया। उसने फ्रांसीसी भाषा को शिक्षा का माध्यम घोषित किया।

(5) प्रजा हितकारी कार्य—नेपोलियन ने जनहित के निम्न कार्य किये —

(i) सड़कें—नेपोलियन ने युद्धों म व्यस्त रहने के बावजूद भी सड़कों का निर्माण करवाया। 1811 ई० तक फ्रांस म 229 चौड़ी सड़कों का जाल बिछा दिया उसने पेरिस को देश के हर कोने स जोड़ दिया। पेरिस से रोम, बल्जियम, स्विट्जरलण्ड, राइन प्रदेश और नेपल्स तक सड़कों का निर्माण करवाया। सड़कों के अतिरिक्त नेपोलियन ने नहरों और पुलों का निर्माण करवाया।

(ii) सिंचाई प्रबन्ध—नेपोलियन ने उत्पादन म वृद्धि करने के लिये सिंचाई प्रबन्ध की व्यवस्था की। उसने अनेक नई नहरों का निर्माण करवाया और पुरानी नहरों की मरम्मत करवाई।

(iii) पेरिस के सौन्दर्य मे वृद्धि—नेपोलियन ने पेरिस के सौन्दर्य मे वृद्धि

कर विश्व का सबसे सुन्दर और आकर्षक नगर बना दिया। उसने पेरिस में चौड़ी सड़कों का निर्माण करवाया। इसके अतिरिक्त उसने अनेक स्मारकों और सुन्दर भवनों का निर्माण करवाया। पेरिस में उसने सुन्दर बाग बगीचे और फव्वारों का निर्माण करवाकर उसके सौन्दर्य में वृद्धि की। वह देश देशान्तरों से कलाकृतियां उठा लाता था और उन्हें लावर के संग्रहालय में रख देता था। परिणामस्वरूप पेरिस का लावेर संग्रहालय विश्व का सर्वश्रेष्ठ अजायबघर बन गया। नेपोलियन ने 1804 ई० से लेकर 1813 ई० तक एक अरब फ्रैंक प्रजाहितकारी कार्यों पर खर्च किया।

सेवाइन ने लिखा है कि "विश्व विख्यात पेरिस नगर अपनी चौड़ी सड़कों, पेड़ों की कतारों से सजी सड़कों स्मारकों और सुन्दर भवनों सहित उसकी महानता का सबूत है।"[1] उसने सीन नदी पर बहुत सुन्दर और स्थायी पुल का निर्माण करवाया। नेपोलियन कला का प्रशंसक था। उसने प्राचीन कला के आधार पर पेरिस में "चर्च ऑफ मिडिलियानी" नामक विशाल व्यापार भवन का निर्माण करवाया। जो फ्रांस की उस समय की भवन निर्माण कला का सुन्दर नमूना है।

(6) विधि संहिता—नेपोलियन की सबसे महत्वपूर्ण देन उसकी विधि संहिता है। उसने एक बार कहा था कि 'विधान संहिता का निर्माण उसकी सबसे गौरवपूर्ण उपलब्धि है, जिसका महत्व उसकी सभी विजयों से अधिक है।' नेपोलियन का यह कथन सत्य प्रतीत होता है। वास्तव में उसकी विधि संहिता सम्पूर्ण मानव समाज के लिए लाभदायक सिद्ध हुई। फ्रांस को एक संगठित कानून की आवश्यकता थी जिसे नेपोलियन ने पूरा किया।

क्रान्ति से पूर्व फ्रांस में कानूनों की समानता नहीं थी। अलग-अलग प्रान्तों में अलग-अलग कानून प्रचलित थे। क्रान्तिकाल में यह प्रयास किया गया कि सम्पूर्ण फ्रांस में अन्तर्राष्ट्रीय कानून व्यवस्था को लागू किया जाय परन्तु इसमें विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। नेपोलियन ने क्रान्ति के इस अधूरे कार्य को पूरा किया। उसने निम्न पांच विधानों का निर्माण किया—1–नागरिक कानून 2–जायदाद सम्बन्धी कानून, 3–नागरिक नियम पद्धति 4–फौजदारी कानून, 5–व्यापारिक कानून।

नेपोलियन ने 1804 ई० में सम्पूर्ण फ्रांस में इस विधि संहिता को लागू कर दिया। इस विधि संहिता के बाद फ्रांस में एक जैसी कानून व्यवस्था की स्थापना हुई। नेपोलियन की विधि संहिता पर फ्रांस की वर्तमान न्याय व्यवस्था आधारित है। यद्यपि इसमें आवश्यकतानुसार कुछ परिवर्तन कर लिये गये हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि नेपोलियन ने फ्रांस में सुदृढ़ शासन व्यवस्था और सुव्यवस्थित समाज की स्थापना की, जिसमें प्रत्येक नागरिक की सुरक्षा की व्यवस्था थी। उसने फ्रांसीसी

1—सेवाइन—ए हिस्ट्री ऑफ वर्ल्ड सिविलीजेशन, पृष्ठ 498

जनता की इच्छानुकूल देश म शान्ति और सु यवस्था की स्थापना की और विना किसी बाधा के यूरोपियन देशा म क्रान्ति के आदर्शों का प्रचार किया।

नेपोलियन की नीति (1804–1814)—नेपोलियन षडयन्त्र रचने मे कुशल था। 1802 ई० मे वह आजीवन भर के लिए कोंसल बन गया। फरवरी 1804 ई० में कुछ लोगो ने नेपोलियन की हत्या का षडयन्त्र रचा। यद्यपि यह षडयन्त्र असफल रहा। परन्तु नेपोलियन के मन म सम्राट बनने की अभिलाषा जाग्रत हुई। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने फिर षडयन्त्र रचा। उसके प्रयासो से ट्रिब्यूनेट म यह प्रस्ताव रखा गया कि जनतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था को समाप्त कर दिया जाय और नेपोलियन को फ्रास का सम्राट बना दिया जाय।

ट्रियून ने इस प्रस्ताव पर जनमत सग्रह करवाया। 35 लाख मतो के बहुमत मे जनता ने नेपोलियन को सम्राट बनाना स्वीकार कर लिया। अब तक यह परम्परा थी कि फ्रास के सम्राट को राजमुकुट पोप पहनाता था परन्तु नेपोलियन ने इस परम्परा का उल्लघन करते हुए स्वय ने अपना मुकुट धारण किया। एलिस और जोन ने लिखा है कि।"2 दिसम्बर 1804 ई० को नोट्रडेम कथेड्रल में अभिमानी नेपोलियन न इस समारोह के लिये रोम से आए हुए पोप के हाथो से ताज लकर अपने सिर पर रख लिया। [1]

इस प्रकार जिस राजतन्त्र को समाप्त करने के लिए फ्रासीसी जनता ने क्रान्ति की थी। उसी राजतन्त्र को नेपोलियन ने सम्राट बनाकर फिर मे फ्रास मे स्थापित कर दिया। जनता द्वारा नेपोलियन को सम्राट के पद पर चुनने के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे—

1—नेपोलियन द्वारा सामाजिक समानता स्थापित करना
2—नेपोलियन की सुदृढ शासन यवस्था
3—उसकी असाधारण सनिक विजय
4—उसकी सफल धार्मिक नीति
5—उसका असाधारण व्यक्तित्व

2 दिसम्बर 1804 ई० को बडी धूमधाम के साथ उसका राज्याभिषेक समारोह मनाया गया। उसने अपने राज्याभिषेक के समय बड गव से कहा था कि "मने फ्रास के ताज को जमीन पर पडा पाया और अपनी तलवार से उठा लिया।' [2]

यूरोप पर प्रभुत्व का प्रयास—सम्राट बनने क पश्चात नेपोलियन ने सम्पूण यूरोप पर प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयास किया। फ्रास की राज्य क्रान्ति के कारण

---

1 एलिस और जोन—ससार का इतिहास पृष्ठ 344

2 ए हिस्ट्री आफ वल्ड सिवलिजेशन, पृष्ठ 494

यूरोप के सभी देश चिन्तित थे। उन्होने फ्रास के विरुद्ध गुट बनाकर उसके विरुद्ध मोर्चा खोल दिया था। नेपोलियन ने इगलैंड के अतिरिक्त अय सभी देशो को समय समय पर युद्धो म पराजित किया और उनके गुटो को तोडने म सफलता प्राप्त की। उसको विवश होकर इगलण्ड के साथ आर्मीन्स की सधि करनी पडी। इस सधि के अनुसार यह निश्चित हुआ कि इगलण्ड माल्टा द्वीप खाली कर देगा। जब उसने द्वीप खाली नही किया तो नेपोलियन ने इगलैण्ड के विरुद्ध युद्ध प्रारम्भ कर दिया। इगलण्ड ने फ्रास के विरुद्ध तीसरी बार गुट का निर्माण किया। इस गुट मे इगलण्ड के साथ आस्ट्रिया, रूस और स्वीडन आदि देश थे। नेपोलियन का इस समय हनोवर पर अधिकार करने मे सफलता मिली।

1805 ई० मे ट्रैफलगार नामक स्थान पर भयकर युद्ध हुआ। इस युद्ध म इगलण्ड के सेनापति नेलसन ने फ्रांस तथा स्पेन के सयुक्त जहाजी बेडे को बुरी तरह पराजित किया। स्वय नेलसन भी इस युद्ध म मृत्यु को प्राप्त हुआ। थल युद्ध मे आस्टरलिज नामक स्थान पर नेपोलियन ने आस्ट्रिया की सेना को बुरी तरह परास्त किया। विवश होकर आस्ट्रिया को इगलण्ड के गुट से अलग होना पडा तथा नेपोलियन के साथ प्रेस बुग की सधि पर हस्ताक्षर करने पडे। इस सधि के अनुसार राइन राज्य सघ की स्थापना की गई और पवित्र रोमन सम्राट क पद को समाप्त कर दिया गया।

जब नेपोलियन ने जमनी के अठारह प्रदेशो पर विजय प्राप्त कर राइन राज्य की स्थापना की तो प्रशा नेपोलियन क इस काय से बहुत क्रोधित हुआ क्योंकि नेपोलियन राइन राज्य सघ क माध्यम से प्रशा के मामले म हस्तक्षेप कर रहा था। इसलिए प्रशा ने अप्रसन्न होकर नेपोलियन क विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया। नेपोलियन ने उसे युद्ध मे बुरी तरह पराजित किया और सधि पर हस्ताक्षर करने के लिए प्रशा को बाध्य किया। अब नेपोलियन को रूस से निपटना बाकी था। 14 जून 1807 ई० को फ्रीडलण्ड के युद्ध में नेपोलियन ने रूस को बुरी तरह पराजित किया और उसे टिलसिट की सधि पर हस्ताक्षर करने पडे। यह सधि नेपालियन क उत्कप की चरम सीमा थी।

नेपोलियन पतन की ओर टिलसिट की सधि तक नेपोलियन अधिकाश कार्यों में सफलता प्राप्त कर चुका था परन्तु इसके बाद इसक भाग्य ने उसका साथ नही दिया। अततागत्वा उसका पतन हो गया। उसको पतन की ओर ल जाने म निम्न घटनाओ का योगदान रहा—

1 **महाद्वीपीय प्रणाली**—टिलसिट की सधि क कारण नेपोलियन की शक्ति सर्वोच्च बिन्दु पर पहुच गई थी। इस समय तक उसने इगलड के सिवाय यूरोप के सभी महत्वपूर्ण देशो को युद्धो मे पराजित कर दिया था लेकिन उसकी साम्राज्यवादी लालसा अभी तक पूरी नही हुई थी। वह इगलैंड पर भी विजय प्राप्त करना

जनता की इच्छानुकूल देश म शान्ति और सुव्यवस्था की स्थापना की और बिना किसी बाधा के यूरोपियन देशा म क्रान्ति के आदर्शों का प्रचार किया।

नेपोलियन की नीति (1804–1814)—नेपोलियन षडयन्त्र रचने म कुशल था। 1802 ई० मे वह आजीवन भर के लिए कौंसल बन गया। फरवरी 1804 ई० म कुछ लोगो ने *नेपोलियन की हत्या का षडयन्त्र रचा। यद्यपि यह षडयन्त्र* असफल रहा। परन्तु नेपोलियन के मन म सम्राट बनने की अभिलाषा जाग्रत हुई। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने फिर षडयन्त्र रचा। उसके प्रयासो से ट्रिब्यूनेट *म यह प्रस्ताव रखा गया कि जनतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था को समाप्त कर दिया* जाय और नेपोलियन को फ्रास का सम्राट बना दिया जाय।

ट्रियून ने इस प्रस्ताव पर जनमत सग्रह करवाया। 35 लाख मतो के बहुमत से जनता ने नेपोलियन को सम्राट बनाना स्वीकार कर लिया। अब तक यह परम्परा थी कि फ्रास के सम्राट को राजमुकुट पोप पहनाता था परन्तु नेपोलियन ने इस परम्परा का उल्लघन करते हुए स्वय ने अपना मुकुट धारण किया। एलिस और जोन ने लिखा है कि।"2 दिसम्बर 1804 ई० को नोट्रडेम कथेड्रल मे अभिमानी नेपोलियन न इस समारोह के लिये रोम से आए हुए पोप क हाथो से ताज लेकर अपने सिर पर रख लिया।[1]

इस प्रकार जिस राजतन्त्र को समाप्त करने के लिए फ्रासीसी जनता ने क्रान्ति की थी। उसी राजतन्त्र को नेपोलियन ने सम्राट बनाकर फिर से फ्रास मे स्थापित कर दिया। जनता द्वारा *नेपोलियन को* सम्राट के पद पर चुनने के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे—

1—नेपोलियन द्वारा सामाजिक समानता स्थापित करना
2—नेपोलियन की सुदृढ शासन व्यवस्था
3—उसकी असाधारण सनिक विजय
4—उसकी सफल धार्मिक नीति
5—उसका असाधारण व्यक्तित्व

2 दिसम्बर 1804 ई० को बडी धूमधाम के साथ उसका राज्याभिषेक समारोह *मनाया गया। उसने अपने राज्याभिषेक के समय बडे गव से कहा था कि "मैने* फ्रास के ताज को जमीन पर पडा पाया और अपनी तलवार से उठा लिया।'[2]

यूरोप पर प्रभुत्व का प्रयास—सम्राट बनने क पश्चात नेपोलियन ने सम्पूर्ण यूरोप पर प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयास किया। फ्रास की राज्य क्रान्ति के कारण

---

1 एलिस और जोन—ससार का इतिहास पृष्ठ 344

2 ए हिस्ट्री आफ वर्ल्ड सिवलिजेशन, पृष्ठ 494

यूरोप के सभी देश चिन्तित थे। उन्होंने फ्रांस के विरुद्ध गुट बनाकर उसके विरुद्ध मोर्चा खोल दिया था। नेपोलियन ने इंगलैंड के अतिरिक्त अन्य सभी देशों को समय समय पर युद्धों में पराजित किया और उनके गुटों को तोड़ने में सफलता प्राप्त की। उसको विवश होकर इंगलण्ड के साथ आर्मीन्स की संधि करनी पड़ी। इस संधि के अनुसार यह निश्चित हुआ कि इंगलण्ड माल्टा द्वीप खाली कर देगा। जब उसने द्वीप खाली नहीं किया तो नेपोलियन ने इंगलैण्ड के विरुद्ध युद्ध प्रारम्भ कर दिया। इंगलण्ड ने फ्रांस के विरुद्ध तीसरी बार गुट का निर्माण किया। इस गुट में इंगलण्ड के साथ आस्ट्रिया, रूस और स्वीडन आदि देश थे। नेपोलियन को इस समय हनोवर पर अधिकार करने में सफलता मिली।

1805 ई० में ट्रैफलगार नामक स्थान पर भयंकर युद्ध हुआ। इस युद्ध में इंगलण्ड के सेनापति नेलसन ने फ्रांस तथा स्पेन के संयुक्त जहाजी बेड़े को बुरी तरह पराजित किया। स्वयं नेलसन भी इस युद्ध में मृत्यु को प्राप्त हुआ। थल युद्ध में आस्टरलिज नामक स्थान पर नेपोलियन ने आस्ट्रिया की सेना को बुरी तरह परास्त किया। विवश होकर आस्ट्रिया को इंगलैण्ड के गुट से अलग होना पड़ा तथा नेपोलियन के साथ प्रेस बुग की संधि पर हस्ताक्षर करने पड़े। इस संधि के अनुसार राइन राज्य संघ की स्थापना की गई और पवित्र रोमन सम्राट के पद को समाप्त कर दिया गया।

जब नेपोलियन ने जर्मनी के अठारह प्रदेशों पर विजय प्राप्त कर राइन राज्य की स्थापना की तो प्रशा नेपोलियन के इस कार्य से बहुत क्रोधित हुआ, क्योंकि नेपोलियन राइन राज्य संघ के माध्यम से प्रशा के मामले में हस्तक्षेप कर रहा था। इसलिए प्रशा ने अप्रसन्न होकर नेपोलियन के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया। नेपोलियन ने उस युद्ध में बुरी तरह पराजित किया और संधि पर हस्ताक्षर करने के लिए प्रशा को बाध्य किया। अब नेपोलियन को रूस से निपटना बाकी था। 14 जून 1807 ई० को फ्रीडलण्ड के युद्ध में नेपोलियन ने रूस को बुरी तरह पराजित किया और उसे टिलसिट की संधि पर हस्ताक्षर करने पड़े। यह संधि नेपोलियन के उत्कर्ष की चरम सीमा थी।

नेपोलियन पतन की ओर टिलसिट की संधि तक नेपोलियन अधिकांश कार्यों में सफलता प्राप्त कर चुका था परन्तु इसके बाद इसके भाग्य ने उसका साथ नहीं दिया। अन्ततोगत्वा उसका पतन हो गया। उसको पतन की ओर ले जाने में निम्न घटनाओं का योगदान रहा—

1 महाद्वीपीय प्रणाली—टिलसिट की संधि के कारण नेपोलियन की शक्ति सर्वोच्च बिन्दु पर पहुंच गई थी। इस समय तक उसने इंगलैंड के सिवाय यूरोप के सभी महत्वपूर्ण देशों को युद्धों में पराजित कर दिया था लेकिन उसकी साम्राज्यवादी लालसा अभी तक पूरी नहीं हुई थी। वह इंगलैंड पर भी विजय प्राप्त करना

चाहता था। उसका यह मानना था कि यूरोप पर प्रभुसत्ता बनाये रखने के लिए इंगलण्ड को पराजित करना आवश्यक है।

ट्रेफलगार के युद्ध से नेपोलियन यह समझ चुका था कि इंगलण्ड को परास्त करना कोई आसान काम नहीं है। इंगलण्ड की नेपोलियन के विरुद्ध सफलता का मुख्य कारण यह था कि उसका सामुद्रिक बेडा बहुत शक्तिशाली था। इसलिये नेपोलियन इंगलिश चैनल को पार कर इंगलण्ड पर आक्रमण करने का साहस नहीं कर पा रहा था। अतः नेपोलियन ने इंगलण्ड को झुकाने के लिये एक नई नीति का प्रयोग किया। जिसे व्यापार बहिष्कार नीति अथवा महाद्वीपीय प्रणाली के नाम से जाना जाता है।

नेपोलियन ने सोचा कि यदि इंगलण्ड के व्यापार को नष्ट कर दिया जाय तो वह शीघ्र ही हथियार डाल देगा। इस उद्देश्य की पूर्ति करने के लिये उसने इंगलण्ड के विरुद्ध व्यापारिक संघर्ष प्रारम्भ कर दिया और उसके व्यापार को नष्ट करने के लिये हर सम्भव प्रयास किया। यह व्यापारिक संघर्ष ही इतिहास में महाद्वीपीय व्यवस्था के नाम से प्रसिद्ध है।

व्यवस्था को क्रियान्वित करने का तरीका —

(i) **बर्लिन की आज्ञाप्ति**—नेपोलियन इंगलण्ड को एक व्यापारिक देश समझता था। इसलिये उसने इंगलण्ड के व्यापार को सब प्रकार से नष्ट करने का प्रयास किया। नेपोलियन चाहता था कि इंगलण्ड का माल यूरोप का कोई देश नहीं खरीदे और न उसे कोई देश कच्चा माल दे। 1806 में नेपोलियन ने बर्लिन में जो घोषणाएँ की वह इतिहास में बर्लिन की आज्ञाप्ति के नाम से प्रसिद्ध है।

इस आज्ञाप्ति के अनुसार नेपोलियन ने सभी यूरोपियन देशों को आदेश दिया कि वे इंगलण्ड के जहाजों को उनके बन्दरगाहों पर नहीं आने देंगे और न ही इंगलण्ड के साथ किसी प्रकार का व्यापार करेंगे। इस प्रकार नेपोलियन ने यूरोप के सभी बन्दरगाह इंगलण्ड के जहाजों के लिये बन्द करवा दिये। यदि यूरोप के किसी भी बन्दरगाह पर इंगलण्ड का व्यापारी दिखाई देता तो उसे गिरफ्तार कर जेल में बन्द कर दिया जाता था और उसका माल भी जब्त कर लिया जाता था। नेपोलियन ने यूरोपियन देशों को यह भी आदेश दिया कि जो वस्तुएँ पहले ब्रिटेन से मँगवाई जाती थी। उनका उत्पादन यूरोप में प्रारम्भ किया जाय अथवा वे वस्तुएँ संयुक्त राष्ट्र आदि तटस्थ राष्ट्रों से आयात की जाय। नेपोलियन का बर्लिन आदेश इंगलण्ड के लिये एक भयंकर चुनौती था। इस प्रकार नेपोलियन ने इंगलण्ड को पराजित करने के लिये सम्पूर्ण यूरोप को फ्रांस व इंगलण्ड के आर्थिक युद्ध में झोंक दिया।

(ii) **ओर्डस आफ कौंसिल**—ब्रिटेन की सरकार ने बर्लिन आदेश के विरोध में आर्डिनेंस आफ कौंसिल पास किया। वहाँ की सरकार ने जनवरी से नवम्बर 1807

६० के बीच कई आदेश जारी किये। जिसके अनुसार यह घोषणा की गई थी कि यदि कोई भी तटस्थ राष्ट्र फ्रांस और उसके अधीन देशों से व्यापार करता हुआ पाया जायेगा तो ब्रिटेन उसका माल जब्त कर लेगा। ब्रिटेन ने तटस्थ राष्ट्रों को भी यह आदेश दिया कि अंग्रेजी बन्दरगाहों पर रिपोर्ट करने के पश्चात् ही उनके जहाज यूरोपियन तटों के लिये रवाना होंगे। इस आदेश के पीछे ब्रिटेन का मुख्य उद्देश्य यह था कि तटस्थ राष्ट्रों के जहाज फ्रांस और अन्य यूरोपियन देशों का माल नहीं पहुँचा सकें।

(iii) वारसा मिलान, फाउन्टेन ब्लू की घोषणा—आर्डस आफ कौंसिल के विरोध में नेपोलियन ने जनवरी 1807 में वारसा में घोषणा की कि यदि किसी भी देश का जहाज ब्रिटेन के बन्दरगाह पर रिपोर्ट करने के लिये जायेगा तो फ्रांस उसके जहाजी बेड़े को जब्त कर लेगा।

इसके पश्चात नेपोलियन ने फाउन्टेन ब्लू की घोषणा में यह आदेश जारी किया कि यदि किसी भी देश में इंगलैण्ड का माल पाया गया तो फ्रांस उसे जब्त कर लेगा। नेपोलियन को यह आदेश इसलिये जारी करना पड़ा, क्योंकि पिछले तीन वर्षों में कई यूरोपियन देश इंगलैण्ड से गुप्त रूप से माल मँगवाने लग गये थे।

महाद्वीपीय व्यवस्था के परिणाम—महाद्वीपीय व्यवस्था नेपोलियन की अद्भुत सूझबूझ का परिणाम थी। इस व्यवस्था के माध्यम से नेपोलियन यह चाहता था कि इंगलैण्ड के व्यापारिक प्रभुत्व को समाप्त कर फ्रांस को यूरोप का व्यापारिक केन्द्र बना लिया जाय। नेपोलियन को अपने उद्देश्य में सफलता नहीं मिली। अपितु यह नीति फ्रांस के लिये घातक सिद्ध हुई। यूरोपियन देशों का अपने उपनिवेशों से सम्बन्ध विच्छेद होने के कारण माल आना बन्द हो गया। परिणामस्वरूप वस्तुओं के भावों में वृद्धि हुई और वस्तुओं का काला बाजार प्रारम्भ हो गया। इससे जन-साधारण बहुत दुःखी हो गया और बहुत से देश गुप्त रूप से इंगलैण्ड से सामान मँगवाने लगे।

इस व्यवस्था से फ्रांस का व्यापार अवरुद्ध हो गया और इसने फ्रांस और इंगलैण्ड दोनों ही देशों की आर्थिक व्यवस्था को प्रभावित किया। इंगलैण्ड यूरोप के अन्य देशों से माल नहीं मंगवा सका परन्तु अन्य देशों को उसका माल निरन्तर जाता रहा। जबकि फ्रांस अपना माल अन्य देशों को नहीं भेज सका। इसका परिणाम फ्रांस के लिये घातक सिद्ध हुआ। इसके अतिरिक्त फ्रांस के मित्र राष्ट्रों के व्यापार का ह्रास होने के कारण वे भी फ्रांस से नाराज हो गये। इसलिये नेपोलियन का पतन सम्भव हुआ। यूरोप का व्यापार चौपट हो गया। इंगलैण्ड का माल यूरोप में नहीं आने से वस्तुओं के दाम बहुत अधिक बढ़ गये। जन साधारण को दैनिक उपयोग की वस्तुएँ न मिलने के कारण उसने नेपोलियन की आलोचना शुरू कर

दिया। यूरोप के देश धीरे धीरे इस महाद्वीपीय व्यवस्था का विरोध करने लगे और इस व्यवस्था से अपने को मुक्त करने का प्रयास करने लगे।

जब स्वीडन ने महाद्वीपीय व्यवस्था का पालन करने से इ कार कर दिया तो नपोलियन ने वहा के शासक को हटा दिया। उसके स्थान पर अपने सेनापति को वहा का शासक नियुक्त कर दिया। हालण्ड पर उस समय नेपोनियन का भाई लुई बोनापाट शासन कर रहा था। जब उसने भी इस नीति का पालन करन से इ कार किया तो नेपोलियन ने उस भी शासक पद मे हटा दिया और हालैण्ड को फ्राम म मिला निया। पोप ने भी नेपोलियन की इस नीति का विरोध किया। इसलिये नेपोलियन ने पोप का भी राज्य छीन लिया और उसे जेल के सीखचो में ब द कर दिया। पुतगाल ने भी इस नीति का विरोध किया। परिणामस्वरूप नेपोलियन ने पुतगाल को फ्रास म मिला लिया। इस प्रकार नेपोलियन ने अपनी महाद्वीपीय व्यवस्था को लागू करने के प्रश्न को लेकर अपने सभी मित्रो म असतोष पदा कर दिया।

प्रोफसर मायस ने लिखा है कि इ गलण्ड को ध्वस करने की नेपोलियन की यह नीति एक आत्म हत्या की नीति थी। इस नीति स उसके साम्राज्य को भयकर आघात पहुँचा। इ गलण्ड की नौ सनिक शक्ति के कारण उसकी यह नीति असफल रही।

इस महाद्वीपीय व्यवस्था के कारण कुछ देश नेपोलियन के मित्र बन गये क्योकि व इ गलण्ड के ओडस आफ कौंसिल का पालन करने के लिये तयार नही थे। उदाहरण के लिये हम डेनमाक को ले सकते हैं। जो इ गलण्ड का मित्र था लेकिन ओडस आफ कौंसिल का विरोधी होने के कारण उसकी फ्रास से मित्रता सम्भव हा गई। नेपोलियन की बर्लिन आज्ञाप्ति के अनुसार सयुक्त राज्य अमेरिका न यूरोपियन दशा को माल भेजना प्रारम्भ कर दिया था। फलस्वरूप उसके इ गलण्ड के साथ सम्ब ध कटु हा गये। इसलिए आगे चलकर 1812 ई० मे दोनो देशो के बीच युद्ध हुआ। जिसके परिणाम फ्रास को भी भोगने पडे। इस महाद्वीपीय व्यवस्था के कारण फ्रास का व्यापार चौपट हो गया। उसे कई देशा के साथ युद्ध करने पडे जिसके कारण फ्रास का राजकोष खाली हो गया। परिणामस्वरूप फ्रास मे भ्रष्टाचार बढा और उसकी आर्थिक दशा बहुत शोचनीय हा गई।

(2) नेपोलियन का पोप क साथ सम्ब ध—कौंस्यूलेट बनन के पश्चात नपोलियन न अपनी स्थिति का दृढ करन के लिये पोप क साथ समझौता कर लिया था, जिसस उस कथोलिक जनता का समथन मिल गया। कई वर्षों तक नेपोलियन इस समझौते का पालन करता रहा पर तु जब पोप ने नेपोलियन की महाद्वीपीय व्यवस्था का विरोध किया तो नपोलियन उस पर बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने पोप का राज्य छीन लिया। इस पर पोप न नपोलियन को चच से निकाल दिया। इस

समय नेपोलियन न पोप को गिरफ्तार कर जेल के सीखचो मे बन्द कर दिया। इसक पश्चात उसन पोप का राज्य फ्रास के साम्राज्य मे मिला लिया। नेपोलियन के इस काय से सम्पूण यूरोप की कथोलिक जनता उसकी शत्रु बन गई।

(3) स्पेन से सघर्ष—स्पेन का शासक नेपोलियन का घनिष्ट मित्र था। उसने नेपोलियन को युद्धो म बहुत महत्वपूण सहयोग दिया था। जब नेपोलियन युद्धो में व्यस्त था तब स्पेन के शासक ने उसे जन, धन और सामग्री आदि से सहायता पहुँचाई थी, परन्तु नेपोलियन स्पेन को हडपना चाहता था, इसलिये वहा का शासक उसका कट्टर शत्रु बन गया।

नेपोलियन न स्पेन क राजवश के झगडे का लाभ उठाकर वहा क शासक चार्ल्स चतुथ को सिहासन से च्युत कर दिया और उसके उत्तराधिकारी युवराज फर्डीनेण्ड को गिरफ्तार कर लिया। इसक पश्चात उसने अपन भाई जोसफ बोनापाट को स्पेन का सम्राट नियुक्त किया। नेपोलियन के इस काय से स्पेनिश जनता में भयकर असतोष फैला। वहा की जनता ने नेपोलियन के विरुद्ध राष्ट्रीय आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया।

1808 ई० में स्पेनिश जनता न बोलोन नामक स्थान पर फ्रासीसी सेना को बुरी तरह पराजित किया। परिणामस्वरूप जोसफ बोनापाट स्पेन से भाग गया। इस समय इगलण्ड न क्रान्तिकारी स्पेनिश जनता की सहायता के लिये आर्थर वेलेजली के नेतृत्व म एक सेना भेजी। इगलैण्ड का सेनापति आथर वलेजली जो आगे चलकर ड्यूक आफ वलिगटन के नाम स प्रसिद्ध हुआ था, उसने अगस्त, 1808 ई० म विमरो नामक स्थान पर फ्रासीसी सेना को युद्ध म बुरी तरह पराजित किया और पुर्तगाल को फ्रासीसी अधिपत्य से स्वतन्त्र करान म सफल हुआ। इसलिये नेपोलियन स्पेन आया और उसने स्पेनिश जनता को कई स्थानो पर युद्धो म बुरी तरह से परास्त किया। इसक पश्चात् उसने अपन भाई जसफ बोनापाट को पुन स्पेन का शासक बना दिया। इस समय उसने अग्रेजी सेना से युद्ध करने का निश्चय किया परन्तु आस्ट्रिया द्वारा फ्रास के विरुद्ध युद्ध घोषित कर देने से उसे अपना निश्चय बदलना पडा। नेपोलियन स्पेन मे सेना का उत्तरदायित्व मार्शल सार को सौंपकर स्वय फ्रास के लिये रवाना हुआ।

फ्रासीसी सेनापति मार्शल सार और ब्रिटेन के सेनापति मूर के बीच कोरुना नामक स्थान पर युद्ध हुआ। इस युद्ध में मूर न मार्शल सार को बुरी तरह हराया। इन घटनाओं न स्पेन के राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रोत्साहित किया। नेपोलियन ने मेसीना क नेतृत्व म एक विशाल सना स्पेन म भेजी। ब्रिटेन क सेनापति आथर वलजली ने मसीना को युद्ध म बुरी तरह पराजित किया परन्तु वह उस स्पेन से बाहर नहीं खदेड सका। इस प्रकार नेपोलियन ने स्पेन को हडपकर एक भयकर गलती की।

वह मास्को से रवाना हुआ उसके पीछे से रूसिया ने उसकी सेना पर जोरदार आक्रमण किया। नेपोलियन के हजारों सनिक मर रहे थे और जो बचे हुए थे उन्हें भर पेट भोजन नहीं मिल रहा था। इस प्रकार नेपोलियन बहुत कठिनाईयो का सामना करता हुआ अपनी विशाल सेना मे से केवल 20 हजार सनिकों के साथ वापस फ्रास लौट सका। रूस म नपोलियन की असफलता न यूरोप के अन्य देशों को पुन नपोलियन के विरुद्ध युद्ध करने के लिये प्रेरित किया।

(5) राष्ट्रों का युद्ध—नेपोलियन की मास्को मे असफलता के पश्चात इगलण्ड प्रशा, रूस और आस्ट्रिया आदि देशो ने नेपोलियन के विरुद्ध एक गुट का निमाण किया। इगलण्ड के सनापति ड्यूक आफ वेलिंगटन ने स्पेन म फ्रास की सनाओं को युद्ध म बुरी तरह पराजित किया। इसके पश्चात वह स्पेन की राजधानी मड्रिड पर अधिकार करने म सफल हुआ। जोसफ को स्पन छोडकर भागना पडा। उधर अक्टूबर 1813 ई० मे नेपोलियन का प्रशिया, आस्ट्रिया और रूस की सेनाओं स लाइपज़िग नामक स्थान पर युद्ध हुआ। इस युद्ध म इन तीनो देशो की सनाओं न नपोलियन को बुरी तरह से पराजित किया और उसे राइन नदी क इस पार तक खदेड दिया। यह युद्ध चार दिन तक चलता रहा। इस युद्ध को इतिहास म 'राष्ट्रो क युद्ध' क नाम स जाना जाता है। इसके बाद भी इस गुट क सदस्यों ने नेपोलियन का समझौता करन के लिये विवश किया परन्तु नेपोलियन ने समझौता करने से इन्कार कर दिया। इस पर प्रशा और रूस की सेनाओं ने पेरिस म प्रवेश किया और नेपोलियन को बन्दी बनाकर इटली के पास एल्बा द्वीप म भेज दिया गया।

6 वाटरलू का युद्ध (18 जून 1815)—नेपोलियन को एल्बा द्वीप म भेजने के पश्चात मित्र राष्ट्रो ने बूर्बो वश के लुई अठारहवें को फ्रास का सम्राट बनाया। इसके पश्चात उन्होने फ्रास के साथ एक सधि पर हस्ताक्षर किए। अब मित्र राष्ट्रो के प्रतिनिधि यूरोप की प्रादेशिक व्यवस्था के बारे म विचार करने के लिए आस्ट्रिया की राजधानी वियना म एकत्रित हुए। वियना म मित्र राष्ट्रो के प्रतिनिधियो न यूरोप की प्रादेशिक व्यवस्था क बारे मे अनक निणय लिए। इस सम्मलन की कायवाही अभी पूरी भी नही हुई थी कि नेपोलियन फरवरी 1815 ई० म एल्बा द्वीप म भागकर फ्रास पहुच गया। वहा पहुचत ही सना और जनता न उसका साथ दिया। इस पर नपोलियन न लुई अठारहवें का शासक पद से हटा दिया और स्वय को फ्रास का सम्राट घोषित कर दिया। लुई अठारहवा फ्रास म बेल्जियम भाग गया।

अब मित्र राष्ट्रो ने वियना काग्रेस की कायवाही का बीच मे ही बन्द कर नपोलियन के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया। अग्रेज सेनापति वेलिंगटन और प्रशियन सनापति ब्लूचर ने 18 जून 1815 ई० को वाटरलू के युद्ध म नेपोलियन को बुरी तरह पराजित किया। नेपोलियन युद्ध का मदान छोडकर पेरिस पहुचा।

इस बार जनता ने उसका साथ नहीं दिया। वह अमेरिका भागने का प्रयास कर रहा था कि अंग्रेज सैनिकों ने उसे पकड़ लिया। इसके पश्चात उसे बन्दी बनाकर सेन्ट हेलेना के द्वीप में भेज दिया गया। 6 वर्ष तक बन्दी के रूप में जीवन व्यतीत करने के पश्चात 1821 ई० में नेपोलियन की मृत्यु हो गई। नेपोलियन की गिनती आधुनिक संसार के महान विजेताओं और रण कुशल सेना नायकों में की जाती है। उसकी मृत्यु के साथ ही फ्रांसीसी क्रांति का अध्याय भी समाप्त हो गया।

वाटरलू के युद्ध का महत्व— (1) वाटरलू के युद्ध का विश्व इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। इस युद्ध में पराजय के पश्चात नेपोलियन के भाग्य का सितारा हमेशा के लिए अस्त हो गया। उसे अपना शेष जीवन बन्दी के रूप में व्यतीत करना पड़ा और लुई अठारहवें को पुनः फ्रांस का सम्राट बनाया गया।

(2) फ्रांस की राज्य क्रान्ति निरंकुश राजतन्त्र के विरुद्ध हुई थी, लेकिन मित्र राष्ट्रों ने वाटरलू युद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात फ्रांस में लुई अठारहवें को शासक बनाकर फिर से निरंकुश राजतन्त्र को स्थापित कर दिया। इस प्रकार इस युद्ध ने फ्रांस की राज्य क्रान्ति को असफल बना दिया। इस युद्ध से यह भी स्पष्ट हो गया कि सैनिक अधिनायक के रूप में अधिक समय तक शासन नहीं कर सकता और राष्ट्रीयता तथा साम्राज्यवाद के संघर्ष में किसकी विजय होती है।

(3) इस युद्ध ने रूस, प्रशा, आस्ट्रिया और फ्रांस को एकता के सूत्र में बाँध दिया। जो काफी वर्षों तक इस सूत्र में बँधे रहे। इन देशों ने वियना कांग्रेस के माध्यम से यूरोप में शांति व्यवस्था स्थापित करने का प्रयास किया।

(4) वाटरलू के युद्ध में अंग्रेजी सेनापति ड्यूक आफ वेलिंगटन ने अपनी असाधारण सैनिक प्रतिभा का परिचय दिया। उसने नेपोलियन के दो लाख सैनिकों को इस युद्ध में बुरी तरह पराजित किया। जिसके फलस्वरूप इंगलैण्ड की सैनिक शक्ति की धाक यूरोप पर पुनः जम गई।

(5) इस युद्ध में नेपोलियन का पतन हुआ और यूरोप में पुनर्निर्माण का युग प्रारम्भ हुआ। इस दृष्टि से यह युद्ध बहुत महत्वपूर्ण समझा जाता है।

नेपोलियन के पतन के कारण नेपोलियन एक सामान्य सैनिक पद से उन्नति करता हुआ फ्रांस का सम्राट बन गया था। जिसने इंगलैण्ड को छोड़कर यूरोप के सभी देशों को युद्ध में पराजित किया। जिस तेजी से नेपोलियन का उत्कर्ष हुआ उतनी ही तेजी से उसका पतन हुआ। उसके पतन के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे --

1 **असीमित महत्वाकांक्षा**—नेपोलियन की महत्वाकांक्षायें असीमित थी। वह सम्पूर्ण यूरोप पर अधिकार करना चाहता था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने अनेक युद्ध लड़े और कुछ सीमा तक उसे सफलता भी प्राप्त हुई। परन्तु आखिर वह भी एक मनुष्य ही था। जैसे-जैसे उसकी उम्र ढलती जा रही थी, वैसे

बसे उसकी काय क्षमता भी कम होती जा रही थी। वह अधिक मोटा तथा विलास प्रिय हो गया था, इसलिए अब उसम पहले जस स्फूर्ति नही रही।

2 अत्यधिक केन्द्रित शासन —नेपोलियन ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी। शासन की समस्त शक्तियाँ उसके हाथों म केन्द्रित थी। वह शक्तियो के विकेन्द्रीकरण का पक्षपाती नहीं था और न ही साम्राज्य के किसी भी अधिकारी को अधिक अधिकार देना पसन्द करता था। नेपोलियन प्रशासन काय म किसी से भी परामश नहीं लेता था। वह नहीं चाहता था कि उसके अलावा अन्य व्यक्ति प्रजा म उस जसा लोकप्रियता प्राप्त कर। इसलिए उसका पतन अवश्य म्भावी था।

3 सैनिक दुबलता—सनिक दुबलता उसके पतन का कारण सिद्ध हुई। उसकी सेना में निम्नलिखित दोष आ गये थे —

(i) नेपोलियन ने अपने असाधारण व्यक्तित्व और सनिक शक्ति के आधार पर एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी। उसका यह साम्राज्य सनिक शक्ति पर आधारित था। जब तक नेपोलियन के व्यक्तित्व म प्रतिभा विद्यमान रही तब तक फ्रास तथा अन्य देश उसकी इच्छा का पालन करत रहे, परन्तु जैस ही उसकी प्रतिभा क्षीण हुई लोगो ने उसका साथ छोड दिया। सैनिक शक्ति पर आधारित राज्य उस समय तक शक्तिशाली रहता है जब तक कि शक्ति मौजूद हो। जस ही शक्ति नष्ट हो जाती है साम्राज्य छिन्न भिन्न हो जाता है। प्रारम्भ में नेपोलियन की सेना के सामने क्रान्ति के सिद्धान्तो के प्रचार करने का आदेश था। इसलिए वह स्वतन्त्रता, समानता और विश्व बन्धुत्व के लिए लड रही थी परन्तु जब नेपोलियन ने इन आदर्शों की अवहेलना कर साम्राज्यवादी नीति का पालन किया, तो उसकी सेना में पहले जैसा जोश नही रहा।

(ii) प्रारम्भ म नेपोलियन की सेना राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत थी। इसलिय दूसरे देशो की जनता यह चाहती थी कि नेपोलियन सना सहित उनके देश म आकर उनको निरकुश शासन से मुक्ति दिलाय। जब नेपोलियन ने अपनी सेना को दूसरे देशा में रखना प्रारम्भ कर दिया और सेना का व्यय भी उन देशो से वसूल करने लगा तो वहाँ की जनता नेपोलियन के विरुद्ध हो गई।

(iii) प्रारम्भ मे नेपोलियन की सेना म राष्ट्रीयता की प्रबल भावनायें विद्यमान थी। जब उसने अपनी सेना म दूसरे देशा क लोगो को भर्ती करना प्रारम्भ कर दिया तो इसका परिणाम यह हुआ कि सेना म राष्ट्रीय भावना का लोप होता गया।

(iv) नेपोलियन का प्रारम्भ म उसके नये अस्त्रा शस्त्रा तथा समर नीति के कारण आश्चयजनक सफलतायें मिली। धीरे धीरे अ य श्शा न भी उसकी युद्ध प्रणाली को अपना लिया। परिणामस्वरूप उसकी श्रेष्ठता का अ त हो गया।

(v) नेपोलियन ने इतने अधिक युद्ध लडे थे कि उसके अधिकाश अनुभवी और योग्य सनिक उन युद्धा म मारे गये थे। वह जिन सनिको के सहारे वाटरलू के युद्ध मे अपन भाग्य को आजमा रहा था उनकी आयु 14 या 15 वप से अधिक नही थी। इस प्रकार उसकी सनिक निबलता उसके पतन का प्रमुख कारण सिद्ध हुई।

4 **जन प्रतिनिधित्व को महत्व नहीं देना**—नेपोलियन ने शासन व्यवस्था मे जनप्रतिनिधित्व को विशेष महत्व नहीं दिया था। इससे फ्रास की जनता म भयकर असन्तोष विद्यमान था। नेपोलियन ने जनता को केवल सामाजिक समानता ही प्रदान की। लाकमत और स्थानीय स्वशासन के अभाव मे उसके साम्राज्य की जडें खोखली हो चुकी थी। प्रारम्भ म नेपोलियन न योग्य यक्तियो को ही राजकीय पदो पर नियुक्त किया था, परन्तु धीरे धीरे उसने यह प्रथा समाप्त कर दी और अपने सम्बन्धियो को राज्य के उच्च पदा पर नियुक्त करना प्रारम्भ कर दिया। फ्रास की राज्य क्रान्ति ने निरकुश राजतन्त्र और सामन्तो की शक्ति को समाप्त कर दिया था। परन्तु नेपोलियन ने एक नये सिरे से फ्रास म निरकुश राजतन्त्र की स्थापना की। इससे जनता मे असन्तोष फैलना स्वाभाविक ही था।

5 **इगलैण्ड की सुदृढ सामुद्रिक शक्ति**—इगलण्ड की सुदृढ सामुद्रिक शक्ति नेपोलियन के पतन का कारण बनी। नेपोलियन ने यूरोप क सभी देशो को पराजित किया परन्तु इगलैण्ड की सुदृढ सामुद्रिक शक्ति के कारण उसको पराजित करने मे असफल रहा। यही कारण था कि इगलण्ड नेपोलियन का लगातार मुकाबला करता रहा। फ्रास की नौ शक्ति की निबलता के कारण नेपोलियन इगलण्ड की सामुद्रिक शक्ति नष्ट नही कर सका।

नेपोलियन कहता था कि यदि छ घण्टे के लिये उसका इगलिश चनल पर अधिकार हो जाये तो वह इगलण्ड म अपनी सेनायें उतार सकता है और उसे युद्ध मे पराजित कर सकता है। यूरोप के देशो को उसने बार बार पराजित किया लेकिन इगलण्ड को पराजित करने म असफल रहा इगलण्ड निरन्तर उसका विरोध करता रहा और उसके शत्रु देश की सहायता करता रहा। अन्त म नेपोलियन ने इगलण्ड को पराजित करने क लिय महाद्विपीय यवस्था को अपनाया। नेपोलियन का यह नीति भी असफल रही। इगलण्ड की प्रबल सामुद्रिक शक्ति ने उसकी हर योजना को धूल म मिला दिया। इस प्रकार नेपोलियन का पतन हो गया।

5 महाद्वीपीय व्यवस्था—महाद्वीपीय व्यवस्था के कारण यूरोप के सभी देशों ने नैपोलियन का विरोध करना प्रारम्भ कर दिया। उसकी इस नीति के कारण कई मित्र देश उसके कट्टर शत्रु बन गये। इस नीति का पालन करने के लिये उसे अनेक युद्ध लड़ने पड़े। इसी के कारण स्पेन और पुर्तगाल ने नेपोलियन के विरुद्ध युद्ध प्रारम्भ कर दिया। इस युद्ध को प्रायद्वीप का युद्ध कहा जाता है। नेपोलियन की महाद्वीपीय नीति के कारण उसका मित्र देश रूस भी उसका कट्टर शत्रु बन गया।

प्रायद्वीप के युद्धों के कारण नेपोलियन की सैनिक शक्ति को बड़ा आघात पहुंचा। नेपोलियन ने कहा था कि स्पेन का युद्ध एक बढ़ते हुए घाव की तरह है, जिसने मुझे खा लिया है। प्रायद्वीप के युद्ध ने इंगलण्ड को अवसर दिया कि वह नेपोलियन के विरुद्ध स्पेन और पुर्तगाल में अपनी सेना भेजे। इंगलण्ड ने अपनी सेना इन दोनों देशों की सहायता करने के लिये भेजी। उसने नेपोलियन को स्पेन और पुर्तगाल में असफल कर दिया। इससे उत्साहित होकर रूस ने भी युद्ध किया। वहां पर भी नेपोलियन को असफलता मिली। इस प्रकार निरंतर असफलताओं के कारण उसका पतन अवश्यम्भावी हो गया।

6 रूस का अभियान—नेपोलियन ने रूस पर आक्रमण कर एक भयंकर गलती की थी। इस युद्ध में उसकी सेना नष्ट हो गई थी। नेपोलियन 6 लाख सैनिकों में से केवल 20 हजार सैनिक बचाकर फ्रांस ले गया था। पांच लाख अस्सी हजार सैनिक भूख, सर्दी के और रूसी सेना के पीछे से अचानक आक्रमण करने के कारण मारे जा चुके थे। रूस में नेपोलियन की असफलता ने यूरोपियन देशों के इस संदेह को दूर कर दिया कि नेपोलियन अजेय है। इसके पश्चात नेपोलियन यूरोप में फिर अपनी सैनिक शक्ति की धाक नहीं जमा सका।

7 पोप से झगड़ा—पोप ने नेपोलियन की महाद्वीपीय प्रणाली को लागू करने में इन्कार कर दिया इस पर नेपोलियन ने पोप का राज्य छीन लिया और उसे अपने साम्राज्य में मिला लिया। पोप ने उसे चर्च से बहिष्कृत कर दिया। इस पर नेपोलियन ने पोप को बन्दी बनाकर जेल के सीखचों में बन्द कर दिया। नेपोलियन के इस कार्य से सम्पूर्ण यूरोप की कैथोलिक जनता उसके विरुद्ध हो गई। इस बहुसंख्यक जनता ने संकट के समय नेपोलियन को किसी प्रकार का सहयोग नहीं दिया। इस प्रकार नेपोलियन का पोप से झगड़ा आगे चलकर उसके पतन का कारण सिद्ध हुआ।

उपरोक्त सभी कारणों से नेपोलियन अपने साम्राज्य से हाथ धो बैठा उसने 6 वर्ष तक एक निर्वासित बन्दी के रूप में सेन्ट हेलेना में अपना शेष जीवन व्यतीत किया। मार्शल फोच ने लिखा है कि "नेपोलियन इस बात को भूल गया कि मनुष्य परमात्मा नहीं बन सकता। वह भूल गया कि राष्ट्र व्यक्ति से तथा चारित्रिक

नियम मानवता से उच्च है। वह भूल गया कि युद्ध ही सर्वोच्च लक्ष्य नही है, यद्यपि शान्ति युद्ध से कहीं अधिक उच्च है।"

नेपोलियन का स्थान—नेपोलियन जैसे व्यक्ति विश्व के इतिहास में बहुत कम हुए हैं। उसने 20 वर्ष तक यूरोपियन देशों के साथ अनेक युद्ध लड़े और उनमें अपनी असाधारण सैनिक प्रतिभा का प्रदर्शन किया। स्थल युद्धों में उसके सामने किसी भी देश की सेना का टिकना मुश्किल था। उसने आस्ट्रिया प्रशा और रूस आदि देशों की सेनाओं को कई बार युद्धों में परास्त किया। वह एक बहादुर सेनापति होने के साथ साथ एक कुशल राजनीतिज्ञ भी था। उसमें साहस कूट कूट कर भरा हुआ होने के कारण कठिनाइयों का सामना करने से वह हिचकता नहीं था। नेपोलियन के शब्दकोष में 'असम्भव' शब्द के लिए कोई स्थान नहीं था। वह घोर परिश्रम करने में समर्थ था। मेकनल बर्नस ने लिखा है कि यह दुर्भाग्य है कि नेपोलियन की अधिकांश ख्याति सैनिक सफलताओं को दी जाती है एक राजनीतिज्ञ के रूप में उसके कार्य बहुत अधिक महत्वपूर्ण थे।'[1]

फ्रांसीसी राज्य क्रांति की अमूल्य देन नेपोलियन बोनापार्ट था। उसने यह स्पष्ट कर दिया कि प्रखर मानसिक बुद्धि, रणकौशल तथा शासक कला आदि गुण कुलीन वर्ग के अलावा साधारण वर्ग के व्यक्ति में भी हो सकते हैं। नेपोलियन ने फ्रांस और यूरोप को महत्वपूर्ण देन दी है। उसने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की और पेरिस को यूरोपीय राजनीति का केन्द्र बना दिया। पेरिस को एक सुन्दर और आकर्षक नगर बना दिया। जो अपनी समृद्धि तथा सौन्दर्य के लिए विश्व में प्रसिद्ध हो गया। उसने फ्रांस की जनता को धार्मिक उपासना की स्वतन्त्रता प्रदान की। फ्रांसीसी जनता को सामाजिक और आर्थिक समानता प्रदान की और क्रान्ति के द्वारा भूमि व्यवस्था में जो भी परिवर्तन हुए थे, उसको उसने बनाए रखा।

नेपोलियन महान विजेता होने के साथ साथ कुशल प्रशासक भी था। यद्यपि उसने फ्रांस में पुनः निरंकुश राजतन्त्र कायम कर दिया था लेकिन उसने जनहित के लिये अनेक कार्य किये। उसने फ्रांसीसी जनता को सुखी समृद्ध बनाने के लिये अनेक सुधार किये। सरकारी पदों पर योग्य व्यक्तियों को नियुक्त किया और भ्रष्टाचार को दूर करने का प्रयास किया। फ्रांस में सुव्यवस्थित शासन की स्थापना नेपोलियन की सबसे बड़ी देन थी।

नेपोलियन ने शिक्षा के क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण सुधार किये। उसने पेरिस के विश्वविद्यालय को यूरोप का सर्वश्रेष्ठ विश्वविद्यालय बना दिया और विधि संहिता के द्वारा सम्पूर्ण फ्रांस में एक जैसी कानूनी व्यवस्था स्थापित की। इस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में नेपोलियन ने फ्रांस को अमूल्य देन दी।

---

1 मक्नेल बर्नस—वस्टर्न सिवलीजेशन्स पृष्ठ 540

फ्रांस ही नहीं अपितु सारा ससार नेपोलियन का ऋणी है। नपोलियन ने क्रान्ति के अग्रदूत का काम किया। उसने यूरोपियन देशा म क्रान्ति के सिद्धान्तो का प्रचार किया और यूरोपियन देशो ने इन सिद्धान्तो का प्रचार ससार के अन्य देशो मे किया। नेपोलियन पहला व्यक्ति था, जिसने आधुनिक स्वेज नहर के निर्माण की योजना बनाई थी। मिश्र की प्राचीन सभ्यता की खोज नेपोलियन ने की थी।

नेपोलियन यूरोप में जहा जहा गया वहा वहा उसने क्रान्ति के स्वतन्त्रता समानता और विश्व बधुत्व के सिद्धान्तो का प्रसार किया। विजित देशो मे उसने निरकुश शासन व्यवस्था एव दास प्रथा एव सामन्तवाद को समाप्त किया और वहा की जनता को धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की। उसने यूरोपियन देशों मे सामाजिक समानता एव जनतान्त्रिक विचारधारा का प्रचार किया। नेपोलियन के शत्रु देशो ने भी उसकी इस नवीन पद्धति को अपनाना प्रारम्भ कर दिया।

नेपोलियन की सबसे महत्वपूर्ण देन राष्ट्रीयता की भावना का विकास करना था। इस भावना का उसने दो तरह से विकास किया। पोलण्ड जसे देश म उसने जान बूझकर राष्ट्रीयता की भावना को उभारा। स्पेन और जर्मनी म उसने निरकुश शासन की स्थापना कर वहा की जनता म राष्ट्रीयता की भावनाएँ जाग्रत की। जर्मनी और इटली म उसने अप्रत्यक्ष रूप से एकीकरण का माग प्रशस्त कर दिया। इसीलिय नेपोलियन को आधुनिक राष्ट्रीयता का निर्माता कहा जाता है।

प्रस्तावित सन्दर्भ पाठ्य पुस्तकें

1 प्लेट जीन और ड्रमड–विश्व का इतिहास
2 एलिस और जौन–ससार का इतिहास
3 वल्स, एच० जी०–दी आउट लाइन आफ हिस्ट्री
4 मेवाइन–ए हिस्ट्री आफ वल्ड सिवलीजेशन
5 मनबेल बनस-वैस्टन सिवलीजेशन्स

7

औद्योगिक क्रान्ति

औद्योगिक क्रान्ति एक आकस्मिक घटना नही है। इस घटना का सूत्रपात अठारहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध म हो चुका था। धीरे धीरे यह क्रान्ति विकास के माग पर चलती रही। प्रसिद्ध इतिहासकार टायनबी ने इस मत का समथन करते हुए लिखा है कि औद्योगिक क्रान्ति एक आकस्मिक घटना नही है आपितु यह क्रान्ति आज से कई वर्षों पहले प्रारम्भ हो चुकी थी। इसके पश्चात् ही यह शन शन विकास माग पर चल रही है। इस क्रान्ति ने अपना उग्र रूप उन्नीसवी शताब्दी म धारण किया परन्तु आज भी यह क्रान्ति चल रही है और विश्व के देशो को प्रभावित कर रही है। सामान्यत इस क्रान्ति का कायकाल 1770 ई० स 1870 ई० तक का माना जाता है।

क्रान्ति से पूव यूरोप की स्थिति

औद्योगिक क्रान्ति आरम्भ होने स पूव यूरोप के देशो म सामन्तवादी शासन व्यवस्था विद्यमान थी। भूमि पर सामन्तो का अधिकार था। वे कृषको को खेती करने के लिए भूमि देन थ और उनसे अपनी इच्छानुसार कर वसूल करते थ। सामन्तो का अपन किसानो तथा दासो पर पूरा अधिकार था। कृषक एव दास अपने स्वामी की सेवा करत थे और उनके आदेशो का पालन करते थे। सामन्त किसानो से बेगार भी लेत थे। बिना सामन्त की इजाजत के किसान दूसरी जगह जाकर नही बस सकता था।

क्रान्ति स पूव गृह उद्योग धन्धो का काफी विकास हो चुका था। ये मनुष्य की आवश्यकताओ की वस्तुओ का उत्पादन करते थे। बेरोजगारी की समस्या नही थी। जनसख्या म निरन्तर वृद्धि होने के कारण वस्तुओ के दाम बढते जा रहे थे जिससे वस्तुएँ काफी महगी होती जा रही थी। उत्पादन आवश्यकता से कम हो रहा था। जीवन स्तर के उन्नत होने के कारण मनुष्य की आवश्यकताओ म निरन्तर वृद्धि होती जा रही थी। शिक्षा के विकास स मनुष्य का मस्तिष्क वैज्ञानिक बनता जा रहा था। यूरोपियन देशो म साम्राज्यवाद के क्षेत्र म होड लगी हुई थी। यूरोपियन देश अपन अपने उपनिवेशो म वस्तुओ का निर्यात करत थे। उपनिवेशो म सामान

भेजने के लिय एव उत्पादन के साधना म वृद्धि करने क प्रयास किय जा रहे थे। इस समय मध्यम वग व्यापार को विकसित करना चाहता था। इस वग के लोगो के पास काफी धन सम्पत्ति थी। इसलिए इस समय व्यवसाय के क्षेत्र म गिल्ड पद्धति का प्रचलन हुआ। और व्यापार पर गिल्ड्स (सघो का नियन्त्रण था। प्रत्यक उद्योग का अलग अलग गिल्ड होता था और उस सघ के सदस्यो को ही उस धन्धे को करने की इजाजत दी जाती थी।

प्रत्येक व्यक्ति को आठ दस वष तक किसी दक्ष कारीगर के पास रह कर औद्योगिक शिक्षा प्राप्त करनी पडती थी। शिक्षण की समाप्ति के पश्चात् वह स्वतत्र रूप से व्यवसाय नही कर सकता था। उसे अपने शिक्षक के साथ काम करना पडता था। सक्षेप मे व्यक्तियो को स्वतन्त्र रूप से व्यवसाय करने की अनुमति नही थी। यूरोपियन देशों के उपनिवेश दूर दूर स्थित थे। उनको वहा सामान भेजने मे काफी कठिनाई का सामना करना पडता था। इसलिये यूरोपियन देश यातायात के साधनो का विकास करना चाहते थे। इससे स्पष्ट है कि उस समय की परिस्थितियो न औद्योगिक क्राति को अनिवाय बना दिया।

फ्रास की राज्य क्राति ने औद्योगिक क्राति के विकास म महत्वपूण योगदान दिया। राज्य क्राति स पूव फ्रास यूरोप म व्यापार का केन्द्र बना हुआ था। क्राति के समय नेपोलियन की अदूरदर्शिता क कारण फ्रास म उद्योग धधे चौपट हो गये। राज्य क्राति का फ्रास के पडौसी देशो पर भी गहरा प्रभाव पडा और उनके उद्योग धधे भी चौपट हो गये। किन्तु इस क्राति के कारण इगलण्ड को अपने उद्योग धधो के विकास करने का एक अच्छा अवसर हाथ लगा। इसलिए औद्योगिक क्राति का विकास सवप्रथम इगलण्ड म हुआ। इस समय इगलैण्ड म कृषि क्राति हुई व उसके उपनिवेशो का विस्तार हुआ और व्यापार का भी विकास हुआ।

औद्योगिक क्राति का अथ—

भिन्न भिन्न इतिहासकारों न औद्योगिक क्राति की भिन्न भिन्न परिभाषाएँ दी हैं। एलिस और जौन न औद्योगिक क्राति का अथ बताते हुए लिखा है कि "औद्योगिक क्राति क्या थी? यह हाथ से काम लेने के बजाय मशीन से काम लेन का परिवतन था। यह घरेलू प्रणाली से यानी घर म बैठकर चीज बनाने से फैक्ट्री प्रणाली का परिवतन भी था।[1]

डा० बी०पी० सक्सेना ने लिखा है कि उत्पादन के साधना म परिवतन को ही औद्योगिक क्राति कहते हैं। सी० डी० हेजन ने लिखा है कि गृह उद्योगा की अपेक्षा कारखानो मे उत्पादन करने की पद्धति को औद्योगिक क्राति कहते हैं।

एच जी वेलस ने लिखा है कि 'सामाजिक आर्थिक विकास को औद्योगिक क्राति कहते हैं। वैसे आम तौर पर यात्रिक क्राति को इनिहासकार औद्योगिक क्राति

---

1 एलिस और जौन—ससार का इतिहास पृष्ठ 375

मान लेते हैं किन्तु दोनों में अन्तर है। प्राचीन रोमन गणराज्य का प्रभाव पुनः सजीव हुआ और मजदूरों के समूह बडी बडी जजीरें मुफ्त कृषि और पूजी की उपलब्धि ने औद्योगिक क्रांति को जन्म दिया।'[1] मैक्नल बनस ने लिखा है कि 'औद्योगिक क्रांति केवल व्यापार का दत्याकार विकास ही नहीं था वरन् उत्पादन के क्षेत्र में भी आशा से अधिक प्रगति थी। यह क्रांति उद्योग और मशीनीकरण उद्योग में शक्ति के प्रयोग से कारखानों को व्यावसायिक तरीके के निर्माण से एक सनसनी पैदा करने वाले यातायात के साधनों के विकास से सफल हुई थी। प्लट जीन और ड्रमड ने लिखा है कि अनेक पूजीपतियों ने बहुत बढिया माल बनाने के लिए जिसमें कि उन्हें अधिक ख्याति मिले। अत्यन्त कठोर परिश्रम किया। नयी मडिया ज्ञात करने के लिये निरन्तर सतर्क रहे। जो नये औद्योगिक सगठन इस युग में बने। उनसे व्यापार और पूजी का विकास हुआ वही औद्योगिक क्रांति है।[3] डब्ल्यू एन बीच ने लिखा है कि मनुष्य की लालच और भौतिकवादी भूख को शात कर सके, मशीनों की सहायता से उत्पादन बढा सकें और गरीबों को रोजगार दे सके वही व्यापारिक क्रांति है। औद्योगिक क्षेत्र में इस प्रकार के अमूल परिवर्तन लाने वाली यह औद्योगिक क्रांति विश्व इतिहास में अपना अलग महत्व रखती है।[4] प्रोफेसर डविस ने लिखा है कि औद्योगिक क्रांति का मतलब उन परिवर्तनों से है जिन्होंने यह सम्भव कर दिया कि मनुष्य उत्पादन के पुराने उपायों को छोडकर बडी मात्रा में कारखानों में वस्तुओं का उत्पादन कर सकें। एक अन्य इतिहासकार ने इस क्रांति की परिभाषा निम्न प्रकार दी है 'उत्पादन के साधनों में परिवर्तन हो जाने का नाम औद्योगिक क्रांति है। औद्योगिक क्रांति परिवर्तन की उस स्थिति का द्योतक है जिसकी वजह से प्राचीन काल के सीमित गृह उद्योगों की अपेक्षा वाष्प या विद्युत यन्त्रों की सहायता से कारखानों में बहुत बडी मात्रा में वस्तुओं का उत्पादन हो रहा है।'

सक्षेप में हम औद्योगिक क्रांति की परिभाषा निम्न प्रकार से दे सकते हैं। उत्पादन के साधनों में परिवर्तन हो जाने को ही औद्योगिक क्रांति कहा जाता है। अब गृह उद्योगों की अपेक्षा वाष्प या विद्युत यन्त्रों की सहायता से कारखानों में बड़े पमाने पर उत्पादन किया जाने लगा। किसानों ने खेती का काम छोडकर कारखानों में काम करना शुरू कर दिया। इससे सामाजिक जीवन और प्रशासन व्यवस्था में परिवर्तन हुआ। इन सभी परिवर्तनों को औद्योगिक क्रांति के नाम से

1 वेल्स एच जी–दी आउट लाइन आफ हिस्ट्री पृष्ठ 955
2 मैकेनल बनस–वेस्टन सिवलीजेशन्स–पृष्ठ 570
3 प्लट जीन और ड्रमड–विश्व का इतिहास पृष्ठ 498
4 बीच डब्ल्यू एन–हिस्ट्री आफ दी वल्ड पृष्ठ 717

जाना जाता है। इस क्रांति म श्रम का लाभ श्रमिकों को नही अपितु पू जी लगाने वाले चद पू जीपतियों को ही मिला।

औद्योगिक क्रांति कब प्रारम्भ हुई और इसका विकास काल क्या रहा। इस प्रश्न पर विभिन्न इतिहासकारो ने भिन्न भिन्न मत प्रकट किये हैं। किन्तु अधिकाश इतिहासकारो न इस क्रांति का विकास काल 1770 ई० स 1870 ई० तक माना है। औद्योगिक क्रांति कोई आकस्मिक घटना नही थी। यह काफी समय स चली आ रही थी और आज भी यह क्रांति शन शन चल रही है। यूरोप म सवप्रथम यह क्रांति इगलैण्ड म प्रारम्भ हुई। इसके पश्च त् अन्य यूरोपियन देशो म इसका प्रसार हुआ। औद्योगिक क्रांति सबसे पहल इगलण्ड मे ही क्यो हुई? प्रश्न यह पदा होता है कि औद्योगिक क्रांति सबसे पहले इगलण्ड म ही क्यो प्रारम्भ हुई? अन्य देशो म क्या नही हुई। इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित थ—

1 भौगोलिक स्थिति

इगलण्ड क चारो ओर पानी होने क कारण इस पर बाहरी आक्रमण नही हो सके। नेपोलियन भी इगलण्ड पर आक्रमण करने का साहस नही कर सका। इसका परिणाम यह हुआ कि इगलैण्ड बिना किसी बाधा के अपना आन्तरिक विकास करता रहा जबकि यूरोप क देश युद्धो मे व्यस्त रहने के कारण अपना आन्तरिक विकास नही कर सके। इगलण्ड की भौगोलिक स्थिति बहुत अच्छी थी। उसके पास बहुत अच्छे बन्दरगाह थे और वह ससार के प्रमुख व्यापारिक मार्गों पर बसा हुआ था।

2 इगलण्ड की सामुद्रिक शक्ति—इगलण्ड उस समय विश्व की सवश्रेष्ठ सामुद्रिक शक्ति था। इस शक्ति के सहारे ही वह व्यापार करता था। नेपालियन फ्रास की दुबल सामुद्रिक शक्ति के कारण ही इगलैण्ड पर आक्रमण नही कर सका। इगलैण्ड की सरकार व्यापार को प्रोत्साहन दे रही थी। यहा के व्यापारियो का यह विश्वास था कि उनकी सरकार उनके व्यापारिक जहाजो की सुरक्षा कर सकेगी। इसलिए यहा औद्योगिक विकास बहुत अधिक हुआ और इगलण्ड औद्योगिक क्रांति का नता बन गया।

3 प्राकृतिक साधन

इगलण्ड प्राकृतिक साधनो की दृष्टि से सम्पन्न देश था। यहा पर लोहा, कोयला तथा जल शक्ति प्रचुर मात्रा म उपलब्ध थी। इसलिये उद्योगो का विकास बहुत शीघ्रता स हुआ।

4 पू जी

इगलैण्ड म पू जी का अभाव नही था। कृषि क्रांति स यहा के व्यापारियो न काफी धन अर्जित किया था। इगलण्ड म बैंक की स्थापना से व्यापार मे काफी सुविधा हो गई थी। इसलिए इगलैण्ड के धनी लोग बडे-बडे कारखान स्थापित करने के पक्ष म थे।

5 मजदूरों का उपलब्ध होना

इगलण्ड म मजदूर प्राप्ति की काई समस्या नही थी। यहा की जनसख्या म तीव्र गति से वृद्धि हानी जा रही थी। अठारहवी शताब्दी तक इगलैण्ड की जनसख्या दुगुनी हो गई थी। जनसख्या म वृद्धि हान क कारण इगलैण्ड म मजदूर आसानी स उपलब्ध हो जात थे। इसके अतिरिक्त इगलण्ड म हुई कृषि क्राति के कारण गाव क बहुत से किसान बेरोजगार हो गये। अत वे रोजगार की तलाश मे शहरो म भटकने लगे। ये बेरोजगार लोग फक्ट्री म काम करने को तयार थे। इसलिये इगलण्ड के उद्योगपतियो क सामने मजदूर प्राप्ति की कोई समस्या नही थी।

6 इगलण्ड की औपनिवेशिक नीति

इगलण्ड न साम्राज्यवादी नीति पर चलते हुए विशाल औपनिवेशिक साम्राज्य की स्थापना करली थी। वह अपने उपनिवेशो स कच्चा माल मगवाता था और वहा पर अपने तयार माल को बेचता था। अपने उपनिवेशा की बढती हुई माग को पूरा करने के लिए इगलण्ड ने उत्पादन म वृद्धि करना प्रारम्भ किया। जिसके फलस्वरूप उसका उत्पादन निरन्तर बढता ही गया।

(7) **राजनीतिक दशा**—सोलहवी शताब्दी म इगलण्ड के व्यापारियो न व्यापार का विकास करके काफी धन सम्पत्ति अर्जित करली थी। इगलण्ड की राजनीतिक दशा यूरोप क अन्य देशो से बहुत अच्छी थी। वहा शाति और सुव्यवस्था विद्यमान थी। यहा पर इस समय न तो आन्तरिक विद्रोह हो रहा था और न ही किसी देश का बाहरी आक्रमण। इसलिये यहा का व्यापार, दिन प्रतिदिन प्रगति की ओर अग्रसर होता रहा। नपोलियन ने यूरोप के सभी देशो से युद्ध लडे। उस समय फ्रास के अलावा सभी यूरोपियन देश इगलण्ड से युद्ध सामग्री का आयात करते थे। फलस्वरूप इगलण्ड सम्पूण यूरोप का कारखाना बन गया। इससे इगलड के उद्योग धन्धे तीव्र गति से विकसित हुए।

(8) **आर्थिक स्वतन्त्रता का सूत्रपात**—अठारहवी शताब्दी के अन्त मे इगलण्ड म एक भयकर महामारी फली जिसे "काली मृत्यु" कहा जाता है। इस महामारी के कारण वहा लाखो लोग मारे गये। जिसके कारण इगलैण्ड मे किसानो और मजदूरा का अभाव हा गया। इसलिये भू स्वामियो ने किसाना के साथ उदारता का व्यवहार करना प्रारम्भ कर दिया। फिर भी, हजारो किसानो ने गावा को छोड दिया और रोजी की तलाश म शहरो म इधर-उधर भटकने लगे। इसस नगरो मे मजदूरो की प्राप्ति की कोई समस्या नही रही, क्योकि भारी सख्या मे बेरोजगार व्यक्ति रोजगार की तलाश म इधर उधर भटक रहे थे। इन बेरोजगार व्यक्तिया ने अपनी योग्यता एव रुचि के अनुसार उद्योग धन्धा म काम करना प्रारम्भ कर दिया। जिसके फलस्वरूप शहरो म, उद्योग पर गिल्ड पद्धति का नियन्त्रण ढीला हो गया। इसका लाभ उठाकर नय प्रशिक्षित कारीगरों ने अपने स्वतन्त्र उद्योग स्थापित

करने प्रारम्भ कर दिय । इस प्रकार इगलण्ड म आर्थिक स्वतन्त्रता क प्रादुर्भाव हुआ । जिसके कारण वहा औद्योगिक विकास सम्भव हो सका ।

औद्योगिक क्रान्ति के कारण—

औद्योगिक क्रान्ति क प्रमुख कारण निम्नलिखित थे —

(1) **राजनीतिक स्थिति**- फ्रास की राज्य क्रान्ति न यूरोप की राजनीतिक स्थिति म काफी परिवतन कर दिया था । एक तरफ सम्राट साम्राज्यवादी नीति पर चलते हुए अपने उपनिवेशो म वद्धि कर रहे थे । वहा दूसरी तरफ यूरोपियन जनता अधिकारो की प्राप्ति के लिये सघष कर रही थी । इस समय राजाओ के लिये यह आवश्यक हो गया कि वे अशान्त जनता पर नियन्त्रण स्थापित करन क लिये विकास की ओर ध्यान दे । व्यापार म विकास, बरोजगारो को रोजगार देकर जनता को यस्त, सुखी एव समृद्ध बनाने का प्रयास करें । इस प्रकार राजाओ ने जनता को सन्तुष्ट करने के लिय उपनिवशा पर सफल शासन चलाने और अन्य देशा से प्रगति म आगे बढन क लिय प्रयास करन प्रारम्भ कर दिए । इससे यूरोप म औद्योगिक विकास को बढावा मिला ।

इस समय इगलण्ड, फ्रास, हालण्ड और स्पेन आदि दशा न विशाल औप निवशिक साम्राज्यो की स्थापना का । दूर दूर स्थित उपनिवशा पर सफल रूप से शासन सचालन के लिय यह आवश्यक था कि यातायात के साधनो का विकास किया जाए । इसक अतिरिक्त जनता पर नियन्त्रण बनाय रखने क लिये भी यातायात के साधना का विकास किया गया । इस कारण यूरोप मे वनानिका ने जलपोत का आविष्कार किया । इस प्रकार गणतन्त्र और साम्राज्यवाद की मिश्रित भावना ने औद्योगिक क्रान्ति को अवश्यम्भावी बना दिया ।

(2) **फ्रास की राज्य क्रान्ति का योगदान**—फ्रास की राज्य क्रान्ति ने औद्योगिक क्रान्ति के विकास म अपना महत्त्वपूण सहयोग प्रदान किया । क्रान्ति के पश्चात नेपोलियन ने सम्पूण यूरोप का युद्धो म उलझाएँ रखा । इस उलझन को इगलण्ड ने सुलझाया । इगलण्ड ने अपने समयक देशो की सनिक सामग्री की आव श्यकताओं को पूरा किया । इसके लिये उमे उत्पादन म वद्धि करने के लिये नये तरीको की खोज करनी पडी ।

नेपोलियन ने इगलण्ड के व्यापार को नष्ट करने क लिये बर्लिन की आज्ञा और मिलान की आज्ञा की घोषणा की । इसके अनुसार उसन अपने अधीन राज्यो को यह आदेश दिया कि वे इगलण्ड से सामान नही मँगवायेंगे । इससे यूरोप के राज्यो म इगलण्ड का माल जाना बन्द हो गया । इसक फलस्वरूप इगलण्ड ने यूरोपियन देशों म अपना माल भेजने के लिये व्यापारिक केन्द्रो की स्थापना की । इसस उसका औद्योगिक विकास हुआ ।

युद्ध समाप्ति के पश्चात इंगलैण्ड में बेरोजगारी की समस्या उठ खड़ी हुई। इस समस्या का समाधान करने के लिये उद्योग धन्धों का विकास किया गया। जिसके फलस्वरूप उत्पादन में वृद्धि हुई। अब अतिरिक्त उत्पादन को बेचने के लिये और कच्चे माल की प्राप्ति के लिये नये नये उपनिवेश स्थापित किये गये। इस प्रकार उत्पादन में निरंतर वृद्धि होती रही और उत्पादन में वृद्धि करने के लिए नए नए आविष्कार किये गए।

(3) **व्यापार का विकास**—इस समय व्यापार का क्षेत्र निरंतर विस्तृत होता जा रहा था। साम्राज्य के विस्तार के साथ साथ व्यापार का क्षेत्र भी विस्तृत होता जा रहा था। इंगलैण्ड और फ्रांस ने साम्राज्यवादी नीति पर चलते हुए विशाल औपनिवेशिक साम्राज्य की स्थापना करली थी। इन उपनिवेशों में इंगलैण्ड और फ्रांस ने स्थान-स्थान पर अपनी व्यापारिक कम्पनियों की स्थापना की और इन देशों से व्यापार प्रारम्भ कर दिया। ये शक्तिशाली यूरोपियन देश अपने उपनिवेशों से सस्ती दरों पर कच्चा माल मँगवाते थे और वहां पर दैनिक जीवन की आवश्यक वस्तुएं मँहगी दरों पर बेचते थे। इस व्यवसाय के कारण व्यापारिक वर्ग धनी बनता जा रहा था। उपनिवेशों की जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि होने के कारण वस्तुओं की माँग में तीव्र गति से वृद्धि हो रही थी। इस बढ़ती हुई माँग की पूर्ति करने के लिये उत्पादन में वृद्धि करने के लिये नवीन वैज्ञानिक साधनों का आश्रय लिया। फलस्वरूप अनेक नये यन्त्रों का आविष्कार हुआ। इस प्रकार निरंतर व्यापार के विकास ने औद्योगिक क्रान्ति को अनिवार्य बना दिया।

(4) **शिक्षा का प्रसार**—मध्य कालीन यूरोप में शिक्षा पर धर्म का नियन्त्रण था और शिक्षा धर्म पर आधारित थी। लेकिन पुनर्जागरण के कारण यूरोप में शिक्षा का तीव्र गति से विकास हुआ। इस समय वैज्ञानिक खोजें प्रारम्भ हुई। छापाखाने के आविष्कार के कारण शिक्षा का प्रचार और तीव्र गति से होने लगा। छापेखाने के कारण पुस्तकें प्रकाशित होने लगी। समाचार पत्र निकलने लगे। इन समाचार पत्रों के माध्यम से व्यक्तियों को दूर-दूर के देशों की स्थिति एवं दूसरे देशों के निवासियों के बारे में पता लगने लगा। समाचार पत्रों का लाभ उठाकर यूरोपियन देशों ने पिछड़े हुए राज्यों में अपने औपनिवेशिक राज्यों की स्थापना की। इस प्रकार शिक्षा के विकास के कारण विज्ञान ने प्रगति की। विज्ञान की प्रगति के कारण नये नये आविष्कारों ने विश्व को एक बनाने का प्रयास किया तथा सुगम साधन उपलब्ध कराये। इस प्रकार शिक्षा के विकास ने औद्योगिक क्रान्ति का मार्ग दर्शन किया।

(5) **कोयले की उपलब्धि**—कोयले की उपलब्धि के अभाव में लोहा, लकड़ी की भट्टिया पर गलाया जाता था। इसलिये अच्छी मशीनों का निर्माण करना सम्भव नहीं था। लकड़ी की भट्टियों पर लोहा गलाने का काम बहुत धीमी गति से होता था। इसमें समय बहुत अधिक लगता था। जब पत्थर का कोयला पर्याप्त

मात्रा म उपलब्ध होने लग गया तो लोहे को पत्थर व कोयले की भट्टियो पर गलाया जाता था। जिसम बहुत कम समय लगता था। इसलिये अब बडी-बडी मशीनो का निर्माण किया जाने लगा। इन मशीनो के प्रसार से औद्योगिक क्रांति को महान सहयोग मिला।

(6) जनसख्या मे वृद्धि—जनसख्या म वृद्धि ने भी औद्योगिक क्रान्ति को अनिवाय कर दिया। जसे जसे यूरोप की जनसख्या म वृद्धि होती गई वेसे-वेस जीवीकोपार्जन की समस्या भी बढती गई। उस समय यह सभव नहीं था कि कृषि के द्वारा सभी को रोजी रोटी दी जा सके। इसलिये लोगो ने उद्योग धन्धो के विकास की ओर ध्यान दिया। दूसरी महत्वपूण बात यह थी कि जनसख्या मे तीव्र गति से वृद्धि होने के कारण दनिक जीवन की वस्तुओं की माग भी तीव्र गति से बढ रही थी। इस बढती हुई माग की पूर्ति करने के लिये औद्योगिक विकास करना आवश्यक था। इसलिये उद्योग ध धों का तीव्र गति से विकास प्रारम्भ हुआ।

(7) जीवनस्तर मे वृद्धि—जसे जसे मनुष्य को सुविधाऐं प्राप्त होती गई, वसे वस उनके जीवन स्तर म वृद्धि होती गई। इससे आवश्यकताएँ बढी और बढती हुई आवश्यकताओ न औद्योगिक विकास को प्रोत्साहन दिया। अब भोग विलास की अनेक वस्तुओं का निर्माण किया जाने लगा। अधिकांश लोग अपने रहन-सहन के स्तर म वृद्धि करने के लिये अत्यधिक मात्रा मे वभव और विलास की वस्तुएँ खरीदने लगे। धीरे धीरे भोग विलास की वस्तुओ की माग बढ़ती गई। इस बढती हुई माग के कारण औद्योगिक विकास भी होता गया।

(8) राष्ट्रीयता की भावना—राष्ट्रीयता की भावना ने औद्योगिक क्रान्ति मे महत्वपूण योग दान दिया। इस समय प्रत्येक देश के निवासी राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत थे। वे यही चाहते थे कि उनका देश उन्नति करे एव साम्राज्य का विस्तार हो। परन्तु इन सब के लिये उत्पादन में वृद्धि करना आवश्यक था। इसका परिणाम यह हुआ कि यूरोप के शक्तिशाली राष्ट्रो मे व्यापारिक प्रतिस्पर्द्धा प्रारम्भ हुई। इस दौड म वही राष्ट्र आगे बढ सकता था, जो अधिक उत्पादन करने म समय था। इगलण्ड ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की। उसकी सफलता का मुख्य कारण यह था कि वह अधिक उत्पादन करने मे समथ था।

(9) साम्राज्यवादी भावनाओं का विकास—यूरोप म धीरे धीरे साम्राज्य वादी भावनाएँ विकसित होती जा रही थी। अब यूरोपियन देशो ने साम्राज्यवादी नीति पर चलते हुए एशिया, अफ्रीका और अमेरिका आदि देशों मे अपने अपने उपनिवेश स्थापित किए। इन उपनिवेशो से यूरोपियन देश कच्चा माल मँगवाते थे और अपना माल इन उपनिवेशो म बेचते थे। अब यूरोपियन देशों को कच्चा माल उपनिवेशो से पर्याप्त मात्रा मे मिल जाता था। उन्हे अपना माल बेचने के लिये बाजारो

की तलाश करने की चिन्ता नहीं थी क्योंकि वे अपने उपनिवेशों में अपना माल बेच देते थे। इसलिये अब यूरोपियन देश विशाल पैमाने पर वस्तुओं का उत्पादन करने लगे और उसे अपने उपनिवेशों में बेचने लगे।

(10) *वैज्ञानिक आविष्कार—18वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में मशीनें बहुत कम* थी। ये मशीनें घोड़े या बैलों द्वारा चलाई जाती थी। इसमें काम बहुत धीमी गति से होता था लेकिन धीरे धीरे वैज्ञानिक आविष्कार बढ़ते गये। यूरोपवासियों ने पूर्वी देशों से कुतुबनुमा और बारूद का प्रयोग करना सीखा। इससे वे दूर-दूर के देशों में अपने उपनिवेश स्थापित कर सकते थे। इन वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण यातायात के साधनों के क्षेत्र में काफी उन्नति हुई। इंगलैण्ड में वस्त्र उद्योग के क्षेत्र में फ्लाई ग शटल और स्पिनिंग जनी का आविष्कार हुआ। इसी प्रकार कृषि के क्षेत्र में भी अनेक आविष्कार हुए। जिसके कारण कृषि में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए 1769 ई० में जेम्सवाट ने भाप से चलने वाले इंजिन का आविष्कार किया। बारूद से डायनामाइट का निर्माण किया गया। इन सब के कारण औद्योगिक क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए जिसने औद्योगिक क्षेत्र की काया ही पलट दी। सेवाइन ने लिखा है कि यह विज्ञान ही था जिसने औद्योगिक क्रांति को सम्भव बना दिया।[1] प्लट जोन और डमड ने लिखा है कि शक्ति चालित मशीनों द्वारा किये गए इन भारी परिवर्तनों को कुल मिलाकर औद्योगिक क्रांति कहा जाता है।

औद्योगिक क्रांति का विकास अधिकांश इतिहासकारों ने औद्योगिक क्रान्ति का कार्यकाल 1770 ई० से 1870 ई० तक माना है। इतिहासकार हेज ने भी इसी मत का समर्थन किया है। 1770 ई० से 1830 ई० तक के काल ने कुछ विशिष्ट बातों से ही क्रांति के चिन्ह प्रदर्शित किये परन्तु 1830 ई० से लेकर 1870 ई० तक के समय में इस क्रांति ने आश्चर्यजनक प्रगति की। प्रसिद्ध इतिहासकार हेज ने लिखा है कि 1870 ई० के पश्चात इसको क्रान्ति की संज्ञा नहीं दी जा सकती क्योंकि 1830 ई० से 1870 ई० तक जो प्रभाव इसके विश्व पर पड़े थे। वे 1870 ई० के पश्चात नहीं पड़े।

यह क्रांति सर्वप्रथम इंगलैण्ड में प्रारम्भ हुई। इसके पश्चात यूरोप के अन्य देशों में इसका प्रसार हुआ। 1870 ई० के पश्चात सम्पूर्ण विश्व पर इस क्रांति का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगे। औद्योगिक क्रांति का विकास निम्न क्षेत्रों में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है —

(1) कृषि के क्षेत्र में विकास—औद्योगिक क्रांति के कारण इंगलैण्ड में कृषि के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। अठारहवीं शताब्दी से पूर्व इंगलैण्ड के

1—सेवाइन-ए हिस्ट्री आफ वल्र्ड सिवलीजेशन पृष्ठ 479

2—प्लट जोन और डमड-विश्व का इतिहास पृष्ठ 475

अधिकाश व्यक्ति कृषि का काय करते थे। कृषि करने के लिये वे प्राचीन साधनों का सहारा लेते थे। अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध म वैज्ञानिको ने कृषि के क्षेत्र में विकास करने के लिये नये-नये वैज्ञानिक साधनो की खोज की, ताकि कम कीमत पर अधिक अन्न पैदा किया जा सके।

सवप्रथम जेथ रोटल (1674–1740 ई०) ने कृषि के क्षेत्र मे वज्ञानिक तरीको की खोज की। उसने यह मत व्यक्त किया कि बार-बार भूमि जोतने के बाद बीज बोने म अधिक उपज होती है। उसने एक बीज व पित्र (बोने का यत्र) का आविष्कार किया। जिसके द्वारा समान रूप से बीज बोये जा सकते थे। किसानो ने इस यन्त्र से खेतो म बीज बोना प्रारम्भ किया। इससे किसानो का समय भी बचा और हाथ से बीज बोने के काम से भी उनको मुक्ति मिली। रोटल ने दूसरा सुझाव यह दिया कि कृपक (पटेला) यत्र के द्वारा किसानो को अपनी भूमि को नरम बनाना चाहिए। यह यत्र घोडो की सहायता से चलाया जाता था।

टाउन शैण्ड (1674-1738) ई० ने यह सुझाव दिया कि यदि खेत मे बार बार फसल बदल-बदल कर बोई जाय तो इससे उपज अधिक होती है। फसलो की अदला बदली से भूमि की उवरता बनी रहती है। जस्टस बौन लीबिग ने भूमि की उवरता म वृद्धि करने के लिए रसायनो का प्रयोग किया। इससे पहले भूमि की उवरता मे वृद्धि करने के लिए खाद का ही प्रयोग किया जाता था।

राबट बैकवेल (1725–1795) ने जानवरो की नसल सुधारने के तरीके की खोज की। इसका परिणाम यह हुआ कि इगलण्ड मे 1800 ई० तक भेडो की सख्या तिगुनी और गाय, बैल आदि की सख्या पहले स दुगुनी हो गई। ब्रिटिश सरकार ने 1793 ई० म एक कृषि बोड स्थापित किया। आथर यग (1740–1820) न अनेक शोध लेख लिखे। उनके माध्यम से उसने कृषि को उन्नत बनाने का प्रयास किया।

अमेरिका ने भी कृषि के क्षेत्र म अनेक महत्वपूण यत्रो का निर्माण किया। 1834 ई० मे साइरस मैक्कौमिक ने फसल काट नामक मशीन का आविष्कार किया। इसस कृषि के क्षेत्र म क्रान्तिकारी परिवतन हुआ। धीरे धीरे इस्पात से बने हुए औजारो को खेती के काम म लिया जाने लगा। इसके पश्चात् हलो को वाष्प चलित मशीनो से चलाया जाने लगा। इस समय बहुत से देशो म कृषि विभाग, कृषि महाविद्यालय और कृषि अनुसधान शालाओ की स्थापना की गई। इनमे कृषि के क्षेत्र म नई-नई खोजें हुई। जिससे कृषि के क्षेत्र म क्रातिकारी परिवतन हुए।

2 वस्त्र उद्योग में क्राति

औद्योगिक क्राति का सवप्रथम प्रभाव वस्त्र उद्योग म दृष्टिगोचर होता है। इनो दिन सूती वस्त्र की माग बढने लगी। इस समय सूती वस्त्र की माग इतनी बढ गई थी कि पुराने ढग के चर्खे उस माग को पूरा नही कर सकते थे। इसलिये

इस क्षेत्र म नये नय आविष्कार हुय ।

सवप्रथम जान के न 1733 ई० म फ्लाइग शटल (उडन ढरकी) का आविष्कार किया । यह मशीन एक आदमी के द्वारा चलाई जाती थी । इसस कपडा तीव्र गति से बुना जाने लगा । इस मशीन के द्वारा काते हुए सूत की माग निरन्तर बढ़ने लगी । 1748 ई० म वाल तथा वाट ने रोलर स्पिनिंग नामक मशीन का आविष्कार किया । इसस सूत अच्छा व बढिया काता जाता था । इन दोना मशीनो स सूत पर्याप्त मात्रा म काता जाने लगा । इससे कपडे के उत्पादन म वृद्धि हुई । जेम्स हरग्रीव्ज न 1764 ई० म स्पिनिंग जनी का आविष्कार किया । यह एक ऐसा चरखा था जिसम एक पहिये को घुमाने से आठ तकुए घूमते थे । इसस वस्त्र उद्योग के क्षेत्र म काफी उन्नति हुई, परन्तु इन मशीनो को हाथ से चलाना पडता था ।

1769 ई० म बोल्टन निवासी रिचार्ड आकराइट ने वाटर फ्रेम का आविष्कार किया । यह एक एसा चरखा था जो हाथ की जगह जल शक्ति से चलाया जाता था । 1779 ई० सेमुअल काम्टन न म्यूल नामक यत्र का आविष्कार किया । उसने यह यत्र जनी और वाटर फ्रेम को मिलाकर बनाया था । यह मशीन अच्छा सूत कातने लगी और साथ ही साथ उस कपडे म भी परिणित करने लगी । इस मशीन के द्वारा बढिया, बारीक और सस्ता कपडा बुना जाता था । इसम लगभग 200 सूत कातने वाली मशीनो के बराबर शक्ति थी ।

1785 ई० म एडमण्ड काट राइट ने पावर लूम (शक्ति सचालित करघा) का आविष्कार किया । पावरलूम को जल और भाप दोनो शक्तियो से चलाया जा सकता था । इस मशीन म बारीक और सुन्दर कपडा बुना जाता था । इसम एक बालक दस कारीगरा का काम करता था । परिणामस्वरूप इगलण्ड के अनेक जुलाहे इस आविष्कार का विरोध करत हुए देश को छोड कर चले गये थे । इन आविष्कारो के कारण रूई की कमी पडन लगी । इस कमी को पूरी करन के प्रयास प्रारम्भ किये गये । परिणामस्वरूप एक अमरीकी शिक्षक एलीविटन ने 1793 ई० म काटन जीन का आविष्कार किया । यह मशीन रूई ओटने का काम करती थी । इस आविष्कार के कारण रूई उद्योग म क्रातिकारी परिवतन हुए । यह मशीन 50 कारीगरो का काम कर देती थी । इसस रूई की खेती को प्रोत्साहन मिला ।

इस प्रकार इगलण्ड न वस्त्र उद्योग के क्षेत्र म आश्चयजनक प्रगति की । इस प्रगति के आधार पर ही वह सौ वर्षो तक सम्पूर्ण यूरोप का औद्योगिक केन्द्र बना रहा ।

3 लोहा और वाष्प शक्ति

1 वस्त्र उद्योग की भाति लोहा और वाष्प शक्ति के क्षेत्र म भी आश्चयजनक विकास हुआ । क्रान्ति से पूव लोहा लकडी और कोयले से गलाया जाता था । 1750 ई० म इगलण्ड म पत्थर का कोयला उपलब्ध हो गया । इसलिए अब लोहा

पत्थर के कोयलो म गलाया जान लगा। इन कोयला की भट्टी से लोहा सस्ती दरो पर उपलब्ध होन लगा। परिणामस्वरूप लोहे के औजार और कारखाना का निर्माण होने लगा। पत्थर के कोयले न ईधन की समस्या का समाधान कर दिया।

हेनरी काटन न लोह को पिघलाकर नई मशीन बनाने की विधि का आविष्कार किया। अब लोहे के स्थान पर इस्पात की मशीना का निर्माण होने लगा। शुरू म इस्पात बहुत महगा था किन्तु 1856 ई० म हनरी बैसमर न फौलाद बनान की एक सस्ती और अच्छी विधि का आविष्कार किया। इसमे इतना अधिक इस्पात बनने लगा कि इतिहासकारा न 19वी शताब्दी का मशीन और इस्पात युग के नाम से पुकारा। इससे विशाल पैमान पर मशीना का निमाण किया जान लगा। मशीना की वृद्धि से उद्योग धन्धा का काफी विकास हुआ।

इगलैण्ड म 1760 ई० से लोह युग प्रारम्भ हुआ। 1817 ई० म इगलण्ड ने लोह के प्रथम पुल का निर्माण किया। इसके पश्चात् इगलैण्ड यूरोप मे लोह के व्यापार का केन्द्र बन गया। कोयले की उपलब्धि के पश्चात् वैज्ञानिका ने उसकी सहायता स वाष्प शक्ति का आविष्कार किया। 1769 ई० म स्काटलण्ड निवासी जेम्सवाट ने वाष्प इजिन का आविष्कार किया। 1814 ई० म जाज स्टीफन्सन न रल के इजन (लोको मोटिव इजन) का आविष्कार किया। यह इजन वाष्प शक्ति की सहायता से चलता था। आग चलकर इसी इजन को पानी के जहाजो म लगा दिया गया। जिससे आने जान म सुविधा हो गई और जल यात्रा म समय कम लगता था। 1811 ई० मे छापेखाने म वाष्प शक्ति का प्रयोग किया गया। धीरे धीरे पानी के जहाज भी लोह के बनने लगे। इस प्रकार वाष्प शक्ति न औद्योगिक क्रान्ति के विकास को एक नई दिशा की ओर अग्रसर किया।

4 परिवहन तथा सचार

औद्योगिक क्रान्ति के कारण परिवहन तथा सचार साधनो के क्षेत्र म भी आश्चयजनक विकास हुआ।

(1) सडकें

अब कच्ची सडको के स्थान पर मिट्टी और पत्थर स समतल पक्की सडका का निर्माण किया जान लगा। बाद म तारकोल का भी प्रयोग किया जान लगा। उस समय सडका के निर्माण म मैकएडम, टेलफोड ब्रिडले, और रैनी जसे विशेषज्ञो ने महत्वपूण योगदान दिया। इसस सडको के निर्माण को प्रोत्साहन मिला और इगलण्ड म सकडा मील लम्बी सडका का निर्माण किया गया।

(11) नहरें

इस समय हजारा मील लम्बी नहर बनने लगी। इगलण्ड म सवप्रथम प्रथम नहर का निर्माण ड्यूक आफ ब्रिजवाटर नामक व्यक्ति ने किया। यह पहली नहर 1761 ई० म वासली स मैनचस्टर तक बनवाई गई थी। इस नहर क निर्माण के

पश्चात् इगलण्ड म 1830 ई० तक 4 हजार मील लम्बी नहरो का निर्माण करवाया गया। फ्रास म भी 1830 ई० तक 7500 मील लम्बी नहरा का निर्माण हो चुका था। 1869 ई० फ्रासीसी इजीनियर फर्डिनाद लेस्सेस ने स्वज नहर का निर्माण करवाया। यह नहर भू मध्यसागर को लाल सागर से जोडती है। इस नहर के निर्माण के पश्चात् यूरोप और भारत के बीच माग की एक तिहाई दूरी कम हो गई है। अमरिका के न्यूयाक शहर म 1810 ई० स 1837 ई० तक बहुत अधिक नहरो का निर्माण करवाया गया। इन नहरा का उद्योगो पर भारी प्रभाव पडा।

(iii) यातायात के साधनों का विकास

1812 ई० म पहला जलपोत पानी मे उत्तरा जिसका नाम कामेट था। वाष्प नौकाओ के निर्माण से यात्रा मे समय की बचत होने लगी। 1807 ई० मे अमरिकी रावट फुल्टन ने सवप्रथम एक जहाज या नौका का निर्माण किया जो वाष्प शक्ति से चलता था। इगलैण्ड म जेम्सवाट ने भाप स चलने वाले इजिन का आविष्कार किया। यह इजन लोहे की पटरियो पर चलता था। इससे रेल की पटरियो का निर्माण होने लगा। 1822 ई० मे जाज स्टीफेन्सन ने लोकोमोटिव इजन का आविष्कार किया। तीन साल बाद पहली सवारी गाडी 15 मील प्रति घटा की रफ्तार से चली। 1830 ई० म जाज स्टीफेसन ने 'राकेट इजिन' का आविष्कार किया। यह इजन माल से भरे डिब्बो को लेकर 19 मील प्रति घटा की रफ्तार से चला। जाज स्टीफेनसन की 1848 ई० म मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु से पहल इगलण्ड म 6000 मील लम्बी रेलवे लाइन का निर्माण हो चुका था। जाज स्टीफेसन निरक्षर था। 1838 ई० मे सीरियस और ग्रेट वेस्टन ने स्टीमर का पहला जहाज बनाया, जिसने अटलाटिक महासागर को पार किया। मोटर के आविष्कारा के कारण यातायात के साधनो के क्षेत्र मे क्रान्तिकारी परिवतन हुये परन्तु वायुयान के आविष्कार ने स्थानो की दूरियों को ओर कम कर दिया।

(iv) सचार के साधनों का विकास

यातायात के साधनो के साथ साथ सचार के साधनो के क्षेत्र मे भी आश्चय जनक विकास हुआ। रोलेण्ड हिल ने आधुनिक डाक व्यवस्था की नीव रखी। 1874 ई० मे अन्तर्राष्ट्रीय डाक सघ की स्थापना हुई। इस डाक सघ के माध्यम से एक देश के पत्र मनीआडर समाचार पत्र और पासल आदि दूसरे देश म आने जाने लगे। 1844 ई० मे सेमुअल मास ने तार यन्त्र की खोज की। इस तार यन्त्र के द्वारा सदेश एक स्थान से दूसरे स्थान को आसानी से भेजा जा सकता था। इससे कुछ ही समय म सारे ससार मे तारो का जाल बिछा दिया गया। 1851 ई० म इगलिश चैनल म तार बिछा दिया गया। 1866 ई० मे एटलाटिक सागर म तार बिछा दिया गया। इससे विश्व के देशो को एक दूसरे के साथ जोड दिया गया। इस तार के कारण व्यापार के क्षेत्र मे काफी प्रगति हुई। 1876 ई० म ग्राहम बल

ने टेलीफोन का आविष्कार कर सचार व्यवस्था म क्रातिकारी परिवतन ला दिया।

5 प्रकाश के क्षेत्र मे विकास

हाम्फ्री डेवी न 1815 ई० म सेफ्टी लम्प की खाज की। इसी आधार पर डेवी न 1821 ई० म बिजली का आविष्कार किया। इसके पश्चात् 1879 ई० म एडिसन न बिजली क बल्व का आविष्कार किया।

6 औद्योगिक नीति

औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप आर्थिक नीति के क्षेत्र म भी महत्वपूण परिवतन हुआ। क्राति से पूव व्यापार पर सरकार का एकाधिकार था लेकिन क्राति के पश्चात् उद्योगों के विकास के कारण एक नये वग का विकास हुआ। जो पू जीपति वग कहलाया। इस वर्ग ने सरकार से व्यापार पर मे सभी प्रकार के प्रतिबन्धो को हटाने की माग की। पू जीपती वग न सरकार से यह आग्रह किया कि वह व्यापार म हस्तक्षेप न करें। इस प्रकार एक नई नीति का विकास हुआ जिसे "अहस्तक्षेप की नीति' अथवा उन्मुक्त व्यापार की नीति' कहा जाता है। उस समय के प्रसिद्ध अथशास्त्री एडम स्मिथ न 'वेल्थ आफ नेशन्स' नामक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक का उस समय बहुत ख्याति मिली। इसम उसन नय आथिक सिद्धान्ता का प्रतिपादन किया। उसकी पुस्तक को पढकर जनता बहुत प्रभावित हुई। इस प्रकार उस समय कई देशो ने स्वतन्त्र व्यापार को प्रोत्साहन दिया, जिससे औद्यागिक क्षेत्र म काफी प्रगति हुई।

औद्योगिक क्राति क कारण नय नय सामुद्रिक मार्गों की खाज हुई। नई-नई व्यापारिक तया बीमा कम्पनिया का स्थापना हुई। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय बाजारा का विकास हुआ। इस प्रकार औद्योगिक क्राति के कारण अलग अलग क्षेत्रो म आश्चयजनक विकास हुआ। इस क्राति के द्वारा आधुनिक समाज की नीव रखी गई।

औद्योगिक क्रान्ति का प्रसार— इगलण्ड ने 40 वर्षों म आश्चयजनक विकास किया। वहा पर वस्तुएँ अब हाथ क स्थान पर मशीनो से बनाई जान लगी। कोयला और लोहा की उपलब्धि के कारण विशाल पमाने पर मशीना का निर्माण हुआ। इन मशीनो को वाष्प शक्ति की सहायता से चलाया जाता था। इसस सूती वस्त्र उद्योग के क्षेत्र म क्रान्तिकारी परिवतन हुआ। रेल, तार और जहाज के आविष्कार न समय और दूरी को कम कर दिया। छापेखाने के आविष्कार के कारण शिक्षा का विकास और ज्ञान का प्रचार हुआ। अगले 40 वर्षो मे यह क्रान्ति सम्पूर्ण यूरोप म फल गई। प्रारम्भ मे इगलण्ड की सरकार ने मशीना को बाहर भेजने पर प्रतिबन्ध लगा रखा था परन्तु 1825 ई० में इस प्रतिबन्ध को हटा दिया गया। परिणाम स्वरूप 1830 ई० से 1870 ई० क बीच पश्चिमी यूरोप का मशीनीकरण हो गया।

इगलण्ड के पश्चात फ्रास बेल्जियम और जमनी आदि देशो म भी औद्योगिक क्रान्ति हुई। बेल्जियम ने अपना औद्योगिक विकास करते हुए सवप्रथम यूरोप म रेल का प्रयोग प्रारम्भ किया। कुछ ही समय म बेल्जियम यूरोप का व्यापारिक केन्द्र बन गया। फ्रास म नेपोलियन और लुई फिलिप के प्रयासो से औद्योगिक विकास हुआ। फ्रास म लोहा प्रचुर मात्रा म उपलब्ध होने के कारण विशाल पमाने पर मशीनो का निर्माण होने लगा। 1842 ई० से फ्रास म रेल्वे लाइन बिछनी प्रारम्भ हुई। जमनी मे भी औद्योगिक विकास हुआ और वहा 1839 ई० मे ड्रेसडन से लिपजिग तक पहली रेल्वे लाइन का निर्माण हुआ। इस प्रकार जमनी म भी औद्योगिक क्रान्ति हुई। इसके पश्चात अमेरिका और एशिया म जापान तथा भारत म भी इस क्रान्ति का प्रसार हुआ। हमारे देश मे तो यह क्रान्ति आज तक चल रही है। इस क्रान्ति से जापान ने इतना अधिक व्यापारिक और औद्योगिक विकास कर लिया कि उसकी गिनती विश्व के सवश्रेष्ठ औद्योगिक देशो मे की जाती है।

औद्योगिक क्रान्ति के परिणाम—औद्योगिक क्रान्ति के प्रमुख परिणाम निम्न लिखित हुए —

1 सामाजिक क्षेत्र मे प्रभाव —

(1) **नये समाज का अभ्युदय**—औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप समाज म प्रचलित रीति रिवाजो रहन सहन का स्तर खान पान, धार्मिक विश्वास, विज्ञान, कला और साहित्य के क्षेत्र मे महत्वपूण परिवतन हुए। इन परिवतनो ने समाज की काया ही पलट दी और अब एक नये समाज का प्रादुर्भाव हुआ। इस प्रकार औद्योगिक क्रान्ति ने आधुनिक समाज की नीव रखी। इस क्रान्ति के कारण भारत जसा देश भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। हमारे देश म बहुजातिय एव अस्पृश्यता के क्षेत्र मे भी इस क्रान्ति के कारण बहुत सुधार हुआ है।

(11) **मानव जीवन की सुख-सुविधा मे वद्धि**—औद्योगिक क्रान्ति न मानव जीवन की सुख सुविधा मे वद्धि करने मे महत्वपूण योगदान दिया है। आज तडक भडक ऐश्वय आराम और विलासिता पूण वस्तुओ की माग म निरन्तर वद्धि होती जा रही है। बढिया कपडा, सुगन्धित तेल, पाऊडर, अच्छा फर्नीचर, यातायात के आरामदायक साधन और मनोरजन के साधन आदि का निर्माण औद्योगिक क्रान्ति के कारण सम्भव हुआ है। अब इनकी माग में निरन्तर वद्धि होती जा रही है। अमीर व्यक्तियो ने समाज म अपनी प्रतिष्ठा को बनाये रखने के लिये वभव और ऐश्वयपूण वस्तुओ का प्रयोग करना प्रारम्भ किया। इसका जन साधारण पर भी बहुत प्रभाव पडा और उसम भी जीवन स्तर म वद्धि करने की भावनाएँ जाग्रत हुई।

(111) **मानव समाज का नतिक पतन**—औद्योगिक क्रान्ति का बुरा प्रभाव यह पडा कि इससे समाज का नतिक पतन प्रारम्भ हो गया। इस क्रान्ति के कारण सयुक्त परिवार प्रथा समाप्त हो गई और उसके स्थान पर स्वतन्त्र छोटे छोटे परि

वारों का विकास हुआ। इन छोटे छोटे परिवारों में प्रेम सिर्फ पति पत्नी और बच्चों तक ही सीमित होता था। परिणामस्वरूप पारस्परिक प्रेम का स्रोत सूखने लग गया। अब नारी को भी स्वतंत्रता प्राप्त हुई। उसे भी पुरुषों के समान अधिकार मिले। अब नारी पुरुष पर आश्रित नहीं रही। इस प्रकार स्त्रियों को भी पुरुषों के समान दर्जा प्राप्त हुआ। उस समय मजदूर कारखानों में 14 घंटे काम करते थे। इसके पश्चात वे सायंकाल बुरी तरह से थक जाते थे। उस समय मनोरंजन के साधन नहीं होने के कारण मजदूर अपनी थकान को दूर करने के लिये शराब पीते थे और जुआ खेलते थे। इतना ही नहीं वे अपने मनोरंजन के लिये वेश्याओं के पास भी जाते थे। इसी प्रकार कारखानों में काम करने वाली स्त्रियां भी चरित्र में गिर जाती थीं। इससे समाज का नैतिक पतन शुरू हो गया।

(iv) मध्यम वर्ग का विकास—इस क्रान्ति के परिणामस्वरूप मध्यम वर्ग का तेजी से विकास हुआ। औद्योगिक विकास के लिये यह आवश्यक था कि कारखानों की स्थापना की जाय और इनकी स्थापना के लिये पूंजी तथा व्यावसायिक बुद्धि की आवश्यकता थी। मध्ययुगीन सामन्तों के पास पूंजी तो बहुत अधिक थी परन्तु उनमें व्यावसायिक बुद्धि का अभाव था। इसके अतिरिक्त वे व्यवसाय को निम्न श्रेणी का काम समझते थे। इसलिये उनकी व्यवसाय के प्रति कोई रुचि नहीं थी। मध्यम वर्ग के पास पूंजी और व्यावसायिक बुद्धि दोनों ही थी। उनकी व्यवसाय के क्षेत्र में भी काफी रुचि थी। इसलिये उन्होंने अपनी पूंजी से अनेक नये कारखानों की स्थापना की। इससे औद्योगिक विकास भी हुआ और मध्यम वर्ग के लोग दिन प्रतिदिन धनवान होते चले गये। कुछ ही समय में मध्यम वर्ग का आर्थिक स्थिति पर प्रभाव स्थापित हो गया और वे शहरी समाज के नेता बन गये।

(v) श्रमिकों की शोचनीय दशा—औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप कारखानों में काम करने वाले मजदूरों की दशा बहुत शोचनीय हो गई। उस समय व्यक्तियों को कारखानों में काम तो मिल गया परन्तु उन्हें श्रम की तुलना में मजदूरी कम दी जाती थी। उन्हें कारखानों में 12 से 14 घंटे तक काम करना पड़ता था। कारखाने में काम करते हुए यदि किसी श्रमिक की मृत्यु हो जाती तो उसके परिवार को किसी प्रकार की राहत नहीं दी जाती थी। उस समय मजदूरों के जीवन की कोई सुरक्षा नहीं थी। स्त्रियाँ और बच्चे भी कारखानों में काम करते थे।

कारखानों में काम करने वाले मजदूरों को नगर के गंदे मकानों में जानवरों की भांति रहना पड़ता था। यदि किसी कारण वश कारखाना बन्द हो जाता तो उसमें काम करने वाले मजदूर बेरोजगार हो जाते थे। श्रमिकों के बच्चों के लिये शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी। दुर्घटनाग्रस्त श्रमिकों के लिये मिल मालिक की तरफ से चिकित्सा की भी कोई व्यवस्था नहीं थी। उस समय श्रमिकों को किसी प्रकार के अधिकार नहीं थे। उनमें आपसी एकता नहीं थी, क्योंकि उनमें अधिकांश

श्रमिक गांव के भोले भाले किसान थे, जो पहली बार रोजी रोटी की तलाश में शहर में जीवन व्यतीत कर रहे थे।

2 आर्थिक क्षेत्र में प्रभाव—

(iii) आवश्यक वस्तुओं का सस्ता होना —क्रान्ति से पूर्व आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन गृह उद्योग धंधों के द्वारा किया जाता था। ये वस्तुएँ बहुत महंगी होती थी क्योंकि उत्पादन सीमित और कम मात्रा में होता था। जैसे-जैसे जनसंख्या में वृद्धि होती गई वैसे-वैसे वस्तुओं की मांग बढ़ती गई। गृह उद्योग धंधे इस बढ़ती हुई मांग की पूर्ति करने में असमर्थ थे। औद्योगिक क्रान्ति के कारण कारखानों में विशाल पैमाने पर उत्पादन होने लगा। कारखानों में उत्पादित वस्तुएं गृह उद्योग धन्धों द्वारा निर्मित वस्तुओं से सस्ती होती थी। परिणामस्वरूप दैनिक जीवन में काम आने वाली वस्तुएँ सस्ती मिलने लगी।

(ii) जीवन स्तर मे वृद्धि—औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप मानव जीवन के स्तर में वृद्धि हुई। इस क्रान्ति में ऐसी ऐसी वस्तुओं का निर्माण हुआ जिन्होंने मानव जीवन के स्वरूप में आश्चर्यजनक परिवर्तन ला दिया। आज यातायात के सुगम साधन उपलब्ध हैं जैसे मोटर रेल और वायुयान आदि ने दुनिया के देशों की दूरी को कम कर दिया है। हम टेलीफोन से दूर-दूर के व्यक्तियों से आसानी से बात कर सकते हैं। आज हर रोग के विशेषज्ञ डाक्टर उपलब्ध है। मानव के जीवन स्तर के उन्नत होने का एक प्रमाण यह भी है कि आज मृत्यु दर दिन प्रतिदिन कम होती जा रही है।

(iii) पूंजीवाद का उदय—औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप सम्पूर्ण विश्व पूंजीवाद और साम्यवाद दो गुटों में विभाजित हो गया है। कारखानों के स्वामी मजदूरों का शोषण कर पूंजी एकत्रित करने लगे। ज्यों ज्यों कारखानों के उत्पादन में वृद्धि हुई त्यों त्यों मिल मालिकों की पूँजी में भी वृद्धि होने लगी। इस क्रान्ति से पूर्व पूँजीपति वर्ग का समाज में नामोनिशान भी नहीं था परन्तु आज यह वर्ग समाज में सबसे अधिक प्रभावशाली वर्ग है।

(iv) वर्ग संघर्ष का जन्म—औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप समाज में नई समस्या वर्ग संघर्ष का प्रादुर्भाव हुआ। इस औद्योगिक क्रान्ति ने मानव समाज को उद्योग के क्षेत्र में दो वर्गों में विभाजित कर दिया है। एक वर्ग में कारखानों के मालिक आते हैं जबकि दूसरे वर्ग में खून पसीना बहाकर उत्पादन करने वाले मजदूर आते हैं। पूंजीपति वर्ग मजदूरों का शोषण कर अधिक से अधिक धन कमाना चाहता है, जबकि आज का संगठित मजदूर वर्ग शोषित नहीं होना चाहता और अपने अधिकारों की मांग करता है। दोनों ही वर्ग अपने अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के प्रयास में व्यस्त है। यह संघर्ष दिन प्रतिदिन प्रबल होता जा रहा है।

(v) नवीन औद्योगिक नगरों का प्रादुर्भाव—औद्योगिक क्रान्ति के परिणाम स्वरूप कई नये औद्योगिक नगरों का प्रादुर्भाव हुआ। कृषि क्रान्ति के कारण बहुत से किसान रोजी रोटी की तलाश में शहरों में आ गये। इससे गावों की जनसंख्या में कमी हुई और औद्योगिक केन्द्रों की आबादी में वृद्धि हुई क्योंकि गांव से आये हुए किसान औद्योगिक केन्द्रों के आसपास अपने मकान बनाकर रहने लगे। इसके अतिरिक्त कई छोटे मोटे व्यापारियों ने भी रोजी रोटी की तलाश में वहीं जाकर बसना प्रारम्भ कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि औद्योगिक नगरों की आबादी में वृद्धि हुई और उनके आसपास कई नये नगरों का विकास सम्भव हो सका। इस क्रांति के कारण लीवरपूल, लंकाशायर और मैनचेस्टर आदि नगर इंगलैण्ड के प्रमुख औद्योगिक नगर बन गये।

(vi) गृह उद्योग धन्धों की समाप्ति—औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप गृह उद्योग धन्धे पतन की ओर अग्रसर होने लगे। क्रांति से पूर्व दैनिक जीवन की वस्तुओं का उत्पादन इन गृह उद्योग धन्धों के द्वारा किया जाता था। इन गृह उद्योग धन्धों में मनुष्य काम करते थे। इनके द्वारा निर्मित वस्तुएँ सीमित व कम मात्रा में होती थीं और बाजार में बहुत मँहगी मिलती थी। क्रांति के पश्चात् इन वस्तुओं का कारखानों में विशाल पैमाने पर उत्पादन होने लगा। कारखानों में उत्पादित वस्तुएँ घरेलू उद्योगों में निर्मित वस्तुओं से सस्ती व सुन्दर होती थीं। परिणामस्वरूप जनसाधारण ने मशीनों द्वारा उत्पादित वस्तुओं को खरीदना प्रारम्भ कर दिया। इसका विनाशकारी प्रभाव घरेलू उद्योग धन्धों पर पड़ा। ये घरेलू उद्योग धन्धे पतन की ओर अग्रसर होने लगे।

(vii) बेरोजगारी की समस्या—औद्योगिक क्रांति के कारण एक ओर जहां लोगों को रोजगार मिला, वहां दूसरी ओर हजारों लोग बेरोजगार हो गये। यदि एक कारखाना हजार मजदूरों को रोजगार देता है तो लाखों का रोजगार छीन लेता है। एक मशीन कई व्यक्तियों का काम कर सकती है। इस प्रकार यदि मशीन से एक व्यक्ति को रोजगार मिलता है तो कई व्यक्ति बेरोजगार भी हो जाते हैं। मशीनीकरण के कारण गृह उद्योग धन्धों में काम करने वाले मजदूर बेरोजगार हो गये। इसके अतिरिक्त मजदूरों की संख्या अधिक होने से उन्हें मजदूरी भी कम दी जाने लगी।

(viii) बाजार पर नियन्त्रण—औद्योगिक क्रांति के कारण विकसित देश अपने राष्ट्र के उत्पादन को महत्व देने के लिए राष्ट्रीय बाजार पर नियन्त्रण रखने लगे। प्रत्येक विकसित देश यही चाहता था कि उसकी जनता दूसरे देशों की अपेक्षा अपने देश में बनी हुई वस्तुएं ही खरीदें। इसलिये विकसित देशों ने दूसरे राष्ट्रों में बनी हुई वस्तुओं पर भारी चुंगी कर लगा दिया, ताकि वे स्वदेशी वस्तुओं के मुकाबले में काफी मंहगी बिकें। इसका परिणाम यह हुआ कि विकसित देशों को

जनता ने दूसरे राष्ट्रो की वस्तुऐ जो महगी होती थी उनके स्थान पर स्वदेश मे बनी हुई वस्तुऐ खरीदना प्रारम्भ कर दिया। परन्तु जब उत्पादित माल को अपने देश म खपाना असम्भव हो गया तो नये बाजारो की खोज प्रारम्भ हुई। उपनिवेशो के साथ व्यापारिक नियमो को भी कठोर बना दिया गया।

(ix) देशो का एक दूसरे पर निभर होना—औद्योगिक विकास के कारण सभी देश एक दूसरे पर निभर हो गये। क्राति से पूव प्रत्येक देश अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति स्वय कर लेता था। उस समय यातायात के साधन इतने विकसित नही थे कि दूर-दूर के देशो म सामान आसानी स पहुचाया जा सके। क्राति के पश्चात यातायात एव सचार साधनो म आश्चयजनक उन्नति हुई। जिसने ससार के सभी बाजारो को एक दूसरे से जोड दिया। आज यदि न्यूयाक म चादी का भाव बढता है तो भारत में भी इसका तुरन्त प्रभाव पडेगा। औद्योगिक देश कच्चे माल क लिय पिछडे देशो पर निभर हो गये जबकि पिछडे देश मशीनें तथा तयार माल के लिय औद्योगिक देशो पर निभर हो गय। इस प्रकार सभी देश एक दूसरे पर निभर हो गये।

3 राजनीतिक क्षत्र मे प्रभाव—

(i) मध्यम वग का प्रशासन मे हस्तक्षेप—क्राति से पूव सामन्त धनवान और राजवश क लोग ही प्रशासन म प्रतिनिधित्व कर रहे थे। मध्यम वग के व्यक्तियो को प्रशासनिक अधिकार प्राप्त नही थे परन्तु क्राति के परिणामस्वरूप मध्यम वग ने काफी उन्नति कर ली थी। शिक्षा और धन की दृष्टि स यह वग कुलीन वग क व्यक्तियो से काफी आगे निकल चुका था। परन्तु इसको किसी भी प्रकार क प्रशासनिक अधिकार प्राप्त नही थे। इस वग से राज्य को काफी आय प्राप्त होती थी। इसने कुलीन वग क समान अधिकार प्राप्त करने के लिये प्रयास प्रारम्भ कर दिया। इतना ही नही इस वग क व्यक्ति प्रशासन मे हस्तक्षेप करने लगे। परिणामस्वरूप मध्यम वग के व्यक्ति चुनावो म चुने जाने लगे। 1832 ई० म मध्यम वग क व्यक्ति प्रशासनिक अधिकार प्राप्त करने मे सफल हुए। उदारवादी दल की सरकार ने प्रथम सुधार बिल पास किया। जो व्यक्ति मजदूरो के हितो की रक्षा करने का आश्वासन देता था और उनकी मागो को पूरी करवाने का वायदा करता था मजदूर वग उसी व्यक्ति को अपना मत देते थे। इस प्रकार वह व्यक्ति चुनाव म विजय प्राप्त करता था। इसका परिणाम यह हुआ कि मजदूर और आम जनता ने प्रशासन म हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया। इतना ही नही चुनाव लडने वाले व्यक्ति मतदाताओ को प्रसन्न करने का भी प्रयास करने लगे।

(ii) साम्राज्यवाद को प्रोत्साहन—औद्योगिक क्राति के फलस्वरूप कारखानो म विशाल पमाने पर उत्पादन होने लगा। इसलिये यूरोपियन देश अपने

माल को बेचने के लिये एवं कच्चे माल को प्राप्त करने के लिये नये बाजारों की खोज करने लगे। यूरोपियन देशों ने उपनिवेश बनाने शुरू किये और इस प्रवृत्ति ने साम्राज्यवादी नीति को प्रोत्साहन दिया। परिणामस्वरूप यूरोपियन देशों में अफ्रीका, अमेरिका और एशिया में उपनिवेश स्थापित करने की होड़ प्रारम्भ हुई। प्रत्येक देश इस होड़ में आगे निकल जाना चाहता था।

इंगलण्ड इस औपनिवेशिक होड़ में सबसे आगे निकल गया। उसने एक विशाल औपनिवेशिक साम्राज्य की स्थापना की। इंगलण्ड के अतिरिक्त फ्रांस रूस, हालण्ड, स्पेन बेल्जियम और पुर्तगाल आदि देशों ने अपने अपने उपनिवेश स्थापित किये। इस औपनिवेशिक प्रतिस्पर्द्धा में एक देश के दूसरे देश के साथ सम्बन्ध कटु हो गये। परिणामस्वरूप उपनिवेशों के प्रश्न को लेकर, चीन, भारत, ईरान मिश्र, अमेरिका और दक्षिणी अफ्रीका में यूरोपियन देशों के अनेक युद्ध हुए।

इस औपनिवेशिक दौड़ में कुछ देश बहुत आगे निकल गये थे, जबकि कुछ बहुत पीछे रह गये थे। जैसे इंगलण्ड बेल्जियम, स्पेन, फ्रांस और पुर्तगाल आदि देशों के पास बहुत उपनिवेश थे जबकि जर्मनी और इटली आदि देशों के पास एक भी उपनिवेश नहीं था। इसलिये जर्मनी और इटली भी इंगलण्ड और फ्रान्स की भांति विशाल औपनिवेशिक साम्राज्य की स्थापना करना चाहते थे। अतः जर्मनी और इटली में विशाल औपनिवेशिक साम्राज्य वाले देशों के प्रति मनमुटाव की भावना थी। इसके अतिरिक्त प्रत्येक देश को अपनी सुरक्षा की चिन्ता लगी हुई थी। इस समय यूरोपियन देशों ने उपनिवेशों की सुरक्षा के लिये अपने विरोधी देशों के विरुद्ध अपने मित्र देशों से सैनिक सन्धियां कर ली। इसका परिणाम यह हुआ कि सम्पूर्ण संसार, दो परस्पर विरोधी गुटों में विभाजित हो गया। जिसके फलस्वरूप प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध लड़े गये।

(III) सरकार द्वारा मजदूरों की दशा में सुधार—क्रान्ति के प्रारम्भ में मजदूरों की दशा बहुत शोचनीय थी। उन्हें कारखानों में चौदह घंटे तक काम करना पड़ता था। मजदूरी के मुकाबले में उन्हें कम वेतन दिया जाता था। इसलिये श्रमिकों ने अपने अधिकारों के लिये संघर्ष करना प्रारम्भ किया। रोबर्ट ओवन ने सर्वप्रथम मजदूरों की दशा में सुधार करने की मांग की। अन्त में सरकार ने मजदूरों की दशा में सुधार करने के लिये समय-समय पर विभिन्न कानून बनाये।

1802 ई० में सरकार ने एक कानून पास किया। जिसके अनुसार निर्धन एवं अनाथ बच्चों से एक सप्ताह में 62 घंटे से ज्यादा काम नहीं लिया जा सकता था। 1809 ई० के कानून द्वारा नौ वर्ष के बच्चे से बारह घण्टा प्रतिदिन काम लेने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। 1822 ई० में एक और कानून पास किया गया। जिसके द्वारा बालकों के काम करने के घण्टे और कम कर दिये गये। अब

स्त्रियों के कोयले की खानो म काम करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। इसके अतिरिक्त कारखानों के मजदूरो के प्रतिदिन काम करने के आठ घन्टे निश्चित किये गये।

मजदूरों को रहने के लिये कारखानो के पास स्वच्छ मकान दिये गये। उनके बच्चा की शिक्षा क लिए कारखानो के समीप ही स्कूल खोले गये। इतना ही नही मिल मालिको द्वारा उनकी बस्ती म ही उनके इलाज क लिए अस्पताल खोले गये। अब कारखानो म काम करने वाले मजदूरा के जीवन की सुरक्षा के लिये सरकार म कानून बनाये। सरकार ने उन्ह उचित वेतन और बोनस दिलाने की भी व्यवस्था की। यदि मजदूर हड़ताल करें तो सरकार उसम हस्तक्षेप कर सकती थी। इस प्रकार सरकार ने फक्ट्री नियम के द्वारा हड़ताल का अवध घोषित कर दिया।

सरकार के द्वारा बनाये गये कानूनो से मजदूरा म जाग्रति पदा हुई। उनम आत्मबल भी बढा। अब मजदूरा ने अपने अधिकारो की माग के लिये ट्रेड यूनियन्स का सगठन किया। यह सघ मजदूरा के अधिकारो क लिय सघष करता रहा है। इगलण्ड ने 1771 ई० म और फ्रास न 1884 ई० म अपने-अपने देश म मजदूर सघ को मान्यता प्रदान कर दी। इसके पश्चात एक अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर सघ नामक सस्था का गठन किया गया। 1830 ई० मे मजदूरो की जिस प्रकार उपेक्षा की जाती थी वह अब सम्भव नही रही। मजदूरो को राजनतिक अधिकारो की प्राप्ति के लिये कुछ समय और इन्तजार करना पडा।

(iv) समाजवाद—औद्योगिक क्रान्ति की सबसे महत्वपूण देन समाजवाद है। मजदूरो की दशा सुधारने के लिये जो आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। उससे आगे चलकर समाजवाद विकसित हुआ। *समाजवाद का अथ है समाज मे आर्थिक और राजनीतिक समानता की स्थापना करना।* राबट ओवन (1771–1858) ने सबसे पहले मजदूरो की दशा में सुधार करने के लिये माग की। उसके प्रयासो के फलस्वरूप मजदूरो को उचित वेतन, आमोद प्रमोद और रहन सहन की सुविधायें प्राप्त हुई।

इसके बाद काल मार्क्स को यह श्रेय दिया जा सकता है कि उसने समाजवादी विचारधारा को अमर बना दिया। काल मार्क्स ने श्रमिको मे अपने समाजवादी विचारो का प्रसार किया।। मार्क्स का यह कहना था कि सत्ता पर किसान और मजदूरा का नियन्त्रण होना चाहिय और शक्ति उन्ही के हाथा म निहित होनी चाहिए। जब राज्य की शक्ति जनता के हाथ म रहेगी और भूमि तथा पूजी पर किसी भी व्यक्ति का अधिकार नहीं रहेगा एव सभी व्यक्ति काम करेंगे तो स्वय एक वग विहीन समाज की स्थापना हो जायेगी। जिसम कोई भी किसी का शोषण नहीं कर सकेगा। मार्क्स का यह मानना था कि उत्पादन के साधनो पर सामूहिक

अधिकार होना चाहिए। इस प्रकार औद्योगिक क्रान्ति से उत्पन्न कठिनाइयां ने समाजवाद का जन्म दिया।

प्रस्तावित सन्दर्भ पाठ्य पुस्तकें —

1 सेवाइन—ए हिस्ट्री आफ वल्ड सिवलीजेशन
2 टायनबी—ए स्टडी आफ हिस्ट्री
3 मैकनल बनस—वेस्टन सिवलीजेशन्स
4 डेविस—वल्द हिस्ट्री
5 प्लट, जीन और ड्रमड—विश्व का इतिहास
6 वेल्स, एच० जी०—दी आउट लाइन आफ हिस्ट्री
7 एलिस और जोन—ससार का इतिहास
8 वीच, डब्ल्यू० एन०—हिस्ट्री आफ दी वल्ड

8

राष्ट्रवाद जर्मनी और इटली का एकीकरण

उन्नीसवीं शताब्दी राष्ट्रीयता के विकास की शताब्दी मानी जाती है। इस शताब्दी म यूरोप म राष्ट्रीयता की भावना का तीव्र गति स विकास हुआ। राष्ट्र के प्रति भक्ति की भावना को ही 'राष्ट्रवाद' अथवा 'राष्ट्रीयता' कहा जाता है। जिस देश के मनुष्यो म राष्ट्रीयता की भावना विद्यमान होती है उस देश के मनुष्य अपने देश को ससार का सवश्रेष्ठ देश मानते हैं और उसके विकास के लिये हृदय से प्रयास करते हैं। उस देश क व्यक्ति गव से ये कहते हैं कि म इस देश का निवासी हू। इसके अतिरिक्त व अपने देश की रक्षा करना अपना धम समझते है और उन्नति के लिये प्रयत्नशील रहते हैं। जब किसी देश क मनुष्यो म ऐसी भावनाए पदा हो जाती हैं तो उसका यह अथ निकाला जाता है कि उस देश के मनुष्यो म राष्ट्रीयता की भावना विद्यमान है।

जोसफ ने लिखा है कि "राष्ट्रवाद' व्यक्तिगत मनुष्य तथा मानव समाज रूपी श्रृखलाओ को जोडने वाली कडी है।' प्लट, जीन और ड्रमण्ड ने लिखा है कि अपने राष्ट्र के प्रति भक्ति की भावना को तीव्र करना राष्ट्रवाद या राष्ट्रीयता कहलाती है। राष्ट्रीयता, व्यक्तियो को एक एक समूह के साथ आत्मीयता की एक भावना प्रदान करती है जिसमें उन सबके आदश परम्पराएँ और सस्कृति समाप्त होती है।[1] मकनल बनस ने लिखा है कि 'स्वदेश की प्रगति या जाग्रति के विचारो को ही राष्ट्रीयता कहते हैं। कुछ लोग एक जाति, एक भाषा, एक धम या एक सी सस्कृति के तत्वो के समन्वय को राष्ट्रीयता कहते हैं। आरम्भ मे यह विचार पवित्र और अच्छा था क्योंकि देश की आजादी के लिये लड़ाई होती थी। किन्तु धीरे २ इसमे बुराई बढती गई और राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति, दूसरो पर प्रभुत्व जमाना, सनिकवाद और राज्य विस्तार की महत्वाकांक्षा मात्र रह गई।"[2]

---

1 प्लट जीन और डमड—विश्व का इतिहास—पृष्ठ 435

2 मकनल बनस—वस्टन सिवलीजेशन—पृष्ठ 612

इस प्रकार राष्ट्रीयता वह एक भावना है जिसमें मनुष्य अपने देश के हितों को सर्वोपरि समझता है और आवश्यक होने पर रक्षा तथा विकास के लिये अपने हितों का बलिदान कर देता है। कुछ अन्य इतिहासकार एक जाति, एक धर्म, एक भाषा और एक देश को राष्ट्रीयता का आवश्यक गुण मानते है। उन्होंने इसकी परिभाषा इस प्रकार दी है "राष्ट्रीयता उस अर्थ का द्योतक है जिसके अनुकूल एक जाति, एक भाषा, एक देश, संस्कृति, एक ही प्रकार के रहन सहन और परम्परा का पालन करने वाले सभी लोगों का इस प्रकार का संगठन हो, कि शासन व दृष्टिकोण से उनकी इकाई बन जायें।"

अधिकांश विद्वान राष्ट्रीयता के लिये एक जाति, एक भाषा, एक धर्म और एक देश को आवश्यक मानते हैं लेकिन प्रत्येक देश के लिये यह बात लागू नहीं होती हैं। जैसे कि भारत में विभिन्न जातियां व विभिन्न धर्म मानने वाले व्यक्ति निवास करते हैं, फिर भी हमारे देश में राष्ट्रीय एकता की भावना विद्यमान है। इसलिये राष्ट्रीयता का अर्थ राष्ट्र के प्रति भक्ति की भावना और अपने राष्ट्र-हित के लिये अपने व्यक्तिगत हितों का बलिदान कर देना है।

इतिहासकारों का यह मानना है कि राष्ट्रीयता फ्रांस की राज्य क्रांति की एक महत्वपूर्ण देन है। आस्ट्रिया और प्रशा ने जब फ्रांस पर आक्रमण किया तब राष्ट्रीय सुरक्षा के लिये इस भावना का विकास हुआ। राष्ट्रीयता के कारण साम्राज्यवाद का उदय हुआ। जब साम्राज्यवाद ने उग्र राष्ट्रवाद का रूप धारण कर लिया तो विनाशकारी युद्ध लड़े गए। फ्रांस की राज्य क्रांति के पश्चात स्वतन्त्रता, समता और राष्ट्रीयता के सिद्धान्तों का बहुत अधिक प्रचार हुआ। जोसफ ने लिखा है कि 'फ्रांस की क्रांति से लोगों में जनतन्त्रात्मक, राष्ट्रवाद मातृभूमि शिक्षा राष्ट्रीय शिक्षा, राष्ट्रीयता, राष्ट्रगान और राष्ट्रीय चिन्ह के प्रति अपूर्व प्रेम हिलोरें मारने लगा।" इस प्रकार स्पष्ट है कि राष्ट्रीयता में व्यक्तिगत हितों की अपेक्षा राष्ट्रीय हित को अधिक महत्व दिया जाता है और राष्ट्र हित ही सर्वोपरि होता है।

राष्ट्रीयता का विकास यूरोप में सर्वप्रथम राष्ट्रीयता की भावना का उदय यूनान के नगर राज्यों में हुआ। उसके पश्चात रोमन साम्राज्य में यह भावना विद्यमान थी। रोमवासी अपने साम्राज्य की रक्षा के लिये अपनी जान तक देने को तैयार थे। इसके अतिरिक्त वे राष्ट्रीय हित को सर्वोपरि मानते थे। मध्यकाल में सामन्तवाद के समय भी राष्ट्रीयता की भावना विद्यमान थी। सामन्त अपने राज्य की रक्षा के लिये सब कुछ कुर्बान कर सकते थे। इसके पश्चात पुनर्जागरण और धर्म सुधार आन्दोलन के समय राष्ट्रीयता की भावना का विकास प्रारम्भ हुआ। स्पेन के विरुद्ध हालैंड का स्वतन्त्रता संग्राम और अमेरिकन उपनिवेशों में इंग्लैंड के विरुद्ध स्वतन्त्रता संग्राम ने राष्ट्रीयता की भावना का मार्ग प्रशस्त करने में महत्वपूर्ण सहयोग दिया।

फ्रास की राज्य क्रान्ति ने प्रगतिशील राष्ट्रीयता की भावना को जन्म दिया। जिसका आधुनिक युग पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। नागरिकों के हृदय में अपने देश की सुरक्षा के लिये राष्ट्रीय भावना को भरने में क्रान्ति ने अद्वितीय योगदान दिया। जब फ्रास की राज्य क्रान्ति को कुचलने के लिये विदेशी शासकों ने फ्रास पर आक्रमण किये तो मार्सेलीस के देश भक्त एक उत्साहवर्द्धक गीत गाते हुए देश की रक्षा के लिये आगे बढ़ते रहे। इस गीत मे राष्ट्रीयता और देश भक्ति की भावनाएँ विद्यमान थी। वही गीत आज भी फ्रास का राष्ट्रीय गान है। नेपोलियन ने क्रान्ति के स्वतन्त्रता समानता और विश्व बन्धुत्व के सिद्धान्तो का प्रचार किया। फ्रास की राज्य क्रान्ति ने सभी यूरोपीय राज्यो में एकता सगठन और राष्ट्रीयता की भावना का प्रचार किया।

नेपोलियन तथा राष्ट्रीयता—19वी शताब्दी राष्ट्रीयता की शताब्दी मानी जाती है। इस शताब्दी में सम्पूर्ण ससार में राष्ट्रीयता की भावना का प्रचार हो गया था। 179? से 1814 ई० तक नेपोलियन बोनापार्ट ने फ्रास को यूरोपीय राजनीति का केन्द्र बनाये रखा। एक साधारण परिवार में जन्म लेने के बावजूद भी नेपोलियन अपनी असाधारण सैनिक सफलताओ के कारण फ्रास का सम्राट बन गया फ्रास की राज्य क्रान्ति के स्वतन्त्रता, समानता और विश्व बन्धुत्व के सिद्धान्तो का उसने सम्पूर्ण यूरोप मे प्रचार किया। नेपोलियन की यूरोप को एक महत्वपूर्ण देन थी राष्ट्रीयता की भावना।

नेपोलियन ने पौलण्ड में जानबूझकर राष्ट्रीयता की भावना को उभाड़ा जबकि स्पेन और जर्मनी में उसके विरोध के कारण इस भावना का विकास हुआ। इटली और जर्मनी में नेपोलियन ने अनजाने मे ही इस भावना की नीव रख दी थी। फ्रास की राज्य क्रान्ति के समय जर्मनी 300 से भी अधिक छोटे छोटे राज्यों मे विभाजित था। ये राज्य एक दूसरे से स्वतत्र थे तथा नाम मात्र के लिये रोमन सम्राट के प्रति वफादार थे। नेपोलियन ने इन छोटे छोटे राज्यो को मिलाकर 39 राज्यो का एक सघ बना दिया। जिसे राईन राज्य सघ के नाम से जाना जाता है। इस सघ का निर्माण कर नेपोलियन ने जर्मनी मे अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीय आन्दोलन की नीव रख दी। इस समय नेपोलियन ने जर्मनी में पवित्र रोमन सम्राट के शासन का अन्त कर दिया था। नेपोलियन की अधीनता से मुक्त होने के लिये जर्मनी के लोगो ने स्वतन्त्रता सघर्ष आरम्भ कर दिया। यही से जर्मनी में राष्ट्रीयता की भावना ने उग्र रूप धारण कर लिया।

नेपोलियन ने जर्मनी के अतिरिक्त इटली में भी राष्ट्रीय भावना का सचार किया। उसने इटली के प्रदेशों पर विजय प्राप्त कर गणतन्त्रीय "राष्ट्रीय राज्य" की स्थापना की। इसके बाद उसने 'इटली का राज्य' निर्मित किया। 1811 ई० में उसने अपने पुत्र नेपोलियन II को वहा का शासक नियुक्त किया। इटली को एक

राज्य का रूप देकर उसने एक समान शासन व्यवस्था को लागू कर राष्ट्रीयता की भावना का विकास किया। नेपोलियन का इटली में प्रत्यक्ष शासन था और जर्मनी के राईन राज्य संघ का वह संरक्षक था। उसने स्पेन के शासक को हटा दिया और उसके स्थान पर अपने भाई जोसफ बोनापार्ट को वहां का शासक नियुक्त कर दिया। इससे स्पेन में राष्ट्रीयता की भावना का तीव्र गति से विकास हुआ। स्पेन ने नेपोलियन के विरुद्ध राष्ट्रीय आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। यही राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की भावना नेपोलियन के पतन का कारण सिद्ध हुई।

वियना कांग्रेस तथा राष्ट्रीयता—फ्रांस की राज्य क्रान्ति के कारण प्रजातन्त्र राष्ट्रीयता और स्वतन्त्रता आदि विचारों का यूरोप में प्रसार हुआ। नेपोलियन के पतन के पश्चात यूरोपीय राष्ट्रों में संगठन की भावना बहुत प्रबल हो गई और यूरोपीय राष्ट्रों ने आस्ट्रिया की राजधानी वियना में यूरोप की प्रादेशिक व्यवस्था के बारे में कुछ महत्वपूर्ण निर्णयों पर हस्ताक्षर किये। इस वियना कांग्रेस में टर्की के अतिरिक्त सभी यूरोपियन देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। इस कांग्रेस में आस्ट्रिया प्रशा, रूस और इंगलैण्ड का बोलबाला था। आस्ट्रिया का चांसलर मेटरनिक इस कांग्रेस का अध्यक्ष था। उसी ने इसकी सारी कार्यवाही का संचालन किया था। इसका मुख्य उद्देश्य यूरोप में शान्ति और एकता स्थापित करना था।

वियना कांग्रेस का प्रमुख सूत्रधार मेटरनिक था। वह राष्ट्रीयता और गणतन्त्र के सिद्धान्तों को कुचलकर पुरातन व्यवस्था को फिर से स्थापित करना चाहता था। इसलिये मेटरनिक और उसके समर्थकों ने वियना कांग्रेस में जनतन्त्र और राष्ट्रीयता का अन्त कर दिया परन्तु उसके प्रयास असफल रहे।

राष्ट्रीयता का विकास (1815–1848)—नेपोलियन ने फ्रांस की राज्य क्रान्ति के स्वतन्त्रता, समानता और विश्व बन्धुत्व के सिद्धान्त का सम्पूर्ण यूरोप में प्रचार किया था। उसके पतन के पश्चात वियना सम्मेलन में प्रतिक्रियावादी शक्तियों ने इन सिद्धान्तों का अन्त कर पुरातन व्यवस्था को फिर से स्थापित कर दिया। इस समय तक यूरोप में राष्ट्रीयता की भावना का प्रचार हो चुका था। इसलिय हर देश में वियना कांग्रेस द्वारा स्थापित व्यवस्था का विरोध प्रारम्भ हुआ और अन्त मे मेटरनिक को भागना पड़ा।

1830 ई० में फ्रांस मे दूसरी क्रान्ति हुई। यद्यपि इस क्रान्ति को पूर्णरूप मे सफलता प्राप्त नहीं हुई परन्तु इससे प्रभावित होकर यूरोप के अन्य देशों में भी क्रान्तियाँ हुई। 1830 ई० की क्रान्ति ने 1848 की क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त कर दिया। इसके पश्चात फ्रांस में 1848 ई० में तीसरी क्रान्ति हुई। इस क्रान्ति से यूरोपियन देशों में राष्ट्रीयता की भावना का प्रचार तीव्र गति से होने लगा। इसका अन्य यूरोपियन देशों पर भी प्रभाव पड़ा और वहां पर भी क्रान्तियाँ हुई। अन्त में फ्रांस, स्पेन, बेल्जियम पुर्तगाल, यूनान और स्विट्जरलैण्ड आदि देश स्वतन्त्रता

(2) वियना कांग्रेस और इटली—नेपोलियन के पतन के बाद 1815 ई० म वियना कांग्रेस ने इटली को पुन छोटे छोटे राज्यो म विभाजित कर दिया। इस प्रकार नेपोलियन द्वारा स्थापित व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया और इटली के राज्यो म पुन निरकुश राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था की स्थापना की गई। वियना कांग्रेस ने इटली को 8 भागो म विभाजित किया था 1 लोम्बार्डी 2 वनेशिया 3 नेपल्स 4 सिसली 5 परमा 6 टस्कनी 7 मोडेना 8 सार्डीनिया पिडमाण्ट।

इटली के लाम्बार्डी और वेनेशिया के प्रदेश आस्ट्रिया को दे दिये गए। पोप का राज्य पुन उसे दे दिया गया और वह अपने राज्य का स्वत त्र शासक बन गया। नेपल्स का राज्य फ्रांस के बूर्बो राजवश के सप्तम फर्डीनेण्ड को दे दिया गया। टस्कनी और मोडेना म फिर स राजतन्त्र की स्थापना कर दी गई। परमा का राज्य मेरिया लुईसा को दे दिया। मरिया लुईसा नेपोलियन की पत्नि थी जो आस्ट्रिया की राजकुमारी थी। पिडमाण्ट का राज्य और जनोआ का गणराज्य सार्डीनिया को दे दिया गया। इस प्रकार वियना कांग्रेस ने दक्षिणपूर्व मे फ्रास के आक्रमण को रोकने के लिए सार्डीनिया को एक शक्तिशाली राज्य बना दिया।

वियना कांग्रेस ने इटली का विभाजन कर उसका राजनीतिक अस्तित्व समाप्त कर दिया। विभाजन इस प्रकार स किया गया कि इटली म एकता की भावना उत्पन्न नही हो सके। इटली म पुरातन व्यवस्था को फिर से स्थापित किया गया और वहा आस्ट्रिया का प्राधान्य पुन स्थापित किया गया। वियना कांग्रेस ने अप्रत्यक्ष रूप स इटली के एकीकरण का माग प्रशस्त कर दिया। सार्डीनिया को इस कांग्रेस ने एक शक्तिशाली राज्य बना दिया था, जिसने आगे चलकर इटली के एकीकरण का नेतृत्व किया।

(3) कार्बोनरी सस्थाऐ वियना कांग्रेस क प्रबन्ध म इटली की जनता म भयकर असन्तोष था। यहा की जनता ने यह निश्चय किया कि एकीकरण के लिए सघष प्रारम्भ कर दिया जाय। इसलिए इट[illegible] भक्तों क्रातिकारियो और राष्ट्रवादियो ने [illegible] एकीकरण क लि[illegible] और ग्रामो म गुप्त क्रातिकारी समिति[illegible] की, जिसे [illegible] क नाम स जाना जाता है।

इटली [illegible] बठक एक [illegible] म आयोजित की गई थी, [illegible] कार्बोनरी [illegible] बड़े बड़े शहरो मे कार्बोनरी [illegible] इस मस [illegible] मुख्य उद्देश्य इटली का एक [illegible] रूप [illegible] यह सस्था राजनतिक ह[illegible] करना चाहती थी। [illegible] सस्था न इटली के स्व[illegible]

(4) 1820-21 का असफल विद्रोह —कार्बोनरी संस्था के सदस्यो ने 1820 ई० म नेपल्स म और 1821 म पिडमोंट म स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए विद्रोह कर दिया, परन्तु यह विद्रोह असफल रहा क्योकि मेटरनिक न आस्ट्रिया की सेना को भेजकर इस विद्रोह को कुचल दिया।

(5) 1 30 की फ्रांसीसी क्रान्ति का प्रभाव —1830 ई० की फ्रांसीसी क्रान्ति से इटली म राष्ट्रीय एकता की भावना का सचार हुआ। इस क्रान्ति मे प्रभावित होकर इटली के परमा मोडेना और पोप के राज्यो म विद्रोह प्रारम्भ हुए। मोडेना के शासक को वहा की जनता न राज्य मे बाहर निकाल दिया और परमा की शासिका को आस्ट्रिया भाग जाने के लिए विवश किया, परन्तु आस्ट्रिया के चासलर मेटरनिक न आस्ट्रियन सेना को भेजकर मोडेना, परमा और पोप के राज्य मे विद्रोहियो को बुरी तरह से कुचल दिया। इन राज्यो म हुई असफल क्रान्तियो न यह स्पष्ट कर दिया कि इटली के एकीकरण के माग म सबसे बडी बाधा आस्ट्रिया है, और स्थानीय विद्रोहो से उसकी शक्ति को समाप्त नही किया जा सकता है।

(6) इटली के राजनीतिक दल —इटली के राजनीतिक दल तीन भागो मे विभाजित थे।

(i) प्रजातन्त्रवादी —मेजिनी व उसके अनुयायी यह चाहते थे कि एकीकरण के पश्चात इटली म प्रजातन्त्रात्मक शासन व्यवस्था स्थापित की जाय।

(ii) सघीय व्यवस्था —दूसरा दल सघवादियो का था। इस दल का नेता रोमन कैथोलिक पादरी था, जिसका नाम था जिओवर्टी। जिओवर्टी चच को मानव कल्याण की धुरी मानता था। इस दल के सदस्य यह चाहते थे कि इटली के सभी राज्यो का एक सघ बनाकर पोप को उसका अध्यक्ष बनाया जाय।

(iii) सवैधानिक राजतन्त्र —तीसरा दल एकीकरण के पश्चात सवैधानिक राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था स्थापित करना चाहता था। इस दल के सदस्य यह चाहते थे कि पीडमाण्ट सार्डीनिया के राजा को सम्पूर्ण इटली का शासक बनाकर सवैधानिक राजतन्त्र स्थापित किया जाय। उस समय पिडमोण्ट-सार्डीनिया एक शक्तिशाली राज्य था। वहा का राजा चार्ल्स एल्बर्ट इटली के एकीकरण के लिय प्रयास कर रहा था। वह चाहता था कि एकीकरण के सघष का पिडमोण्ट नेतृत्व करे। पिडमोण्ट एक शक्तिशाली राज्य था जो आस्ट्रिया का मुकाबला करने म समर्थ था। कावूर न इस दल का समर्थन किया।

(7) मेजिनी (1805-72) —इटली की स्वतन्त्रता का पहला प्रभावशाली नेता मेजिनी था। मेजिनी म राष्ट्रीय भावनाएँ कूट-कूट कर भरी हुई थी। उसका जन्म 1805 ई० म जिनेवा म हुआ था। उसके पिता एक डाक्टर थे।

नवोरा का युद्ध (1849) 1849 ई० सार्डीनिया के राजा एल्बट ने एक बार पुन आस्ट्रिया को इटली से बाहर निकालने के लिये युद्ध प्रारम्भ कर दिया। आस्ट्रिया सेना और सार्डीनिया की सेना के बीच 1849 ई० म नवोरा नामक स्थान पर युद्ध हुआ। इस युद्ध म आस्ट्रिया ने एल्बट को बुरी तरह पराजित किया। इसके पश्चात उसने राज्य से त्याग पत्र देकर अपने पुत्र विक्टर एमेनुअल II को सार्डीनिया का शासक बना दिया। उसे विवश होकर आस्ट्रिया के साथ सधि करनी पडी। इस सधि के अनुसार निम्न शर्तें निश्चित की गई।

(i) सार्डीनिया ने लोंबार्डी का क्षेत्र खाली कर आस्ट्रिया को देना स्वीकार कर लिया।

(ii) सार्डीनिया को युद्ध क्षतिपूर्ति के रूप म एक करोड पौण्ड आस्ट्रिया को देने पडे।

इस प्रकार 1848 ई० की क्रान्ति की असफलता के कारण इटली के एकीकरण का मार्ग अवरुद्ध हो गया। यद्यपि कस्टोंजा और नवोरा के युद्धो म सार्डीनिया पराजित हुआ परन्तु इन युद्धो ने यह स्पष्ट कर दिया कि इटली के एकीकरण का नेतृत्व पीडमोण्ट–राज्य ही कर सकता है। परिणाम स्वरूप स्वतन्त्रता प्रेमी उसके झण्डे के नीचे एकत्रित होने लगे।

कावूर और इटली का एकीकरण —उपरोक्त असफलताओ के बावजूद भी इटली के नेताओ ने हिम्मत नही हारी और एकीकरण के लिये प्रयास करते रहे। एकीकरण का सर्वाधिक श्रेय कावूर को दिया जाता है। उसका जन्म 1810 ई० में हुआ था। प्रारम्भ म वह उदार विचारो वाला था परन्तु कुछ समय पश्चात वह वधराजतन्त्र का समर्थक बन गया। 1852 ई० म पिडमोण्ट-सार्डीनिया के राजा विक्टर एमेनुअल ने उसे प्रधानमन्त्री के पद पर नियुक्त किया।

कावूर की नीति —कावूर की नीति का मुख्य उद्देश्य 'स्वाधीन तथा संयुक्त इटली का निर्माण करना था। कावूर के अनुसार इटली के एकीकरण के लिए निम्न दो बातें आवश्यक थी—

I—पीडमाण्ट और सार्डीनिया के नेतृत्व मे इटली का एकीकरण किया जाय। इसके लिये आवश्यक था कि सार्डीनिया को एक आदर्श, शक्तिशाली तथा सम्पन्न राज्य बनाया जाय। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उसने निम्न कार्य किये —

(i) सार्डीनिया के व्यापार का विकास किया गया।

(ii) उद्योग धन्धो के विकास के लिये सरकारी सहायता दी गई।

(iii) यातायात के साधनो को सुगम बनाने के लिये सडको का निर्माण करवाया और रेलो का जाल बिछा दिया।

(iv) कृषि के विकास के लिए उसने कृषकों को ऋण दिये सिंचाई की सुविधा के लिये नहरों का निर्माण करवाया। दलदलों को साफ कर भूमि को कृषि योग्य बनाया गया। इसके अतिरिक्त उजड़े हुए प्रदेशों को खेती योग्य बनाया गया।

(v) उसने सेना का पुनर्गठन किया। सेना को आधुनिक शस्त्रों से सुसज्जित कर सैनिक शक्ति म वृद्धि की।

2—दूसरा, काबूर ने यह अनुभव किया कि जब तक आस्ट्रिया का प्रभाव इटली से समाप्त नहीं कर दिया जाता, तब तक इटली का एकीकरण नहीं हो सकता। इसलिये काबूर चाहता था कि आस्ट्रिया को इटली से बाहर निकालने के लिये यूरोपियन देशों का सहानुभूति और समर्थन प्राप्त करना आवश्यक है। काबूर यह जानता था कि विदेशी सहयोग के बिना आस्ट्रिया को इटली से बाहर निकालना असम्भव है। आस्ट्रिया के विरुद्ध केवल फ्रांस का ही सहयोग मिल सकता था। काबूर ने एक बार कहा भी था "हम चाहे या न चाहे, हमारा भाग्य फ्रांस पर निर्भर है।

काबूर ने पीडमाण्ट और सार्डीनिया को सुदृढ़ तथा समृद्धिशाली राज्य बनाने के लिये इटली मे आस्ट्रिया को बाहर निकालने का निश्चय किया। उसने इटली के राज्यों म एकता पैदा करने का प्रयास किया। काबूर ने इटली की समस्या को अन्तर्राष्ट्रीय समस्या बनाने के लिय निम्न कार्य किये —

(1) क्रीमिया का युद्ध —काबूर ने आस्ट्रिया के विरुद्ध फ्रांस और इंगलैंड की सहानुभूति प्राप्त करने का प्रयास किया। 1854 ई० मे रूस और टर्की के बीच क्रीमिया का युद्ध प्रारम्भ हुआ। इस युद्ध म इंगलैंड और फ्रांस ने रूस की बढ़ती हुई शक्ति पर नियन्त्रण स्थापित करने के लिए टर्की का साथ दिया। काबूर ने भी इस अवसर का लाभ उठाया। उसने इंगलैंड तथा फ्रांस की मित्रता प्राप्त करने के लिये 17 हजार सैनिक इस युद्ध मे टर्की की सहायता करने के लिये भेजे इस युद्ध म रूस पराजित हुआ और इंगलैंड, फ्रांस और इटली के सैनिकों के कारण टर्की को शानदार विजय प्राप्त हुई। सार्डीनिया के सैनिकों ने इस युद्ध म अपनी वीरता का प्रदर्शन किया, जिससे इंगलैंड और फ्रांस बहुत प्रभावित हुए।

(2) पेरिस शान्ति सम्मेलन (1856) —युद्ध की समाप्ति के पश्चात् 1856 ई० मे पेरिस मे शान्ति सम्मेलन बुलाया गया। इस सम्मेलन म इंगलैंड फ्रांस, आस्ट्रिया और रूस आदि देशों ने भाग लिया। इंगलैंड और फ्रांस ने आस्ट्रिया के विरोध के बावजूद भी सार्डीनिया के प्रतिनिधि को इस सम्मेलन म भाग लेने के लिये आमन्त्रित किया। इस पर काबूर ने सार्डीनिया की ओर से इस सम्मेलन म भाग लिया। काबूर ने यूरोपियन राष्ट्रों के सम्मुख इटली के एकीकरण का प्रश्न रखा। उसने अपने भाषण में कहा कि आस्ट्रिया इटली के एकीकरण का सबसे

बडा शत्रु है। ब्रिटिश विदेश मन्त्री ने कावूर की माग का समथन किया। इस प्रकार कावूर ने आस्ट्रिया के विरोध के बावजूद भी इगलैंड और फ्रास का नतिक समथन प्राप्त कर लिया। उसन इटली की समस्या को एक अ तर्राष्ट्रीय समस्या बना दिया।[1] इसीलिये एक प्रसिद्ध इतिहासकार ने लिखा है कि 'क्रीमिया के कीचड स नवीन इटली का निर्माण हुआ।

(3) **नेपोलियन से समझौता होने के कारण** —कावूर ने फ्राम के शासक नपोलियन तृतीय से मित्रता कर ली। उसने आस्ट्रिया के विरुद्ध इटली को सहायता देना स्वीकार कर लिया। इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित थे —

(i) कावूर ने क्रीमिया के युद्ध म सनिक भेजकर फ्रास को सनिक सहायता दी थी।

(ii) नेपोलियन तृतीय 1815 ई० की वियना काग्रेस की व्यवस्थाओ को समाप्त करना चाहता था।

(iii) नेपोलियन बानापाट की भाति वह यश प्राप्त करना चाहता था। इसलिए उसने इटली को स्वतन्त्रता दिलाने मे महायता देना स्वीकार कर लिया।

(4) **प्लोम्बियस समझौता (1858)**—फ्रास के सम्राट नपोलियन तृतीय और कावूर के बीच प्लाम्बियस नामक स्थान पर एक गुप्त समझौता हुआ जिसम निम्नलिखित बातें निश्चित की गई—

(i) नेपोलियन ने यह वायदा किया कि यदि आस्ट्रिया और सार्डीनिया के बीच युद्ध होगा तो वह आस्ट्रिया के विरुद्ध सार्डीनिया को दो लाख सैनिको की सहायता देगा।

(ii) सार्डीनिया न इस सहायता के बदले नीस और सेवाय के प्रदेश फ्रास को देना स्वीकार कर लिया।

(iii) आस्ट्रिया की पराजय के पश्चात् लोम्बार्डी और वेनेशिया के प्रान्ता का सार्डीनिया म विलय कर दिया जायेगा।

(iv) जेरोम के नेतृत्व मे इटली के राज्यो का एक सघ बनाया जायेगा।

(v) विक्टर एमेनुअल अपनी लडकी का विवाह नपोलियन के भाई प्रिंस जेरोम से करेगा।

इस प्रकार कावूर आस्टिया के विरुद्ध फ्रास की सहायता प्राप्त करने से सफल हुआ परन्तु इस सहायता के बदले म उसे महान् त्याग करना पडा। सेवाय सार्डीनिया के शासक की तथा नीस गेरी वाल्डी की जन्म भूमि थी परन्तु इटली के

1—कटलबी, डी० एम०—ए हिस्ट्री आफ माडन टाइम्स, पृष्ठ 222

एकीकरण के लिए काबूर ने यह प्रदेश नेपोलियन तृतीय को देना स्वीकार कर लिया था।

एकीकरण की पहली सीढ़ी (लोम्बार्डी का विलय)—नेपोलियन तृतीय से समझौता हो जाने के बाद काबूर आस्ट्रिया पर आक्रमण करने का अवसर ढूंढने लगा। काबूर यह चाहता था कि युद्ध आस्ट्रिया के द्वारा प्रारम्भ किया जाए, ताकि यूरोपियन देशों की सहानुभूति सार्डीनिया के प्रति बनी रहे। अब सार्डीनिया के समाचार पत्रों में आस्ट्रिया की लोम्बार्डी व वेनशिया के प्रति नीति की कटु आलोचना की जाने लगी। सार्डीनिया अपनी सैनिक शक्ति को मजबूत करने लगा। उसने लोम्बार्डी की सीमा पर मोर्चाबन्दी करना प्रारम्भ कर दिया। इतना ही नहीं काबूर ने *आस्ट्रिया अधिकृत क्षेत्र मसा और करारा* में विद्रोह करवा दिया। इन प्रदेशों में आस्ट्रिया के विरुद्ध आन्दोलन ने उग्र रूप धारण कर लिया। इस पर आस्ट्रिया ने सार्डीनिया को चेतावनी दी कि यदि उसने तीन दिन में अपनी सैनिक शक्ति कम नहीं की तो उस पर आक्रमण कर दिया जायेगा। सार्डीनिया ने इस अल्टीमेटम को जानबूझ कर ठुकरा दिया। वह तो चाहता था कि आस्ट्रिया उस पर आक्रमण करे। परिणाम स्वरूप 19 अप्रेल 1859 ई० में आस्ट्रिया ने सार्डीनिया के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया। इस समय काबूर ने व्यवस्थापिका में भाषण देते हुए कहा कि "यह पार्लियामेंट की अन्तिम बैठक है। इसके बाद सम्पूर्ण इटली की बैठक होगी जो इतिहास का निर्माण होगा।"

जैसे ही आस्ट्रिया ने सार्डीनिया पर आक्रमण किया, वैसे ही फ्रांस ने दो लाख सैनिक सार्डीनिया की सहायता के लिए भेज दिये। फ्रांस और सार्डीनिया की संयुक्त सेना ने आस्ट्रिया को मजेन्ता और साल्फेरिनो के युद्ध में बुरी तरह पराजित किया। साल्फेरिनो का युद्ध जो कि 24 जून 1859 ई० को हुआ था, उसकी गिनती 19वीं शताब्दी के भीषणतम युद्धों में की जाती है। इस युद्ध में दोनों ओर से ढाई लाख से भी अधिक सैनिकों ने भाग लिया। इसमें दोनों ओर के लगभग 40 हजार सैनिक युद्ध में मृत्यु को प्राप्त हुए। इस युद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात् सार्डीनिया ने समूचे लाम्बार्डी पर अधिकार कर लिया।

नेपोलियन के युद्ध से पृथक होने के कारण—जब सार्डीनिया ने लोम्बार्डी पर अधिकार कर लिया तब नेपोलियन ने बिना उससे परामर्श लिये आस्ट्रिया के साथ समझौता कर लिया। इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित थे —

(i) नेपोलियन केवल उत्तरी इटली की एकता का समर्थक था। वह सम्पूर्ण इटली की एकता का विरोधी था। वह यह नहीं चाहता था कि फ्रांस की सीमा पर एक शक्तिशाली राष्ट्र का निर्माण हो।

(ii) इटली की जनता रोमन कैथोलिक धर्म में विश्वास करती थी। कैथोलिक धर्म का गुरु पोप भी रोम में निवास करता था। इसलिए फ्रांस की जनता युद्ध

जारी रखने के पक्ष म नही थी क्याकि इससे पोप की प्रतिष्ठा को आघात पहुचने की सभावना थी।

(iii) आस्ट्रिया के पराजय के बाद उसकी स्थिति म निरन्तर सुधार हो रहा था और उसे पूण रूप से पराजित करना असभव सा लग रहा था।

(iv) नेपोलियन तृतीय को यह भय था कि कही प्रशा आस्ट्रिया का पक्ष लेकर युद्ध मे सम्मिलित न हो जाय।

इन सब कारणा स नेपोलियन ने युद्ध बन्द करने का निश्चय किया और वह आस्ट्रियन सम्राट से विलाफ्रैंका नामक स्थान पर मिला। इस समय नेपोलियन ने कुछ शर्तों के साथ युद्ध बन्द करने का प्रस्ताव रखा जिसे आस्ट्रिया ने सहप स्वीकार कर लिया। इस प्रकार नेपोलियन ने युद्ध से अपने को अलग कर लिया।

(5) **विलाफ्रैंका की सधि (1859)**—नेपोलियन तृतीय ने आस्टिया के सम्राट के साथ बिना सार्डीनिया की सलाह के 11 जुलाई 1859 को एक सधि कर ली, जिसे विलाफ्रैंका की सधि कहा जाता है। इस सधि की प्रमुख शर्ते निम्न लिखित थी —

(i) आस्टिया का लोम्बार्डी का प्राप्त सार्डीनिया को देना पडा।
(ii) वेनेशिया के प्रान्त पर आस्ट्रिया का अधिकार रखा गया।
(iii) यह निश्चय किया गया कि इटली के राज्यो का एक सघ बनाया जायगा जिसका अध्यक्ष पोप होगा।
(iv) टस्कनी और मोडेना के ड्यूक पुन शासक नियुक्त कर दिय गये।
(v) नपोलियन ने नीस और सेवाय के प्रदेश क बजाय केवल युद्ध का व्यय लना स्वीकार कर लिया।

अब नेपोलियन ने आस्ट्रिया के साथ विलाफ्रैंका की सधि कर ली, तो सार्डीनिया के राजा विक्टर एमेनुअल को भी बाध्य हाकर आस्ट्रिया के साथ ज्यूरिच की सधि करनी पडी। इस सधि पर दोना देशा ने 10 नवम्बर 1859 ई० को हस्ताक्षर कर दिये। काबूर इस सधि क पक्ष म नहा था। इसलिये उसने प्रधानमत्री के पद स त्याग पत्र दे दिया। इस सधि से सार्डीनिया को लोम्बार्डी का प्रदेश प्राप्त हुआ। यह एकीकरण की दिशा म महत्वपूण कदम था। इससे एकीकरण का पहला चरण पूरा हो गया।

एकीकरण की दूसरी सीढी (मध्य इटली के राज्यों का विलय)—आस्टिया की पराजय से इटालियन जनता के उत्साह म वृद्धि हुई। इससे उत्साहित होकर मध्य इटली के टस्कनी परमा मोडेना, और रोमाग्ना राज्यो की जनता न अपने शासको को हटा दिया और सार्डीनिया म मिलने की घोषणा कर दी। इगलैण्ड के विदेश मन्त्री पामस्टन ने इन राज्यो की कायवाही का समथन किया इसलिये आस्ट्रिया और फ्रास चाहते हुए भी इन राज्या की क्राति को कुचलने के लिये सनिक हस्तक्षेप नही कर सके।

उधर कावूर पुन प्रधान मन्त्री बन चुका था । उसने इन राज्यो की शासन व्यवस्था का सचालन करने के लिए अपने अधिकारी भेज दिए । इसके अतिरिक्त कावूर ने नेपोलियन के सामने यह प्रस्ताव रखा कि यदि वह मध्य इटली के राज्यो को जनमत के आधार पर सार्डीनिया म मिलाने की बात का समथन करेगा, तो कावूर उसे नीस तथा सेवाय का प्रदेश देगा । नेपोलियन न कावूर के इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया । 1860 ई० म मध्य इटली के टस्कनी, मोडेना परमा और रोमाग्ना आदि राज्यों को जनमत के आधार पर सार्डीनिया म मिला दिया । इसके पश्चात् कावूर ने नीस तथा सेवाय के प्रदेश फ्रास को दे दिये । अब उत्तरी तथा मध्य इटली एकता के सूत्र म बध गये । इस प्रकार एकीकरण का दूसरा चरण पूरा हो गया ।

एकीकरण की तीसरी सीढ़ी और गेरीबाल्डी (सिसली तथा नेपल्स का विलय—जोसेफ गेरीबाल्डी (1807–1882) का जन्म नीस नगर के एक साधारण परिवार में हुआ था । इसके पिता उसे पादरी बनाना चाहते थे, परन्तु वह पादरी नही बनना चाहता था । इसलिये वह नीस से भागकर सार्डीनिया आ गया । वहा आकर जलसेना म भर्ती हो गया । उसने स्वतन्त्रता सघष मे भाग लिया । परिणाम स्वरूप 1834 मे उसे मृत्यु दण्ड दिया गया । वह जेल से किसी प्रकार भाग कर दक्षिणी अमेरिका जा पहुँचा । वहा उसने स्पेन के उपनिवेशो की स्वतन्त्रता के लिए सघष मे भाग लिया । इसमे उसने असाधारण सैनिक प्रतिभा का प्रदशन किया, जिसके कारण उसे एक वीर पुरुष समझा जाने लगा ।

गेरीबाल्डी ने सैनिक दल का गठन किया । इस दल के सदस्य "लाल कमीज" पहनते थे । इसलिये यह दल "लाल कुर्ती दल के नाम से प्रसिद्ध हुआ । 1848 ई० की क्रान्ति के समय गेरीबाल्डी और मेजिनी ने पोप को रोम से भगा दिया और रोम पर अधिकार कर लिया । इसके पश्चात् मेजिनी के नेतृत्व मे रोम मे गणतन्त्रात्मक शासन की स्थापना की गई । कुछ समय पश्चात ही नेपोलियन तृतीय की सहायता से पोप पायस नवम ने रोम पर फिर से अधिकार कर लिया । परिणामस्वरूप मेजिनी इगलण्ड और गैरीबाल्डी अमेरिका भाग गया । गैरीबाल्डी कावूर की कूटनीति की आलोचना करता था । फिर भी, उसने जब 1860 ई० मे सिसली पर आक्रमण किया, तो कावूर ने उसका समथन किया ।

गैरीबाल्डी को दक्षिणी इटली के राज्यो मे क्रान्ति की भावना पैदा करने में पूर्ण रूप से सफलता प्राप्त हुई । नेपल्स तथा सिसली के शासक जनता पर स्वेच्छाचारी तरीके से शासन कर रहे थे और राष्ट्रीयता तथा जनतन्त्र की विचार धारा का दमन कर रहे थे । इन दोनो राज्यो की जनता मे शासको के विरुद्ध असतोष व्याप्त था । उत्तरी इटली तथा मध्य इटली के जन आन्दोलन की सफलता ने सिसली

कि षडयंत्र और विद्रोहों से इटली का एकीकरण नहीं हो सकता। हम चाहें या न चाहें इटली का भाग्य फ्रांस पर निर्भर है।

कावूर ने कूटनीति से काम लेते हुए क्रीमिया के युद्ध में सार्डीनिया के 17 हजार सैनिक इंगलैण्ड और फ्रांस की सहायता के लिये भेजे। इसमे वह इंगलैण्ड और फ्रांस का समर्थन प्राप्त करने में सफल हो गया। इटली की समस्या को अन्तर्राष्ट्रीय समस्या बना दिया। कावूर ने फ्रांस के सम्राट नेपोलियन तृतीय के साथ प्लाम्बियर्स का गुप्त समझौता कर अपनी राजनीतिक दूरदर्शिता का परिचय दिया। यद्यपि इस समझौते का उसे भारी मूल्य चुकाना पड़ा, परन्तु राष्ट्र हित को देखते हुए उसने इसे चुकाना स्वीकार कर लिया। जब नेपोलियन ने कावूर के साथ विश्वासघात कर बीच में ही युद्ध बन्द कर लिया तो वह बहुत क्रोधित हुआ और प्रधानमन्त्री पद से त्यागपत्र दे दिया, किन्तु कुछ ही समय पश्चात उसे पुनः प्रधान मन्त्री बनना पड़ा।

यद्यपि कावूर वैध राजतन्त्र का समर्थक था, परन्तु एकीकरण में क्रान्तिकारियों का सहयोग भी प्राप्त करने का निश्चय किया। उसने स्पष्ट रूप से कहा था कि "मैं इटली का निर्माण दक्षिण की ओर से क्रान्ति के द्वारा करूंगा।" उसने गैरीबाल्डी की सिसली विजय का समर्थन किया। जब गैरीबाल्डी ने रोम पर विजय प्राप्त करने का निश्चय किया तो कावूर ने विक्टर एमेनुअल को भेजकर नेपल्स और सिसली पर सार्डीनिया का शासन कायम करवाया। इसके अतिरिक्त गैरीबाल्डी के रोम अभियान को असफल बनाकर इटली को फ्रांस तथा आस्ट्रिया के साथ होने वाले युद्धों से बचाया।

इतिहासकार फिलिप्स ने लिखा है कि उसने राष्ट्रीय मुक्ति के कार्य को दलीय भावनाओं से दूर और निष्फल काल्पनिक स्वर्गों की दुनियां से दूर रखा, विचारहीन षडयन्त्रों से उसकी रक्षा की और क्रान्ति तथा प्रतिक्रान्ति की चट्टानों के बीच से उसकी नौका को खेकर उसे संगठित शक्ति ध्वजा शासन और विदेश मित्र प्रदान किये।' मेरियट ने लिखा है कि 'मेजिनी की प्रेरणा, गैरीबाल्डी की तलवार क्रान्तिकारियों का जोश तथा नेपोलियन के हौसले का एक साथ एक सामान्य उद्देश्य की पूर्ति के लिये उपयोग करना कावूर का ही काम था।

यह सत्य है कि यदि कावूर का सहयोग नहीं मिला होता तो इटली का एकीकरण कुछ समय के लिये आगे टल सकता था।

(4) एकीकरण की अन्तिम सीढ़ी और विक्टर एमेनुअल—(वेनेशिया और रोम का विलय)—वेनेशिया और रोम के अलावा सभी प्रदेश सार्डीनिया में मिला दिये गये थे। 1861 ई० में कावूर की मृत्यु के पश्चात एकीकरण का उत्तरदायित्व सार्डीनिया के सम्राट विक्टर एमेनुअल पर आ पड़ा।

राष्ट्रवाद जमनी और इटली का एकीकरण

(i) वेनेशिया पर अधिकार (1866 ई०)—1866 ई० में आस्ट्रिया और
प्रशा म युद्ध हुआ। आस्ट्रिया को मित्रहीन बनाने के लिये बिस्माक ने रूस, फास और
इटली आदि देशों से कूटनीतिक सधियां की। इटली से हुई सधि में यह निश्चित
किया गया था कि जब प्रशा और आस्ट्रिया के बीच युद्ध होगा तो उस समय इट..
जमनी की सहायता के लिये आस्ट्रिया पर आक्रमण कर देगा। युद्ध में जमनी की
विजय होने पर वह आस्ट्रिया से वेनेशिया का प्रदेश इटली को दिलवा देगा।

1866 ई० म आस्ट्रिया और प्रशा के बीच युद्ध प्रारम्भ हो गया तो पूव में
ए समझौते के अनुसार इटली ने आस्ट्रिया पर आक्रमण कर दिया। आस्ट्रिया की
सेनाओं न इटली का युद्ध म बुरी तरह पराजित किया परन्तु प्रशा ने सेडोवा के युद्ध
म आस्ट्रिया को निर्णायक रूप से पराजित कर दिया और उसे सधि करने के लिये
बाध्य किया। युद्ध की समाप्ति के पश्चात् 23 अगस्त 1866 ई० को आस्ट्रिया
और प्रशा के बीच सधि हुई। इस सधि के अनुसार प्रशा ने वेनेशिया का प्रदेश
आस्ट्रिया से इटली को दिलवा दिया। अब केवल रोम को छोड़कर सम्पूर्ण इटली का
एकीकरण हो चुका था। रोम पर कथोलिक धम गुरू पोप का अधिकार था और
पोप की रक्षा के लिये फ्रास के सम्राट नपोलियन ततीय ने फ्रांसीसी सेना को तैनात
कर रखा था।

(ii) रोम पर अधिकार (1870)—1870 ई० में फ्रांस और प्रशा के
बीच युद्ध हुआ। इस युद्ध से पूव बिस्माक न इटली से एक समझौता किया जिसके
अनुसार इटली युद्ध म तटस्थ रहेगा। उसके बदले मे बिस्मार्क ने उस रोम पर अधि
कार करने की मौन स्वीकृति दे दी। 1870 ई० म जब फ्रास और प्रशा के बीच
युद्ध प्रारम्भ हुआ तो नेपोलियन ने अपनी सेना रोम से बुला ली। फ्रास की सेना ने
रोम छोडते ही विक्टर एमेनुअल ने 20 सितम्बर 1870 ई० को रोम पर अधिकार
कर लिया। जनता के बहुमत के आधार पर रोम का इटली म विलय कर दिया गया।
इस प्रकार 1871 ई० म इटली का एकीकरण पूर्ण हो गया। रोम को संयुक्त इटली
की राजधानी घोषित किया गया।

2 जून 1871 ई० को विक्टर एमेनुअल ने एक विशाल जुलूस के साथ रोम
म प्रवेश किया। इसके पश्चात उसने घोषणा की कि "हम रोम आ पहुचे हैं और
यहीं रहेंगे।" इस प्रकार वह इटली जिसे, 1815 ई० म वियना काग्रेस मे भौगो-
लिक चिह्नमात्र कहा था, अब एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में उदित हुआ।

1871 ई० म इटली की ससद ने एक कानून पास किया- जिसे 'ला ऑफ
पेपाल गारटीज' कहते है। इस कानून से पोप के साथ समझौता हो गया। उमे
पेंशन देने की व्यवस्था की गई। इस कानून के अनुसार यह निश्चित किया
गया कि—

(i) पोप के निवास स्थान के आसपास के क्षेत्र पर उसका अधिकार मान लिया गया। इस क्षेत्र मे पोप की सर्वोच्च सत्ता रहेगी।

(ii) इस क्षेत्र मे पोप एक स्वतन्त्र शासक की तरह शासन करेगा। वहा इटली की सरकार का कोई भी कानून लागू नही होगा और पोप की अनुमति के बिना कोई भी सरकारी कर्मचारी इस क्षेत्र म प्रवेश नही कर सकेगा।

(iii) पोप विदेशो मे अपन राजदूत भेज सकेगा और विदेशी राजदूत पोप के दरबार मे रह सकेंगे। फिर भी पोप ने इस व्यवस्था को अस्वीकार कर दिया और वह अपने आपको नजरबन्द बन्दी समभता रहा। इस प्रकार एक लम्बे सघष के पश्चात् मेजिनी के नतिक बल गरीबाल्डी की तलवार, विक्टर कावूर की कूटनीति, विक्टर एमेनुअल की सूझबूझ तथा हजारो देश भक्तो के बलिदान से इटली क एकीकरण का काय पूरा हुआ। इटली एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप मे यूरोप के रगमच पर प्रकट हुआ। इटली के एकीकरण के बारे म मेरियट ने लिखा है कि मजिनी न इटली की आत्मा, कावूर ने मस्तिष्क गरीबाल्डी ने तलवार और विक्टर एमनुअल ने शरीर बनकर राष्ट्रीय एकीकरण के कार्य को पूरा किया और उसकी दासता की बेडिया काट डाली।

जमनी का एकीकरण—विश्व इतिहास म जमनी का उत्थान और पतन महत्वपूण स्थान रखता है। जमन जाति ने प्राचीन यूरोप क विशाल रोमन साम्राज्य को समाप्त कर दिया था और इसके पश्चात इगलण्ड फ्रास, जमनी स्पेन और इटली आदि देशो पर अधिकार कर लिया था। धीरे धीरे जमन जाति का राजनीतिक प्रभाव समाप्त होता गया और स्वय जमनी का अनेक छोटे छोटे राज्यो म विभाजन हो गया।

फ्रास की राज्य क्रान्ति से पूव जमनी भी इटली की भाति दो सौ से अधिक छोटे छोटे राज्यो म विभाजित था। इन राज्यो म से कुछ पर विदेशी शासको का अधिकार था। जसे कि हनोवर पर इगलैण्ड का श्लेसविग पर डेनमाक का, उत्तर जमन राज्यो पर आस्ट्रिया का और दक्षिणी जमन राज्यो पर फ्रास का प्रभाव था। फ्रास की राज्य क्रान्ति का जमन पर भी प्रभाव पडा और वहा राष्ट्रीयता की भावनाएँ जाग्रत हुई। अब जमनी की जनता राष्ट्रीय राज्य स्थापित करने के पक्ष म थी।

नेपोलियन और जमनी—नपोलियन बोनापाट ने अपन कार्यों से जमनी के एकीकरण का माग प्रशस्त किया। 1806 ई० म उसने जमनी म पवित्र रोमन साम्राज्य का अन्त कर दिया। इसके पश्चात जमनी के छोटे छोटे राज्यो को मिला कर राइन राज्य सघ' का निर्माण किया। सभी राज्यो म एक जसी शासन व्यवस्था लागू की। इस प्रकार नपोलियन ने अपने कार्यों स अप्रत्यक्ष रूप से जमनी

के एकीकरण का माग प्रशस्त कर दिया। इसलिय उसको जमनी के एकीकरण का पथ प्रदशक कहा जाता है।

वियना कांग्रेस और जमनी —नेपोलियन के पतन के बाद 1815 ई० में वियना म विजयी राष्ट्रो का एक सम्मलन हुआ जिसे वियना काग्रेस के नाम से जाना जाता है। इस सम्मलन म जमनी को 39 राज्यो म विभाजित कर एक शिथिल सघ का निर्माण किया गया जिसे जमन परिसघ कहा जाता है। आस्ट्रिया के सम्राट को इस परिसघ का अध्यक्ष एव प्रशा क सम्राट को उपाध्यक्ष बनाया गया। इस परिसघ की एक ससद बनाई गई। जिसके सदस्य जमन राज्यो के राजाओ द्वारा मनोनीत प्रतिनिधि होते थे। यह सघीय व्यवस्थापिका (Diet) केवल राजाओं का प्रतिनिधित्व करती थी, जनता का नही। इस ससद के प्रतिनिधियो को एक जैसे अधिकार प्राप्त नही थ। बडे राज्यो के प्रतिनिधियो को अधिक अधिकार दिये गये थे जबकि छोटे राज्यों के प्रतिनिधियो को कम।

सघीय सभा म साधारण विषयो पर बहुमत से निणय लिया जाता था, जबकि मुख्य विषयो पर दो तिहाई बहुमत से। सभी राज्य एक दूसरे से स्वतन्त्र थे। सघ के सदस्य राज्य एक दूसरे पर आक्रमण नही कर सकते थे। सघ पर आक्रमण होने की दशा म सभी राज्य मिलकर सामना करते थे। वैसे सघ का प्रत्येक सदस्य अपने-अपने राज्य म पूण रूप से स्वतन्त्र था। इस सघ के द्वारा आस्ट्रिया जमनी के राज्यो पर नियन्त्रण रखता था। इसका मुख्य उद्देश्य जमनी म राष्ट्रीय भावनाओ को कुचलना था।

वियना सम्मेलन ने श्लेस्विग और होलस्टीन को डेनमाक के अधीन कर दिया। अलसास व लारेन के प्रदेश पर फ्रास को अधिकार दे दिया। इस प्रकार जमनी के कुछ भाग पर डेनमार्क का, कुछ भाग पर फ्रास का और कुछ भाग पर आस्ट्रिया का अधिकार हो गया। वियना सम्मलन ने जमनी म तीन विदेशी शक्तियो का शासन स्थापित कर दिया। इस प्रकार वियना काग्रेस के निणय ने जमन राष्ट्रवादियो की आकाक्षाओ पर भयकर कुठाराघात किया।

जमनी के एकीकरण के माग मे कठिनाइया —

(1) वचारिक भिन्नता —जमनी म अनेक राजनीतिक दल थे, जो *सुधारों के विषय म एकमत नही थे। इसका प्रमुख कारण यह था कि जमनी के* राज्यो म भिन्न भिन्न शासन प्रणालिया विद्यमान थी। जमनी के जिन प्रदेशो म आस्ट्रिया का प्रभाव था, वहा पर निरकुश राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था थी। कुछ नगरो म स्थानीय सस्थाऐ शासन का सचालन कर रही थी।

जमनी क कुछ राज्य यह चाहते थ कि जमनी के एकीकरण का नेतृत्व प्रशा करे। कुछ सामन्तवादी विचार धारा के समथक थे। कुछ राज्य एकीकरण के

पश्चात् जर्मनी में गणतन्त्र कायम करना चाहते थे, तो कुछ प्रूस वंश के नेतृत्व में जर्मनी का एकीकरण करना चाहते थे।

इसके अतिरिक्त जर्मनी की आन्तरिक समस्याएं बड़ी जटिल थीं। इन समस्याओं पर विभिन्न दल आपस में झगड़ते रहते थे। जर्मनी के कुछ दल फ्रांस की राज्य क्रान्ति से प्रभावित थे तो कुछ क्रान्तिकारी योजनाओं का विरोध कर रहे थे। जर्मनी में राज्यों और राजनीतिक दलों में आपसी मतभेद थे। इसीलिये जर्मनी में राष्ट्रीय एकीकरण की भावना का विकास बहुत धीरे धीरे हुआ।

(ii) विदेशी प्रभुत्व —इटली की भांति जर्मनी में भी विदेशी राज्य वंशों का शासन था, जो जर्मनी के एकीकरण के विरोधी थे। जर्मनी की श्लस्विग और होलस्टीन की डचियों पर डेनमार्क का अधिकार था। हेनोवर पर इंगलैंड का अधिकार एवं आस्ट्रिया का जर्मनी पर प्रभुत्व था, इसलिये आस्ट्रिया और डेनमार्क जर्मनी के एकीकरण के विरोधी थे। फ्रांस भी जर्मनी के एकीकरण का विरोधी था। वह यह नहीं चाहता था कि उसकी सीमा पर एक शक्तिशाली राज्य का निर्माण हो।

(iii) प्रतिक्रियावादी नीति —वियना कांग्रेस के निर्णय ने जर्मनी के एकीकरण का मार्ग अवरुद्ध कर दिया। आस्ट्रिया का जर्मनी पर प्रभुत्व स्थापित हो गया। मेटरनिक प्रतिक्रियावादी नीति का समर्थक था जो प्रगतिशील तथा राष्ट्रीयता के विचारों का कट्टर शत्रु था। उसने इन विचारों को कुचलने में कोई कसर नहीं रखी। मेटरनिक ने जर्मनी में घोर प्रतिक्रियावादी नीति अपनाई।

जर्मनी में राष्ट्रीय भावनाओं का प्रचार वहां के विश्वविद्यालयों के द्वारा किया गया। 'जेना' इस आन्दोलन का प्रमुख केन्द्र बन गया। धीरे धीरे सम्पूर्ण जर्मन राज्यों में राष्ट्रीयता और स्वतन्त्रता का आन्दोलन बढ़ता ही गया। मेटरनिक ने इस आन्दोलन को कुचलने के लिये संघीय शासकों को आदेश दिये। उसने कार्ल्सबाद में जर्मन संसद की बैठक बुलाई। इसमें उसने जर्मनी के राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलने के लिये कई नियम बनाये जिन्हें 'कार्ल्सबाद के आदेश' के नाम से जाना जाता है। इन आदेशों के अनुसार यह निश्चित किया गया कि —

(i) प्रत्येक विश्वविद्यालय में प्रत्येक राज्य अपना एक विशेष प्रतिनिधि नियुक्त करेगा। जो इस बात को देखेगा कि विश्वविद्यालय सरकार की इच्छा के विरुद्ध तो कार्य नहीं कर रहा है।

(ii) विश्वविद्यालयों और पाठ्यक्रम पर सरकार का नियन्त्रण स्थापित कर लिया। इस बात का भी ध्यान रखा गया कि कहीं विश्वविद्यालय राष्ट्रीय भावनाओं का प्रचार तो नहीं कर रहा है।

(iii) बीस मुद्रित पृष्ठों से अधिक लेख को सरकार की स्वीकृति के पश्चात ही प्रकाशित किया जा सकता था।

इन दमनकारी कानूनों के कारण जर्मनी में 30 वर्ष तक राष्ट्रीयता की भावना का विकास नहीं हो सका। इस प्रकार 1848 ई० तक आस्ट्रिया जर्मनी पर निरंकुश रूप से शासन करता रहा।

जर्मनी में राष्ट्रीय एकता के प्रयास (1815–1850 ई०) —

1—**बुद्धि आन्दोलन** — जर्मनी के दार्शनिकों, लेखकों, कवियों और इतिहासकारों ने जनता में राष्ट्रीयता की भावना का प्रचार किया। गेटे, शिलर, हीगल और फिक्टे आदि विद्वानों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से जनता में बौद्धिक जाग्रति पैदा की। इससे जर्मनी में बौद्धिक आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। ये विद्वान् गुप्त रूप से जनता में राष्ट्रीय चेतना का प्रचार करते रहे।

2—**आर्थिक संघ की स्थापना** — जर्मनी के राज्यों के विभाजित होने से व्यापार में कठिनाई का सामना करना पड़ता था और व्यापारी को प्रत्येक राज्य में चुंगी देनी पड़ती थी। इस व्यापारिक असुविधा को दूर करने के लिए 1834 ई० में 18 जर्मन राज्यों को मिलाकर प्रशा के नेतृत्व में एक आर्थिक संघ की स्थापना की गई। यह संघ एक प्रकार का चुंगी संघ था जिसे 'जोलवरिन' के नाम से भी पुकारा जाता था। इस संघ के सदस्य राज्यों ने यह निश्चय किया कि वे एक दूसरे के माल पर चुंगी कर नहीं लेंगे। इस प्रकार इस के सदस्य राज्यों को स्वतन्त्र रूप से व्यापार करने की सुविधा प्राप्त हो गई। 1850 ई० तक जर्मनी के सभी राज्य इस संघ के सदस्य बन गये। प्रशा इस आर्थिक संगठन के माध्यम से अपनी शक्ति में वृद्धि कर रहा था। मेटरनिक चाहते हुए भी इस संघ के विरोध में कुछ नहीं कर सका।

इस संघ की स्थापना से आर्थिक दृष्टि से सारा जर्मनी एक हो गया। एक राज्य के लोग दूसरे राज्य में व्यापार के लिए आने जाने लगे। इससे जनता में राष्ट्रीयता की भावना का काफी विकास हुआ। इस आर्थिक संघ की स्थापना से प्रशा जर्मन राज्यों का नेता बन गया। इससे यह स्पष्ट हो गया कि जर्मनी का आगे चलकर प्रशा के नेतृत्व में एकीकरण होगा। केटलबी ने लिखा है कि "जोलवरिन के निर्माण ने भविष्य में प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी के राजनीतिक एकीकरण का मार्ग तैयार कर दिया।[1]

3—**1830 की क्रांति का प्रभाव** — 1830 की फ्रांस की दूसरी क्रांति से प्रभावित होकर जर्मन जनता ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया परन्तु जर्मन राजाओं ने मेटरनिक की सहायता से इस आन्दोलन का दमन कर दिया।

1—केटलबी डॉ० एम० ए हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न टाइम्स, पृ० 175

4—1848 ई० की क्रान्ति का प्रभाव —*1848* ई० मे फ्रास म तीसरी क्राति हुई। इस क्राति ने जमनी को बहुत अधिक प्रभावित किया। इससे प्रोत्साहित होकर प्रशा, ववेरिया, सक्सनी हेनोवर बेडेन आदि राज्यो की जनता ने वहा के निरकुश शासको के विरुद्ध आदोलन प्रारम्भ कर दिया। इससे कुछ शासको ने उदारवादी शासन व्यवस्था की स्थापना की। पर तु जमन शासको ने मेटरनिख की सहायता से इस आदोलन का दमन कर दिया और फिर से प्रतिक्रियावादी शासन व्यवस्था की स्थापना कर दी।

फ्रेंकफट की ससद ने दस माह के प्रयासो से सघीय ससदात्मक राजतन्त्रीय सविधान का निर्माण किया। इस सघ का अध्यक्ष प्रशा के सम्राट फ्रेडरिक विलियम चतुथ को बनाया गया। इस समय सदस्या ने प्रशा के सम्राट स अनुरोध किया कि वह ताज पहन ले परन्तु उसने पहनने से इसलिये इकार किया क्योंकि *इससे आस्टिया क साथ युद्ध की सम्भावना थी।* इस सघ म *आस्ट्रिया के लिए कोई* स्थान नही था। इसलिए प्रशा का शासक जानता था कि आस्ट्रिया से युद्ध करना पड़ेगा और प्रशा युद्ध के लिए तयार नही था। इसके अलावा इस सघ का अध्यक्ष बनन से प्रशा के अस्तित्व के समाप्त होने की सम्भावना थी।

प्रशा का राजा नही चाहता था कि वह फ्रेंकफ्ट एसेम्बली की इच्छा से राजा बन। यह सविधान क्राति पर आधारित था और वह नही चाहता था कि वह क्राति का दास बन। प्रशा का शासक विशुद्ध जमन राज्यो का एकीकरण करना चाहता था। इस प्रकार फ्रेंकफट ससद के काय असफल रहे। इसस पश्चात प्रशा के सम्राट ने कुछ सुधार किय।

इस समय सेक्सोनी, वूटम्बग हेनोवर और ववेरिया के राज्य एक सघ का निर्माण करना चाहते थे, परन्तु आस्ट्रिया के विरोध के कारण उन्हे सफलता नहीं मिली। 1850 ई० म प्रशा ने आस्ट्रिया के भय से घबराकर सुधार वापस ले लिए और पुन प्रतिक्रियावादी शासन लागू कर दिया। इन घटनाओ से निम्न दो बातें स्पष्ट हो गई —

(i) आस्ट्रिया के प्रभाव को समाप्त किय बिना जमनी का एकीकरण नही हो सकेगा।

(ii) जमनी का एकीकरण प्रशा क नेतृत्व मे होगा।

जमनी का एकीकरण (1862 1871) —विलियम प्रथम (1861–1888)—1861 ई० म फ्रेडरिक विलियम चतुथ की मृत्यु के पश्चात विलियम प्रथम प्रशा का सम्राट बना। वह प्रशा के नेतृत्व मे जमनी का एकीकरण करना चाहता था। विलियम प्रथम योग्य स्थिर बुद्धि और महत्वाकाक्षी व्यक्ति था। हेजन ने लिखा है कि विलियम प्रथम मे सम्भव एव असम्भव के निणय एव मानव चरित्र के अन्त स्थल तक पहुचने की अदभुत क्षमता थी। विलियम प्रथम यह जानता था

कि एकीकरण के लिए आस्ट्रिया के साथ युद्ध होगा। इसलिये वह कहा करता था कि प्रशा का भविष्य सैनिक शक्ति पर निर्भर करता है। उसने सैनिक शक्ति में वृद्धि करने का निश्चय किया और प्रशा के सैनिकों की संख्या युद्ध काल में 4½ लाख और शान्ति काल में 2 लाख निश्चित कर दी परन्तु संसद ने सैनिक वृद्धि के लिए खर्चा स्वीकार नहीं किया। जर्मनी में उदारवादी लोग जनमत के आधार पर एकीकरण करने के समर्थक थे। वे तलवार से जर्मनी का एकीकरण नहीं करना चाहते थे।

इस पर विलियम प्रथम ने संसद को भंग कर दिया और नये चुनाव करवाये। नया चुनाव सैनिक वृद्धि के लिये खर्चा देने के प्रश्न को लेकर लड़ा गया था। नये चुनाव में उदारवादियों को बहुमत प्राप्त हो गया। अब सम्राट को यह भय लगने लगा कि कहीं संसद सेना का खर्च बन्द न कर दे अथवा सेना को कम करने का प्रस्ताव नहीं रख दे। इस संकट से बचने के लिये युद्ध मंत्री काउण्ट वान रून ने विलियम प्रथम को यह सलाह दी कि बिस्मार्क को प्रधानमंत्री बना दिया जाय। अतः विलियम प्रथम ने 23 सितम्बर 1862 ई० को दिन बिस्मार्क को प्रशा का चांसलर (प्रधानमंत्री) नियुक्त किया। उस समय सम्राट और प्रतिनिधि सभा में सैनिक खर्च के प्रश्न को लेकर झगड़ा चल रहा था। बिस्मार्क ने सम्राट को यह आश्वासन दिया कि "श्रीमान के साथ नष्ट हो जाऊँगा पर संसद के साथ संघर्ष में आपका साथ नहीं छोड़ूँगा।"

बिस्मार्क – बिस्मार्क अपने समय का यूरोप का सर्वश्रेष्ठ राजनीतिज्ञ और कूटनीतिज्ञ था। उसका जन्म 1815 ई० में ब्रेंडनबर्ग के एक कुलीन परिवार में हुआ था। उसका पिता कुलीन परिवार का था और उसका शाही घराने से सम्बन्ध था। प्रशा में कुलीन को 'जंकर' के नाम से पुकारा जाता था। कुलीन लोग कई पीढ़ियों से सेना में काम कर रहे थे। ये लोग राजा के प्रति वफादार होते थे। बिस्मार्क भी एक पक्का जंकर था।

बिस्मार्क की अध्ययन के प्रति कोई विशेष रुचि नहीं थी। फिर भी उसने बर्लिन विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की। वह अपने विद्यार्थी जीवन में ही द्वन्द युद्ध, लड़ाई झगड़ा करने और बीयर पीने में प्रसिद्ध हो गया। वह सरकारी नौकरी से घृणा करता था। इसलिये कुछ समय नौकरी करने के पश्चात उसने छोड़ दी। इसके बाद उसने यूरोपियन देशों का यात्राएँ की। बिस्मार्क का पालन-पोषण प्रतिक्रियावादी वातावरण में हुआ था। विद्यार्थी जीवन में वह गणतन्त्र का समर्थक बन गया था। इसके पश्चात बर्लिन के प्रतिक्रियावादी दल के प्रमुख लोगों के सम्पर्क में आकर वह पुनः कट्टर प्रतिक्रियावादी बन गया और जीवन भर ऐसा ही बना रहा। 1847 ई० में वह राज्य सभा का सदस्य बना। परन्तु अगले दस वर्षों में उसने कोई महत्वपूर्ण काम नहीं किया। वह जीवन भर शान्ति विरोधी और कट्टर प्रतिक्रियावादी बना रहा।

बिस्मार्क निरंकुश राजसत्ता का प्रबल समर्थक था। वह संसदात्मक शासन व्यवस्था की आलोचना करता रहता था। बिस्मार्क संविधान को घृणा की दृष्टि से देखता था और इसे कागज का टुकड़ा मात्र मानता था। वह प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी का एकीकरण करना चाहता था। फिर भी 1848 ई० में उसने जर्मनी के एकीकरण के प्रयासों का विरोध किया। उसका यह मानना था कि जर्मनी का एकीकरण राजाओं द्वारा किया जाना चाहिए जनता द्वारा नहीं। बिस्मार्क क्रान्ति को अपराध मानता था। प्रशा की महानता ही उसका सबसे महान आदर्श था।

बिस्मार्क आस्ट्रिया का घोर विरोधी था। वह जानता था कि आस्ट्रिया का प्रभाव समाप्त होने के पश्चात ही जर्मनी में प्रशा की सर्वोच्चता स्थापित हो सकती है। बिस्मार्क 1851 ई० से 1858 ई० तक फ्रेंकफर्ट स्थित जर्मन संघ की संसद का प्रशा की ओर से सदस्य बना रहा। इस अवधि में उसने आस्ट्रिया को नीचा दिखाने का हर सम्भव प्रयास किया। राजा विलियम यह नहीं चाहता था कि आस्ट्रिया को नाराज किया जाय इसलिए उसने 1859 ई० में बिस्मार्क को संघीय संसद से वापस बुला लिया।

बिस्मार्क राजदूत के रूप में (1859–1862)—प्रशा के सम्राट विलियम प्रथम ने 1859 ई० में बिस्मार्क को रूस में राजदूत के रूप में नियुक्त किया। बिस्मार्क अपनी योग्यता के कारण रूस के शासक जार से व्यक्तिगत मैत्री स्थापित करने में सफल हुआ। जब रूस और तुर्की के बीच में क्रीमिया का युद्ध चल रहा था, तब प्रशा में रूस के विरुद्ध युद्ध घोषित करने की माँग की गई लेकिन बिस्मार्क के कारण प्रशा युद्ध में तटस्थ रहा। इससे जार अलेक्जेण्डर बिस्मार्क का घनिष्ट मित्र बन गया। विलियम प्रथम ने बिस्मार्क को 1861 ई० में पेरिस में राजदूत बना कर भेजा।

प्रधानमन्त्री के रूप में (1862–1890)—प्रशा के सम्राट विलियम प्रथम ने 1862 ई० में बिस्मार्क को पेरिस से बुलवाया और प्रशा के चांसलर के पद पर नियुक्त कर दिया। बिस्मार्क ने 1862–1890 ई० तक चांसलर के रूप में कार्य किया।

बिस्मार्क की रक्त और लोह नीति—बिस्मार्क चाहता था कि प्रशा की सैनिक शक्ति में वृद्धि की जाय और प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी का एकीकरण किया जाय। उसका मानना था कि भाषण तथा कागजी प्रस्तावों से आस्ट्रिया को जर्मनी से बाहर नहीं निकाला जा सकता अपितु रक्त और लोह की नीति से ही आस्ट्रिया को जर्मनी से भगाया जा सकता है। इसलिए बिस्मार्क ने कहा था कि जर्मनी की समस्याएँ भाषण और कागजी प्रस्तावों से नहीं अपितु 'रक्त और लोह' नीति से हल की जा सकती है। बिस्मार्क प्रशा के राजा को सम्पूर्ण जर्मनी का सम्राट बनाना चाहता था। उसने अपने प्रधानमन्त्री बनने से पहले इंगलैंड के प्रधानमन्त्री डिजरली

ने कहा था कि यदि मैं कभी प्रशा का प्रधानमन्त्री बना तो प्रशा की सैनिक शक्ति को मजबूत करूँगा और आस्ट्रिया को परास्त करके प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी का एकीकरण करूँगा।

बिस्मार्क ने चांसलर बनने के पश्चात सैनिक शक्ति में वृद्धि की। संसद के विरोध के बावजूद भी सैनिक खर्चे की पूर्ति के लिये टैक्स लेना शुरू कर दिया। उसने युद्धमंत्री रून और सेनापति वान मोल्टके की सहायता से एक शक्तिशाली सेना का गठन किया। इस प्रकार बिस्मार्क ने प्रशा की सेना को यूरोप की सर्वश्रेष्ठ सेना बना दिया। जब संसद ने उसकी सैनिक नीति का विरोध किया तो उसने अपने एक भाषण में कहा था कि "संसार की महत्वपूर्ण समस्याओं का निर्णय भाषणों और बहुमत के आधार पर नहीं बल्कि रक्त और लोह नीति (Blood and Iron Policy) से होता है।

बिस्मार्क की नीति से निम्न दो बातें स्पष्ट हुई —

(i) जर्मनी का एकीकरण प्रशा के नेतृत्व में किया जायेगा।

(ii) आस्ट्रिया को जर्मनी से बाहर निकालना।

बिस्मार्क यह जानता था कि आस्ट्रिया को पराजित करने के पश्चात् ही जर्मनी का एकीकरण पूर्ण हो सकता है। आस्ट्रिया जैसी महान शक्ति को पराजित करना बहुत कठिन काम था, क्योंकि एक तो आस्ट्रिया स्वयं शक्तिशाली देश था और दूसरा उसे यूरोपियन देशों का समर्थन प्राप्त था। इसलिये बिस्मार्क ने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये आस्ट्रिया को महान शक्तियों के सहयोग से वंचित किया तथा प्रशा के लिये महान शक्तियों का सहयोग प्राप्त करने का प्रयास किया।

बिस्मार्क द्वारा रूस से मित्रता—बिस्मार्क ने रूस के शासक को अपना मित्र बना लिया। पौलैंड पर रूस का अधिकार था। 1863 ई० में पौलैंड की जनता ने स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये रूस के शासक के विरुद्ध आंदोलन प्रारम्भ कर दिया। इंगलैंड, फ्रांस और आस्ट्रिया आदि देशों ने रूस पर पौलैंड में उदार संविधान लागू करने के लिये दबाव डाला, परन्तु रूस इसके लिये तैयार नहीं था। उसने शक्ति से आंदोलन को कुचलने का प्रयास किया। इस समय सम्पूर्ण यूरोप की सहानुभूति पोल लोगों के साथ थी। जिससे उत्साहित होकर पौलैंड की जनता ने आन्दोलन तेज कर दिया। इससे रूस के सामने एक विकट समस्या खड़ी हो गई। परन्तु इसी समय में बिस्मार्क ने रूस को सैनिक सहायता दी। जिसकी सहायता से रूस ने पोल लोगों के स्वतंत्रता आन्दोलन का दमन कर दिया। यद्यपि बिस्मार्क के इस कार्य की सम्पूर्ण यूरोप के द्वारा निंदा की गई परन्तु उसके इस कार्य से रूस प्रशा का घनिष्ट मित्र बन गया। जर्मनी के एकीकरण के लिये रूसी मैत्री बहुत लाभदायक सिद्ध हुई। इससे पूर्व रूस आस्ट्रिया का घनिष्ट मित्र था, लेकिन अब वह प्रशा का घनिष्ट मित्र बन चुका था।

बिस्मार्क द्वारा जर्मनी का एकीकरण—बिस्मार्क ने लोह और रक्त की नीति पर चलते हुए तीन युद्धों के द्वारा जर्मनी के एकीकरण का काय पूरा किया। प्रशा का पहला युद्ध डेनमार्क के साथ 1864 ई० में दूसरा युद्ध आस्ट्रिया के साथ 1866 ई० में और तीसरा युद्ध फ्रांस के साथ 1870 ई० में हुआ। इन तीनों महान युद्धों में बिस्मार्क को विजय मिली और उसने जर्मनी के एकीकरण का काय पूरा किया।

(1) **डेनमार्क से युद्ध (1864)**—श्लेस्विग और हालेस्टाइन की डचिया डेनमार्क और प्रशा के बीच युद्ध का कारण बनी। ये दोनों डचियां जर्मनी और डेनमार्क के बीच में स्थित थी। हालस्टाइन की लगभग सम्पूर्ण जनता जर्मन जाति की थी, जबकि श्लेस्विग की आधी जनता जर्मन जाति की थी और आधी डेन जाति की। इन दोनों डचियों पर कई शताब्दियों से डेनमार्क का अधिकार था। डेनमार्क का राजा इनका 'ड्यूक' कहलाता था। डेनमार्क की जनता यह चाहती थी कि इन दोनों डचियों को डेनमार्क में मिला दिया जाए, जबकि इन डचियों में अधिकांश जनता जर्मन जाति की थी। वे यह चाहती थी कि इन डचियों का विलय जर्मन संघीय राज्य में कर लिया जाये।

वियना सम्मेलन में डेनमार्क को इन दोनों डचियों का सरक्षक बना दिया गया था। होलेस्टाइन तो 1815 ई० से ही जर्मन परिसंघ का सदस्य बन चुका था। इन दोनों डचियों में राष्ट्रीयता की भावना का तीव्र गति से विकास हो रहा था इसलिये डेनमार्क से इनके संबंधों में कटुता आने लगी। 1848 ई० में इन डचियों की जनता ने जर्मनी में विलय के लिये प्रयास प्रारम्भ किया। डेनमार्क के राजा ने इन डचियों को अपने राज्य में मिलाने का प्रयास किया, लेकिन प्रशा तथा अन्य जर्मन राज्यों के विरोध के कारण डेनमार्क को सफलता नहीं मिल सकी।

1852 ई० में इन डचियों की समस्या को हल करने के लिये लंदन में एक सम्मेलन बुलाया गया। जिसमें यह निश्चित किया गया कि डेनमार्क इन डचियों को अपने राज्य में नहीं मिलायेगा। 1863 ई० में लंदन संधि का उल्लंघन करते हुए डेनमार्क के शासक ने एक नये संविधान की घोषणा कर श्लेस्विग को अपने राज्य में मिला दिया। फ्रेडरिक सप्तम की मृत्यु के पश्चात क्रिश्चियन नवम डेनमार्क का शासक बना। उसने भी अपने पूर्वज की नीति का ही पालन किया। जर्मनी ने श्लेस्विग को डेनमार्क में मिलाने का विरोध किया, तब बिस्मार्क ने आस्ट्रिया को भी अपने पक्ष में कर लिया।

बिस्मार्क ने आस्ट्रिया के साथ मिलकर डेनमार्क के शासक से यह मांग की कि वह नये संविधान को 48 घंटे के अन्दर वापस ले ले। इंगलण्ड के आश्वासन पर डेनमार्क ने संविधान को वापस नहीं लिया इसलिये आस्ट्रिया और प्रशा की सेनाओं ने संयुक्त रूप से 1864 ई० में डेनमार्क पर आक्रमण कर दिया। रूस का शासक बिस्मार्क का मित्र होने से युद्ध में तटस्थ रहा। इंगलण्ड केवल विरोध प्रदर्शित

करके रह गया। फ्रास मक्सिको की समस्या म उलझा हुआ था, इसलिये इस ओर ध्यान नही दे सका। परिणामस्वरूप आस्ट्रिया और प्रशा की सना न डेनमाक को युद्ध में बुरी तरह पराजित किया।

वियना की सधि-(30 अक्टूबर, 1864) —डेनमाक ने आस्ट्रिया और प्रशा के साथ विवश होकर वियना की सधि पर 30 अक्टूबर 1864 ई० को हस्ताक्षर कर दिये। इस सधि के अनुसार —

(i) डेनमाक न श्लेसविग और हालेस्टाइन दोना डचिया आस्ट्रिया और प्रशा को सौंप दी।
(ii) डेनमाक न इन डचिया मे मिला हुआ लाएन वग का प्रदेश भी आस्ट्रिया और प्रशा का सोप दिया।
(iii) डेनमाक न यह स्वीकार कर लिया कि इन डचियो पर आस्ट्रिया और प्रशा जा भी निणय लेंगे वह उस स्वीकार होगा।

गस्टाइन का समझौता (14 अगस्त 1865)—वियना सधि क पश्चात डचियो क प्रश्न को लेकर आस्ट्रिया और प्रशा क बीच मतभद पदा हो गया। इस मतभेद को सुलझाने क लिय दोनो क बीच 14 अगस्त 1865 इ० को गेस्टाइन का समझौता हुआ। इस समझौत के अनुसार आस्ट्रिया और प्रशा न विजीत प्रदेशो को निम्न प्रकार बाट लिया—

(i) प्रशा ने लाएनबग का प्रदेश आस्ट्रिया स कीमत दकर खरीद लिया।
(ii) श्लेसविग पर प्रशा का अधिकार मान लिया गया।
(iii) हालेस्टाइन पर प्रशा न आस्ट्रिया का अधिकार मान लिया।

इस विभाजन से प्रशा को अधिक लाभ मिला। श्लेसविग और लाएनबग पर प्रशा का अधिकार हो जान स उसका कील बन्दरगाह पर नियन्त्रण स्थापित हो गया। इसस प्रशा की सनिक शक्ति म वद्धि हुई। इस समझौने से आस्ट्रिया की प्रतिष्ठा को धक्का पहुचा।

लाज तथा हान ने लिखा है कि "गेस्टाइन का समझौता बिस्माक की एक महान कूटनीतिक विजय थी। यह समझौता ओलमुत्स म प्रशा का जो अपमान हुआ था उसका प्रतिशोध था। ग्राट एव टेम्परल न लिखा है कि 'इस युद्ध से प्रशा राज्य का विस्तार हुआ। बिस्माक को फ्रास तथा इगलण्ड की दुबलता का ज्ञान हो गया तथा फ्रास न इगलैण्ड को तथा इन दोनो ने यूरोप को असफल बना दिया।'

2—आस्ट्रिया से युद्ध (1866)

सडोवा का युद्ध—गेस्टाइन की सधि ने आस्ट्रिया प्रशा सघष का अनिवाय कर दिया। इस सघष क मुख्य दो कारण थे —

(i) आस्ट्रिया ने प्रशा के बढते हुए प्रभाव को रोकने के लिये इचिया का शासन आगस्टन बुग के सम्राट के हाथा म द दिया । बिस्माक ने आस्ट्रिया की इस कायवाही का विरोध किया । आस्ट्रिया जमनी को कमजोर और विभाजित रखना चाहता था । वह एकीकरण का कट्टर विरोधी था, जबकि प्रशा जमनी का एकीकरण करना चाहता था ।

(ii) सघप का दूसरा कारण यह था कि बिस्माक न जमन राज्य सघ के सविधान को भग कर दिया था और नये सविधान को लागू करन की माग की । इस नये सविधान मे बिस्माक आस्ट्रिया को कोई स्थान नही दना चाहता था । इससे आस्ट्रिया को दु ख हुआ । इससे आगे चलकर सघप का माग प्रशस्त हुआ ।

आस्ट्रिया को मित्रहीन बनाना—बिस्माक यह जानता था कि आस्ट्रिया को पराजित किय बिना जमनी का एकीकरण नही हो सकता । आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध घोषित करने से पूव बिस्माक न प्रशा के लिये यूरोप की महा शक्तियो का सहयोग प्राप्त किया तथा आस्टिया को महा शक्तियो के सहयोग से वचित करन के लिय कई काय किये, ताकि जब प्रशा और आस्ट्रिया के बीच म युद्ध हो तो कोइ भी यूरोपियन राष्ट्र उसकी सहायता नही करें । दूसरे अ त मे बिस्माक न अ य दशो की तटस्थता प्राप्त करने का निश्चय किया । आस्ट्रिया का महान शक्तियो क सहायता स वचित करन के लिये बिस्माक न निम्न काय किये —

(1) **रूस**—क्रीमिया के युद्ध म आस्ट्रिया तटस्थ रहा । जिसके कारण रूस उसका शत्रु बन गया था । जबकि 1863 ई० म पोलण्ड क विद्राह को कुचलन म बिस्माक ने रूस को सनिक सहायता दी । परिणामस्वरूप बिस्माक न रूस के शासक की सहानुभूति प्राप्त कर ली । इस प्रकार बिस्माक न अपन काय मे रूस के शासक अलेक्जेण्डर द्वितीय को अपना मित्र बना लिया ।

(2) **फ्रास**—1865 इ० म बिस्माक ने फ्रास का सहयोग प्राप्त करने के लिये फ्रास के शासक नपोलियन तृतीय स बियारिटस नामक स्थान पर भट की । यहा पर दोना के बीच मे समझौता हो गया । नपोलियन न यह आश्वासन दिया कि आस्ट्रिया और प्रशा के बीच युद्ध होन पर फ्रास तटस्थ रहेगा और उत्तरी जमनी क राज्यो के एकीकरण का विरोध नही करेगा । नपोलियन न यह आश्वासन इसलिये दिया था क्योकि —

(i) बिस्माक ने नेपोलियन ततीय से यह वायदा किया था कि युद्ध म तटस्थ रहन पर वह फ्रास को राइन का प्रदेश दगा ।

(ii) नेपोलियन ततीय 1815 इ० की वियना काग्रेस की यवस्था को समाप्त करना चाहता था ।

(iii) नेपोलियन इस समय मक्सिको की समस्या में उलझा हुआ था। उसे इतना समय नहीं था कि वह इस युद्ध की ओर अपना ध्यान दे सके।

(iv) नेपोलियन प्रशा की वास्तविक स्थिति से अनभिज्ञ था। उसे यह विश्वास था कि युद्ध में आस्ट्रिया ही विजय प्राप्त करेगा। इसलिये उसने असली सौदा आस्ट्रिया के साथ तय किया था।

(v) नेपोलियन का यह मानना था कि दोनों के बीच संघर्ष लम्बे समय तक चलेगा। दोनो ही युद्ध से जब कमजोर हो जायगे, तब वह जर्मनी की राजनीति में हस्तक्षेप कर फ्रांस के प्रभाव में वृद्धि कर लेगा।

(3) इटली—बिस्मार्क ने 8 अप्रैल 1866 ई० में इटली के साथ एक समझौता किया। जिसके अनुसार यह निश्चित किया गया कि जब आस्ट्रिया और प्रशा के बीच युद्ध होगा तो इटली आस्ट्रिया पर आक्रमण कर देगा। इसके बदले में आस्ट्रिया के पराजित होने पर बिस्मार्क इटली को आस्ट्रिया से वेनेशिया का प्रदेश दिलवा देगा।

(4) इंगलैण्ड—इंगलैण्ड इस समय अपनी ही समस्याओं में उलझा हुआ था। इसलिये उसकी तरफ से कोई विशेष चिन्ता नहीं थी।

इस प्रकार बिस्मार्क ने इंगलैण्ड फ्रांस, रूस और इटली से मित्रता स्थापित कर ली। अब आस्ट्रिया मित्र विहीन था। इस अवसर का लाभ उठाकर बिस्मार्क ने आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

सेडोवा का युद्ध (1866)—11 जून 1866 ई० को आस्ट्रिया ने जर्मन संसद से प्रशा के विरुद्ध कार्यवाही करने का अनुरोध किया। संसद ने आस्ट्रिया के प्रस्ताव पर अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी। बिस्मार्क ने संघ को समाप्त कर आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया। इस प्रकार युद्ध प्रारम्भ हो गया।

इस युद्ध में एक ओर प्रशा व दूसरी ओर आस्ट्रिया था। प्रशा का जर्मनी छोटे छोटे राज्यों और इटली ने साथ दिया। जबकि आस्ट्रिया का जर्मनी के बवेरिया वुर्टम्बर्ग, सेक्सनी, हनोवर नास, बेडेन और हेसकासेल आदि राज्यों ने साथ दिया। युद्ध के प्रारम्भ होने के तीन दिन की अवधि में प्रशा ने इन सभी राज्यों पर अधिकार कर लिया। यह युद्ध 16 जून 1866 ई० में प्रारम्भ हुआ और अगस्त 1866 ई० में समाप्त हुआ। इस युद्ध को सात सप्ताह का युद्ध भी कहा जाता है। यह एक प्रकार से गृहयुद्ध था। जुलाई 1866 ई० में आस्ट्रिया ने इटली को बुरी तरह से युद्ध में पराजित किया लेकिन सेडोवा के युद्ध में प्रशा ने आस्ट्रिया को निर्णायक रूप से पराजित कर दिया।

पराजित आस्ट्रिया की स्थिति बहुत दयनीय हो चुकी थी। प्रशा का राजा विलियम प्रथम यह चाहता था कि आस्ट्रिया की राजधानी वियना पर आक्रमण कर

लिया जाये परन्तु बिस्माक ने इसे स्वीकार नही किया क्योंकि वह युद्ध बन्द करने के पक्ष म था।

बिस्माक द्वारा युद्ध बन्द करने के कारण—बिस्माक द्वारा आस्ट्रिया के साथ युद्ध बन्द करन के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे —

1 बिस्माक यह जानता था कि कही ऐसा न हो कि फ्रास का सम्राट नेपोलियन तृतीय सार्डीनिया पीडमाण्ट क शासक के साथ समझौता कर ले और इसके पश्चात राइन नदी की सीमा पर आक्रमण कर दे।

2 बिस्माक जानता था कि यदि प्रशा ने वियना पर आक्रमण किया तो यूरोपियन देशो की सहानुभूति आस्ट्रिया के साथ हो जायेगी और वे उसकी सहायता के लिये हस्तक्षेप करेंगे। इससे जमनी के एकीकरण का माग अवरुद्ध होन की सभावना थी।

3 इस समय प्रशा की सेना के पास तोपखान का बारूद समाप्त हो चुका था एव सनिको मे बीमारी फल रही थी। इसलिय युद्ध बन्द करने क सिवाय बिस्माक के सामने अन्य कोई विकल्प नही था।

4 बिस्माक आस्ट्रिया के सहयोग से फ्रास को पराजित करना चाहता था। इसलिये उसने आस्ट्रिया का कम से कम रक्त बहाया। इतना ही नही युद्ध समाप्ति के पश्चात बिस्माक ने सधि मे उदार शर्ते रखकर उसका समथन प्राप्त कर लिया। बिस्माक ने उस समय कहा था कि हमको पुन आस्ट्रिया की मित्रता प्राप्त कर लेनी चाहिये।

प्राग की सधि (23 अगस्त 1866 ई०)—23 अगस्त 1866 ई० को बिस्माक ने आस्ट्रिया से प्राग की सधि कर ली। बिस्माक न कूटनीति का परिचय देते हुए सधि की उदार शर्ते रखी। इस प्रकार वह आस्ट्रिया को अपना मित्र बनाने म सफल हुआ। प्राग की सधि की प्रमुख शर्ते निम्नलिखित थी —

(1) श्लेसविग और होल्सटाइन की डचिया प्रशा को द दी गई।

(2) आस्ट्रिया ने वेनेशिया का प्रदेश इटली को देना स्वीकार कर लिया।

(3) आस्ट्रिया को युद्ध क्षतिपूर्ति क रूप म 30 लाख पौंड प्रशा को देने पडे।

(4) 1815 ई० मे वियना काग्रेस के द्वारा निर्मित जमन परिसघ की समाप्ति कर दी गई। आस्ट्रिया ने यह आश्वासन दिया कि अब वह जमनी के मामलो मे हस्तक्षेप नही करेगा।

(5) प्रशा के नतृत्व म उत्तरी जमन सघ का निर्माण किया गया। इस सघ म आस्ट्रिया के लिये कोई स्थान नही था। इसमे हेनोवर हेस्से कसल, श्लेसविग होल्सटाइन आदि उत्तरी जमनी के राज्य सम्मिलित किये गय थे। इसक अतिरिक्त उत्तरी जमनी क 16 राज्य इसके सदस्य थे। 21 राज्यो के उत्तर जमन राज्य सघ

का अध्यक्ष प्रशा के सम्राट को बनाया गया। इस राज्य सघ के निमाण से उत्तरी जमनी का एकीकरण पूरा हो गया। अभी दक्षिण जमनी के बेडेन, ववरिया, हेस्से तथा व्यूटमवग आदि राज्य स्वतन्त्र थे। इन राज्यो के विलय के पश्चात ही सम्पूण जमनी का एकीकरण हो सकता था। दक्षिणी जमनी के इन राज्यो पर फ्रास का अत्यधिक प्रभाव था। इसलिये इन राज्यो के विलय के लिये फ्रास स युद्ध होना अनिवाय था।

आस्ट्रिया व प्रशा युद्ध के परिणाम—आस्ट्रिया और प्रशा का युद्ध यूरोपीय इतिहास की एक महत्वपूण घटना थी। इस युद्ध के प्रमुख परिणाम निम्नलिखित हुए —

1 प्राग की सधि स प्रशा को नवीन प्रदेश मिले। जिससे उसके राज्य का विस्तार हुआ। अब प्रशा क राज्य की सीमायें राइन नदी से बाल्टिक सागर तक पहुच गई। नवीन प्रदेशा के सम्मिलित हो जाने मे प्रशा की जनसख्या मे 50 लाख और क्षेत्रफल में 2500 वगमील की वद्धि हुई।

2 आस्ट्रिया का जमन राज्यो से प्रभाव समाप्त हो जाने के पश्चात् प्रशा शक्तिशाली देश हो गया और वह अपने नेतृत्व मे जमनी का एकीकरण करने मे सफल हो सका।

3 प्रशा का कील बन्दरगाह पर अधिकार हो जाने म जल सेना तथा व्यापार के क्षेत्र म भी विकास हुआ।

4 इस युद्ध ने जमनी के एकीकरण की नीव रखी। इसमे विजय प्राप्ति के पश्चात् उत्तरी जमन राज्यो का एक सघ बनाया गया, जिसका अध्यक्ष प्रशा के सम्राट को बनाया गया।

5 इस युद्ध मे प्रशा की विजय होने के कारण बिस्माक न बाहरी शत्रुओ को पराजित करने के साथ-साथ आन्तरिक शत्रुओ को भी समाप्त कर दिया। इस युद्ध से पूव जमनी म उदारवादी स्वशासन की माग कर रहे थे, लेकिन युद्ध मे बिस्माक की सफलता के कारण इन उदारवादियो का प्रभाव समाप्त हो गया। अब उन्होंने जमनी के एकीकरण का समथन करना प्रारम्भ कर दिया। इन उदारवादियो न राष्ट्रीय उदारवादी दल की स्थापना की। यह दल बिस्माक के कार्यों का समथन करता रहा।

6 इस युद्ध मे विजय प्राप्त करने के पश्चात प्रशा मध्य यूरोप का एक शक्तिशाली देश बन गया।

7 इस युद्ध ने इटली के एकीकरण म महत्वपूण सहायता दी। सार्डीनिया का राज्य अभी तक आस्ट्रिया से वेनेशिया का प्रदेश प्राप्त नही कर सका था। इस युद्ध म विजय प्राप्त करने के पश्चात बिस्माक ने आस्ट्रिया से वेनेशिया का प्रदेश इटली को दिलवा दिया। इसस इटली के एकीकरण का दूसरा चरण पूरा हुआ।

8 इस युद्ध का आस्ट्रिया पर घातक प्रभाव पडा। इसके परिणाम स्वरूप—

(i) आस्ट्रिया का प्रभाव जमनी के राज्यो म समाप्त हो गया।

(ii) आस्ट्रिया का साम्राज्य कम हो गया। इसके पश्चात 1867 ई० म उस हगरी को भी स्वतन्त्र राष्ट्र स्वीकार करना पडा।

(iii) इस युद्ध के पश्चात आस्ट्रिया न प्रतिक्रियावादी नीति को छोडकर उदार वादी नीति का पालन करना शुरू कर दिया। अब आस्ट्रिया क सम्राट फ्रासिस जोजेफ ने आस्ट्रिया मे बसने वाली विभिन्न जातियो की माग के अनुसार शासन म सुधार करना प्रारम्भ किया।

(iv) आस्ट्रिया की यूरोप म अब वह प्रतिष्ठा नही रही जो कि इस युद्ध के पूव थी।

(v) आस्ट्रिया का प्रभाव इटली क राज्यो म भी समाप्त हो गया।

(vi) आस्ट्रिया अब यूरोप का एक शक्तिशाली देश नही रहा।

(9) फ्रास—इस युद्ध का फ्रास पर बहुत अधिक प्रभाव पडा। फ्रास के सम्राट नेपोलियन ततीय को युद्ध के पश्चात अपनी भूल का ज्ञान हुआ। इस युद्ध म जमनी की विजय से फ्रास की सीमा पर जमनी एक शक्तिशाली देश हो गया जो फ्रास के लिये सिर दद बन गया। इस विजय ने नेपोलियन की आशाओ को धूल मे मिला दिया। उसका यह मानना था कि युद्ध लम्बा चलेगा तथा उसे मध्यस्थता करने का अवसर प्राप्त होगा। इसके अतिरिक्त बिस्माक ने उसे राईन का प्रदेश देने का वायदा किया था पर तु नेपोलियन को न तो मध्यस्थता करने का अवसर मिला और न ही विजय के बाद उसे राईन का प्रदेश मिला। उसकी विदेश नीति की असफलता से जनता म उसके प्रति असतोष बढने लगा। इस असतोष को दूर करन क लिये नपोलियन ने 1870 ई० म जमनी स युद्ध लडा और इस युद्ध मे अपने ही विनाश को आमन्त्रित किया।

(3) फ्रास प्रशा युद्ध [सडान का युद्ध] (1870–71)—सेडोवा क युद्ध में आस्ट्रिया की नही बल्कि फ्रास की पराजय हुई थी। नेपोलियन ततीय ने यह सोचा था कि जब आस्ट्रिया और प्रशा युद्ध करते-करते कमजोर हो जायेंगे तब वह मध्यस्थ का काय करेगा पर तु बिस्माक न उसे मध्यस्थता करने का मौका ही नही दिया। आस्ट्रिया को पराजित करने के पश्चात प्राग सम्मेलन म बिस्माक न नेपोलियन को न बुलाकर उसकी प्रतिष्ठा को आघात पहुचाया। इसके अतिरिक्त बिस्माक ने आस्ट्रिया के साथ सधि की उदार शर्तें रख कर उसे अपना मित्र बना दिया। इससे नपोलियन की आशाओ पर पानी फिर गया। प्रशा के नेतत्व मे जमनी के एकीकरण स नेपोलियन भयभीत हो गया। क्योकि उसकी सीमा पर एक शक्तिशाली राष्ट्र का उत्कष हो रहा था जिसे वह बर्दाश्त नही कर सकता था।

नेपोलियन और फ्रासीसी जनता न सेडोवा की पराजय को अपनी पराजय

सघर्ष म तटस्थ रहकर एक भयकर भूल की है। फ्रास की जनता यह माग करने लगी कि "सडोवा की पराजय का बदला लिया जाय" इससे फ्रांस और प्रशा के सम्बन्ध निरन्तर कटु होते गये। जिसके परिणामस्वरूप 1870 ई० मे फ्रास और प्रशा के बीच भयकर सघर्ष हुआ।

युद्ध के कारण—इस युद्ध के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे —

(1) फ्रास जर्मनी के एकीकरण का विरोधी था। आस्ट्रिया को पराजित करने के पश्चात प्रशा की गिनती यूरोप के शक्तिशाली देशो म की जाने लगी। इस युद्ध म प्रशा की विजय स फ्रास की सीमा पर एक शक्तिशाली राज्य का निर्माण हो गया था, जिसे फ्रास कभी बर्दाश्त नही कर सकता था। इस प्रकार फ्रास प्रशा की बढती हुई शक्ति से भयभीत था।

(2) विस्मार्क ने नैपोलियन को यह आश्वासन दिया था कि यदि वह आस्ट्रिया प्रशा-सघर्ष म तटस्थ रहेगा तो उसे प्रशा राईन का प्रदेश देगा परन्तु युद्ध म विजय प्राप्त करने के पश्चात् विस्मार्क न उसे राईन का प्रदेश नहीं दिया।

(3) नैपोलियन तृतीय हॉलैण्ड से लक्सम बर्ग का प्रदेश खरीदना चाहता था परन्तु बिस्मार्क ने उसकी योजना को असफल कर दिया। इससे दोनो देशो के बीच तनाव बढा।

(4) नेपोलियन तृतीय ने अमेरिका में मेक्सिको की समस्या में हस्तक्षेप किया। इसका कारण यह था कि अमेरिका इस समय गृह युद्ध म उलझा हुआ था। इसलिये नेपोलियन तृतीय को यह आशा थी कि वह इस समस्या की ओर ध्यान नही दे सकेगा। इसके अतिरिक्त जर्मनी की बढती हुई शक्ति को देख कर अपने खोये हुये सम्मान को पुन प्राप्त करने के लिये राज्य विस्तार के उद्देश्य से उसने मेक्सिको की समस्या म हस्तक्षेप किया। नेपोलियन तृतीय ने मैक्सिको में प्रजातन्त्र को समाप्त कर मैक्समिलियन को वहा का राष्ट्रपति बना दिया। इस समय मैक्समिलियन की हत्या हो जाने से फ्रास को काफी धक्का लगा। इसलिये नेपोलियन तृतीय के सामने अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को पुन प्राप्त करने के लिये प्रशा के साथ युद्ध करने के अलावा अन्य कोई विकल्प नहीं था।

(5) उस समय की अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति बिस्माक के अनुकूल थी। फ्रास न पोलैण्ड के क्रान्तिकारियो का समर्थन किया था। इसलिये रूस फ्रास से नाराज था। क्रीमिया के युद्ध में भी फ्रास ने रूस के विरुद्ध टर्की का साथ दिया था। इसलिए रूस फ्रास का शत्रु बन चुका था। बिस्मार्क ने पोलैण्ड के विद्रोह का दमन करने के लिये रूस को सैनिक सहायता दी। इससे रूस प्रशा का घनिष्ठ मित्र बन चुका था। इटली ने आस्ट्रिया प्रशा सघर्ष म प्रशा का साथ दिया। इससे फ्रास अकेला हो गया। इस समय फ्रास मित्र विहीन था और बिस्माक का रूस, आस्ट्रिया, इगलैण्ड

और इटली (बिस्मार्क ने इटली को वनशिया का प्रदेश दिलवाया था) आदि देशों की मित्रता प्राप्त थी। इसलिये बिस्मार्क ने फ्रांस पर आक्रमण करने का यह उपयुक्त अवसर समझा।

(6) *आस्ट्रिया प्रशा संघर्ष से पूर्व फ्रांस आस्ट्रिया का मित्र था। लेकिन* 1866 ई० में आस्ट्रिया प्रशा संघर्ष में नेपोलियन तटस्थ रहा। जिसके कारण आस्ट्रिया की युद्ध में पराजय हुई। इसलिए आस्ट्रिया फ्रांस का शत्रु हो गया जबकि दूसरी तरफ बिस्मार्क ने आस्ट्रिया के साथ संधि में उदार शर्तें रखकर उसे अपना मित्र बना लिया। सेडोवा के युद्ध के बाद नेपोलियन तृतीय फ्रांस की जनता में अप्रिय होता जा रहा था। सेडोवा के युद्ध पर थीयर्स ने व्यवस्थापिक सभा में यह कहा था कि सेडोवा के युद्ध में आस्ट्रिया की नहीं वरन फ्रांस की पराजय हुई।"[1]

यदि आस्ट्रिया सेडोवा के युद्ध में पराजित नहीं होता तो प्रशा फ्रांस को भी पराजित नहीं कर पाता। फ्रांस की जनता सेडोवा की पराजय का बदला लेना चाहती थी। नेपोलियन भी अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करना चाहता था। इसके लिये प्रशा से युद्ध करना अनिवार्य था। कटलबी ने लिखा है कि नेपोलियन ने इस युद्ध को देश की हानि और आत्मा प्रतिष्ठा की क्षतिपूर्ति का अन्तिम साधन बनाया।'

(7) दक्षिणी जर्मनी के चार राज्य बवेरिया बेडेन व्यूटम्बर्ग और हेस्स जर्मन राज्य संघ की उपेक्षा कर रहे थे। दक्षिणी जर्मनी के इन राज्यों पर फ्रांस का बहुत अधिक प्रभाव था। बिस्मार्क इन राज्यों को अपने संघ में मिलाकर जर्मनी का एकीकरण पूर्ण करना चाहता था, परन्तु फ्रांस इसका विरोध कर रहा था। इसलिये युद्ध के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं था।

(8) तत्कालीन कारण (स्पेन का विद्रोह) —स्पेन के विद्रोह ने फ्रांस और प्रशा के बीच युद्ध अनिवार्य कर दिया। स्पेन की क्रांति से फ्रांस और प्रशा के सम्बन्ध इतने कटु हो चुके थे कि युद्ध के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं बचा था। 1868 ई० में स्पेन की जनता ने वहां की निरंकुश शासिका रानी ईसाबेला द्वितीय के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। इस पर रानी स्पेन छोड़ कर भाग गई। इसके बाद स्पेन का शासक किसको बनाया जाय इस पर विवाद चलता रहा। अन्त में स्पेन की क्रान्तिकारी जनता ने दक्षिणी जर्मनी के राजकुमार लियोपोल्ड को स्पेन का शासक बना दिया। लियोपोल्ड प्रशा के राजवंश होहेन जोलन वंश से सम्बन्धित था। प्रशा और स्पेन के इस मिलन का नेपोलियन तृतीय ने विरोध किया।

नेपोलियन ने प्रशा के शासक से यह मांग की कि लियोपोल्ड को स्पेन का शासक नहीं बनाया जाय। जिसे उसने स्वीकार कर लिया। नेपोलियन तृतीय की यह प्रथम कूटनीतिक विजय थी परन्तु वह इससे सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसने पुनः प्रशा के शासक को लिखा कि वह इस बात का वायदा करे कि भविष्य में प्रशा के

---

[1] ... ce, who was defeated at Sadowa — Theirs

राजवश के किसी भी व्यक्ति को स्पन का शासक नहीं बनाया जायगा। विलियम प्रथम ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। इस पर फ्रास के राजदूत न प्रशा के सम्राट म "एम्स" नामक स्थान पर भेंट की और इस विषय म चर्चा की।

विलियम प्रथम ने एम्स म बिस्मार्क को एक तार भेजा जिसम उसने फ्रासीसी राजदूत की वार्ता का ब्यौरा दिया। बिस्मार्क उस तार को पढ़कर क्रुद्ध हो उठा। उसन इस अवसर का लाभ उठान का निश्चय किया। बिस्मार्क न तार का कोई शब्द न बदलन हुय सक्षिप्त करके समाचार पत्रो म प्रकाशित करवा दिया। तार के इस सक्षिप्त रूप को पढने स एसा प्रतीत हो रहा था कि मानो फ्रास के राजदूत न प्रशा के सम्राट का घोर अपमान किया हो। दूसरी तरफ फ्रास की जनता को ऐसा आभास हो रहा था कि प्रशा के सम्राट न फ्रास के राजदूत का घोर अपमान किया हो। बिस्मार्क की इस चाल स दोनो देशो की जनता भडक उठी और युद्ध की माग करन लगी। फ्रासीसी जनता को सडोवा की पराजय का बदला लेना चाहती थी। इसलिय नपोलियन तृतीय न 15 जुलाई 1870 को प्रशा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

युद्ध की घटनाऐ —युद्ध की घोषणा होते ही दक्षिणी जमनी के चारो राज्यों ने प्रशा का साथ देने का निश्चय किया। इसस प्रशा की सनिक शक्ति मे वृद्धि हुई। दूसरी ओर फ्रास अकेला था। उसका साथ न तो दक्षिणी जमनी के राज्यो ने और न यूरोप के किसी देश न दिया। आस्ट्रिया फ्रास–प्रशा युद्ध म इस लिय तटस्थ रहा क्योकि आस्ट्रिया–प्रशा युद्ध म फ्रास तटस्थ रहा था। दूसरा कारण यह था कि बिस्मार्क न सधि की उदार शर्तें रख कर आस्ट्रिया को अपना मित्र बना लिया।

फ्रास बिना किसी तयारी के युद्ध म कूद पडा था। इसलिए प्रशा की सनाओ न फ्रास को कई बार पराजित किया। बिस्मार्क न 2 सितम्बर 1870 ई० को सेडान के युद्ध म फ्रासीसी सना को निर्णायक रूप स पराजित किया। इस समय नपोलियन को 80 000 सनिको के साथ आत्म समपण करना पडा। बिस्मार्क न नपोलियन को बन्दी बना लिया। जैसे ही फ्रास की पराजय की सूचना पेरिस म पहुची, वहा क्रान्ति हो गई। इस क्रान्ति के फलस्वरूप द्वितीय साम्राज्य का अन्त हुआ और फ्रास म गेम्बेटा के नेतृत्व म तृतीय गणतन्त्र की स्थापना की गई। गेम्बेटा न युद्ध जारी रखा। अन्त म बिस्मार्क की सनाओ के सामन पेरिस को भी पराजय स्वीकार करनी पडी। एक इतिहासकार न फ्रास–प्रशा युद्ध के बार म लिखा है कि— यदि यूरोप के इतिहास म कोई युद्ध नियत कहा जा सकता है तो वह युद्ध फ्रास व प्रशा के मध्य हुआ, जो 1870 ई० म लड़ा गया था।

18 जनवरी, 1871 म बिस्मार्क ने वर्साय के शीश महल म जमन साम्राज्य के सविधान की घोषणा की। प्रशा के सम्राट विलियम प्रथम को जमन साम्राज्य

का सम्राट बनाया गया। दक्षिणी जमनी के राज्यों के उत्तर जमन संघ में सम्मिलित हो जाने से जमनी के एकीकरण का काय पूरा हो गया। नवीन जमन साम्राज्य की राजधानी बर्लिन बनाई गई। बिस्मार्क को नये साम्राज्य का प्रथम चासलर बनाया गया। इस प्रकार बिस्मार्क ने जमनी का एकीकरण का काय पूरा कर दिया।

फ्रैंकफर्ट की संधि (1871 ई०) — युद्ध की समाप्ति के पश्चात फ्रांस और जमनी के बीच 10 मई 1871 को फ्रैंकफर्ट की संधि का मुख्य शर्तें निम्न लिखित थी —

(1) फ्रांस को अल्सास और लोरेन के प्रदेश एवं स्ट्रासबर्ग के सामरिक महत्व के किले प्रशा को देने पड़े।

(2) फ्रांस ने युद्ध क्षति पूर्ति के रूप में 20 करोड़ पौण्ड तीन वर्ष की अवधि में प्रशा को देना स्वीकार कर लिया।

(3) क्षति पूर्ति की रकम वसूल होने तक जमनी अपना सेना उत्तरी फ्रांस मे बनाये रखेगा जिसका खच फ्रांस को उठाना पड़ेगा।

फ्रांस-प्रशा युद्ध के परिणाम इस युद्ध के महत्वपूर्ण परिणाम निकले। इससे अन्तर्राष्ट्रीय जगत में फ्रांस की प्रतिष्ठा समाप्त हो गई। इतिहासकार हनशा ने इस युद्ध के महत्व के बारे में लिखा है कि—'संसार के इतिहास में बहुत कम ऐसी घटनाऐ हुई जिनके तत्कालीन परिणाम इतने महत्वपूर्ण हुए हो, जितने की सीडान की रंग भूमि में फ्रांस की पराजय से हुए।'[1]

इस युद्ध का फ्रांस, इटली, जमनी और रूस पर विशेष रूप से प्रभाव पड़ा।

1—जमनी पर प्रभाव —

(i) इस युद्ध में प्रशा की विजय होने से दक्षिणी जमन राज्यों को उत्तर जमन राज्य संघ में मिला दिया गया। जिसके कारण जमनी का एकीकरण पूरा हो गया।

(ii) अब जमनी एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में यूरोपीय रंग मंच पर प्रकट हुआ।

(iii) जमनी को अल्सास व लारेन के प्रदेश मिल जाने से उसकी शक्ति मे वृद्धि हुई और साम्राज्य का भी विस्तार हुआ क्योंकि ये दोनो प्रदेश लोहे व कोयले के प्रमुख केन्द्र थे।

(iv) फ्रांस को पराजित करने के पश्चात बिस्मार्क यूरोपीय राजनीति का केन्द्र बिन्दु बन गया। केटलबी ने लिखा है कि—'फ्रांस और प्रशा

1—हनशा— मैन करेंट आफ यूरोपियन हिस्ट्री, पृ० 236

के युद्ध ने जर्मनी को यूरोप की मालकिन और बिस्मार्क को जर्मनी का स्वामी बना दिया।

2—फ्रांस पर प्रभाव —

(i) इस युद्ध में फ्रांस के पराजित हो जाने से यूरोपीय राजनीति में उसकी प्रतिष्ठा कम हो गई।

(ii) फ्रांस को विवश होकर फ्रैंकफर्ट जैसी अपमानजनक संधि पर हस्ताक्षर करने पड़े।

(iii) फ्रांस को अपने लोहे और कोयले के प्रमुख केन्द्र अल्सास और लोरेन के प्रदेशों को प्रशा को देने पड़े।

(iv) नेपोलियन तृतीय का पतन हो गया।

(v) इस युद्ध में फ्रांस के पराजित होने से पेरिस में क्रान्ति हुई। जिसके फलस्वरूप गेम्बेटा के नेतृत्व में फ्रांस में तृतीय गणतन्त्र की स्थापना की गई।

3—प्रथम महायुद्ध का कारण —इस युद्ध के परिणामस्वरूप शक्ति सन्तुलन बिगड़ गया। जिसके कारण आगे चलकर प्रथम विश्व युद्ध प्रारम्भ हुआ। इस युद्ध के फलस्वरूप जर्मन और इटली दो शक्तिशाली राष्ट्र यूरोपीय रंगमंच पर प्रकट हुए। फ्रांस अपनी इस पराजय को कभी नहीं भूल सका और बदला लेने का अवसर ढूंढता रहा। फ्रांस को इस अवसर से वंचित रखने के लिए बिस्मार्क ने कूटनीतिक संधियों का ताना बुना। जिसके कारण यूरोप परस्पर विरोधी गुटों में विभाजित हो गया और फलतः प्रथम विश्व युद्ध का सूत्रपात हुआ। इस प्रकार फ्रांस-प्रशा युद्ध में प्रथम विश्व युद्ध के बीज निहित थे।

4—इटली पर प्रभाव —इस युद्ध से इटली का एकीकरण पूरा हो गया। जब फ्रांस और प्रशा में युद्ध प्रारम्भ हुआ तो नेपोलियन तृतीय ने रोम से फ्रांसीसी सेना बुला ली। फ्रांसीसी सेना के रोम छोड़ते ही विक्टर एमेनुअल द्वितीय ने रोम पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार इटली का एकीकरण पूरा हो गया। इटली ने रोम को अपनी राजधानी घोषित किया।

5—रूस पर प्रभाव —इस युद्ध का रूस पर भी बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। रूस ने फ्रांस और प्रशा के युद्ध का लाभ उठा कर काले सागर पर अधिकार कर लिया।

नेपोलियन ने अप्रत्यक्ष रूप से जर्मनी के एकीकरण का मार्ग प्रशस्त कर दिया था। उसे बिस्मार्क ने 1870 ई० में पूरा कर दिखाया। बिस्मार्क ने जर्मनी के एकीकरण का कार्य किया। इतना ही नहीं उसके प्रयासों से जर्मनी यूरोप का एक शक्तिशाली देश बन गया। बिस्मार्क अपने युग का एक महान कूटनीतिज्ञ और

अवसरवादी राजनीतिज्ञ था जिसने यह सिद्ध कर दिया कि "राष्ट्र का जन्म युद्ध भूमि म होता है।[1]

इटली और जमनी का एकीकरण एक ही समय में पूरा हुआ। इन दोना ही देशो म राष्ट्रीयता की भावना क विकास के कारण ही एकीकरण सम्भव हो सका था।

जमनी और इटली के एकीकरण मे असमानताऐ —यद्यपि जमनी और इटली का एकीकरण एक ही समय म पूरा हुआ परन्तु इसके आधारभूत सिद्धान्ता म अन्तर था। जमनी और इटली के एकीकरण मे प्रमुख असमानताऐ निम्नलिखित थी —

(1) बिस्माक ने जमनी का एकीकरण "रक्त और लौह नीति पर चलते हुए सनिक शक्ति के आधार पर किया जबकि इटली के एकीकरण के लिए अनेक देश भक्ता ने बलिदान दिय थे और जनतन्त्र प्रणाली पर इटली का एकीकरण किया गया था।

(2) जमनी का एकीकरण बिस्माक अकेले ने पूरा कर दिया जबकि इटली का एकीकरण मजिनी कावूर गरीबाल्डी और विक्टर एमेनुअल और अन्य कई देश भक्ता के बलिदान से पूरा हुआ।

(3) इटली मे जनमत सग्रह के द्वारा पीडमोण्ट - सार्डीनिया राज्य म विभिन्न राज्यो का विलय किया गया जबकि प्रशा म जमनी क विभिन्न राज्य बिना जनमत सग्रह के मिला दिये गय।

(4) इटली का एकीकरण विदेशी सहायता के कारण सभव हो सका। कावूर न फ्रास की सहायता से आस्ट्रिया को पराजित किया था और फिर प्रशा की सहायता से इटली आस्ट्रिया अधिकृत वनशिया का प्रदेश प्राप्त कर सका था परन्तु बिस्माक ने बिना किसी प्रकार की विदेशी सहायता क जमनी का एकीकरण पूरा कर दिखाया।

(5) एकीकरण के समय पीडमोण्ट – सार्डीनिया राज्य को इटली म विलय कर दिया गया परन्तु जमनी म एकीकरण क समय प्रशा जमनी म नही मिला वरन जमनी के अन्य प्रदेशा का प्रशा म विलय कर दिया गया।

1— Nations are seldom born except on the battle

—Bismarck

प्रस्तावित सन्दर्भ पाठ्य पुस्तकें —

1—प्लेट जोन और ड्रमड—विश्व का इतिहास

2—मैक्नल बार्न्स—वेस्टन सिवलीजेशन्स

3—सवाइन—ए हिस्ट्री आफ वर्ल्ड सिवलीजेशन

4—कटलबी ए हिस्ट्री आफ माडर्न टाइम्स

5—हेजन—आधुनिक यूरोप का इतिहास

6 ग्रान्ट एण्ड टेम्परले यूरोप का इतिहास—उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में।

9

साम्राज्यवाद

पन्द्रहवी शताब्दी की भौगोलिक खोजो के परिणामस्वरूप यूरोपियन देशो ने अमेरिका मे अपने अपने उपनिवेश स्थापित कर लिए थे तथा पूर्वी देशो से भी व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित कर लिये थे। इस समय यूरोपियन देशो का मुख्य उद्देश्य उपनिवेशो से व्यापारिक लाभ प्राप्त करना था। औद्योगिक क्रांति के पश्चात विशाल पैमाने पर उत्पादन होने लगा तथा कच्चे माल की आवश्यकता होने लगी तो ब्रिटेन और फ्रास आदि साम्राज्यवादी देश अपने उपनिवेशो का आर्थिक शोषण करने लगे। साम्राज्यवादी देशो के द्वारा उपनिवेशो के आर्थिक शोषण को ही आर्थिक साम्राज्यवाद के नाम से पुकारा जाता है।

अमेरिकन उपनिवेशो ने साम्राज्यवादी देशो की आर्थिक शोषण की नीति का विरोध किया। फलस्वरूप 19 वी शताब्दी तक उन्होंने साम्राज्यवादी देशो के आधिपत्य से स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली। 1870 ई० के पश्चात नवीन साम्राज्यवाद का उत्कर्ष हुआ। यूरोपियन देशो ने अपनी बढती हुई जनसख्या को बसाने के लिये उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशो मे उपनिवेश स्थापित करने की होड लग गई और कुछ ही समय मे इन देशो ने अफ्रीका को बाट लिया। इसके अतिरिक्त यूरोपियन देशो ने एशिया और प्रशान्त महासागर के अनेक द्वीपो में अपने उपनिवेश स्थापित किये।

इस उपनिवेश की दौड मे फ्रास ब्रिटेन और स्पेन सबसे आगे थे किन्तु छोटे छोटे यूरोपियन देशो ने भी अपने अपने उपनिवेश स्थापित कर लिये थे। पुराने साम्राज्यवाद के समय यूरोपियन देशो का मुख्य उद्देश्य राजनैतिक प्रभुसत्ता और व्यापारिक लाभ प्राप्त करना था परन्तु 19 वी शताब्दी के नवीन साम्राज्य मे *यूरोपियन देशों का मुख्य उद्देश्य अपने उपनिवेशो का आर्थिक शोषण करना था।*

साम्राज्यवाद के प्रसार के कारण

1—आर्थिक कारण —

(1) विशाल पैमाने पर उत्पादन —औद्योगिक क्रान्ति के कारण इगलण्ड

की भांति फ्रांस, जर्मनी, और इटली आदि देशों का भी औद्योगिक विकास हुआ। इन देशों में आवश्यकता से अधिक उत्पादन होने लगा। इसलिए इस अतिरिक्त उत्पादन को खपाने के लिए यूरोपियन देशों ने बाजारों की खोज प्रारम्भ की और नये-नये उपनिवेशों की स्थापना का प्रयास किया।

यूरोपियन देशों ने सस्ते विदेशी माल से अपने व्यवसायों की रक्षा करने के लिये मुक्त व्यापार की नीति को त्याग कर संरक्षण की नीति लागू की। इतना ही नहीं यूरोपियन देशों ने बाहर से आने वाले माल पर इतने भारी चुंगी कर लगा दिये कि वह स्वदेश के माल से काफी महंगा हो गया। इस प्रकार यूरोपियन देशों ने अपने अतिरिक्त उत्पादन को खपाने के लिये उपनिवेशों की खोज प्रारम्भ कर दी।

(ii) पूंजी की अधिकता —औद्योगिक क्रान्ति के कारण कई देशों के पास बहुत अधिक पूंजी एकत्रित हो चुकी थी। क्रान्ति से पूर्व अमेरिका और स्पेन जैसे पूंजीपति देश पिछड़े देशों को ऋण दिया करते थे। इसमें उनकी काफी पूंजी नष्ट हो जाती थी क्योंकि पिछड़े देश उस ऋण को नहीं चुकाते थे। इसलिये पूंजीपतियों ने यह निश्चय किया कि वे अपने देश के उपनिवेशों में रेल, खान और व्यापार आदि से पूंजी लगायेंगे। जिसमें उन्हें लाभ भी अधिक मिलेगा और पूंजी भी नष्ट नहीं होगी।

पूंजीपतियों ने यहां तक सोचना शुरू कर दिया कि यदि अफ्रीका के नंगे लोगों में कपड़े पहनने की रुचि पैदा कर दी जाय तो उद्योग में भारी मुनाफा कमाया जा सकता है। इस प्रकार उद्योगपतियों और व्यापारियों को भारी मुनाफा प्राप्त होने की आशा थी। इसलिए व्यावसायिक वर्ग ने अपनी सरकार पर दबाव डाला कि वह उपनिवेशों की स्थापना करें अथवा पिछड़े हुए देशों पर अधिकार करें ताकि वे अपने माल को इन देशों के बाजारों में बेचकर भारी मुनाफा कमा सकें। पूंजीपतियों का यह भी विश्वास था कि उन देशों में मजदूरी सस्ती है और प्रतियोगिता भी कम है। इसलिए वे मनचाहा मुनाफा प्राप्त कर सकेंगे।

(iii) यातायात के साधनों का विकास —औद्योगिक क्रान्ति के कारण यातायात के साधनों के क्षेत्र में आश्चर्यजनक विकास हुआ। सामुद्रिक यातायात के विकास के कारण अब शीघ्रता के साथ सस्ती दरों पर कच्चा माल प्राप्त किया जा सकता था और अपना तैयार माल बेचा जा सकता था। भाप से चलने वाले जहाजों तथा सामुद्रिक तार के आविष्कार ने देशों की आपसी दूरी को बहुत कम कर दिया।

(iv) कच्चे माल की आवश्यकता —औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात यूरोपियन देशों में बड़े बड़े उद्योगों की स्थापना हुई। जैसे-जैसे औद्योगिक विकास

होता गया, वैसे वसे कच्चे माल की माग वढन लगी। यह कच्चा माल उपनिवेशो से अथवा पिछडे हुए देशो से प्राप्त हो सकता था।

साईकिल और मोटर बनाने के लिए रबड की आवश्यकता थी। फक्ट्री और मिलो की स्थापना के लिए लोह की आवश्यकता थी। कपडे तयार करने के लिए कच्ची रूई और ऊन की आवश्यकता थी। ये सारी चीजें पिछडे और अविक सित देशो स वडी सस्ती दरो पर मिल सकती थी। इस प्रकार उपनिवेशो के श्रम और खनिज सम्पन्न न यूरोपियन देशो को आर्थिक दृष्टि से सशक्त बना दिया।

साम्राज्य के विकास के कारण अन्न की माग भी वढने लगी। जमनी और जापान की जनसख्या म निरन्तर वद्धि होती जा रही थी। इस वढती हुई जनसख्या के जीवन निर्वाह के लिये अन्न की आवश्यकता थी। इसके अतिरिक्त जो यूरोपियन देश सिफ औद्योगिक विकास करते रहे वहा अन्न की उपज कम हो गई। अनाज की माग की पूर्ति सिफ पिछडे हुये देश ही कर सकते थे। इसलिये यूरोपियन देशों न यहा पर अपने उपनिवेश स्थापित करने प्रारम्भ कर दिये इस नय साम्राज्यवाद का आधार आर्थिक था। इसलिये इस आर्थिक साम्राज्यवाद भी कहा जा सकता है।

2—सामाजिक कारण—इगलण्ड और जमनी म औद्योगिक विकास पूणता प्राप्त कर चुका था। इन देशो के कुलीन परिवारो तथा महत्वाकाक्षी युवको ने यह देखा कि हम अपने देश म शीघ्रता से उन्नति करने के अवसर प्राप्त नही हो सकेंगे। इसलिये उन्होने उपनिवेशो की सेनाओ एव प्रशासकीय सेवाओ म भर्ती होना प्रारम्भ कर दिया क्योकि वहा पर उन्नति के अवसर आसानी से मिल सकते थे। अत साहसी युवको ने नौकरी और व्यवसाय के लिये उपनिवेशो मे जाना स्वीकार कर लिया।

3—राजनतिक कारण —

(१) सामरिक महत्व के स्थानों पर अधिकार—यूरोपियन देश अपना साम्राज्य का विस्तार एव व्यापार की सुरक्षा करना चाहते थे। इसलिये इन देशो ने नौ सेना के अड्डे स्थापित किये और सामरिक महत्व के स्थानो पर अधिकार करने के प्रयास किय ताकि उनकी शक्ति म वद्धि हो और उनकी राजनीतिक स्थिति सशक्त हो सके।

फ्रास ने अफ्रीका म सब प्रथम साइप्रस और केप के प्रदेश पर अधिकार किया। इसके पश्चात् इटली ने लीबिया के प्रदेश पर अधिकार किया। सामुद्रिक मार्गों की खोज होने से यूरोपियन राष्ट्रो ने उन स्थानो पर अधिकार करने का प्रयास किया, जहा उनके जहाज कोयला और पानी ले सकते थे और विश्राम कर सकते थ। इसलिये यूरोपियन देशो ने समुद्र तटो और माग म पडने वाले द्वीपो पर अधिकार कर लिया।

(ii) जनसंख्या में वृद्धि—औद्योगिक क्रान्ति के कारण सभी देशों की जन संख्या में तीव्र गति से वृद्धि हो रही थी। इस बढ़ती हुई जनसंख्या को बसाने के लिए यूरोपियन देश नव नये उपनिवेशों की तलाश करने लगे। जहाँ जहाँ यूरोपवासी बसने लगे, वहाँ-वहाँ साम्राज्यवाद की स्थापना आसानी से होने लगा। 1871 ई० के बाद ए लाख जर्मन वासी अमरिका और ब्राजील म जाकर बस गये। इस समय यूरोपियन देशों की जनसंख्या म वृद्धि हो रही थी। इसलिये यूरोपवासियों ने अपने देशों म बनाओं ने चीनियों और जापानियों के बसने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। न्यूजीलण्ड, आस्ट्रेलिया और दक्षिणी अफ्रीका आदि देशों न भी चीनियों और जापानियों के बसने पर रोक लगानी। इस तरह यूरोपवासी उपनिवेशों म निरन्तर बसते रहे।

(iii) धार्मिक मिशनों का योग—यूरोपियन देशों म साम्राज्यवाद के प्रसार म धर्म का बहुत सहयोग रहा। यूरोप के पादरी पिछड़े हुए देशों म और पिछड़ी हुई जातियों म ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए जाते थे। इन पिछड़े हुए लोगों को ईसाई बनाकर अपनी सभ्यता और संस्कृति का प्रचार करते थे। इस प्रकार असभ्य पादरी अफ्रीका तथा प्रशान्त महासागर के द्वीपों म ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिये गये। कुछ पादरियों ने तो अपने देश की सेवा की परन्तु अधिकांश अपने उद्देश्य को भूल गये।

अधिकांश पादरियों ने पहले पिछड़े हुए देशों और पिछड़ी हुई जातियों पर अपना प्रभाव स्थापित किया। इसके पश्चात् यूरोपियन राज्यों को वहाँ पर साम्राज्य स्थापित करने की प्रेरणा दी। ये पादरी अपने देश की सरकार से रक्षा करने के बहाने उन पिछड़े हुए प्रदेशों पर अधिकार करने के लिए अनुरोध करते थे। पादरी नये नये उपनिवेशों की स्थापना से इसलिये प्रसन्न होते थे क्योंकि उन्हें इन प्रदेशों में ईसाई धर्म के प्रचार करने का अवसर प्राप्त हो जाता था। पादरियों के माध्यम से पिछड़े देशों में यूरोपियन माल की खपत होती थी इसलिए यूरोपियन इन पादरियों की बहुत सहायता करते थे। अनेक ऐसे उदाहरण उपलब्ध हैं जिनसे पता चलता है कि पादरियों ने प्रत्यक्ष रूप से साम्राज्यवाद को प्रोत्साहित करने में अपना सहयोग प्रदान किया। डा० लिविंगस्टन ने ब्रिटिश सरकार को अफ्रीका में साम्राज्य स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित किया ताकि ईसाई धर्म का प्रचार किया जा सके। जर्मन पादरी फेबरी ने साम्राज्यवाद की ओर अधिकाधिक लोगों को झुकाया।

(iv) उग्र राष्ट्रीयता—यूरोपियन देशों की राष्ट्रीयता की भावना ने साम्राज्यवाद को बढ़ावा दिया। प्रोफेसर हेज और वोल ने लिखा है कि उग्र राष्ट्रीयता ने नवीन साम्राज्यवाद को प्रोत्साहित किया। यूरोप का प्रत्येक राष्ट्र जर्मनी और इटली की उग्र राष्ट्रीयता के पद चिन्हों पर चल रहा था। एक तरफ इंगलैण्ड और हालैण्ड जैसे देश विशाल औपनिवेशिक साम्राज्य के स्वामी थे तो दूसरी तरफ इटली

और जर्मनी के पास एक भी उपनिवेश नहीं था। इसलिये जर्मनी और इटली में भी उपनिवेश स्थापित करने की इच्छा जाग्रत हुई। जर्मनी और इटली भी ब्रिटेन और हालैण्ड की भांति विशाल औपनिवेशिक साम्राज्य की स्थापना करना चाहते थे। यहां की जनता राष्ट्र के गौरव और अभिमान की रक्षा के लिये अपनी अपनी सरकारों पर उपनिवेशों की स्थापना के लिये दबाव डाल रही थी।

फ्रांस प्रशा के हाथों से हुई अपनी पराजय की क्षतिपूर्ति करने के लिये नये नये उपनिवेशों की स्थापना कर अपने साम्राज्य में वृद्धि करना चाहता था। इंगलैण्ड अवसर का लाभ उठाकर साम्राज्य में और वृद्धि करना चाहता था। 19वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में यूरोपियन देशों में उपनिवेशों की स्थापना को लेकर होड़ प्रारम्भ हुई।

(v) **असभ्य लोगों को सभ्य बनाना**—यूरोपियन देशों में यह भावना विद्यमान थी कि उनकी सभ्यता और संस्कृति विश्व में सर्वश्रेष्ठ है। इस भावना ने यूरोपियन देशों में साम्राज्यवाद को बढ़ावा दिया। यूरोपियन देशों में इस विचार धारा का प्रसार हुआ कि असभ्य एवं पिछड़ी हुई जातियों और अविकसित लोगों में अपनी सभ्यता और संस्कृति के प्रचार द्वारा उनको सभ्य बनाना और उनका विकास करना प्रमुख कर्त्तव्य है। इस कर्त्तव्य के पालन के लिए यूरोपियन देशों ने प्रचार प्रारम्भ कर दिये। उदाहरणार्थ रूडयार्ड ने इस बात का प्रचार किया कि काले लोगों को सभ्य बनाना गोरे लोगों का कर्त्तव्य है। इस कर्त्तव्य की ओर जनता तथा सरकार का ध्यान आकर्षित करने के लिए यूरोपियन विद्वानों ने अनेक ग्रंथ लिखे। इन प्रयासों के कारण साम्राज्य विस्तार की भावना को बड़ा बल मिला।

उपरोक्त सभी कारणों से 1870 ई० बाद यूरोपियन देशों में औपनिवेशिक साम्राज्य की स्थापना को लेकर होड़ प्रारम्भ हुई। इसलिये यूरोपियन देशों ने उत्तरी अफ्रीका मिश्र और सुदूरपूर्व के प्रदेशों में अपने अपने उपनिवेश स्थापित किये और वहां अपनी-अपनी संस्थाओं की स्थापना की। इस प्रकार यूरोपियन देशों ने उपनिवेशों के आर्थिक साधनों का लाभ उठाया। दूर दूर तक उपनिवेश स्थापित करने और साम्राज्य विस्तार की प्रतिस्पर्द्धा ने प्रथम विश्व युद्ध को जन्म दिया।

अफ्रीका का विभाजन—19वीं शताब्दी की सबसे विशिष्ट उल्लेखनीय घटना अफ्रीका की खोज एवं यूरोपियन देशों द्वारा उसका विभाजन करना था। मैरियट ने लिखा है कि यूरोपियन देशों द्वारा अफ्रीका में उपनिवेशों की स्थापना आधुनिक साम्राज्य की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

अफ्रीका को 'अंध महाद्वीप' भी कहा जाता था। यहां पर कच्चा माल बहुत अधिक मात्रा में पैदा होता था। यह महाद्वीप यूरोप से नजदीक होते हुए भी यूरोपियन देशों का ध्यान इसकी ओर सबसे बाद में गया। 15वीं और 16वीं शताब्दी में यूरोपियन देशों ने सामुद्रिक मार्ग की खोज की और भारत व चीन में अपने अपने

उपनिवेश स्थापित किये। इस समय यूरोप के बड़े-बड़े राज्य उपनिवेशों की स्थापना में उत्साह से इसलिए भाग नहीं ले रहे थे क्योंकि उनका मानना था कि जिस प्रकार फल पकने ही पेड़ से अलग हो जाता है उसी प्रकार उपनिवेशों का विकास होते ही व उनके साम्राज्य से अलग हो जायेंगे। औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् यूरोपियन देशों की विचार धारा में परिवर्तन हुआ। इस क्रांति के कारण विशाल पैमाने पर उत्पादन होने लगा। इसलिये इस अतिरिक्त उत्पादन को बेचने के लिए एवं कच्चे माल की प्राप्ति के लिए यूरोपियन देशों को नये नये बाजार खोजने पड़े। फलस्वरूप नवीन साम्राज्यवाद औपनिवेशिक विकास के रूप में प्रकट हुआ।

फरी ने लिखा है कि जिन देशों के पास अतिरिक्त पूंजी है और निर्मित माल को बेचने के लिये बाजारों की आवश्यकता है। उन्हीं देशों के लिये औपनिवेशिक साम्राज्य लाभदायक होता है। रेम्जेम्यूर ने लिखा है कि यह नवीन साम्राज्यवाद आर्थिक राजनीतिक, सैनिक व सांस्कृतिक रूप में विश्व पर छा गया।

मध्य अफ्रीका की खोज—1869 ई० में स्वेज नहर के निर्माण के पश्चात् अफ्रीका का महत्व बढ़ा यूरोपियन देशों के कुछ साहसी नाविकों ने अफ्रीका के तटीय भागों की खोज की परन्तु अफ्रीका की खोज में सबसे अधिक योगदान लिविंगस्टन और स्टेनले का रहा। बेल्जियम के शासक लियोपोल्ड ने अफ्रीका की खोज करने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की स्थापना की। इस संस्था ने अफ्रीका की खोज में बहुत सहायता की। मुनरो सिद्धान्त के अनुसार अमेरिका में साम्राज्यवाद का प्रसार करना संभव नहीं रहा तो यूरोपियन देशों की दृष्टि में अफ्रीका का महत्व और अधिक बढ़ गया।

1878 ई० के बर्लिन सम्मेलन में यूरोपियन देशों ने अफ्रीका के कुछ प्रदेशों पर अधिकार करने के बारे में बातचीत की।,1882 ई० की बारदो संधि के पश्चात् यूरोपियन देशों में अफ्रीका के विभाजन को लेकर होड़ प्रारम्भ हुई। बेल्जियम में स्थापित संस्था ने कांगो प्रदेश की खोज की। शीघ्र ही यूरोपियन देश इस पर अधिकार करने के लिये लूट खसोट करने लगे।

अफ्रीका का शांतिपूर्वक विभाजन करने के लिए 1884 ई० में यूरोपियन देशों का बर्लिन में एक सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में संयुक्त राज्य अमरिका ने भी भाग लिया। इसमें सभी यूरोपियन देशों को समान रूप से व्यापार करने के अधिकार प्राप्त हुये। इस प्रकार व्यापार पर एकाधिकार समाप्त हो गया। इस सम्मेलन में यह भी निश्चित किया गया कि अफ्रीका के किसी भी प्रदेश पर किसी भी यूरोपियन देश का अधिकार तभी माना जायगा जबकि वह उस प्रदेश पर अधिकार करने के पश्चात् अन्य यूरोपियन देशों को सूचित करे। इस प्रकार बर्लिन सम्मेलन के बाद सभी यूरोपियन देशों ने अफ्रीका के अधिक से अधिक प्रदेशों पर अधिकार करने का प्रयास किया।

और जमनी के पास एक भी उपनिवश नही था। इसलिय जमनी और इटली म भी उपनिवेश स्थापित करने की इच्छा जाग्रत हुइ। जमनी और इटली भी ब्रिटेन और हालैण्ड की भाति विशाल औपनिवशिक साम्राज्य की स्थापना करना चाहत थे। यहा की जनता राष्ट्र के गौरव और अभिमान की रक्षा क लिय अपनी अपनी सरकारो पर उपनिवेशो की स्थापना के लिये दबाव डाल रही थी।

फ्रास प्रशा के हाथो स हुई अपनी पराजय की क्षतिपूर्ति करन के लिय नये नये उपनिवेशा की स्थापना कर अपने साम्राज्य म वृद्धि करना चाहता था। इगलण्ड अवसर का लाभ उठाकर साम्राज्य म और वृद्धि करना चाहता था। 19वी शताब्दी के अतिम वर्षों म यूरोपियन दशा म उपनिवशा की स्थापना का लेकर होड प्रारम्भ हुई।

(v) **असभ्य लोगों को सभ्य बनाना**—यूरोपियन देशा म यह भावना विद्यमान थी कि उनकी सभ्यता और सस्कृति विश्व म सवश्रेष्ठ है। इस भावना ने यूरोपियन देशो म साम्राज्यवाद को बढावा दिया। यूरोपियन देशा म इस विचार धारा का प्रसार हुआ कि असभ्य एव पिछडी हुई जातिया और अविकसित लागा म अपनी सभ्यता और सस्कृति के प्रचार द्वारा उनको सभ्य बनाना और उनका विकास करना प्रमुख कत्तव्य है। इस कत्तव्य के पालन के लिए यूरोपियन देशो ने प्रचार प्रारम्भ कर दिये। उदाहरणाथ रूडयाड ने इस बात का प्रचार किया कि काल लोगा को सभ्य बनाना गोर लोगो का कत्तव्य है। इस कत्तव्य की ओर जनता तथा सरकार का ध्यान आकर्पित करने के लिए यूरोपियन विद्वाना ने अनेक ग्रथ लिखे। इन प्रयासा के कारण साम्राज्य विस्तार की भावना को बडा बल मिला।

उपरोक्त सभी कारणो से 1870 ई० बाद यूरोपियन देशो मे औपनिवेशिक साम्राज्य की स्थापना को लेकर होड प्रारम्भ हुइ। इसलिय यूरोपियन देशा न उत्तरा अफ्रीका, मिश्र और सुदूरपूव के प्रदशा म अपने अपने उपनिवश स्थापित किय और वहा अपनी-अपनी सस्थाओ की स्थापना की। इस प्रकार यूरोपियन देशा न उपनिवेशो के आर्थिक साधनो का लाभ उठाया। दूर दूर तक उपनिवेश स्थापित करने और साम्राज्य विस्तार की प्रतिस्पर्द्धा ने प्रथम विश्व युद्ध को जन्म दिया।

अफ्रीका का विभाजन—19वी शताब्दी की सबसे विशिष्ट उल्लखनीय घटना अफ्रीका की खोज एव यूरोपियन देशो द्वारा उसका विभाजन करना था। मेरियट न लिखा है कि यूरोपियन दशा द्वारा अफ्रीका म उपनिवेशा की स्थापना आधुनिक साम्राज्य की सबस महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

अफ्रीका को अध महाद्वीप भी कहा जाता था। यहा पर कच्चा माल बहुत अधिक मात्रा मे पदा होता था। यह महाद्वीप यूरोप से नजदीक होते हुए भी यूरोपियन देशा का ध्यान इसकी ओर सबस बाद म गया। 15वी और 16वी शताब्दी म यूरोपियन दशा ने सामुद्रिक माग की खाज की और भारत व चीन म अपन अपन

उपनिवेश स्थापित किये। इस समय यूरोप के बडे-बडे राज्य उपनिवेशा की स्थापना म उत्साह म इसलिए भाग नही ल रहे थे क्योकि उनका मानना था कि जिस प्रकार फल पक्त ही पेड स अलग हा जाता है उसी प्रकार उपनिवेशा का विकास होते ही व उनके साम्राज्य से अलग हा जायेंगे। औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् यूरोपियन देशा की विचार धारा म परिवतन हुआ। इस क्रान्ति के कारण विशाल पमाने पर उत्पादन हाने लगा। इसलिये इस अतिरिक्त उत्पादन को वेचने के लिए एव कच्चे माल की प्राप्ति के लिए यूरोपियन दशो को नये-नये वाजार खोजन पडे। फलस्वरूप नवीन साम्राज्यवाद औपनिवेशिक विकास के रूप म प्रकट हुआ।

फेरी ने लिखा है कि जिन देशा के पास अतिरिक्त पूजी है और निर्मित माल को वचन क लिय वाजारा की आवश्यकता है। उन्ही देशा के लिये औपनिवेशिक साम्राज्य लाभदायक होता है। रेम्जेम्यूर ने लिखा है कि यह नवीन साम्राज्यवाद आर्थिक राजनीतिक सनिक व सास्कृतिक रूप म विश्व पर छा गया।

मध्य अफ्रीका की खोज—1869 ई० म स्वेज नहर के निर्माण के पश्चात् अफ्रीका का महत्व वढा यूरोपियन देशो के कुछ साहसी नाविका ने अफ्रीका के तटीय भागा की खोज की परन्तु अफ्रीका की खोज म सबसे अधिक योगदान लिविंग्स्टन और स्टनल का रहा। वेल्जियम क शासक लियोपोल्ड ने अफ्रीका की खोज करने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय सस्था की स्थापना की। इस सस्था न अफ्रीका की खोज मे बहुत सहायता की। मुनरो सिद्धात के अनुसार अमेरिका मे साम्राज्यवाद को प्रसार करना सभव नही रहा तो यूरोपियन देशा की दृष्टि मे अफ्रीका का महत्व और अधिक बढ गया।

1878 ई० के वर्लिन सम्मेलन म यूरोपियन दशा ने अफ्रीका के कुछ प्रदेशो पर अधिकार करने क बारे म बातचीत की। 1882 ई० की बारडो सधि के पश्चात् यूरोपियन देशा म अफ्रीका के विभाजन को लेकर होड प्रारम्भ हुई। वेल्जियम म स्थापित सस्था न कागा प्रदेश की खोज की। शीघ्र ही यूरोपियन देश इस पर अधिकार करने क लिय लूट खसोट करने लगे।

अफ्रीका का शान्तिपूवक विभाजन करने के लिए 1884 ई० म यूरोपियन देशा का वर्लिन म एक सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन मे सयुक्त राज्य अमरिका ने भी भाग लिया। इसम सभी यूरोपियन देशो को समान रूप से व्यापार करन के अधिकार प्राप्त हुए। इस प्रकार व्यापार पर एकाधिकार समाप्त हो गया। इस सम्मेलन म यह भी निश्चित किया गया कि अफ्रीका क किसी भी प्रदेश पर किसी भी यूरोपियन देश का अधिकार तभी माना जायेगा जबकि वह उस प्रदेश पर अधिकार करने के पश्चात् अन्य यूरोपियन देशो को सूचित करदे। इस प्रकार वर्लिन सम्मेलन के बाद सभी यूरोपियन देशा न अफ्रीका क अधिक से अधिक प्रदेशा पर अधिकार करने का प्रयास किया।

आश्चय की बात यह है कि इतने बड़े महाद्वीप का विभाजन बहुत कम समय म हो गया। इसके विभाजन को लेकर विभिन्न देशो म तनावपूण सम्बध अवश्य रहे परतु जैसा एशिया व अमेरिका म युद्ध हुआ वसा अफ्रीका के विभाजन के लिए कोई बडा युद्ध नही हुआ। जब जब भी युद्ध की सम्भावनाऐं पैदा हुई तो कूटनीति के आधार पर उस समस्या का हल कर दिया गया। इस प्रकार यूरोपियन देशो न बहुत कम वर्षों म अफ्रीका का विभाजन पूण कर लिया।

1 **जमनी और अफ्रीका**—जमनी औपनिवशिक साम्राज्य की दौड म देर स सम्मिलित हुआ। बिस्माक की उपनिवेशो म रुचि नही थी। वह तो जमनी को सिफ महाद्वीपीय शक्ति बनाये रखना चाहता था परतु 1890 म बिस्माक के पतन क बाद जमनी भी उपनिवश की होड म शामिल हो गया। इसका कारण यह था कि जमन सम्राट विलियम द्वितीय 'विश्व नीति का पालन कर रहा था और उपनिवेशो म उसकी काफी रुचि थी।

जब बेल्जियम ने कागो के प्रदेश पर अधिकार कर लिया तो जमनी के उद्योगपतियो और धर्म प्रचारको का ध्यान अफ्रीका की ओर आकर्षित हुआ। इन्होने जमन सरकार पर यह दबाव डाला कि वह भी अफ्रीका म अपने उपनिवेश स्थापित करे। इसलिय जमन सम्राट विलियम द्वितीय ने अनेक जमन व्यक्तियो को अफ्रीका के सरदारो के पास सधियां करने क लिये भेजा। कार्ल पीटर जमनी का पहला व्यक्ति था, जिसने पूर्वी अफ्रीका म 60 हजार वग मील का भू भाग प्राप्त किया और अफ्रीका म जमनी की ईस्ट अफ्रीका कम्पनी की स्थापना की। इस कम्पनी न तीन चार वर्षों म दो लाख वग मील भू भाग पर अधिकार कर लिया। इस क्षेत्र का नाम टेगानिका रखा गया। इसी प्रकार जमनी ने 1883 ई० मे दक्षिणी पश्चिमी अफ्रीका मे एक टयूनिस की स्थापना की। जमनी की सरकार ने अनेक उपनिवेशो की स्थापना की। जमनी ने अफ्रीका म कमरस टोगालण्ड आदि प्रदेशो पर अधिकार कर लिया।

2 **फ्रांस अफ्रीका**—फ्रास भी इस औपनिवेशिक साम्राज्य की दौड म शामिल हो गया। उससे उत्तरी अफ्रीका और अल्जीरिया म अपने उपनिवश स्थापित किये। वह मिश्र म भी अपना साम्राज्य स्थापित करना चाहता था परतु अग्रेजो के विरोध के कारण उसे सफलता नही मिली। फ्रास न 1857 ई० म पूर्वी अफ्रीका म सोमा लीलण्ड के कुछ भाग पर अधिकार कर लिया। 1869 ई० म एक फ्रासीसी ने स्वेज नहर का निर्माण किया और उसके बहुत शेयर खरीद लिये। स्वेज नहर के प्रश्न पर इगलण्ड और फ्रास के बीच समझौता हो गया। इटली के विरोध के बावजूद भी फ्रास ने 1881 ई० मे टयूनिस क प्रदेश पर अधिकार कर लिया। मोरक्को मडा गास्कर का द्वीप सूडान व कागो नदी के तटीय प्रदेशो के लिये फ्रास और ब्रिटेन मे झगडे हुए परतु इन प्रदेशो का अधिकाश भाग फ्रास को मिला।

3 **इटली और अफ्रीका**—इटली का एकीकरण 1871 ई० म हुआ। उसका

भी यह इच्छा थी कि अफ्रीका म अपन उपनिवेश स्थापित करे । उत्तरी अफ्रीका से इटली का सम्बन्ध प्राचीन काल से ही चला आ रहा था । प्राचीन काल म उत्तरी अफ्रीका के भागो पर रोमन साम्राज्य का अधिकार था । इसलिये इटली एकीकरण के पश्चात् अपन प्राचीन गौरव को पुन प्राप्त करने के लिये उत्तरी अफ्रीका के इन हिस्सो पर अधिकार करना चाहता था । इटली के उपनिवेशो की दौड म शामिल होने से पहले ही यूरोपियन देश उत्तरी अफ्रीका के अनेक भागो पर अधिकार कर चुके थे ।

इटली ट्युनिशिया के प्रदेश पर अधिकार करना चाहता था । जब फ्रांस ने इस प्रदेश पर अधिकार कर लिया तो वह निराश हो गया । इससे क्षुब्ध होकर इटली फ्रांस के विरुद्ध त्रिगुट संधि मे सम्मिलित हो गया । अब इटली ने महत्वहीन प्रदेशो पर अधिकार करने का निश्चय किया । इटली ने 1870 ई० म इरिटिया पर और 1889 ई० म सोमाली लैण्ड के एक भाग पर अधिकार कर लिया । 1889 ई० म एबीसीनिया पर अधिकार करने के लिये आक्रमण किया परन्तु उसे असफलता ही हाथ लगी । 1912 ई० की संधि के अनुसार ट्रिपोली लीबिया और सिरनेका के प्रदेशो पर इटली का अधिकार हो गया ।

4 **पुर्तगाल और अफ्रीका**— 1870 ई० से पूर्व पुर्तगाल पूर्व-पश्चिमी अफ्रीका की कुछ बस्तियो पर अधिकार कर चुका था । इस क्षेत्र म कुछ ही समय म उसने अंगोला नामक प्रान्त पर भी अधिकार कर लिया । पुर्तगाल अपने साम्राज्य की सीमाओ से मिलते हुए अफ्रीकन प्रदेशो पर अधिकार करना चाहता था परन्तु उसे सफलता नहीं मिली ।

5 **स्पेन और अफ्रीका**—स्पेन भी औपनिवेशिक साम्राज्य की दौड म शामिल हो गया । उसने अफ्रीका के उत्तर पश्चिम म छोटे छोटे भू भागो पर अधिकार कर लिया ।

6 **बेल्जियम और अफ्रीका**—बेल्जियम ने भी अफ्रीका मे कांगो बेसिन के अधिकाश भाग पर अधिकार कर लिया था । इसके अतिरिक्त उसने अन्य कई उपनिवेश स्थापित किये ।

7 **इंगलण्ड और अफ्रीका**—ब्रिटेन को विश्व मे विशाल साम्राज्य का निर्माण करने में सफलता मिली । प्रोफेसर एच जी वेल्स ने लिखा है कि विश्व के भिन्न भिन्न भागों म ब्रिटिश साम्राज्य बहुत तीव्र गति से फैला ।

अफ्रीका म सबसे ज्यादा उपनिवेश इंगलैण्ड के पास थे । प्रारम्भ म इंगलैण्ड का अफ्रीका म कोई उपनिवेश नहीं था, परन्तु जब हालैण्ड ने ब्रिटेन को केपकोलोनी का प्रदेश दिया तब से इंगलैण्ड ने यहाँ औपनिवेशिक साम्राज्य की स्थापना म रुचि लेना प्रारम्भ कर दिया । दक्षिणी अफ्रीका मे 40 लाख वर्ग मील के भू भाग पर अंग्रेजो का अधिकार हो गया । बोअर युद्ध के फलस्वरूप इंगलैण्ड का ट्रांसवाल, औरेंज, फ्रीस्टेट, नेटाल तथा कुछ अन्य छोटे छोटे राज्यों पर अधिकार हो गया ।

इंगलण्ड ने अफ्रीका में मिश्र के प्रदेश पर भी अधिकार कर लिया। इसका कारण यह था कि नेपोलियन के मिश्र आक्रमण के कारण अंग्रेज सावधान हो गये थे और भारतीय साम्राज्य की सुरक्षा के लिये मिश्र का बहुत अधिक महत्व था। डिजरली के समय इंगलण्ड ने स्वेज नहर के बहुत से शेयरस खरीदे। 1882 ई० में जब मिश्र के लोगों ने विदेशियों के विरुद्ध विद्रोह किया तो इंगलैण्ड ने अकेले ही इस विद्रोह को कुचल दिया। परिणामस्वरूप मिश्र पर उसका प्रभाव और अधिक बढ़ गया।

इसके पश्चात् इंगलैण्ड ने सूडान के प्रदेश पर अधिकार करने का निश्चय किया। यह प्रदेश मिश्र के दक्षिण में स्थित है। इसका अधिकांश भाग रेगिस्तान है। सूडान पर मिश्र के शासक का अधिकार था। 1885 ई० में सूडान के लोगों ने मिश्र के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। इस विद्रोह के दौरान विद्रोहियों ने खारतूं नामक स्थान पर अंग्रेज सेनापति जनरल गार्डन की भी हत्या करदी। इसको बहाना बना कर अंग्रेज सरकार ने 1898 ई० में सूडान पर अधिकार कर लिया।

अफ्रीका में अंग्रेज व्यापारियों द्वारा स्थापित कम्पनियों ने भी नये नये उपनिवेशों की स्थापना की। कुछ ही समय में अंग्रेजों का अफ्रीका के नाइजीरिया, गोल्ट कोस्ट और गेम्बिया आदि प्रदेशों पर अधिकार हो गया। पूर्वी अफ्रीका में अंग्रेजों ने युगान्डा, जजीबार और सोमाली लैण्ड के प्रदेशों तक अपने साम्राज्य का विस्तार कर दिया। रोडस नामक व्यक्ति ने उत्तरी और दक्षिणी रोडेशिया पर ब्रिटिश साम्राज्य का अधिकार स्थापित करवा दिया।

इस प्रकार अंग्रेजों ने अफ्रीका में विशाल साम्राज्य की स्थापना की। अफ्रीका के चौथे हिस्से पर अंग्रेजों का अधिकार था। इसलिए अफ्रीका को तृतीय अंग्रेज साम्राज्य के नाम से पुकारा गया।

इस तरह यूरोपियन देशों ने अपने अपने ढंग से अफ्रीका का विभाजन पूर्ण कर लिया। अफ्रीका के सबसे ज्यादा भाग पर ब्रिटेन और फ्रांस ने अधिकार कर लिया था। आश्चर्य की बात यह थी कि इतने बड़े महाद्वीप के विभाजन को लेकर यूरोपियन देशों में कभी कोई युद्ध नहीं हुआ। यूरोपियन देशों में इस विभाजन को लेकर मतभेद अवश्य हो गये थे। उन मतभेदों को समझौते के माध्यम से सुलझा लिया गया।

एशिया में साम्राज्यवाद

1। अफ्रीका और एशिया दोनों ही महाद्वीपों में आधुनिक साम्राज्यवाद का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इससे पहले यूरोपियन देश इन दोनों क्षेत्रों पर इतना अधिक प्रभाव स्थापित नहीं कर सके थे। 1870 ई० से 1914 ई० तक के बीच यूरोपियन देशों ने इन दोनों क्षेत्रों में अपने अपने उपनिवेश स्थापित कर अपना सिक्का जमा लिया।

1 इगलण्ड और एशिया—भारत म ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अंग्रेजी राज्य की स्थापना की। इस कम्पनी के गवनर क्लाईव न प्लासी के युद्ध (1757) म बगाल के नवाब सिराजुद्दौला को हराकर भारत म ब्रिटिश साम्राज्य की नींव रखी। 1757 ई० स 1857 ई० तक सौ वष के समय म इस कम्पनी न सम्पूण भारत पर अधिकार कर लिया। भारतीयो म अंग्रेजो के विरुद्ध असन्तोष व्याप्त था। इसलिय उन्होने 1857 ई० म अंग्रेजी शासन के विरुद्ध सघष प्रारम्भ कर दिया।

यद्यपि ईस्ट इडिया कम्पनी ने भारतीयो के इस स्वतत्रता प्राप्ति के विद्रोह को बुरी तरह स कुचल दिया परन्तु इस सघष की समाप्ति क पश्चात् भारत म कम्पनी के शासन को समाप्त कर दिया गया और उसके स्थान पर शासन का काम ब्रिटिश सरकार न अपन हाथ म ले लिया। अब ब्रिटन की महारानी विक्टोरिया को भारत की महारानी घोषित किया गया। 1877 ई० म ब्रिटेन की सरकार ने स्वेज नहर कम्पनी क बहुत वडे शेयम खरीद कर भारतीय साम्राज्य की सुरक्षा करनी।

उन्नीसवी शताब्दी के प्रारम्भ म बर्मा एक स्वतन्त्र राज्य था। उस पर आवा वश क शासक शासन कर रहे थे। यूरोपियन व्यापारियो ने बर्मा के समुद्री तटो पर अपने व्यापारिक अड्डे स्थापित किय। 1824 ई० म वर्मा और अंग्रेजो के बीच प्रथम युद्ध हुआ। इस युद्ध म अंग्रेज विजयी हुए और बर्मा को बाध्य होकर सधि करनी पडी। इस सधि क अनुसार बर्मा को अराकन और तनेसरीम के प्रदेश अंग्रेजो को देने पडे। 1852 ई० मे अंग्रेजो और बर्मा के बीच द्वितीय युद्ध हुआ। जिसम भी अंग्रेजो की विजय हुई। इस विजय के फलस्वरूप दक्षिणी बर्मा पर उनका अधिकार हो गया। 1885 86 ई० तक सम्पूण बर्मा अंग्रेजो के अधीन हो गया और बर्मा को ब्रिटिश साम्राज्य म सम्मिलित कर दिया गया। अंग्रेजा ने सामरिक महत्व के कारण रगून के बन्दरगाह पर अपना सनिक अड्डा स्थापित किया।

19वी शताब्दी के उत्तराद्ध म ब्रिटेन को न्यू गाइना तथा बोर्नियो द्वीप के अधिकांश भाग पर अधिकार करने मे सफलता मिली। 1824 ई० मे अंग्रेजों न मलाया क साथ एक सधि की। इस सधि के अनुसार मलाया प्रदेश पर उनका अधिकार मान लिया गया।

अंग्रेजों ने चीन में अपना साम्राज्य प्रसार करने का प्रयास प्रारम्भ कर दिया था। ब्रिटेन और चीन के बीच प्रथम युद्ध 1839 42 ई० तक लडा गया था। इस युद्ध म अंग्रेजों न चीन को बुरी तरह से पराजित कर सधि करने के लिये विवश किया। युद्ध की समाप्ति के पश्चात् चीन और ब्रिटेन के बीच नानकिंग की सन्धि हुई। इस सधि के अनुसार चीन को अपने पाच बन्दरगाहो म अंग्रेजो को व्यापार करने की सुविधाएँ देनी पडी। इसके बाद भी ब्रिटेन कोई न कोई बहाना बनाकर चीन से युद्ध करता रहा और वहां व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त करता रहा।

(2) **फ्रांस और एशिया**—फ्रांसीसी ्यापारियो न 1863 ई० मे इडो चाइना मे फ्रांसीसी माम्राज्य की नींव रखी। धीरे धीरे सम्पूण इन्डोचाइना पर फ्रास न अधिकार कर लिया। 1862 65 ई० के बीच फ्रास ने चीन म अपने साम्र.ज्य का प्रसार किया और वहा पर व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त की।

(3) **जमनी और एशिया**—विलियम द्वितीय ने साम्राज्यवादी नीति का पालन किया। 1900 ई० तक जमनी न चीन के शा तुग प्रदेश पर अधिकार कर लिया था तथा प्रशान्त महासागर के कुछ टापुओ पर भी जमनी का अधिकार हो गया था।

(4) **हालण्ड और एशिया**—हालण्ड के डचो ने मालाबार लका, मलक्क, बोर्नियो और स्याम आदि द्वीपो पर अधिकार कर लिया। कालान्तर म मालाबार और लका का द्वीप अंग्रेजो ने अधिकृत कर लिया। 19वी शताब्दी म ईस्ट इण्डीज (आधुनिक इडानेशिया) पर भी हालण्ड क डचो ने अधिकार कर लिया था।

(5) **पुर्तगाल और एशिया**—पुतगाल ने पूर्वी द्वीप समूह क तिमोर द्वीप के अधिकांश भाग पर अधिकार कर लिया था। पुतगालियो न भारत की सीमा पर गोआ दमन और ड्यू मे अपनी व्यापारिक कोठिया स्थापित की। 16वी शता दी म पुत गालियो न मकाओ द्वीप म भी अपनी बस्तिया स्थापित कर दी थी, जिसक फलस्वरूप चीन के साथ उनका व्यापार प्रारम्भ हो गया। धीर धार पुतगाली चीन म अपना प्रभाव बढाने का प्रयास करते रह।

(6) **स्पेन और एशिया**—फिलिपाइन द्वीप समूह म सबसे पहले पुतगाल ने अपनी बस्तिया स्थापित की थी परन्तु स्पेन पहला देश था जिसे फिलिपाइन द्वीप समूह पर अधिकार करने म सफलता मिली। स्पेन ने 1571 ई० मे फिलिपाइन पर अधिकार किया और वह 1898 ई० तक इस द्वीप समूह पर शासन करता रहा। इसक पश्चात सयुक्त रा य अमरिका ने इस द्वीप समूह पर अधिकार कर लिया।

(7) **रूस की साम्राज्यवादी नीति**—18वी शताब्दी मे रूस ने साइबेरिया में प्रसार प्रारम्भ किया। 19वी शताब्दी के मध्य तक वह सम्पूण साइबेरिया पर अधिकार करने म सफल हुआ। 1858 ई० म रूस ने आमूर नदी क उत्तर क चीनी भाग, प्रशान्त महासागर और युसुरी नदी के बीच के भाग पर अधिकार स्थापित कर लिया। 1880 ई० म रूस ने तुर्किस्तान और आर्मेनिया पर अधिकार कर लिया। 1898 ई० मे रूस ने चीन से पोर्ट आर्थर का बन्दरगाह प्राप्त किया। 1904 ई० म उसने कोरिया और मचूरिया म प्रसार करने का निश्चय किया। जिसके फलस्वरूप जापान स उसका युद्ध हुआ। युद्ध मे जापान ने रूस को बुरी तरह पराजित किया और अपमानजनक संधि पर हस्ताक्षर करने के लिये बाध्य किया। रूस की हार ने उसका साम्राज्य प्रसार सुदूर पूर्व म रोक दिया।

(8) **जापान की साम्राज्यवादी नीति**—एशिया म कवल जापान ही एक

ऐसा देश था, जिसने पश्चिमी देशो से सम्पर्क स्थापित कर पश्चिमी ढग मे अपने देश का विकास किया । 1894–95 ई० मे जापान और चीन के बीच युद्ध हुआ । इस युद्ध मे जापान ने चीन को बुरी तरह पराजित किया और सधि करने के लिये विवश किया । युद्ध की समाप्ति के पश्चात 1895 ई० मे चीन और जापान ने शीमोनोस्की की सधि पर हस्ताक्षर किये । इस सधि के अनुसार चीन ने कोरिया को स्वतन्त्र कर दिया और उसे जापान को फारमूसा, पेस्काडोस द्वीप तथा लियाओ तुग का प्रदेश देना पडा । इसके पश्चात जापान ने कोरिया और मचूरिया मे अपना प्रभाव बढाना प्रारम्भ किया । रूस भी इसी क्षेत्र मे अपना प्रभाव बढाने का प्रयास कर रहा था । इसलिये 1894–95 ई० में रूस और जापान मे युद्ध हुआ । जिसमे जापान की विजय हुई । उसके पश्चात रूस और जापान के बीच 1905 ई० मे पोर्ट्स माउथ की सधि हुई । इस सधि के अनुसार दक्षिणी सारवालीन और लिओ तुग का प्रदेश रूस को दिया गया और पोर्ट आर्थर का बन्दरगाह जापान को दिया गया । कोरिया मे जापानी प्रभाव रूस ने स्वीकार कर लिया और मचूरिया से रूस ने अपनी फौजें हटाली । 1910 ई० तक जापान ने सम्पूर्ण कोरिया पर अधिकार कर लिया और उसे अपने साम्राज्य मे मिला लिया ।

साम्राज्यवाद के परिणाम —

उन्नीसवी शताब्दी मे यूरोपियन देशो ने विश्व के विभिन्न भागो मे अपने अपने साम्राज्यो की स्थापना की । यूरोपियन देशो की सभ्यता और सस्कृति का उन देशो की जनता पर अच्छा और बुरा दोनो ही प्रकार का प्रभाव पडा । साम्राज्यवाद के प्रमुख परिणाम निम्नलिखित हुए —

(1) **उपनिवेशों का विकास** — साम्राज्यवादी देशो ने एशिया और अफ्रीका के अविकसित देशो का विकास करने का हर सभव प्रयास किया । जिसके कारण अविकसित देशो का आर्थिक विकास हुआ । साम्राज्यवादी देशो ने इन अविकसित देशो का इसलिये विकास किया क्योंकि वे अधिक से अधिक मुनाफा कमाना चाहते थे ।

ब्रिटिश सरकार ने भी भारत मे कई फैक्ट्रियो और मिलो की स्थापना की । यद्यपि यह सत्य है कि साम्राज्यवादी देश अपने हितो की पूर्ति के लिये उन अविकसित देशो का विकास कर रहे थे और न ही इतनी तीव्र गति से विकास किया जा रहा था जितना कि स्वतन्त्र शासन मे सम्भव था परन्तु फिर भी अंग्रेजो ने नये-नये यन्त्रों का उपयोग कर भारत का आर्थिक विकास किया । अंग्रेजो ने भारत से कच्चा माल मगवाने के लिये यातायात के साधनो का विकास किया । उन्होंने सारे देश मे सडको और रेलो का जाल बिछा दिया । कृषि एव औद्योगिक क्षेत्र में वैज्ञानिक पद्धति को लागू कर उत्पादन में वृद्धि करने का प्रयास किया । उन्होंने अपने उपनि-

देशो मे जनता को सतुष्ट करने के लिये शासन सम्बन्धी सुधार किये। सम्पूर्ण देश म एक समान कानून और एक समान शासन व्यवस्था की स्थापना की गई।

साम्राज्यवादी देशो क अधीन लोगो न पश्चिमी वस्तुओ का उपयोग करना प्रारम्भ किया। इसके अतिरिक्त पश्चिमी धम और मनोरजन की अनेक बातें उन्होंने अपना ली। कुछ साम्राज्यवादी देशा ने अपने अधिकृत देशा के समाज म व्याप्त सती प्रथा दास प्रथा और नर मास भक्षणजसी कुरीतियो को दूर करने का प्रयास किया। इस प्रकार यूरोपियन देशा ने अपन अधिकृत देशो का विकास करन के साथ साथ उनमे अपनी सभ्यता एव सस्कृति का भी प्रचार किया। धीरे धीरे अधिकृत देश प्रगति करन लग। उ होने भी पश्चिमी वज्ञानिक अनुसधान का व नान का लाभ उठाना प्रारम्भ कर दिया।

(2) राष्ट्रीय भावनाओ की जाग्रति—साम्राज्यवादी देशा ने अपने अधिकृत प्रदेशा म पश्चिमी शिक्षा का प्रसार किया। जिसके फलस्वरूप उन देशो म राष्ट्रीय भावनाओ का विकास हुआ। अधिकृत देशो ने साम्राज्यवादी दशो के अधिपत्य से मुक्त होने क लिये 20वी शताब्दी के प्रारम्भ म स्वतन्त्रता आन्दोलन प्रारम्भ कर दिए। इन आन्दोलना म स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये प्रयास प्रारम्भ कर दिए। आन्दोलना के फलस्वरूप पिछले 32 वर्षों म भारत, ब्रह्मा मिस्र सूडान, हिन्देशिया और अफ्रीका के कई देशो को स्वत त्रता प्राप्त हुई। साम्राज्यवादी देशा न अपने अधिकृत जिन प्रदेशो को स्वतन्त्रता प्रदान नहीं की है वे देश भी इसक लिये प्रयास कर रहे हैं तथा उन्ह शीघ्र ही स्वत त्रता प्राप्त हो जायेगी।

(3) आर्थिक शोषण—साम्राज्यवादी देशा ने अपने अधिकृत प्रदेशो का आर्थिक शोषण किया। वे अपने अधिकृत प्रदेशा से कच्चा माल कम से कम दरो पर प्राप्त करते थे और अपन उत्पादित माल को मनमानी दरा पर बचत थे। उदाहरणार्थ इगलण्ड ने अपने उद्योगो का विकास करने के लिये भारतीय उद्योग धन्धो को नष्ट कर दिया। इगलण्ड की सरकार ने चीनी लोगो म अफीम खाने की लत लगाकर अपने राजनीतिक और व्यापारिक हितो की पूर्ति की। साम्राज्यवादी देशो ने अपने अधिकृत देशा का आर्थिक विकास अवरुद्ध कर दिया क्योंकि व अपनी आर्थिक नीति का निर्धारण अपन हितो को दृष्टिगत रखते हुए करते थे। इस आर्थिक शोषण के परिणामस्वरूप एशिया और अफ्रीका क दश दिन प्रतिदिन गरीब होत गए।

(4) उपनिवेशो की जनता पर अत्याचार—साम्राज्यवादी देशा ने अपने अधिकृत प्रदेशा म अपनी सत्ता बनाय रखने के लिये जनता पर अमानुपिक अत्याचार किय। उन्होंन जनता को स्वतन्त्रता का अधिकार नहीं दिया। इस प्रकार के शासन मे जनता अपना विकास नही कर सकी। इगलण्ड ने भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलने क लिये अमानवीय अत्याचार किए। फ्रास ने भी मोरक्को और अल्जी

रिया के राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलने के लिये वहा की जनता पर भयकर अत्याचार किए। पुनगालिया ने अपने उपनिवेशो में अपना शासन बनाये रखने के लिये भयकर राजनीतिक अत्याचारो का सहारा लिया।

(5) **उग्र राष्ट्रीयता की भावना**—साम्राज्यवाद के परिणामस्वरूप उग्र राष्ट्रीयता की भावना का विकास हुआ। इसलिये एक देश दूसरे देश के साथ समस्याओ पर समझौता करने मे अपना अपमान समझने लगा।

(6) **सैन्य शक्ति मे वृद्धि** यूरोपियन देशो ने अपने उपनिवेशों की रक्षा करने के लिये सैन्य शक्ति म वृद्धि करना प्रारम्भ किया। बहुत से यूरोपियन राज्यो ने अनिवार्य सैनिक शिक्षा लागू कर दी। इससे यूरोपियन देशो मे शस्त्रीकरण की होड प्रारम्भ हुई। इस प्रकार सैनिक प्रतिस्पर्द्धा ने प्रथम विश्व युद्ध को जन्म दिया।

(7) **यूरोपियन देशों के तनावपूर्ण सम्बन्ध**—यूरोपियन देशो को उपनिवेशो और साम्राज्यो को स्थापित करने के प्रश्न को लेकर प्रतिस्पर्द्धा करनी पडी थी। इस प्रतिस्पर्द्धा में एक देश का स्वार्थ दूसरे देश के स्वार्थ से टकराया। फलस्वरूप यूरोपियन देशो के आपसी सम्बन्ध तनावपूर्ण हो गये।

जर्मनी और इटली इस औपनिवेशिक साम्राज्य की दौड मे बहुत देर से शामिल हुए थे। ये दोनो देश भी उपनिवेशो की स्थापना करना चाहते थे। इस समय तक इगलैण्ड और फ्रास विशाल साम्राज्य की स्थापना कर चुके थे। इसलिये जर्मनी और इटली भी इनकी तुलना मे उपनिवेश स्थापित करना चाहते थे। इगलण्ड के फ्रास के साथ, मिश्र और मोरक्को को लेकर कटु सम्बन्ध हो गये थे। रूस के इगलण्ड के साथ मध्य एशिया म अधिकार के प्रश्न को लेकर तनावपूर्ण सम्बन्ध हो गये थे। जर्मनी के टर्की में बढते हुए प्रभाव और उसकी नौ सैनिक शक्ति मे वृद्धि मे इगलैण्ड चिन्तित था। इस समय सभी को एक दूसरे से खतरा था। इस खतरे से अपनी रक्षा करने के लिये राष्ट्रो ने गुटबन्दियो का सहारा लिया। सबसे पहले बिस्मार्क ने जर्मनी, आस्ट्रिया और इटली के साथ मिलकर एक गुट का निर्माण किया। इसके प्रत्युत्तर मे फ्रास ने रूस और इगलण्ड के साथ मिलकर एक गुट का निर्माण किया। जापान फ्रांस के गुट का समर्थक था तो टर्की जर्मन गुट का समर्थन कर रहा था। इस प्रकार इन गुटबन्दियो के कारण सम्पूर्ण यूरोप दो परस्पर विरोधी गुटो में विभाजित हो गया जिससे विश्व शांति को खतरा पैदा हो गया।

प्रस्तावित सदर्भ पुस्तकें

1—हेजन-आधुनिक यूरोप का इतिहास

2—वेरस, एच० जी०-दी आउट लाइन आफ हिस्ट्री

3—ग्राण्ट एण्ड टेम्परले-यूरोप का इतिहास उन्नीसवीं और 20वीं शताब्दी म।

4—गूच, जी० पी०-आधुनिक यूरोप का इतिहास

5—केटलबी-ए हिस्ट्री ऑफ माडन टाइम्स

10

प्रथम विश्व युद्ध

'फ्रैंको प्रशियन युद्ध (1871) से लेकर प्रथम महायुद्ध का काल सशस्त्र शांति का युग है।'

बिस्मार्क ने रक्त और लोह की नीति के द्वारा जर्मनी का एकीकरण किया था परन्तु एकीकरण के पश्चात वह शांति का समर्थक बन गया। वह यूरोप की यथास्थिति को बनाये रखना चाहता था, ताकि नवनिर्मित जर्मनी अपनी स्थिति को मजबूत कर सके। बिस्मार्क ने 1870 ई० में सीडान के युद्ध में फ्रांस को पराजित कर जर्मनी का एकीकरण पूरा किया था। युद्ध समाप्ति के पश्चात इसने फ्रांस के अल्सास और लोरेन दो महत्वपूर्ण प्रान्त छीन लिये थे। यह फ्रांस का राष्ट्रीय अपमान था। बिस्मार्क यह भी जानता था कि फ्रांस को अवसर मिलते ही वह अपनी पराजय का बदला निश्चित रूप से लेगा। इसलिये उसे फ्रांस की ओर से हमेशा आक्रमण की चिन्ता लगी रहती थी। राइकर ने ठीक ही लिखा है कि बिस्मार्क जानता था कि फ्रांस अपनी पराजय का बदला अवश्य लेगा परन्तु उसे यह भी मालूम था कि जब तक फ्रांस मित्रविहीन रहेगा, तब तक वह जर्मनी पर आक्रमण नहीं कर सकेगा किन्तु फ्रांस की अन्य देशों से मित्रता स्थापित होते ही वह जर्मनी पर आक्रमण करेगा।

बिस्मार्क की विदेश नीति—1871 ई० में बिस्मार्क की विदेश नीति के दो मुख्य आधार थे —

(1) बिस्मार्क यूरोप की राजनीति में फ्रांस को एकाकी बनाये रखना चाहता था अर्थात फ्रांस को मित्रविहीन रखा जाये। यदि फ्रांस अन्य यूरोपियन देशों से मित्रता स्थापित करे तो उसे रोका जाय। बिस्मार्क का मानना था कि यूरोप में शांति तभी स्थापित रह सकती थी जबकि फ्रांस जर्मनी के विरुद्ध गुट का निर्माण न कर सके। वह इस बात को अच्छी तरह से जानता था कि फ्रांस अकेला जर्मनी पर आक्रमण नहीं कर सकता। इसलिये बिस्मार्क ने यूरोपियन शक्तियों से मित्रता स्थापित करने का प्रयास किया। उसने रूस,

आस्ट्रिया व इटली आदि देशों से सन्धियां की और इंगलण्ड के साथ भी मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बनाये रखे।

(ii) बिस्मार्क यूरोप की यथास्थिति बनाये रखने के पक्ष मे था।

(1) तीन सम्राटों के संघ की स्थापना (1873)—बिस्मार्क ने अपनी विदेश नीति के उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए तीन सम्राटों के संघ की स्थापना की। इस संघ में जर्मनी, आस्ट्रिया और रूस के शासक थे। इन तीनों ही देशों के शासकों के बीच एक समझौता 1873 ई० में हुआ जो कि तीन सम्राटों के संघ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस समझौते के अनुसार तीनों ही देशों के शासकों ने यह वायदा किया कि वे यूरोप में शांति बनाये रखने का प्रयास करेंगे तथा वार्ता द्वारा आपसी झगड़ों का हल निकालेंगे। बिस्मार्क आस्ट्रिया और रूस दोनों से एक साथ संधि करने में सफल हुआ। परन्तु वह जानता था कि बाल्कन प्रदेश में दोनों के आपसी हित टकराते हैं, इसलिये उनमें अधिक समय मित्रता नहीं रह सकती।

1875 ई० में ऐसा लगने लगा कि फ्रांस और जर्मनी के बीच युद्ध प्रारम्भ हो जायेगा। उस समय रूस ने जर्मनी की मित्रता का प्रदर्शन नहीं किया तो बिस्मार्क ने आस्ट्रिया के साथ अपने सम्बन्ध और दृढ़ बनाने का निश्चय किया गया।

1877–1878 ई० में रूस और टर्की के बीच युद्ध प्रारम्भ हो गया। इस युद्ध में रूस विजयी हुआ और उसने टर्की को सन स्टीफनो की सन्धि करने के लिए विवश किया। इस सन्धि से रूस को टर्की के कई प्रदेश प्राप्त हुये। इंगलैंड और आस्ट्रिया ने इस सन्धि का विरोध किया। इसलिये इस सन्धि की शर्तों पर पुनः विचार करने के लिये बर्लिन में एक सम्मेलन 1878 ई० में बुलाया गया। यह सम्मेलन बर्लिन कांग्रेस के नाम से प्रसिद्ध है। इस सम्मेलन की अध्यक्षता बिस्मार्क ने की। यद्यपि बिस्मार्क ने कहा था कि मैंने ईमानदार दलाल के रूप में अपनी भूमिका निभाई है परन्तु उसने इस सम्मेलन में रूस के विरुद्ध आस्ट्रिया के हितों की रक्षा की। इससे रूस जर्मनी से नाराज हो गया, क्योंकि बर्लिन कांग्रेस में उसे सन स्टीफनो सन्धि द्वारा प्राप्त कई प्रदेशों से वंचित कर दिया गया था। जिसके परिणामस्वरूप तीन सम्राटों का संघ प्रभावहीन हो गया।

द्विगुट सन्धि (1879 ई०)—बर्लिन सन्धि में बिस्मार्क ने आस्ट्रिया के हितों की रक्षा कर उसे अपना घनिष्ट मित्र बना लिया था। इसलिये 1879 ई० में जर्मनी और आस्ट्रिया के बीच एक सन्धि हुई जो द्विगुट सन्धि के नाम से प्रसिद्ध है। यह एक गुप्त सैनिक सन्धि थी। इस सन्धि के अनुसार यह निश्चित किया गया था कि यदि रूस आक्रमण करेगा तो दोनों देश एक दूसरे की सहायता करेंगे। इसके अतिरिक्त यदि दोनों देशों में से कोई भी देश रूस के अलावा किसी अन्य देश से युद्ध करेगा तो दूसरा तटस्थ रहेगा। यदि रूस शत्रु की सहायता करेगा

तो दोनो एक दूसरे की सहायता करेगे। इस सधि से बिस्माक की रूस के साथ मित्रता समाप्त हो गई।

त्रिगुट का निर्माण (1882 ई०) —1882 ई० मे फ्रास और इटली के बीच टयूनिस के प्रदेश को लेकर मनमुटाव हो गया था। इटली टयूनिस के प्रदश पर अधिकार करना चाहता था। जब फ्रास ने इस प्रदेश पर अधिकार कर लिया तो इटली फ्रास से भयकर नाराज हुआ। बिस्माक ने इस अवसर का लाभ उठाकर उसे अपने गुट मे शामिल कर लिया। 1822 ई० मे जमनी आस्ट्रिया और इटली के बीच एक सधि हुई जिसे त्रिगुट की सधि कहा जाता है। यह सधि पाच वष के लिए की गई थी परतु समय समय इस की अवधि बढती रही और इस प्रकार यह सधि 1914 के प्रारम्भ तक चलती रही।

तीन सम्राटों के सघ की पुनर्स्थापना — त्रिगुट के निर्माण से पूव बिस्माक ने जून 1881 ई० म तीन सम्राटो क सघ की पुनर्स्थापना की और रूस को फिर से अपना मित्र बना लिया था।

पुनरुश्वासन सधि —बिस्माक ने 1887 ई० म रूस के साथ एक सुरक्षात्मक सधि की, जो इतिहास में पुनरुश्वासन सधि (रि० इस्योरेन्स ट्रीटी) के नाम स प्रसिद्ध है।

बिस्माक की औपनिवेशिक नीति —बिस्माक ने फ्रास का ध्यान यूरोप स हटाने के लिये उसे औपनिवेशिक साम्राज्य की दौड मे भाग लने के लिय प्ररित किया। बिस्माक यह जानता था कि यदि फ्रास उपनिवेशो के निर्माण मे लग जायगा, तो वह अपनी 1870 ई० की पराजय का बदला लेना भूल जायेगा। इस औपनिवेशिक दौड मे भाग लेने से उसके इगलण्ड के साथ सम्बध निश्चत रूप से कटु हो जायेंगे।

इग्लड के साथ सम्बध —बिस्माक ने इगलैंड के साथ मित्रतापूण सम्बध स्थापित किये। उसने इगलड को खुश रखने के लिये जमनी की नाविक शक्ति का विकास नही किया और औपनिवेशिक दौड में भाग नही लिया। बिस्माक ने स्वय एक बार यह कहा था कि इगलैंड समुद्री चूहा है और जमनी जमीन का चूहा है। इसलिये दोनो के बीच कभी युद्ध नहीं हो सकता।

बिस्माक एक उच्चकोटि का राजनीतिज्ञ था। वह एक ऐसा जादूगर था जो पांच गेंदो से एक साथ खेलता था, जिसमें से दो हमशा हवा मे उछलती रहती थी और आवश्यकता पडने पर इनको भी अपने हाथो म रख सकता था। ये पाच गेंदे थी—आस्ट्रिया, रूस, प्रशा, इगलण्ड और इटली। उसने अपनी कूटनीति से जमनी की सुरक्षा की थी। जमनी पर रूस के आक्रमण के समय आस्ट्रिया की सहायता आस्ट्रिया के आक्रमण करने पर रूस की सहायता, फ्रास के आक्रमण होने पर इटली की सहायता, फ्रास और रूस का सयुक्त आक्रमण होने पर आस्ट्रिया

और इटली की संयुक्त सहायता का आश्वासन प्राप्त कर लिया था। इससे यह स्पष्ट है कि यह एक ऐसी गुत्थीदार व्यवस्था थी, जिसका संचालन केवल बिस्मार्क ही कर सकता था।

विलियम द्वितीय की 'विश्व नीति'—बिस्मार्क की विदेश नीति बहुत पेचीदा थी। उसके उत्तराधिकारी इस व्यवस्था को नहीं चला सके। परिणामस्वरूप 1890 ई० में उसके पतन के साथ-साथ उसकी व्यवस्था भी समाप्त हो गई। 1888 ई० में कैसर विलियम द्वितीय जर्मनी का शासक बना। वह राजा के दैविक अधिकारों में विश्वास रखता था। इसलिये 1890 ई० तक उसने राज्य की शक्ति अपने हाथों में केन्द्रित कर ली। उसके शासनकाल में मंत्रियों की स्थिति क्लर्कों के समान हो गई। वह शासन कार्य में किसी से परामर्श नहीं लेता था। उसने 1890 ई० में बिस्मार्क को हटा दिया था। विलियम द्वितीय बहुत महत्वाकांक्षी शासक था। वह जर्मनी को विश्व की सर्वोच्च शक्ति बनाना चाहता था। उसकी इस नीति के कारण जर्मनी की रूस से मित्रता समाप्त हो गई और रूस ने फ्रांस से सन्धि कर ली।

बिस्मार्क ने रूस के साथ रि-इन्श्योरेन्स ट्रीटी की थी। इस सन्धि के अनुसार यह निश्चित किया गया था कि यदि जर्मनी पर फ्रांस आक्रमण करेगा तो रूस तटस्थ रहेगा। इसके बदले में जर्मनी बाल्कन प्रायद्वीप में उसके हितों का विरोध नहीं करेगा। इस सन्धि की अवधि 1890 ई० में समाप्त हो गई और कैसर विलियम द्वितीय ने इसे दुहराने से इन्कार कर दिया। वास्तविकता यह थी कि बाल्कन प्रायद्वीप में रूस और आस्ट्रिया दोनों के हित टकराते थे, इसलिये जर्मनी के लिये यह सम्भव नहीं था कि वह एक ही समय में अपने दोनों मित्रों के हितों की रक्षा कर सके।

कैसर विलियम द्वितीय ने जब रि-इन्श्योरेन्स ट्रीटी को दुहराने से इन्कार कर दिया तो रूस अकेला पड़ गया। उसने नये मित्र की खोज प्रारम्भ की। इसका एक कारण यह भी था कि रूस को अपने औद्योगिक एवं सैनिक विकास के लिये एक बड़ी धन राशि की आवश्यकता थी। जर्मनी ने रूस को कर्ज देने से इन्कार कर दिया था। उधर फ्रांस के पास धन की कोई कमी नहीं थी। वह किसी भी कीमत पर अपना एकाकीपन समाप्त करना चाहता था। इसलिये वह मित्र की खोज कर रहा था। उधर रूस भी मित्र की खोज कर रहा था। रूस ने फ्रांस से मित्रता की बातचीत प्रारम्भ की। परिणामस्वरूप 1894 ई० में रूस और फ्रांस में एक सैनिक सन्धि हो गई। इस सन्धि के अनुसार यह निश्चित किया गया कि यदि दोनों पर जर्मनी या उसकी सहायता से अन्य कोई देश आक्रमण करेगा तो दोनों एक दूसरे की सहायता करेंगे। इस सन्धि से लगभग 23 वर्ष बाद फ्रांस रूस से

मित्रता करके अपना एकाकीपन समाप्त करने म सफल हुआ। इसने बिस्मार्क की व्यवस्था को पगु बना दिया।

कैसर विलियम द्वितीय की नीति के कारण इगलैड न केवल जर्मनी का विरोधी बन गया अपितु उसके विरोधी गुट का सदस्य बनने के लिए बाध्य हो गया। कैसर विलियम ने जर्मनी की नौसेना का विकास करने के लिए टिरपिज को नौसेना का सचिव नियुक्त किया। उसने 1898 ई० म तथा 1900 ई० म नौसेना के विकास के लिए विशेष कानून पास किये। कैसर के द्वारा नाविक शक्ति के विकास के कारण इगलैड जर्मनी से दूर होता गया। अत ब्रिटेन ने फ्रांस से मित्रता करने के लिये दोस्ती का हाथ बढ़ाया।

कैसर ने टर्की से इजाजत लेकर बास्फोरस से बगदाद और फारस की खाड़ी तक एक रेल्वे मार्ग का निर्माण कराना प्रारम्भ किया। इस योजना से स्वेज नहर और भारत की सुरक्षा को खतरा पैदा हो गया। इससे जर्मनी के सम्बन्ध इगलैड के साथ और कटु बन गये। इसी समय दक्षिण अफ्रीका के बोअर युद्ध में कैसर ने इगलैण्ड के विरुद्ध बोअरों का समर्थन किया। परिणामस्वरूप दोनों देशों के सम्बन्धों में और कटुता आ गई। इस समय इगलैड ने अपने को अकेला पाया। इस अकेलेपन को दूर करने के लिये उसने 1902 ई० में जापान के साथ सन्धि की।

इसके पश्चात इगलैड ने 1904 ई० में फ्रांस के साथ सन्धि कर ली। फ्रांस ने मिश्र में इगलैंड के विशेषाधिकारों को स्वीकार कर लिया। इसके बदले में इगलैण्ड ने मोरक्को में फ्रांसीसी प्रभाव को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार सदियों के शत्रु इगलैड और फ्रांस मित्रता के सूत्र में बंध गये। फ्रांस इगलैड और रूस दोनों का मित्र था। उसके प्रयासों से 1907 ई० में तीनों राष्ट्र इगलैड, फ्रांस और रूस के बीच एक सन्धि हो गई जो कि राष्ट्र मैत्री के नाम से प्रसिद्ध है। इस प्रकार कैसर की नीति के कारण बिस्मार्क के त्रिगुट के विरुद्ध त्रिराष्ट्र मैत्री गुट का निर्माण हो गया। कैसर की नीति व अन्य कार्यों से दोनों गुटों में तनाव बढ़ा। जिसके कारण प्रथम विश्व युद्ध प्रारंभ हुआ।

विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय संकट —बिस्मार्क की सन्धि सन्धियों के कारण यूरोप में शस्त्रीकरण की होड़ प्रारम्भ हो गई। इन सन्धियों के कारण प्रत्येक राष्ट्र एक दूसरे को सन्देह और अविश्वास की दृष्टि से देखने लगा। 1906 ई० तक सम्पूर्ण यूरोप दो सशस्त्र शिविरों में विभाजित हो गया था। राष्ट्रों में तनावपूर्ण सम्बन्ध थे। कोई भी अन्तर्राष्ट्रीय तनाव युद्ध प्रारम्भ कर सकता था। 20 वी शताब्दी के प्रारम्भ में कई बार ऐसा लगा कि युद्ध प्रारम्भ हो जायगा परन्तु राजनीतिक सौदेबाजी के द्वारा युद्ध को टाल दिया गया। उस समय घटित घटनाओं के कारण राष्ट्रों के आपसी मनमुटाव में वृद्धि हुई और वे अपने शस्त्रों में वृद्धि करने लगे। 1905

ई० स 1913 ई० तक विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय सकट उत्पन्न हुये जिसके कारण कई बार युद्ध हुए। इन घटनाओं का सक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है —

1—मोरक्को सकट (1905 ई०) —फ्रास का अफ्रीका के मोरक्को प्रदेश मे भारी व्यापारिक स्वार्थ था। 1904 ई० की द्विराष्ट्र मैत्री के अनुसार ब्रिटेन ने मोरक्को म फ्रास के प्रभाव को स्वीकार कर लिया। अब फ्रास न मोरक्को म अपनी स्थिति को मजबूत करना प्रारम्भ किया। जर्मनी का भी मोरक्को म भारी व्यापारिक स्वार्थ था। इसलिये कैसर विलियम द्वितीय न फ्रास के बढते हुये प्रभाव का विरोध किया। 1904 ई० म कैसर टैन्जियर की यात्रा पर गया। वहा पहुच कर उसन मोरक्को की स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। इस समय मोरक्को के प्रश्न को लेकर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाने की माग की गई। कैसर ने फज (मोरक्को की राजधानी) के सम्राट को यह वचन दिया था कि यदि फ्रास सम्मेलन बुलाने का विरोध करेगा तो वह उसे सैनिक सहायता देगा।

कैसर के इस काय स फ्रास म बडा रोष फैला, परन्तु इस समय फ्रास का मित्र रूस, जापान द्वारा पराजित कर दिया गया था। इसलिये फ्रास युद्ध का खतरा मोल नही लेना चाहता था। अत उसे विवश होकर सम्मेलन बुलाने की माग स्वीकार करनी पड़ी। 1906 ई० मे अल्जेसिराज म एक सम्मेलन बुलाया गया। इस सम्मेलन मे रूस इटली आस्ट्रिया, ब्रिटेन और अमेरिका न भाग लिया। आस्ट्रिया और इटली न जर्मनी का समर्थन किया, परन्तु ब्रिटेन, रूस और अमेरिका ने फ्रास का जोरदार शब्दों म समर्थन किया। परिणामस्वरूप मोरक्को म फ्रासीसी प्रभाव क्षेत्र को स्वीकार कर लिया गया और जर्मनी को मुह की खानी पडी। इस सकट न इगलैंड और फ्रास को घनिष्ट मित्र बना दिया। यद्यपि युद्ध टल गया, परन्तु जर्मनी ने अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र म अपनी प्रतिष्ठा म वृद्धि करने के लिए सैनिक शक्ति म वृद्धि करना प्रारम्भ किया।

मोरक्को सकट (1911 ई०) —1908 ई० में मोरक्को सकट फिर स प्रारम्भ हुआ। इस समय कसाब्लका म स्थित जर्मन दूतावास न कुछ फ्रासीसी सैनिकों को अपने दूतावास म आश्रय दे दिया। इस पर फ्रासीसी सेना ने जर्मन दूतावास पर हमला कर दिया। इसमे युद्ध का वातावरण उपस्थित हो गया। इस मामले को हेग न्यायालय म भेज दिया गया। इससे यह सकट टल गया। 1909 ई० म जर्मनी ने मोरक्को म फ्रास के प्रभाव को स्वीकार कर लिया। इसके बदले म फ्रास न जर्मनी को मोरक्को में कुछ व्यापारिक सुविधाए प्रदान की।

1911 ई० म मोरक्को मे पुन सकट उठ खडा हुआ। इस समय वहा के राष्ट्रवादियो ने फ्रास के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। फ्रास ने इस आन्दोलन को कुचलने के लिये अपनी सेना को मोरक्को म भेजा। फ्रासीसियो की रक्षा करने के लिये मोरक्को की राजधानी फज पर कब्जा कर लिया। जर्मनी ने फ्रास

की इस कार्यवाही का विरोध किया। उसने कहा कि फ्रांस ने मोरक्को में सेना भेज कर अल्जसिराज सम्मेलन के निर्णयों का उल्लंघन किया है। जर्मनी ने अपने व्यापारिक हितों की रक्षा के लिए 'पैंथर' नामक एक युद्धपोत को मोरक्को के अगादीर बन्दरगाह पर भेजा। फ्रांस और ब्रिटेन ने जर्मनी की इस कार्यवाही का विरोध किया। ब्रिटेन ने जर्मनी से कहा कि यदि उसने अपनी इस कार्यवाही को नहीं रोका तो वह उसके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर देगा। ब्रिटेन की युद्ध की धमकी के आगे जर्मनी को झुकना पड़ा। नवम्बर में एक समझौता हुआ। जिसके अनुसार जर्मनी ने सम्पूर्ण मोरक्को में फ्रांस के प्रभाव क्षेत्र को स्वीकार कर लिया। इसके बदले में फ्रांस ने फ्रेंच कांगो के आस पास के कुछ क्षेत्र पर जर्मनी को अधिकार दे दिया।

2—बाल्कन संकट —1878 ई० की बर्लिन सन्धि के अनुसार हर्जेगोविना और बोस्निया के प्रदेशों पर आस्ट्रिया को शासन करने का अधिकार दिया था। 1908 ई० में आस्ट्रिया ने इन दोनों प्रदेशों को अपने राज्य में सम्मिलित कर दिया। इससे सर्बिया भयंकर नाराज हो गया। इन दोनों प्रदेशों में सर्बों की आबादी अधिक थी। इसलिये सर्बिया इन प्रदेशों पर अधिकार करना चाहता था। रूस सर्बिया का समर्थन कर रहा था जबकि जर्मनी आस्ट्रिया का। रूस की सहायता पाकर सर्बिया ने युद्ध की तैयारी करनी प्रारम्भ कर दी। दूसरी तरफ जर्मनी ने आस्ट्रिया की कार्यवाही को उचित ठहराया। उसने रूस को चेतावनी दी कि यदि वह आस्ट्रिया के विरुद्ध सर्बिया की सहायता करेगा तो जर्मनी को बाध्य होकर आस्ट्रिया के पक्ष में युद्ध में भाग लेना पड़ेगा। रूस युद्ध का खतरा मोल नहीं लेना चाहता था, क्योंकि वह युद्ध के लिये तैयार नहीं था। 1904–5 ई० की पराजय के बाद वह अपनी सैनिक शक्ति में सुधार नहीं कर सका था। इस समय वह इस स्थिति में नहीं था कि जर्मनी और आस्ट्रिया की संयुक्त सेनाओं से युद्ध कर सके। इसलिये बोस्निया संकट टल गया। यह आस्ट्रिया और जर्मनी की कूटनीतिक विजय थी और फ्रांस, रूस और इंगलैंड गुट की कूटनीतिक पराजय थी। यद्यपि यह संकट टल गया परन्तु इस बार रूस में जर्मनी के विरुद्ध भयंकर असन्तोष फैलने लगा।

3—बाल्कन युद्ध (1) प्रथम बाल्कन युद्ध (1912 ई०) —एक समय वह था जबकि सम्पूर्ण बाल्कन प्रायद्वीप टर्की के अधीन था। परन्तु धीरे धीरे अधिकांश प्रदेश स्वतन्त्र होते गये। जो प्रदेश बच गये थे, उस पर भी बाल्कन के छोटे छोटे राज्यों की आँखें लगी हुई थीं। इन राज्यों ने 1912 ई० में बाल्कन संघ की स्थापना की। सर्बिया, मान्टनीग्रो, बुल्गेरिया तथा यूनान आदि राज्य बाल्कन संघ के सदस्य थे। इस संघ का निर्माण टर्की के विरुद्ध सम्भावित युद्ध के लिये हुआ था।

1912 ई० में रूस के प्रोत्साहित करने पर बाल्कन संघ के सदस्यों ने टर्की

के विरुद्ध युद्ध प्रारम्भ कर दिया। इसे प्रथम बाल्कन युद्ध कहते हैं। टर्की ने बाल्कन संघ के सदस्यों का युद्ध में डटकर मुकाबला किया परन्तु बहुत कम अवधि में बाल्कन संघ के सदस्यों ने टर्की को युद्ध में पराजित कर दिया। इस प्रथम बाल्कन युद्ध में बाल्कन संघ के सदस्यों की शानदार विजय हुई। बाल्कन युद्ध में विजय के फलस्वरूप सर्बिया की शक्ति में वृद्धि हुई। उसे कुछ प्रदेश भी प्राप्त हुये थे।

आस्ट्रिया सर्बिया के विकास को बर्दाश्त नहीं कर सकता था क्योंकि उसे यह आशंका थी कि यदि सर्बिया एक शक्तिशाली देश बन गया तो वह एजियन सागर तक अपने साम्राज्य का विस्तार नहीं कर सकेगा। इसके अतिरिक्त आस्ट्रिया को यह भी भय था कि उसे दक्षिण के प्रदेश में रहने वाले स्लाव जाति के लोग सर्बिया में मिलने की मांग न करने लगें। इससे आस्ट्रियन साम्राज्य के विघटन की सम्भावनाएं थी। इसलिए आस्ट्रिया और सर्बिया के बीच तनावपूर्ण सम्बन्ध हो गये। विजित प्रदेशों के बटवारे के प्रश्न को लेकर बाल्कन संघ के देशों में मतभेद प्रारम्भ हो गया। आस्ट्रिया ने इस मत भेद को अधिक बढाने में सहायता दी। प्रथम बाल्कन युद्ध की समाप्ति लन्दन सम्मेलन के द्वारा ही सम्भव हो सकी। इस समय अल्बानिया को एक स्वतन्त्र राज्य के रूप में स्वीकार कर लिया गया।

द्वितीय बाल्कन युद्ध (1913 ई०) —प्रथम बाल्कन युद्ध के बाद लन्दन में बुलाये गये सम्मेलन में विभिन्न राष्ट्रों के आपसी मतभेद स्पष्ट नजर आने लगे थे। सर्बिया स्वतन्त्र अल्बानिया के निर्माण से नाराज था, इसलिये वह मेसीडोनिया पर अधिकार करना चाहता था। बुल्गेरिया ने सर्बिया की इस मांग को अस्वीकार कर दिया और सर्बिया पर आक्रमण कर दिया। इस प्रकार मेसीडोनिया पर अधिकार करने के प्रश्न को लेकर सर्बिया और बुल्गेरिया के बीच युद्ध प्रारम्भ हो गया। इसे द्वितीय बाल्कन युद्ध कहते हैं।

बुल्गेरिया के सर्बिया पर आक्रमण करते ही रूमानिया और यूनान ने भी बुल्गेरिया पर संयुक्त रूप से आक्रमण कर दिया। टर्की बाल्कन राज्यों के इस आपसी संघर्ष का लाभ उठाकर अपने खोये हुए प्रदेशों पर पुनः अधिकार करना चाहता था। इसलिये उसने भी बुल्गेरिया पर आक्रमण कर दिया। द्वितीय बाल्कन युद्ध में बुल्गेरिया की पराजय हुई और सर्बिया तथा उसके समर्थक देशों यूनान और रूमानिया की शानदार विजय हुई। इस युद्ध में सर्बिया की विजय होने के कारण बुल्गेरिया को मेसीडोनिया का अधिकांश हिस्सा उसको देना पड़ा। इन युद्धों ने प्रथम विश्व युद्ध का वातावरण तैयार कर दिया।

आस्ट्रिया के युवराज की हत्या और प्रथम विश्व युद्ध का खतरा—द्वितीय बाल्कन युद्ध में सर्बिया की विजय से आस्ट्रिया अप्रसन्न था। उसने सर्बिया की शक्ति को कुचलने के लिये योजनाऐं बनाना प्रारम्भ कर दिया था। आस्ट्रिया के अधिकृत

बोस्निया और हर्जेगोबिना के प्रदेशों म रहने वाले सब जाति के लोगा ने सर्बिया म मिला के लिये आदोलन और तेज कर दिया था। ऐसे तनावपूण वातावरण म 28 जून 1914 ई० को आस्ट्रिया के युवराज आर्कड्यूक फांसिस फर्निण्ड की सपत्निक हत्या बोस्निया की राजधानी सिराजेवो मे कर दी गई। इस घटना ने प्रथम विश्व युद्ध को प्रारम्भ कर दिया।

प्रथम विश्व युद्ध के कारण —19 वीं और 20 वी शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षो म अ तर्राष्ट्रीय शाति के लिये उपयुक्त वातारण था। उस समय अ तर्राष्ट्रीय क्षेत्र म शाति बनाये रखन क लिये अनेक योजनायें भी तयार की गई। बौद्धिक वग को युद्ध की सम्भावनाऐ दिन प्रतिदिन कम लग रही थी। 1871 ई० स 1914 ई० के बीच यूरोपियन देशा मे आपस म कोई युद्ध नही हुआ था। विभिन्न अन्तर्राष्टीय सकट आये, जिसका शान्तिपूण ढग से समाधान कर युद्ध को टाल दिया गया। यदि उस समय कोई भी देश युद्ध करना चाहता तो उसका मित्र दश उसकी इच्छाओ को नियन्त्रित करने का प्रयास करता था। आस्ट्रिया की विस्तारवादी नीति पर जमनी न नियन्त्रण रखा। रूस की निकटपूव म विस्तारवादी नीति पर इगलड और फ्रास न अ कुश लगाया। इसलिये बीसवी शताब्दी के प्रारभ म यूरोपियन राजनेताओ और बौद्धिक वग ने युद्ध को रोकने का हर सम्भव प्रयास किया। फिर भी यह आश्चय की बात है कि 1914 ई० मे ही यह युद्ध प्रारम्भ हो गया। इसके प्रारम्भ होने के अनक मौलिक कारण थे।

इतिहासकार फ ने प्रथम विश्व युद्ध क कारणो को पाच भागो म बाटा है जो निम्नलिखित हैं —

1—उग्र राष्ट्रीयता,
2—आर्थिक साम्राज्यवाद
3—सैनिकवाद
4—गुप्त सनिक सन्धियाँ
5—समाचार पत्रो का योगदान।

1—उग्र राष्टीयता —शैपिरो ने लिखा है कि 'राष्टीयता एक नवीन धम था जिसने मानव जाति की गम्भीर समस्याओ का उत्तेजित किया।'

फ्रांस की राज्य क्रान्ति ने यूरोप म राष्ट्रीयता की भावना का प्रचार किया। इस भावना के कारण 19 वी शताब्दी म यूरोप मे अनेक राष्ट्रीय राज्या का निर्माण हुआ। इटली और जमनी का एकीकरण इसके महत्वपूण उदाहरण हैं। इसी भावना के कारण एकीकरण के पश्चात् जमनी और इटली भी उपनिवेशा का निर्माण करना चाहते थे। जिसके फलस्वरूप यूरोपियन देशो म उपनिवशा की स्थापना को लेकर होड प्रारम्भ हुई। जमनी और इटली इस दौड में बहुत देर से शामिल हुए थ। उनके पास उपनिवश नही होने से वे असन्तुष्ट थे। उपनिवेशो

की स्थापना को लेकर यूरोपियन देश दो भागों म विभाजित हो गये। एक भाग म ता व दश आते थे, जो विशाल औपनिवेशिक साम्राज्य क स्वामी थ जैसे इगलैंड और फ्रांस। दूसरे भाग म वे देश आते थे, जिनके पास उपनिवेश नहीं थ, जसे जमनी और इटली। इसलिय जमनी और इटली बडे राष्ट्रो के मुकाबले म उपनिवेशों की स्थापना करना चाहते थ।

1890 ई० के पश्चात जमन सम्राट कसर विलियम द्वितीय ने औपनिवेशिक विस्तार को अपनी विदेश नीति का एक प्रमुख लक्ष्य बनाया। इस नीति के कारण जमनी के सम्बन्ध इगलैंड के साथ कटु हो गये और जमनी के लिए आस्ट्रिया से समझौता बनाय रखना आवश्यक हो गया। इस सकुचित राष्ट्रीयता के कारण अफ्रीका और एशिया म उपनिवेशो की स्थापना को लेकर अनेक बार तनावपूण वातावरण पदा हो गया। प्रत्येक घटना के बाद राष्ट्रों के आपसी सम्बन्ध बिगडते गये। इसी राष्ट्रीयता के नाम पर बाल्कन युद्ध लडा गया और सिराजेवो का हत्या काण्ड हुआ। इन घटनाओं से प्रथम विश्व युद्ध प्रारम्भ हो गया।

(2) आर्थिक साम्राज्यवाद— औद्योगिक क्रांति के पश्चात यूरोपियन देश साम्राज्यवादी नीति पर चल रहे थे। इस क्रान्ति के कारण उद्योगो का विकास हुआ और विशाल पैमाने पर उत्पादन किया जाने लगा। इसलिये यूरोपियन देशो ने अपने माल को बेचने के लिय और कच्चे माल को प्राप्त करने के लिये उपनिवेशो की खोज करनी प्रारम्भ कर दी। अत सभी यूरोपियन देशो मे उपनिवेशो के निर्माण की होड लग गई। इस दौड म इगलैण्ड और फ्रास सबसे आगे निकल गये। ये विशाल औप-निवेशिक साम्राज्य के स्वामी बन गये जबकि दूसरी तरफ इटली और जमनी के पास कोई उपनिवेश नही होने से य नवीन उपनिवेश चाहते थे। प्रत्येक राष्ट्र म उपनिवेशो की स्थापना की होड लगी हुई थी। इस होड म प्रत्येक देश एक दूसरे स आगे निकल जाना चाहता था।

जमनी की औपनिवेशिक नीति क कारण इगलण्ड के साथ उसक सम्बन्ध कटु हो गये। यूरोपियन देशो ने उपनिवेशों के निर्माण को लेकर परस्पर गुटबन्दियां की। जिसके फलस्वरूप 1905 ई० म 1914 ई० तक विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय सकट आय। इस काल को 'दुघटनाओ का काल' कहा जाता है। गुटबन्दियों के कारण ही 1905 व 1911 का मोरक्को सकट एव 1908, 1912 व 1913 का बाल्कन सकट पदा हुआ। यद्यपि यूरोपियन देशों ने कूटनीति से काम लेते हुए इन सकटो को टाल दिया, जिससे यूरोपियन शांति भग नही हो सकी परन्तु, प्रत्येक सकट ने इन राष्ट्रों में भय आपसी द्वेष और आपसी मनमुटाव म वृद्धि की। जिसके फलस्वरूप प्रथम विश्व युद्ध प्रारम्भ हो गया।

(3) सनिक वाद—प्रथम विश्व युद्ध का तीसरा महत्वपूर्ण कारण सनिक

वाद था। इतिहासकार फे ने लिखा है कि सैनिकवाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों मे किया गया।

(i) शस्त्रो का निर्माण किया जाय।

(ii) एक ऐसे वग का प्रमुत्व स्थापित किया जाय, जो प्रत्येक समस्या को युद्ध के माध्यम से ही हल करने का प्रयास करें।

1870 ई० मे बिस्माक ने फ्रास को सीडान युद्ध में पराजित कर 200 वर्षों की र जनीति को बदल दिया। जमनी ने सैनिक शक्ति के द्वारा ही अपना विकास किया था और वह यूरोप का सर्वाधिक शक्तिशाली देश बन गया था। प्रत्येक राष्ट्र अपनी सनिक शक्ति मे वद्धि करने लगा। 1870 ई0 के पश्चात फ्रास 23 वर्षों तक एकाकी रहा। बिस्माक के प्रयासो के कारण वह किसी भी यूरोपियन देशो को अपना मित्र नही बना सका। इसलिये उसने अपनी 1870 ई० की पराजय का बदला लेने के लिये जोर शोर के साथ शस्त्रीकरण प्रारम्भ कर दिया। दूसरी तरफ कसर जमनी को विश्व की सर्वोच्च शक्ति बनाना चाहता था, इसलिये उसने जमनी की सन्य शक्ति मे वृद्धि करना प्रारम्भ कर दिया। कैसर ने नौसना के विकास की ओर विशेष ध्यान दिया। उसने कहा था कि "जमनी का नौ सनिक बेडा इतना शक्तिशाली होगा कि यदि सबसे अधिक बलशाली , नौ सनिक शक्ति भी उससे सघष करेगी, तो उसकी महानता के लिये खतरा उत्पन्न हो जायेगा।'

जमनी द्वारा नौसनिक शक्ति मे वृद्धि करने पर ब्रिटेन उससे दूर होता गया और उसने भी अपनी नौसनिक शक्ति म वद्धि करनी प्रारम्भ कर दी। अब जमनी का अनुसरण करते हुए विभिन्न यूरोपियन देशो ने अपनी सनिक शक्ति म वद्धि करना प्रारम्भ कर दिया। जमनी की भाति अन्य देशो ने अपने यहा अनिवाय सनिक सवा लागू कर दी। सभी देशो ने अपने शस्त्रो मे तीव्र गति से वद्धि करनी प्रारम्भ कर दी। प्रत्येक दश यह कहता था कि वह अपनी सुरक्षा के लिये शस्त्रीकरण कर रहा हैं परन्तु वास्तव मे एक दूसरे के प्रति घृणा और युद्ध का आशका के कारण यह होड लगी हुई थी। प्रत्येक देश अपने पडौसी देश की सैन्य वद्धि को शका की दृष्टि से देखता था। इसके परिणामस्वरूप वह भी अपनी सन्य शक्ति मे वद्धि करना प्रारम्भ कर देता था। शस्त्रीकरण की होड ने यूरोप के वातावरण को विषाक्त बना दिया और प्रथम विश्व युद्ध का वातावरण तयार कर दिया। प्रत्येक बडे देश को अपनी सनिक शक्ति पर गव था। इसलिय वह दूसरे राष्ट्र से सधि करने में और उसक सामने झुकने म अपना अपमान समझता था। ब्रेलिसफोड ने लिखा है कि इस शस्त्रीकरण की होड से युद्ध प्रारम्भ हो गया।

शस्त्रीकरण की होड को समाप्त करने के लिये नि शस्त्रीकरण के सारे प्रयास असफल रहे। रूस के शासक जार निकोलस द्वितीय के प्रयासों से 1899 ई० में हेग म एक सम्मलन बुलाया गया। जिसमे यूरोप के 36 देशो ने भाग लिया, परन्तु

इगलण्ड और फ्रास के विरोध के कारण यह सम्मेलन असफल रहा। इसी प्रकार 1907 ई० म हेग मे यूरोपियन राष्ट्रों का दूसरा सम्मेलन बुलाया गया, परन्तु यह सम्मेलन भी असफल रहा। असफलता का कारण यह था कि इगलण्ड अपनी नौ सनिक शक्ति में कमी नहीं करना चाहता था। जमनी भी अपनी सैनिक शक्ति में कमी करने के लिये तयार नहीं था। इसलिये जब जब भी शस्त्रो की होड को कम करने के लिय प्रयास किये गये, तब-तब राष्ट्रो ने अपने शस्त्रो मे और अधिक वद्धि की। इसलिये नि शस्त्रीकरण के प्रयासो ने युद्ध को रोकने के बजाय इसने लिये उपयुक्त वातावरण बनाया। फ़ेस ने लिखा है कि इस सनिकवाद ने चार तरीको से युद्ध प्रारम्भ करने म सहायता दी—

(i) सनिकवाद न राष्ट्रो में भय, आपसी द्वेष, सदेह और मनमुटाव म वृद्धि की।

(ii) प्रत्यक राष्ट्र को अपनी सनिक शक्ति पर गव था, इसलिय वह दूसरे राष्ट्र के साथ समझौता करने मे अपना अपमान समझता था। आपसी हिता के समझौत भी अब राष्ट्रीय प्रतिष्ठा का प्रश्न बनने लगे।

(iii) जमनी सभी समस्याओ को युद्ध के माध्यम से हल करना चाहता था।

(iv) शस्त्रीकरण के कारण एक नये वग क निर्माताओ का जन्म हुआ। यह वग शस्त्र मे निरन्तर वृद्धि करना चाहता था। इसलिये इस वग ने सनिक वृद्धि का वातावरण बनाने का प्रयास किया। यहाँ तक कि इन शस्त्र निर्माताओं ने अपने प्रयासो से नि शस्त्रीकरण के सम्मेलनो को असफल बना दिया। उन्होंने अपने-अपने देशो मे नि शस्त्रीकरण के विरुद्ध वातावरण तयार किया एवं राष्ट्रीयता की भावनाओं को उभारने का प्रयास किया। इन निर्माताओं के प्रयासो के कारण ही हेग सम्मेलन असफल हो गया।

(4) गुप्त सनिक सधियां—इतिहासकार फे ने लिखा है कि 19वी शताब्दी के अन्तिम वर्षों में और 20वीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में गठित विभिन्न सैनिक समझौतों के कारण प्रथम विश्व युद्ध प्रारम्भ हो गया। फ्रांस और प्रशा युद्ध से गुप्त सधियों की शुरुआत हुई। बिस्मार्क ने फ्रांस को मित्रहीन बनाये रखने के लिये यूरोपियन देशो के साथ सनिक समझौते किये। 1879 ई० म बिस्मार्क ने द्विगुट सधि की। इस सधि के कारण आस्ट्रिया जमनी का मित्र हो गया। 1882 ई० में इटली के इस द्विगुट में शामिल हो जाने से यह त्रिगुट सगठन मे परिणित हो गया। इससे इटली आस्ट्रिया व जमनी का मित्र बन गया।

बिस्मार्क के पतन के बाद फ्रास ने 23 वष बाद अपने एकाकीपन को समाप्त किया और 1894 ई० में उसने रूस के साथ एक सधि की। जिसे द्वि मैत्री सधि

कहा जाता है। 1904 ई० म फ्रास ने इ गलण्ड स सधि कर उसे अपना मित्र बना लिया। इस सधि के अनुसार दोनो ने एक दूसरे को सहायता देने का वचन दिया। 1907 ई० म रूस भी इ गलण्ड और फ्रांस के गुट म सम्मिलित हो गया। इससे त्रिराष्ट्र मत्री का निर्माण हो गया। अब इ गलण्ड और फ्रास को रूस सहयोगी के रूप मे मिल गया। इस प्रकार 1907 ई० तक इन गुप्त सनिक सधियो के कारण सम्पूण यूरोप दो सशस्त्र शिविरो मे बँट गया। बिस्मार्क द्वारा निर्मित त्रिगुट म जमनी आस्ट्रिया और इटली आदि देश थे। फ्रास ने बिस्मार्क के इस गुट के विरुद्ध एक त्रिवर्गीय मत्री गुट का निर्माण किया। जिसक सदस्य फ्रास, रूस और इ गलण्ड आदि देश थे। इन दोनो गुटो मे परस्पर प्रतिस्पर्द्धा थी।

इतिहासकार बेंस ने लिखा है कि 20वी शताब्दी के प्रारम्भ म सम्पूण यूरोप दो सशस्त्र सनिक शिविरा म विभाजित हो गया था। ये दोना ही गुट सनिक दृष्टि स काफी शक्तिशाली और बहुत महत्वाकाक्षी थे। इन सधिया के कारण यूरोप दो गुटो म बँट गया था। ये दोनो ही गुट आपस मे प्रतिस्पर्द्धा रखते थे और एक दूसरे को सन्देह और भय की दृष्टि से देखते थे। इन गुटो ने युद्ध के लिये उपयुक्त वातावरण तयार कर दिया था। इन सधियो के कारण यूरोपियन देशो म तनाव बढ गया।

यह सारी सधिया रक्षात्मक थी परन्तु धीरे धीरे इनका रूप आक्रामक हो गया था। इन सधिया न शाति स्थापना म भी महत्वपूण सहायता की। सगठन के एक देश को दूसरे देश की महत्वाकाक्षाओ पर अकुश लगाने म कई बार सफलता मिली। जसे कि आस्ट्रिया की आक्रामक बाल्कन नीति को जमनी ने हमेशा नियत्रण में रखा। इसी प्रकार फ्रास और इ गलण्ड ने रूस की महत्वाकाक्षाओ पर अकुश लगाया। इतना सब कुछ होते हुए भी प्रत्येक गुट के सदस्य को एक दूसरे के मामलो म सही या गलत बात होन पर भी समथन करना पडता था, क्योकि वे सधि के अनुसार ऐसा करन के लिये वचनबद्ध थे। यद्यपि यह सत्य है कि ऐसे समथन म गुट के सदस्य राष्ट्रो का अपना कोई स्वाथ नहीं होता था परन्तु सगठन को मजबूत बनाये रखने के लिये वे इस प्रकार का समथन करते थे। उदाहरणाथ, जमनी बाल्कन राजनीति म आस्ट्रिया का समथन इसलिये करता था, क्योकि वह उसके गुट का सदस्य था। इसी तरह फ्रांस रूस की सहायता के लिये वचनबद्ध था। जमनी और फ्रास दोनो का बाल्कन राजनीति मे प्रत्यक्ष कोई स्वाथ नहीं था। ग्रे ने लिखा है कि इ गलण्ड के सामने फ्रांस और रूस के समथन के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नही था।

इन गुप्त सधिया ने यूरोप के वातावरण को विषाक्त बना दिया। अब प्रत्येक यूरोपियन देश शस्त्रो म वृद्धि करने लगा। इसलिये युद्ध की सम्भावनाएँ दिन प्रति दिन बढती गई। कुछ देशों ने तो ये सधिया आक्रामक रूप प्रदान करने के लिये ही

की थीं। प्रीमम ने कहा है कि इटली और आस्ट्रिया ने संधि संगठन आक्रामक रूप प्रदान करने के उद्देश्य से ही किया।

सर्बिया के प्रश्न से जमनी का कोई लेना देना नहीं था। आस्ट्रिया उसके गुट का सदस्य था, इसलिये उसे युद्ध की घोषणा करनी पड़ी। जमनी आस्ट्रिया का समर्थन कर रहा था। इसलिये फ्रांस ने सर्बिया का समर्थन किया। फ्रांस को यह विश्वास था कि उसके गुट का सदस्य इंगलैण्ड उसका समर्थन निश्चित रूप से करेगा। यदि हम गम्भीरता से सर्बिया के कार्य का अध्ययन करें तो पता चलता है कि यह कोई ऐसा कार्य नहीं था कि जिसमें युद्ध होने की नौबत आ जाये। इसके अतिरिक्त सर्बिया ने अपने अपराध को स्वीकार भी कर लिया था। इतना ही नहीं आस्ट्रिया द्वारा रखी गई अपमानजनक शर्तों को भी स्वीकार कर लिया था। परन्तु जमनी चाहता कि युद्ध हो। इसलिए उसने आस्ट्रिया को सर्बिया पर आक्रमण करने के लिये प्रोत्साहित किया। रूस ने आस्ट्रिया को नीचा दिखाने के लिये युद्ध की घोषणा कर दी। यह स्पष्ट हो जाता है कि यह युद्ध आस्ट्रिया और सर्बिया के बीच न होकर त्रिगुट और त्रिराष्ट्र मैत्री के बीच लड़ा जा रहा था। हेरजिमरमा ने ब्रिटिश राजदूत से कहा था कि यह (युद्ध) गुटबंदी प्रणाली के कारण हुआ है जो आधुनिक युग का अभिशाप है।"

(5) समाचार पत्रों का योगदान—प्राफेसर फे ने लिखा है कि समाचार पत्र और साहित्य ने यूरोप में कटु वातावरण बनाने में महत्वपूर्ण सहायता दी। जिसके कारण प्रथम विश्वयुद्ध का वातावरण तैयार हो गया। सभी यूरोपियन देशों के समाचार पत्रों ने लोकमत को विषाक्त बना दिया। कुछ यूरोपियन समाचार पत्रों ने राष्ट्रीय भावनाओं को उभाड़ा। दूसरे देशों के बारे में गलत प्रचार किया और शांति कायम करने वाली बातों का विरोध किया। इस समय कई देश युद्ध चाहते थे कि शांतिपूर्ण ढंग से समस्याओं का समाधान कर लिया जाए। परन्तु समाचार पत्रों के कारण सफलता नहीं मिली।

इंगलैण्ड और जमनी के सम्बन्धों को सुधारने के लिये अनेक प्रयास किये गये परन्तु समाचार पत्रों के कारण ये प्रयास असफल रहे। जमनी के समाचार पत्रों ने सैनिक शक्ति को बढ़ाने पर विशेष जोर दिया। 1914 ई० में आस्ट्रिया के युवराज की हत्या की समस्या इसलिए शांतिपूर्वक हल नहीं हो सकी क्योंकि आस्ट्रिया और सर्बिया के समाचार पत्रों ने वातावरण को विषाक्त बना दिया था।

6—अन्य कारण—

(1) विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय संकट—प्रथम महत्वपूर्ण संकट 1905 ई० में मोरक्को में उपस्थित हुआ। इस संकट के कारण इंगलैण्ड और फ्रांस के साथ जमनी के सम्बन्ध कटु हो गये। 1911 ई० में मोरक्को संकट पुनः उठ खड़ा हुआ। इस समय जर्मनी ने मोरक्को में हस्तक्षेप किया परन्तु इंगलैण्ड और फ्रांस के सामने उसे

झुकना पड़ा। इससे जर्मनी के इंगलैण्ड और फ्रांस के साथ सम्बन्ध और अधिक कटु हो गए।

दूसरा महत्वपूर्ण संकट बाल्कन प्रायद्वीप में पैदा हुआ। आस्ट्रिया ने बर्लिन संधि का उल्लंघन करते हुए 1908 ई० में बोस्निया और हर्जेगोविना पर अधिकार कर अपने साम्राज्य में मिला लिया। सर्बिया ने इसका विरोध किया परन्तु जर्मनी के हस्तक्षेप के कारण यह संकट टल गया। बोस्निया संकट के कारण आस्ट्रिया और जर्मनी के सम्बन्ध फ्रांस रूस और इंगलैण्ड के साथ कटु हो गये।

तीसरा महत्वपूर्ण संकट 1912–1913 के दो बाल्कन युद्धों से उपस्थित हुआ। पहला बाल्कन 1912 ई० में हुआ। जिसमें टर्की के विरुद्ध बाल्कन राज्यों की विजय हुई। विजित प्रदेशों के बँटवारे के प्रश्न को लेकर बाल्कन राज्यों में 1913 ई० में द्वितीय बाल्कन युद्ध हुआ। इन युद्धों से आस्ट्रिया के सर्बिया के साथ सम्बन्ध तनावपूर्ण हो गये। इन घटनाओं ने प्रथम विश्व युद्ध का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

(ii) अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का अभाव—उस समय युद्ध की सम्भावनाएँ दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी किन्तु ऐसी कोई संस्था नहीं थी जो युद्ध को रोक सके और समस्याओं का शांतिपूर्ण ढंग से समाधान कर सके। यद्यपि रूस ने इस ओर प्रयास किया था, परन्तु असफल रहा। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के अभाव के कारण सभी राष्ट्र स्वेच्छाचारी बनते जा रहे थे। इसलिये युद्ध को रोका जाना असम्भव था।

(iii) तत्कालीन कारण—1914 के पूर्व युद्ध के लिये वातावरण तैयार हो चुका था, केवल चिन्गारी की आवश्यकता थी, जो इस युद्ध को प्रारम्भ कर सके। इस समय आस्ट्रिया के युवराज आर्क ड्यूक फ्रांसिस फर्डीनेण्ड की सपत्निक हत्या 28 जून 1914 को बोस्निया की राजधानी सिराजेवो में सर्बियन क्रान्तिकारियों के द्वारा करदी गई। इस घटना ने चिन्गारी का काम किया, जिसके कारण विस्फोट हो गया। जाँच से यह पता चला कि हत्या करने वाला व्यक्ति आस्ट्रिया का नागरिक था और बोस्निया का निवासी था। फिर भी आस्ट्रिया ने राजकुमार की हत्या के लिये सर्बिया को दोषी ठहराया और उसे हत्यारों के राष्ट्र की संज्ञा दी।

डेरी और जर्मन ने लिखा है कि यह सारा हत्याकांड आज भी एक रहस्य है। एक दिन में दो बार राजकुमार की हत्या का प्रयास किया परन्तु फिर भी उसकी सुरक्षा की उचित व्यवस्था नहीं की गई। उसकी अन्त्येष्टी क्रिया में विदेशी राजदूतों को शामिल नहीं होने दिया गया। आस्ट्रिया ने इस सारी घटना की जाँच की। उसे इस हत्याकांड में सर्बिया का हाथ नजर नहीं आ रहा था, परन्तु आस्ट्रिया तो सर्बिया से बदला लेने के अवसर की प्रतीक्षा में था। इसलिये उसने यह अवसर उपयुक्त समझा। आस्ट्रिया को यह भय था कि कहीं रूस सर्बिया की सहायता न करे।

इसलिये उसने जर्मनी से पहले पूछा कि यदि रूस सर्बिया की सहायता करेगा तो जर्मनी आस्ट्रिया की सहायता देगा या नहीं। जर्मनी ने आस्ट्रिया को सहायता देने का आश्वासन दिया। इसके पश्चात् 23 जुलाई 1914 ई० को आस्ट्रिया ने सर्बिया को चेतावनी देते हुए एक पत्र लिखा। जिसमें हत्याकांड का सारा उत्तरदायित्व उस पर डाला गया। आस्ट्रिया ने सर्बिया को पत्र में उल्लिखित सारी मांगों को 48 घंटे में स्वीकार करने के लिये कहा। पत्र की शैली और उसकी शर्तें इतनी कठोर थी कि कोई भी स्वाभिमानी राष्ट्र उसे स्वीकार नहीं कर सकता था। हेजन ने लिखा है कि आस्ट्रिया के पत्र की भाषा कठोर थी और मांगों को अधिनायकवाद की तरह स्वीकार करने के लिये सर्बिया को बाध्य किया गया था।

रूस, इंगलैण्ड और फ्रांस ने अवधि बढ़ाने के लिये प्रयास किया परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। इसलिये उन्होंने सर्बिया को लिखा कि वह आस्ट्रिया के पत्र का उत्तर शांतिपूर्वक और समझौतावादी तरीके से लिखे। इंगलैण्ड ने हेग में महाशक्तियों का सम्मेलन बुलाने का प्रस्ताव रखा परन्तु जर्मनी के विरोध के कारण सफलता नहीं मिली।

सर्बिया ने आस्ट्रिया की एक मांग के अलावा अन्य सभी मांगों को स्वीकार कर लिया। अस्वीकार की जाने वाली मांग यह थी कि जब सर्बिया की अदालत में हत्या का मुकदमा चलाया जायेगा तो सर्बिया के न्यायालय में इस हत्याकांड की जाँच के लिये आस्ट्रिया के अधिकारी भी न्यायाधीश के रूप में बैठेंगे। सर्बिया इस बात के लिये तैयार था कि यदि आस्ट्रिया चाहे तो इस मामले को हेग के अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में या महान शक्तियों के समक्ष रख दे परन्तु वह तो युद्ध चाहता था इसलिये उसने 28 जुलाई 1914 ई० को सर्बिया पर आक्रमण कर दिया। रूस ने अपनी सेनाओं को सर्बिया की सहायता के लिये भेज दिया और अपने सैनिक अभियान भी प्रारम्भ कर दिये।

जर्मनी ने रूस को चेतावनी दी कि वह अपनी सेनायें जर्मन सीमा से हटाले परन्तु रूस ने इस चेतावनी को अस्वीकार कर दिया। इसलिये जर्मनी ने पहली अगस्त 1914 को रूस पर आक्रमण कर दिया। रूस और फ्रांस की संधि के अनुसार फ्रांस ने रूस की सहायता करने का निश्चय किया। इसलिये जर्मनी ने 3 अगस्त को फ्रांस के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया।

अभी तक इंगलैण्ड युद्ध में शामिल नहीं हुआ था। जर्मनी बेल्जियम के मार्ग से फ्रांस पर आक्रमण करना चाहता था। बेल्जियम फ्रांस और जर्मनी के बीच स्थित था। इसलिये जर्मनी ने बेल्जियम से मांग की कि वह उसकी सेनाओं को जाने के लिए मार्ग दे। बेल्जियम ने जर्मनी की इस मांग को अस्वीकार कर दिया। इस पर जर्मन सेनाओं ने जबरदस्ती बेल्जियम में प्रवेश किया। अतः उसने इंगलैण्ड से सहायता करने की अपील की।

इ गलण्ड की सुहानुभूति फ्रांस और रूस के साथ थी परन्तु वह उनकी सहायता करने के लिये बाध्य नहीं था। इ गलण्ड के इस युद्ध में भाग लेने की कोई सभावन नही थी क्याकि सर्बिया के प्रश्न स उसका कोई लेना देना नहीं था। जब 4 अगस्त 1914 ई० को जमनी ने बेल्जियम पर आक्रमण कर दिया तो इ गलण्ड ने उसी दिन जमनी के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया। इ गलण्ड द्वारा युद्ध में भाग लेन का मुख्य कारण यह था कि 1839 ई० की सधि क अनुसार बेल्जियम की स्वतंत्रता की रक्षा का वचन द चुका था। जब जमनी ने बेल्जियम पर आक्रमण किया तो बेल्जियम ने इ गलण्ड स सहायता की अपील की। इसलिए इ गलण्ड को बेल्जियम की स्वतत्रता की रक्षा के लिये युद्ध म भाग लेना पडा। इसके अतिरिक्त वह जमनी की नौ सनिक शक्ति स भी चिंतित था। इसलिये इ गलैण्ड ने जमनी का बेल्जियम की सीमा स सना हटाने की चेतावनी दी। जमनी के अस्वीकार करन पर इ गलण्ड न 4 अगस्त 1914 को जमनी के विरुद्ध युद्ध करने की घोषणा कर दी। इस प्रकार प्रथम विश्व युद्ध प्रारम्भ हो गया। कुछ दिनो बाद टर्की और बुल्गेरिया न जमनी का पक्ष लेकर युद्ध प्रारम्भ कर दिया। जापान ने मित्र राष्ट्रो के पक्ष में युद्ध प्रारम्भ कर दिया। 1917 ई० म अमेरिका न भी मित्र राष्ट्रा क पक्ष में युद्ध छेड दिया। इटली ने अपने गुट के सदस्यो के विरुद्ध मित्र राष्ट्रो का साथ दिया। इस प्रकार यह युद्ध विश्व व्यापी बन गया।

प्रथम विश्व युद्ध का उत्तरदायित्व —वर्साय की सधि की धारा 231 के अनुसार मित्रराष्ट्रो ने जमनी को युद्ध के लिए दोषी ठहराया और सारी जिम्मेदारी उसके सिर पर डाल दी। प्रत्येक देश ने युद्ध का उत्तरदायित्व एक दूसरे पर डालने का प्रयास किया। युद्ध के प्रारम्भ होने के समय जमनी ने व्हाइट बुक प्रकाशित की। इसम 27 तारो को उद्ध त करते हुए उसने यह स्पष्ट किया कि रूस के आक्रमण से अपनी सुरक्षा और स्वतत्रता की रक्षा करने के लिये उसे युद्ध म भाग लेना पडा।

इसी प्रकार इ गलण्ड ने 6 अगस्त को ब्लू बुक निकाली। जिसमे यह दर्शाया गया था कि उनके विदेशमन्त्री ग्रे ने युद्ध को रोकने का हर सभव प्रयास किया परन्तु आस्ट्रिया और जमनी के कारण शाति के प्रयास असफल रहे और उस युद्ध म भाग लेना पडा। इस पुस्तक मे अपने मत की पुष्टि के लिये उसने 150 से अधिक पत्रो को उद्ध त किया। इसी प्रकार रूस ने ओरेंज फ्रास ने यलो, आस्ट्रिया ने लाल बुक प्रकाशित कर यह स्पष्ट किया कि युद्ध की जिम्मेवारी उसकी न होकर उस देश की है जिसके विरुद्ध वह युद्ध कर रहा है।

वास्तव म इसके लिये प्रत्येक देश दोषी था। सर्बिया इस युद्ध के लिये सबसे अधिक जिम्मेदार था। आस्ट्रिया के युवराज की हत्या म सर्बिया के कुछ अधिकारियो का हाथ था। एव सर्बिया का सरकार इस बात को जानती थी। इस प्रकार सर्बिया न युद्धका माग प्रशस्त कर दिया। आस्ट्रिया का यह दोष था कि उस सर्बिया के उत्तर स स तोष नही हुआ और उस पर आक्रमण कर दिया। इसस रूस को भी सर्बिया

की सहायता करने का अवसर मिल गया। रूस न आस्ट्रिया और जमनी के विरुद्ध
सनिक तयारी करके युद्ध के क्षेत्र को विस्तृत बना दिया। उसकी रूस कायवाही स
समझौते के द्वार बन्द हो गये।

इस युद्ध के लिये सबसे अधिक दोषी जमनी था उसका पहला दोष तो यह
था कि उसने बिना सोचे समझे आस्ट्रिया को सहायता करने का आश्वासन दे दिया।
उसने इगलैण्ड, फ्रास और इटली आदि देशो की प्रतिक्रिया पर कोई ध्यान नही दिया
और युद्ध करने की योजना तैयार कर ली। इस प्रकार जमनी न आस्ट्रिया का सहा
यता का आश्वासन देकर रूस को उभाडने का काम किया। कसर विलयम की विश्व
नीति भी युद्ध के लिय उत्तरदायी थी। उसने इस नीति पर चलते हुए जमनी की नौ
ैनिक शक्ति का तजी से विकास किया। उसकी इस नीति के कारण मास्को मक्ट
ा हुआ। उसने बर्लिन बगदाद रेलवे का निर्माण काय प्रारम्भ किया। उसके उन
र्यों से जो राष्ट्र एक दूसरे क कट्टर शत्रु थ, वे अब मित्रता क सूत्र म बध गय।
ैसर की नीति क कारण बिस्माक द्वारा निर्मित त्रिगुट का पतन हो गया और
त्रिराष्ट मैत्री सघ का उदय हुआ। इसलिये जमनी को इस युद्ध के लिये सबसे बडा
दोषी माना जा सकता है। फिर, भी उसने आस्ट्रिया और सर्बिया के बीच तनावपूण
सम्बन्धो को सीमित करने का प्रयास अवश्य किया।

इगलण्ड न इस युद्ध को टालन तथा समस्या का शान्ति पूर्ण ढग स समा
धान करने के लिए हर सम्भव प्रयास किया, परन्तु उसे सफलता नही मिली।
फ्रास ने रूस को इसलिय सहायता दन का निश्चय किया क्योकि उस पुन एकाकी
हो जाने की सम्भावना थी। इन सारी परिस्थितियो को देखते हुए किसी व्यक्ति
विशेष या किसी एक देश पर युद्ध का उत्तरदायित्व नहीं डाला जा सकता। इसके
लिये सभी देश दोषी थ।

क्या यह युद्ध टाला जा सकता था?—यूरोपियन देशो को 1914 ई० का
युद्ध अप्रत्याशित लगा। यूरोप का कोई भी देश न तो विश्व युद्ध के लिए तयार था
और न ही किसी देश का यह आशा थी कि प्रथम विश्व युद्ध हो जायेगा। युद्ध
प्रारम्भ होने के अन्तिम समय तक जमनी ने युद्ध को सीमित रखन का प्रयास
किया।

जमनी ने इगलण्ड क द्वारा किये गये प्रयासो का इसलिये विरोध किया
क्योकि वह अपने मित्र आस्ट्रिया का स्पष्ट रूप से समथन देना चाहता था। रूस
किसी बड़े युद्ध के लिये तयार नहीं था। उसे तो फ्रास से सहायता मिलने की भी
आशा नहीं थी। इगलण्ड ने युद्ध को टालने का हर सम्भव प्रयास किया।, उसी
के प्रयासो से सर्बिया ने आस्ट्रिया की अधिकाश मागों को स्वीकार कर लिया था।
इस समय यूरोपियन शो को यह उम्मीद नहीं थी कि आस्ट्रिया के युवराज
की हत्या को लेकर प्रथम विश्व। युद्ध प्रारम्भ हो जायेगा। इस समय यूरोपियन

देशो मे परस्पर, भय आशका और मनमुटाव इतना हो गया था कि वे एक दूसरे की इच्छाओ को सही रूप से नही समझ पा रहे थे। उस समय यदि कोई अन्तर्राष्ट्रीय सस्था होती तो शाति पूर्ण ढग से इस समस्या का समाधान किया जा सकता था। इस प्रकार की न तो कोई सस्था थी और न ही वातावरण।

निष्कर्ष —यूरोपियन देशो की सारी परिस्थितियो को देखते हुए ऐसा लगता है कि युद्ध को आगे टाला जा सकता था, उसे एक दम रोकना सम्भव नही था। उग्र राष्ट्रीयता की भावना, गुप्त सनिक सधियाँ और शस्त्रो की होड आदि ने प्रथम विश्व युद्ध का माग प्रशस्त कर दिया।

महायुद्ध की घटनाऐ —1914 ई० म विश्व युद्ध प्रारम्भ होने से पूव सम्पूण विश्व दो गुटो म विभाजित हो गया। मित्र राष्ट्र (Allied Powers) इस गुट म इगलड फ्रास सर्विया, रूस, जापान पुतगाल इटली, सयुक्त राज्य अमेरिका, रूमानिया, यूनान, चीन, क्यूबा, पनामा और ब्राजील आदि देश थे।

(ii) केन्द्रीय शक्तियाँ (Axis Powers) —इस गुट मे जमनी, आस्ट्रिया, हगरी तुर्की और बुलगेरिया आदि देश थे।

युद्ध के शुरू म जमनी तथा उसके साथी देशो को शानदार विजय प्राप्त हुई। 1917 ई० मे जमनी ने रूस को पराजित कर दिया और उसको ब्रेस्ट लिटो-वस्क की सन्धि पर हस्ताक्षर के लिये विवश किया। रूस म इस समय बोलशविक क्रान्ति हो चुकी थी। जिसके नेता युद्ध से अलग होकर शान्तिपूवक रूस का विकास करना चाहते थे। इसलिये 15 दिसम्बर, 1917 को रूस तथा जमनी के बीच युद्ध बन्द हो गया।

इस समय जमनी ने अमेरिका के जहाज डुबो दिय। जिसमे कई अमेरिकन मारे गय। जमनी की इस कायवाही म क्रुद्ध होकर अमरिका के राष्ट्रपति विल्सन ने 6 अप्रल, 1917 ई० को जमनी के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया। अमेरिका द्वारा मित्र राष्ट्रो के पक्ष मे युद्ध घोषित करने से उनका पलडा भारी हो गया। मित्र राष्ट्रो ने धुरी राष्ट्रो की इस प्रकार से नाके बन्दी की कि उन्हें कच्चा माल प्राप्त नही हो सका। उनके सभी उपनिवेशो पर मित्र राष्ट्रो ने अधिकार कर लिया। अन्त मे मित्र राष्ट्रो ने जमनी व उसके साथी देशों को युद्ध मे पराजित कर दिया। इस प्रकार मित्र राष्ट्रो की शानदार विजय हुई।

29 सितम्बर, 1918 को बुल्गेरिया ने, 31 अक्टोबर को तुर्की ने और 3 नवम्बर को आस्ट्रिया ने आत्म समपण कर दिया। 9 नवम्बर, 1918 को जमन सम्राट कैसर विलियम द्वितीय ने सिंहासन छोड दिया। 10 नवम्बर, 1918 को जमनी म गणतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था स्थापित करने की घोषणा की गई। अमेरिका के राष्ट्रपति विल्सन के 14 सिद्धान्तो से सहमत होकर जमनी ने 10 नवम्बर 1918 ई० को आत्म समपण कर दिया। 11 नवम्बर, 1918 ई० को

प्रात 11 बजे युद्ध विराम हो गया। इस प्रकार प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति हुई। इस युद्ध काल की मुख्य घटना रूस की बोल्शेविक क्रान्ति थी। जिसका वर्णन अगले अध्याय में किया जायेगा।

विल्सन के चौदह सिद्धान्त —जर्मनी ने विल्सन के चौदह सिद्धान्तों पर आत्मसमर्पण किया था। उसे यह आश्वासन दिया गया था कि संधि करते समय इन सिद्धान्तों का पालन किया जावेगा, लेकिन ऐसा नहीं किया गया। संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति विल्सन ने भविष्य में युद्ध को रोकने के लिये तथा शान्ति स्थापित करने के लिये 8 जनवरी, 1918 को कांग्रेस के भाषण में अपने निम्न 14 सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया था —

1—गुप्त समझौते नहीं होने चाहिए। शान्ति की परिषदें खुले तौर पर होनी चाहिये।

2—युद्ध और शान्ति के समय राष्ट्रीय सीमा के बाहर समुद्र में जहाजों को यातायात की पूर्ण स्वतन्त्रता दी जाय।

3—जहां तक सम्भव हो आयात कर हटा दिये जायें और व्यापारिक परिस्थितियों में समानता स्थापित करने के लिये प्रयास किये जायें।

4—राष्ट्रीय शस्त्रीकरण केवल आन्तरिक सुरक्षा तक ही सीमित रखा जाय।

5—उपनिवेशों का बटवारा आत्म निर्णय के सिद्धान्त के आधार पर किया जाय।

6—रूस के इलाके से जर्मनी अपनी फौजें हटा लेगा और सभी देश उसको विकास का अवसर देंगे।

7—बेल्जियम को स्वतन्त्रता दी जाय।

8—जर्मनी अल्सास व लारेन के प्रदेश फ्रांस को लौटा दे।

9—इटली की सीमाओं का निर्धारण राष्ट्रीयता के सिद्धान्त के आधार पर किया जाय।

10—आस्ट्रिया, हंगरी साम्राज्य की जनता को विकास के लिए स्वतन्त्र व पूर्ण अवसर दिये जायें।

11—सर्बिया, रूमानिया, मान्टीनीग्रो से सेनायें हटायी जायें और उनको स्वतन्त्रता प्रदान की जाय। सर्बिया को समुद्र तक जाने का स्वतन्त्र मार्ग दिया जाय और बाल्कन राज्यों की सीमाओं का निर्धारण राष्ट्रीयता के सिद्धान्त पर किया जाय तथा उनकी आर्थिक सुरक्षा की जाय।

12—तुर्की साम्राज्य को अपने वास्तविक भू भाग पर बना रहने दिया जाय परन्तु तुर्की में रहने वाली अमुक जातियों को स्वतन्त्र राष्ट्रीय विकास

के पूर्ण अवसर दिये जायें। डाडेनल्स में सभी राष्ट्रों का व्यापार के लिये सुविधायें दी जायें।

13—राष्ट्रीयता के सिद्धान्त के आधार पर फिर से स्वतन्त्र पोलैड का निर्माण किया जाय तथा उसको समुद्र तक जाने का रास्ता दिया जाय।

14—राष्ट्रीयता और आत्म निर्णय के सिद्धान्त के आधार पर एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का निर्माण किया जाय जो छोटे बड़े राज्यों को स्वतन्त्रता और सुरक्षा का विश्वास दिला सके।

विल्सन के जिन सिद्धान्तों पर जर्मनी ने आत्म समर्पण किया था, वर्साय की सन्धि में उनका पालन नहीं किया गया। लैंगसम ने लिखा है कि विल्सन के चौदह सिद्धान्तों में से पांच, संख्या 7, 8, 11, 13, 14 का पालन किया गया। और चार संख्या 5, 6, 9, 10 का पालन इस प्रकार से हुआ कि उससे मित्र राष्ट्रों को लाभ पहुंचा एवं चार संख्या 1, 2, 3, 4, 12 की उपेक्षा की गई।[1]

यद्यपि विल्सन की कुछ शर्तों का पालन नहीं किया गया, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसके सिद्धान्तों का वर्साय की सन्धि पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। यदि विल्सन न होता तो यह सन्धि और कठोर एवं अन्यायपूर्ण होती।

पेरिस शान्ति समझौता — प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के पश्चात यूरोप के मानचित्र का नये सिरे से निर्माण करने के लिए और शान्ति स्थापित करने के लिए मित्र राष्ट्रों के प्रतिनिधियों का 18 जनवरी 1919 ई० को पेरिस में एक सम्मेलन बुलाया गया। इस सम्मेलन में रूस को नहीं बुलाया गया क्योंकि उसने 1917 ई० में जर्मनी के साथ ब्रेस्ट लिटोवस्क की सन्धि कर युद्ध बन्द कर दिया था। जिससे मित्र राष्ट्रों की स्थिति नाजुक हो गई थी। इस सम्मेलन में अमेरिका के राष्ट्रपति वुडरो विल्सन, इंगलैंड के प्रधान मन्त्री लायड जोज, फ्रांस के प्रधान मन्त्री क्लीमैंशो का प्रभाव छाया रहा। मित्र राष्ट्रों ने पराजित राष्ट्रों को निम्न सन्धियों पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य किया।

1—जर्मनी के साथ वर्साय की सन्धि 28 जून, 1919

2—आस्ट्रिया के साथ सेन्ट जर्मा की सन्धि 10 सितम्बर, 1919,

3—हंगरी के साथ त्रिआनो की सन्धि 4 जून, 1920,

4—बल्गेरिया के साथ न्यूइली की सन्धि 27 नवम्बर, 1919,

5—तुर्की के साथ सेव्र की सन्धि 10 अगस्त 1920।

1919 ई० में की गई वर्साय की सन्धि से लेकर तुर्की के साथ सेव्र की

1—लगसम—वर्ल्ड सिन्स, 1919, पृष्ठ 34

सन्धि तक उपरोक्त सभी सन्धियां संयुक्त रूप से "शांति समझौते" के नाम से प्रसिद्ध है।

वर्साय की सन्धि —पेरिस शांति सम्मेलन में जितनी भी सन्धियां की गई, उनमें वर्साय की सन्धि सबसे अधिक महत्वपूर्ण है, जो 28 जून 1919 ई० को जर्मनी के साथ की गई। इस सन्धि का मसविदा इंगलिश तथा फ्रेंच भाषाओं में बनाया गया। इसमें 80 000 शब्द, 15 अध्याय और 439 धारायें थीं। इस सन्धि में कुछ छोटे-मोटे संशोधन करके जर्मनी के प्रतिनिधियों को हस्ताक्षर करने के लिए मजबूर किया गया। अन्त में 28 जून 1919 ई० को विवश होकर जर्मन प्रतिनिधियों को इस सन्धि पर हस्ताक्षर करने पड़े।

सन्धि की व्यवस्थाएं —वर्साय की सन्धि की प्रमुख व्यवस्थाएं निम्न लिखित थीं —

1—प्रादेशिक व्यवस्थाएं —वर्साय की सन्धि की प्रादेशिक व्यवस्थाएं निम्नलिखित थीं —

(i) अल्सास व लोरेन का प्रदेश जर्मनी ने फ्रांस को लौटा दिया।

(ii) जर्मनी के औद्योगिक क्षेत्र सार के कोयले की खानों पर 15 वर्ष के लिए फ्रांस को अधिकार दिया गया और उसके बाद जनमत द्वारा इस पर निर्णय लेने का निश्चय किया गया।

(iii) जर्मनी को मासनेट यूपेन तथा मलमेडी के प्रदेश हर्जाने के रूप में बेल्जियम को देने पड़े।

(iv) श्लेस्विग की डची डेनमार्क को दी गई।

(v) पूर्वी साइलेशिया पश्चिमी प्रशा और पोसेन आदि पोलैंड को दिये गये। डानजिग नगर को राष्ट्रसंघ के संरक्षण में मित्र राष्ट्रों ने अपने अधिकार में रखा।

(vi) मेमल नामक बन्दरगाह मित्र राष्ट्रों ने अपने अधिकार में रखा, जो 1923 ई० में लिथूनिया को दे दिया गया।

(vii) बेल्जियम व लक्समबर्ग की तटस्थता समाप्त कर दी गई।

(viii) जर्मनी के चीन तथा प्रशान्त महासागर के उपनिवेशों पर जापान को अधिकार दिया गया और उसके अफ्रीका में स्थित उपनिवेशों को ब्रिटेन और बेल्जियम ने राष्ट्रसंघ द्वारा धरोहर व्यवस्था में डाल कर उन पर अपना अधिकार बनाये रखा।

2—सैनिक व्यवस्थाएं —वर्साय की सन्धि के द्वारा जर्मनी को सैनिक दृष्टि से पंगु बनाने के लिए निम्न प्रतिबन्ध लगाये गये —

(i) जर्मनी का पूर्ण रूपेण निशस्त्रीकरण किया गया।

(ii) जमनी की अनिवाय सनिक शिक्षा पर रोक लगा दी गई।

(iii) स्थल सना की सख्या एक लाख निश्चित की गई।

(iv) जमनी में युद्ध सामग्री के उत्पादन तथा आयात करने पर रोक लगा दी गई।

(v) जमनी की नौ सनिक शक्ति बहुत कम कर दी गई और उस अपना जहाजी बेडा मित्र राष्ट्रो का सौंपन के लिये बाध्य किया गया।

(vi) राइन नदी में 31 मील क भू भाग पर असैनिकीकरण कर दिया गया तथा वहा मित्र राष्ट्रों की सनाओं को रखा गया, ताकि जमनी सनिक तयारी नही कर सकें।

(vii) जमनी की सनिक शक्ति नियन्त्रित रखन के लिए मित्र राष्ट्रा ने राष्ट्रीय आयोग की स्थापना की। ये आयोग 1925 क बाद धीरे धीरे समाप्त कर दिये गये।

3—आर्थिक व्यवस्थाऐ —आर्थिक दृष्टि से जमनी पर निम्न कठोर शर्तें लाद दी गई —

(i) एक क्षतिपूर्ति आयोग की स्थापना की गई जिस क्षतिपूर्ति की रकम निश्चित करन का काम सौंपा गया।

(ii) आयोग की सिफारिशा के आने तक यानी मई 1921 ई० तक जमनी को 5 अरब डालर क्षतिपूर्ति की रकम के रूप म चुकान को कहा गया।

(iii) जमनी को बाध्य किया गया कि वह 70 लाख टन कोयला फ्रास को 80–80 लाख टन ब्रिटेन व बेल्जियम को देगा।

4 - कानूनी व्यवस्थाऐ - वर्साय की सन्धि के द्वारा जमनी को युद्ध आरम्भ करन का दोषी माना गया और जमन सम्राट कसर विलियम II पर गम्भीर आरोप लगाये गये। मित्र राष्ट्रो ने सनिक न्यायालयो की स्थापना की ताकि युद्ध के नियमो का उल्लघन करन वाले जमना पर अभियोग चलाये जा सकें और उन्हे दण्ड दिया जा सके। मित्र राष्ट्रो के सनिक न्यायालयो म 12 व्यक्तियो पर अभियोग चलाये गय।

वर्साय की सन्धि के द्वारा राष्ट्र सघ की स्थापना की गई, ताकि यूरोप म शान्ति और सुरक्षा बनी रह सके। इसकी प्रथम 25 धारायें राष्ट्र सघ के सविधान से सम्बन्धित थी। इस सन्धि के द्वारा पोलण्ड, बेल्जियम यूगोस्लाविया और चेकोस्लोवाकिया की स्वतन्त्रता को मान्यता प्रदान की गई। इस प्रकार वर्साय की सन्धि का जमनी पर विनाशकारी प्रभाव पडा।

लगसम न वर्साय की सधि का जमन पर प्रभाव का वणन करते हुए लिखा है कि ' इससे यूरोप म जमन प्रदेश का आठवा भाग और 70 लाख व्यक्ति कम हो

गये। उसके सारे उपनिवेश, 15 प्रतिशत कृषि योग्य भूमि 12 प्रतिशत पशु, 10 प्रतिशत कारखाने छिन गये। उसके व्यापारिक जहाज 57 लाख टन से घटकर केवल पांच लाख टन रह गये। ब्रिटेन की नौ सेना से स्पर्धा करने वाली उसकी नौशक्ति बिल्कुल नष्ट कर दी गई और थल सेना की अधिकतम संख्या एक लाख निश्चित कर दी गई। उसे अपने कोयले के 2/5 भाग से, लोहे के 2/3 भाग से, जस्ते के 7/10 भाग से तथा आधे से अधिक शीशे से हाथ धोना पड़ा। उपनिवेशों के छिन जाने से रबड़ एवं तेल की भारी कमी हो गई। वर्साय की प्रादेशिक व्यवस्थाओं ने उसके उद्योग धन्धों और व्यापार को एकदम चौपट कर दिया। क्षतिपूर्ति के लिये उसने कोरे चेक पर हस्ताक्षर कर दिये।"[1]

वर्साय की संधि की आलोचना—वर्साय की संधि की शर्तों का पालन करना किसी भी स्वाभिमानी राष्ट्र के लिये असम्भव था। इस संधि का जन्मदाता और हस्ताक्षरकर्ता दोनों ही इससे असन्तुष्ट थे। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है कि "मित्र राष्ट्र घृणा और प्रतिशोध की भावना से भरे हुए थे। वे मांस का पौंड ही नहीं चाहते थे बल्कि जर्मनी के अर्द्ध मृत शरीर से खून की आखिरी बूंद तक ले लेना चाहते थे।' इस संधि के प्रमुख दोष निम्नलिखित थे—

(1) **आरोपित संधि**—वर्साय की संधि एक आरोपित संधि थी। यह संधि जर्मनी पर थोपी गई थी। इस संधि में जर्मन प्रतिनिधियों की स्थिति बंदियों के समान थी। उन्हें विचार प्रकट करने का अधिकार नहीं दिया गया। जर्मन प्रतिनिधियों को इस संधि पर हस्ताक्षर करने के लिये बाध्य किया गया। जर्मनी ने इस संधि को स्वेच्छा नहीं अपितु बाध्य होकर स्वीकार किया था।

(2) **कठोर सिद्धांतों पर आधारित संधि**—जर्मनी को आर्थिक दृष्टि से पंगु बनाने के लिये वर्साय की संधि की शर्तें जान बूझकर कठोर बनाई गई थीं। वास्तव में इस संधि के निर्माता जर्मनी को सबक सिखाना चाहते थे। इस की कठोर तथा अपमानजनक शर्तों को कोई भी स्वाभिमानी राष्ट्र एक लम्बे समय तक बर्दाश्त नहीं कर सकता था।

(3) **एक पक्षीय शर्तें**—इस संधि की शर्तें एक पक्षीय थीं। पराजित पक्ष पर तो अनेक शर्तें लाद दी गई, जबकि विजित राष्ट्रों को उनसे पूर्णतः मुक्त रखा गया। इस संधि के अनुसार जर्मनी का पूर्णरूपेण निःशस्त्रीकरण कर दिया गया परन्तु मित्र राष्ट्रों ने अपना निःशस्त्रीकरण नहीं किया। जर्मनी तथा तुर्की के उपनिवेश छीन लिये गये लेकिन मित्र राष्ट्रों के उपनिवेश नहीं छीने गए। युद्ध के अपराध दोनों पक्षों की ओर से हुए थे लेकिन अभियोग केवल जर्मन व्यक्तियों पर ही चलाये गये। मित्र राष्ट्रों के दोषी व्यक्तियों पर अभियोग नहीं चलाये गये।

1—लगमम—वल्ड मि स, 1919 पृष्ठ 29

(4) पराजित राष्ट्रों में जबरन प्रजातन्त्र की स्थापना—मित्र राष्ट्रों ने युद्ध की समाप्ति के पश्चात जमनी, आस्ट्रिया, हगरी, तुर्की और बुल्गेरिया आदि पराजित राष्ट्रों म जबरन गणतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था की स्थापना कर दी एव इन राज्यो म एकतन्त्र को समाप्त कर दिया गया। जमन जनता एकतन्त्र की अभ्यस्त थी। इसलिये कुछ समय पश्चात ही हिटलर के नेतृत्व में जर्मनी मे फिर तानाशाही का उदय हो गया।

(5) नये राज्यो का निर्माण इस सधि मे चेकोस्लोवाकिया, लिथूनिया लैटविया, और फिनलैण्ड आदि अनेक छोटे छोटे नये राज्यो का निर्माण सम्भव हो सका।

(6) विल्सन के सिद्धान्तों की अवहेलना विल्सन के जिन चौदह सिद्धान्तो पर जमनी न आत्म-समपण किया था। वर्साय की सधि म उनका पूणरूप से पालन नही किया गया। जिसका वणन हम पिछले पृष्ठो में कर चुके हैं।

(7) द्वितीय विश्व युद्ध का कारण—वर्साय की सधि की अपमानजनक शर्तो को जमनी जसा स्वाभिमानी राष्ट्र एक लम्बे समय तक बर्दाश्त नहीं कर सकता था। इसलिए जसे जसे जमनी को मौका मिलता गया वसे-वसे वह सधि की शर्तों का उल्लघन करता गया। जर्मनी ने मित्र राष्ट्रा से प्रतिशोध लेने क लिये ऐसे काय किय, जिसके कारण द्वितीय विश्व युद्ध प्रारम्भ हो गया।

वर्साय का सधि के द्वारा पोलण्ड का स्वतन्त्रता प्रदान की गई। यह सधि 1918 ई० मे की गई ब्रेस्ट लिटोवस्क की सधि के मुकाबले में कम कठोर थी। जमनी ने रूस के साथ ब्रेस्ट लिटोवस्क की सधि से जसा अपमानजनक व्यवहार किया था, वैसा व्यवहार मित्र राष्ट्रो ने वर्साय की सधि के द्वारा जमनी क साथ नही किया। इस प्रकार वर्साय की सधि ब्रेस्ट लिटोवस्क की सधि के मुकाबले म कम अन्यायपूण थी। यदि जमनी को इसमें भाग लेने दिया जाता और उसकी बात को सुना जाता तो यह सधि और न्यायपूण हो सकती थी।

निष्कष—इतना सब कुछ होते हुए भी इस बात को स्वीकार करना पडेगा कि इस सधि के द्वारा भविष्य मे युद्ध टालने क लिये तथा शाति स्थापित करने के लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय सस्था राष्ट्र सघ की स्थापना की गई थी। यद्यपि राष्ट्रसघ अपने कार्यों मे सफल नहीं हो सका। फिर भी इस सधि क द्वारा यूरोप म लगभग 20 वष तक शान्ति स्थापित रही। इस काय क लिये उसे श्रेय मिलना ही चाहिये। साउथगेट न लिखा है कि वर्साय की सन्धि ससार के इतिहास मे एक नये माग का सूचक थी।[1]

1—साउथगेट—हिस्ट्री आफ माडन यूरोप, पृष्ठ 216

प्रथम विश्व युद्ध के परिणाम —प्रथम विश्व युद्ध म विश्व के 36 देशा ने भाग लिया था। उनमें स 32 राष्ट्र मित्र राष्ट्रो के साथ थे और केवल 4 राष्ट्र केन्द्रीय शक्तिया के साथ थे। इस युद्ध मे यूरोपियन देशा के अतिरिक्त सयुक्त राज्य अमेरिका और एशिया के देशो ने भी भाग लिया था। प्रथम विश्व युद्ध लगभग सवा चार वर्ष तक चला। इस युद्ध म जन धन की अपार हानि हुई थी। इसके परिणाम बहुत घातक सिद्ध हुए। प्रथम विश्व युद्ध के प्रमुख परिणाम निम्नलिखित हुये —

(1) जन धन की अपार हानि —इस युद्ध म जन और धन की अपार क्षति हुई। इसम दोनो पक्षो की ओर स कुल 6½ करोड सैनिको ने भाग लिया था। जिसमें स एक करोड तीस लाख सनिक मारे गये और 2 करोड 20 लाख सनिक घायल हुए। जिनम से 70 लाख व्यक्ति तो एक दम पगु और बेकार हो गए थे। युद्ध के तुरन्त पश्चात् महामारी फैली। जिसके कारण 40 लाख व्यक्ति काल के ग्रास बने। इस तरह अपार जन क्षति के कारण कई यूरोपियन देशा म पुरुषो की भी कमी हो गई। अर्थ शास्त्रियो का मानना है कि प्रथम विश्व युद्ध म 2 खरब 70 अरब डालर रुपया खर्च हुआ था।

(2) आर्थिक असन्तुलन —युद्ध के दौरान प्रत्येक देश की उत्पादन शक्ति युद्ध कार्यों म लगा दी गई। जिससे आर्थिक सगठन को गहरा आघात लगा। युद्ध के दौरान फसलें नष्ट हो गई। रेल मार्ग छिन्न भिन्न कर दिये गये। बमबारी होने से नेतों की उर्वरा शक्ति नष्ट हो गई। इसके अतिरिक्त कारखाने एव मकान नष्ट हो गए। जिससे आर्थिक सगठन को भारी धक्का लगा। युद्ध की समाप्ति के पश्चात पुनर्वास की समस्या और कारखाने के नष्ट हो जाने के बेरोजगारी की समस्या पैदा हो गई। इसके अतिरिक्त खाद्य सामग्री व अन्य वस्तुओ के भाव भी आकाश को छूने लगे।

3—एकतन्त्र शासन की समाप्ति —इस महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात मित्र राष्ट्रो ने जर्मनी आस्ट्रिया हगरी, तुर्की और बुल्गेरिया मे एकतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था को समाप्त कर गणतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था की स्थापना की। इसके अतिरिक्त चेकोस्लोवाकिया, लिथुनिया लैटविया, एस्टोनिया और फिनलण्ड आदि नवगठित राज्यो म भी गणतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था की स्थापना कर दी गई। इस प्रकार प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के पश्चात यूरोप मे प्रजातन्त्र की बाढ आ गई।

4—लोकतन्त्र के सिद्धान्तों की उपेक्षा —यद्यपि मित्र राष्ट्रो ने प्रजातन्त्र के सिद्धान्तो की रक्षा करने के लिए युद्ध लडा था किन्तु यह दूसरे देशो को आकर्षित करने का साधन मात्र था। युद्ध के आरम्भ में इगलैण्ड की सरकार ने यह वचन दिया था कि युद्ध की समाप्ति के पश्चात भारत को स्वतन्त्र कर दिया जायेगा

परन्तु ब्रिटेन की सरकार ने अपना वायदा नहीं निभाया और भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलने के लिए रालेट एक्ट पास किया। इस एक्ट के अनुसार 13 अप्रल, 1920 ई० को जनरल डायर ने पंजाब के जलियांवाला बाग में निहत्थे भारतवासियों को गोली से भुनवा दिया। इस प्रकार इंगलण्ड प्रजातन्त्र का समर्थक होते हुए भी उसने भारत में राष्ट्रीयता की भावना को कुचलने में कोई कसर नहीं उठा रखी। पेरिस के शान्ति सम्मेलन में पराजित राष्ट्रों के साथ जो सन्धियां की गई थीं उसमें लोकतन्त्र के सिद्धान्तों की पूर्ण रूप से उपेक्षा की गई थी।

5—नवीन वादों का उदय —प्रथम विश्व युद्ध के दौरान 1917 ई० में रूस में बोल्शेविक क्रान्ति हुई। जिसके फलस्वरूप वहां साम्यवादी शासन व्यवस्था स्थापित हुई। इससे पूंजीवादी देशों की नींद हराम हो गई। वर्साय की सन्धि में जर्मनी और इटली के साथ अन्याय हुआ था। इसलिए युद्ध समाप्ति के पश्चात इन दोनों देशों में हमेशा अशान्ति बनी रही। जिसके फलस्वरूप जर्मनी में हिटलर के नेतृत्व में नाजीवाद और इटली में मुसोलिनी के नेतृत्व में फासिस्टवाद का जन्म हुआ। यदि प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात जर्मनी के साथ इतना कठोर व्यवहार नहीं किया जाता तो शायद जर्मनी में नाजीवाद का विकास नहीं हो पाता। इस प्रकार प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात यूरोप में जर्मनी में नाजीवाद इटली में फासिस्टवाद का जन्म हुआ। इसके कारण यूरोप में फिर सैनिकवाद प्रारम्भ हो गया।

6—बेरोजगारी की समस्या —युद्ध के दौरान कारखाने उद्योग धन्धे आदि नष्ट हो गये। जिसके फलस्वरूप बेरोजगारी की समस्या पैदा हो गई। बेरोजगारी की इस समस्या के कारण प्रजातन्त्रात्मक शासन व्यवस्था डगमगाने लगी।

7—नये राज्यों का अभ्युदय —इस युद्ध के फलस्वरूप पोलण्ड को एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में स्वीकार कर लिया। लिथूनिया, लटविया और फिनलण्ड आदि नये राज्यों का अभ्युदय हुआ। आस्ट्रिया को जर्मनी से अलग करके एक छोटा सा राज्य बना दिया गया। चेकोस्लोवाकिया को एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में स्वीकार किया गया। सर्विया का नाम बदल कर यूगोस्लाविया नामक एक नये राज्य का निर्माण किया गया।

8—स्त्रियों की दशा में सुधार —प्रथम विश्व युद्ध के दौरान सरकारी कार्यालयों में कर्मचारियों का अभाव हो गया। क्योंकि अधिकांश नवयुवक युद्ध में भाग लेने चले गये थे। इससे राजकीय कार्यालयों का काम ठप्प होने लगा। ऐसी स्थिति में स्त्रियों ने सरकारी कार्यालयों में काम करना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इस विश्व युद्ध के कारण स्त्रियों की दशा में सुधार हुआ। अब वे घर की चार दीवारी से निकल कर पुरुषों की भांति कार्यालयों में काम करने लगी।

9—वर्ग संघर्ष —युद्ध के पश्चात मजदूर वर्ग दिन प्रतिदिन संगठित होता जा रहा था। इसलिए वर्ग संघर्ष तेजी के साथ प्रारम्भ हुआ। अब कारखानों के पूंजीपतियों के शोषण के विरुद्ध मजदूरों ने संघर्ष प्रारम्भ कर दिया। युद्ध की समाप्ति के पश्चात मजदूर वर्ग अत्याचार सहन करने के लिये तैयार नहीं था, क्योंकि वह अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो चुका था और उसने अधिकारों की प्राप्ति के लिए संघर्ष प्रारम्भ कर दिया था।

10—शक्ति सन्तुलन - युद्ध से पूर्व विश्व का नेतृत्व ब्रिटेन के हाथ में था। युद्ध के पश्चात् शक्ति सन्तुलन का स्थानान्तरण कुछ समय के लिये अमेरिका की ओर हो गया। युद्ध की समाप्ति के पश्चात् पेरिस शान्ति सम्मेलन में अमेरिका ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

11—साम्राज्यवाद को प्रोत्साहन—इस युद्ध ने साम्राज्यवाद को प्रोत्साहन दिया। इटली ने एड्रियाटिक सागर पर अपना नियन्त्रण स्थापित कर लिया। इंगलैण्ड और फ्रांस ने मैंडेट व्यवस्था के अन्तर्गत अपने उपनिवेशों में और मध्यपूर्व में अपने प्रभाव क्षेत्र में वृद्धि की। जापान एक शक्तिशाली देश के रूप में प्रकट हुआ। वह अपने आपको सुदूरपूर्व की सर्वोच्च शक्ति मानने लगा।

12—राष्ट्रीयता की भावना का विकास—इस युद्ध ने राष्ट्रीयता की भावना का विकास हुआ। इसने अरब के स्वतन्त्रता आन्दोलन में नया जोश फूंक दिया। भारत में भी इस युद्ध के पश्चात स्वतन्त्रता आन्दोलन तेज हो गया।

13—अमेरिका के प्रभाव में वृद्धि—यह पहला अवसर था जबकि अमेरिका ने यूरोप के मामले में हस्तक्षेप किया। इस युद्ध में अमेरिका ने मित्र राष्ट्रों का साथ दिया और जर्मनी तथा उसके साथी देशों को पराजित कर विश्व में अपनी सैनिक शक्ति की धाक जमा दी। अमेरिका ने युद्ध के दौरान मित्र राष्ट्रों को गोला बारूद और हथियार आदि दिए। इसके अतिरिक्त युद्ध की समाप्ति के पश्चात् यूरोपियन देशों की आर्थिक दशा सुधारने के लिए उनको आर्थिक सहायता दी। अब अमेरिका विश्व का एक प्रतिष्ठित साहूकार माना जाने लगा। उसने विश्व के बहुत से राष्ट्रों को कर्ज दिया। युद्ध के पश्चात उसने व्यापार वाणिज्य के माध्यम से धन कमाना प्रारम्भ किया। इस प्रकार इस युद्ध के कारण अमेरिका के प्रभाव क्षेत्र में वृद्धि हुई।

14 राष्ट्रसंघ की स्थापना प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के पश्चात् भविष्य में युद्ध सम्बन्धी सम्भावनाओं को रोकने के लिए और शान्ति स्थापित करने के लिए अमेरिका के राष्ट्रपति विल्सन ने 1919 ई० में राष्ट्रसंघ की स्थापना की। यद्यपि राष्ट्र संघ अपने उद्देश्य में पूर्ण रूप से सफल नहीं हुआ। फिर, भी विश्व शान्ति को बनाये रखने के लिए इसने महत्वपूर्ण प्रयास किए। इस संघ ने मानव समाज के कल्याण के लिए कई महत्वपूर्ण कार्य किये।

15– शस्त्रीकरण की होड़– युद्ध के बाद नि शस्त्रीकरण के लिए कई बार प्रयास किये गये, परन्तु शस्त्रीकरण की होड़ न रुक सकी। यूरोप के सभी देश अपना सैनिक शक्ति और युद्ध सामग्री बढाने म लगे रहे। इससे यूरोपियन दशा म फिर शस्त्रीकरण की होड़ प्रारम्भ हुई। इस होड़ ने द्वितीय विश्व युद्ध का माग प्रशस्त कर दिया।

प्रथम विश्व युद्ध के साथ ही एक युग की समाप्ति हुई। फिर, भा मनुष्य ने युद्ध के परिणामा से कोई शिक्षा नही ली। जिसके फलस्वरूप 20 वर्षों बाद ही पहले से भी अधिक विनाशकारी महायुद्ध हुआ।

प्रस्ताविक सन्दम पाठ्य पुस्तकें —

1—फे—दी ओरिजन्स आफ दी वल्ड वार

2—हेजन—आधुनिक यूरोप का इतिहास

3—लैंगसम—दी वल्ड सिन्स 1919

4—कैंटलबी— ए हिस्ट्री आफ माडन टाइम्स

5—ग्राट एण्ड टेम्परले—यूरोप का इतिहास—उन्नीसवी और बीसवीं शताब्दी म

6—गूच, जी० पी०— आधुनिक यूरोप का इतिहास

7—गेथोन और हार्डी—ए हिस्ट्री आफ इन्टरनेशनल अफयस

11

रूस की क्रान्ति

1917 ई० की रूसी क्रान्ति का विश्व इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। इस क्रान्ति के पश्चात रूस में साम्यवादी शासन व्यवस्था स्थापित हुई। जिसमें सामन्ती शोषण को समाप्त कर दिया गया। इसके फलस्वरूप रूस में जनसाधारण का महत्व बढ़ा। इस प्रकार यदि फ्रांस की राज्य क्रान्ति ने जनतान्त्रिक युग की शुरूआत की तो रूस की इस क्रान्ति ने समाजवादी युग की। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में रूस एशियाई शक्ति था। पीटर पहला व्यक्ति था, जिसने सत्रहवीं शताब्दी में पश्चिमी देशों की तरह रूस का विकास करने का प्रयास किया। अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में कैथराइन महान ने रूस का अत्यधिक विकास किया, जिसके कारण यूरोप में रूस का महत्व बढ़ने लगा। 19 वीं शताब्दी में रूस की आन्तरिक दशा में सुधार करने के लिए प्रयास प्रारम्भ हुए। इसी समय रूस की जनता अपने अधिकारों के लिए जागरूक हो गई। गूच ने लिखा है कि—"क्रान्ति की पहली मंजिल आशा से बहुत कम भयंकर सिद्ध हुई, क्योंकि राज्य का पुराना जर्जर ढांचा बिना किसी प्रतिरोध के ढह गया।"[1]

क्रान्ति से पूर्व रूस की दशा—एच० जी० वेल्स ने लिखा है कि—',बीसवीं शताब्दी के प्रथम बीस वर्षों में संसार में लगभग दस लाख ऐसे व्यक्ति थे, जो यह मानते थे कि श्रमजीवी की तानाशाही से एक नयी और अधिक अच्छी सामाजिक व्यवस्था स्थापित होगी।"[2] रूस की क्रान्ति जनता, मजदूरों और किसानों की क्रांति थी। क्रांति से पूर्व रूस की दशा बहुत शोचनीय थी। रूस का शासक जारनिकोलस जनता पर निरंकुश रूप से शासन कर रहा था। जागीरदार जनता पर अत्याचार

1—गूच जी० पी०—आधुनिक यूरोप का इतिहास, पृष्ठ 560
2—वेल्स, एच० जी०—दी आउट लाइन आफ हिस्ट्री, पृष्ठ 116

कर रहे थे। पूंजीपति श्रमिकों का शोषण कर रहे थे। रूसी जनता को किसी भी प्रकार स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं थी। रूस की सेना जनता के विद्रोह को कुचलने में गर्व का अनुभव करती थी।

उन्नीसवीं शताब्दी में औद्योगिक क्रान्ति के प्रसार के कारण रूस में अनेक कारखानों की स्थापना हो चुकी थी परन्तु पूंजीपति मजदूर वर्ग का शोषण कर रहे थे। जिसके कारण मजदूरों में असन्तोष व्याप्त था। जनता में रूसी शासक एलेक्जेण्डर तृतीय के अत्याचारों के कारण असन्तोष था। इसलिए एलेक्जेण्डर तृतीय ने कुछ सुधार किये जैसे शिक्षा का विकास एवं यातायात के साधनों का विकास, परन्तु जनता पर इन सुधारों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। निकोलस द्वितीय ने भी जनता में व्याप्त असन्तोष को दूर करने का प्रयास किया परन्तु उसे भी सफलता नहीं मिली। 1905 ई० में जापान ने रूस को पराजित कर दिया था इससे निकोलस व उसकी सरकार की बड़ी बदनामी हुई। रूस की अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रतिष्ठा कम हो गई। जापान के साथ साथ युद्ध में रूस के हजारों निर्दोष सैनिक मारे गये। रूस की इस पराजय के कारण जनता में जार निकोलस II के विरुद्ध असन्तोष बढ़ा और जनता के मन में रूसी सेनाओं का भय समाप्त हो गया।

जार निकोलस II के असन्तोष के विरुद्ध रूस में 1905 ई० में क्रान्ति हुई, लेकिन वह असफल रही। रूस में सामन्त जनता पर अत्याचार कर रहे थे। निकोलस द्वितीय पर उसकी रानी का अत्यधिक प्रभाव था। इस कारण वह जनता के लिये सन्तोषप्रद सुधार नहीं कर सका। ऐसे वातावरण में 1914 ई० में प्रथम विश्व युद्ध प्रारम्भ हो गया। इस युद्ध में रूस ने मित्र राष्ट्रों की तरफ से भाग लिया था। युद्ध के प्रारम्भ में रूस को शानदार सफलता मिली। इसके पश्चात् रूस की सेनायें निरन्तर हारती गई। जिससे देश में भुखमरी, गरीबी, आन्तरिक अशान्ति, अव्यवस्था और असन्तोष फैला। युद्ध के वातावरण से परेशान होकर रूसी जनता ने 1917 ई० में अपनी सरकार के विरुद्ध क्रान्ति कर दी।

क्रान्ति के कारण—1917 ई० की रूसी क्रान्ति के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे —

(1) **शासकों की निरंकुशता**—रूसी शासक निरंकुश और स्वच्छाचारी थे। वे मध्य कालीन शासकों की भांति निरंकुश रूप से शासन कर रहे थे। वे दैवी सिद्धान्त के अनुसार अपनी प्रजा पर शासन करने में विश्वास करते थे। उनकी इच्छा ही कानून थी और उसका विरोध करने का अधिकार किसी को नहीं था। जार शासकों ने अपनी जनता को किसी भी प्रकार के अधिकार नहीं दे रखे थे। प्रशासन की समस्त शक्तियां कुलीन वर्ग के व्यक्तियों के हाथ में निहित थी। जिनकी प्रजा हित कार्यों में बिल्कुल रुचि नहीं थी।

इस समय प्रशासन के प्रत्येक विभाग मे भ्रष्टाचार फला हुआ था। चारो तरफ अन्याय और बेईमानी का बोलबाला था। जनता को न्याय नही मिल रहा था। इसलिये जनता मे रूसी शासको के विरुद्ध असतोष व्याप्त था। जनता ने शासको से सुधार करने की माग की लेकिन उन्होने इस तरफ कोई ध्यान नही दिया। क्रीमिया के युद्ध के पश्चात रूस मे कुछ सुधार किये गय परन्तु एलेक्जेण्डर द्वितीय (1855 1881 ई०) ने इस सुधारवादी नीति को समाप्त कर दिया। जनता ने जार से रूस मे सवधानिक शासन लागू करने की माग की लेकिन जार न इस माग को अस्वीकार किया। इस पर 13 माच 1881 ई० को बम्ब फेंक कर उसकी हत्या कर दी गई।

एलेक्जेण्डर तृतीय (1881-1894)—1881 ई० मे एलेक्जेण्डर द्वितीय की हत्या कर दी गई थी। इसके पश्चात उसका पुत्र एलेक्जेण्डर तृतीय रूस का शासक बना। इस समय उसकी आयु 36 वष थी। एलेक्जेण्डर तृतीय सकुचित मस्तिष्क और जिद्दी स्वभाव का व्यक्ति था। उसने उन सभी व्यक्तियो का वध करवा दिया, जिन्होने उसके पिता की हत्या के षडयन्त्र में भाग लिया था। एलेक्जण्डर तृतीय ने जनता की स्वतन्त्रता पर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध लगा दिये। उसन सारे देश म गुप्तचरो का जाल बिछा दिया। एव भाषण व लेखन की स्वतन्त्रता को समाप्त कर दिया। विश्वविद्यालयो पर सरकारी नियन्त्रण स्थापित कर दिया। विश्वविद्यालय म वही पाठयक्रम पढाया जाता था, जो सरकार द्वारा निर्धारित किया जाता था। अध्यापकों और छात्रो पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिये गये। पाश्चात्य शिक्षा पर रोक लगा दी गई। इस प्रकार एलेक्जेण्डर ततीय ने रूस के बौद्धिक विकास के माग को अवरुद्ध कर दिया।

एलेक्जेण्डर ने गर रूसी जातियो पर भी अमानवीय अत्याचार किया। रूस मे रहने वाली जमन, पाल आदि अरूसी जातियो पर भी रूसी कानून लाद दिये गये। रूसी भाषा सबके लिये अनिवाय कर दी गई। एलेक्जेण्डर ने यहूदियो पर भी घोर अत्याचार किये। उसने 1882 ई० में कानून बनाया। जिसके अनुसार यहूदियो के अचल सम्पत्ति खरीदने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। शिक्षण सस्थाओ म यहूदियो के प्रवेश पाने की सख्या 3 प्रतिशत निश्चित कर दी गई। अनेक यहूदियो को सामूहिक रूप से मौत के घाट उतार दिया गया। इन अत्याचारो से परेशान होकर 3 लाख यहूदी रूस छोडकर चले गये। जार के इन अत्याचारो से रूस का सम्पूण यहूदी समाज उसका कट्टर शत्रु बन गया।

एलेक्जेण्डर ततीय की मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र जार निकोलस द्वितीय रूस का शासक बना। इस समय उसकी आयु 26 वर्ष की थी। वह अपने पिता की भाति स्वेच्छाचारी और निरकुश था। अत्याचार करने मे तो उसने अपने पिता को भी पीछे छोड दिया था। उसन निरकुश नीति को जारी रखा। अपने शासन काल में उसने जनता और गर रूसियो पर घोर अत्याचार किए। उसने प्रतिक्रियावादी

नीति को अधिक शक्ति के साथ लागू किया एव जनता की स्वतन्त्रता को समाप्त कर दिया। समाचार पत्रों और पुस्तकों के प्रकाशन पर प्रतिब ध लगा दिया। विश्वविद्यालयो म गुप्तचरो का जाल बिछा दिया गया। उसके शासन काल म किसी भी व्यक्ति को बिना कारण बताये ब दी बनाया जा सकता था, उसे जेल म रखा जा सकता था या देश से निर्वासित किया जा सकता था।

निकोलस द्वितीय जनता पर अत्याचार कर रहा था। उसने सनिक खच को पूरा करने के लिये किसानो से नये-नये कर वसूल करना प्रारम्भ किया। करो के बढते हुए बोझ के कारण जनता में जार के विरुद्ध असतोष फल रहा था। निकोलस द्वितीय ने 1899 ई० म फिनलण्ड म सवधानिक शासन को समाप्त करके वहा पर निरकुश शासन व्यवस्था की स्थापना की। फिनलण्ड की सेना को रूसी सेना के अधीन कर दिया गया और वहा उच्च पदो पर रूसी अधिकारियों की नियुक्तियां की की गई। जार के इन कार्यों से फिनलण्ड की जनता म उसके विरुद्ध अस तोष प्रारम्भ हो गया।

रूस म कुलीन वग के व्यक्ति निम्न वग के व्यक्तियो पर अत्याचार कर रहे थे। निकोलस द्वितीय ने प्लेहवे को अपना गहम त्री नियुक्त किया। जिसने जनता पर घोर अत्याचार किए। निकोलस द्वितीय के विरुद्ध 1905 म रूस मे एक क्रान्ति हुई जो असफल रही। इसके पश्चात उसने पुन निरकुश रूप स शासन करना प्रारम्भ कर दिया। 1907 ई० म चुनाव कानून को सीमित कर दिया गया। क्रान्तिकारियो को कुचलने के लिय फौजी कानून का उपयोग किया गया और रूस मे कई सनिक न्यायालयो की स्थापना की गई। स्टोलीपिन को म त्रीमण्डल का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। जिसने क्रा तिकारियो को या तो आजन्म कारावास की सजा दे दी या देश से निर्वासित कर दिया या मौत क घाट उतार दिया। रूस म बढती हुई यहूदी पोल, फिनलैण्ड आदि अरूसी जातियो पर भी घोर अत्याचार किये गये। इन्होने भी जार निकोलस द्वितीय के विरुद्ध जनता को क्रा ति करने क लिये उत्तेजित किया। 1907–1911 ई० के बीच स्टोलीपिन ने 300 व्यक्तियो को फासी पर लटका दिया और हजारो व्यक्तियो को साइबेरिया के शीत प्रदशो म निवासित कर दिया। स्टोलीपिन की अत्याचारपूण नीति के विरुद्ध जनता म तेजी से असतोष फला। परिणामस्वरूप 14 सितम्बर 1911 ई० को क्रा तिकारियो न स्टोलीपिन को मार डाला। फिर भी जार ने निरकुशता की नीति को नही छोडा।

1911 से 1916 तक जार ने फादर रासपुटिन की सहायता से शासन सचालन किया। फादर रासपुटिन नामक व्यक्ति वसे तो साधु था पर तु उसक कार्यो से उसे धर्मात्मा नही कहा जा सकता। रासपुटिन का जार के दरबार में काफी प्रभाव बढ चुका था। जार निकोलस द्वितीय और उसकी रानी पर रासपुटिन का इतना अधिक प्रभाव था कि वे उसस बिना परामश लिये शासन का एक भी काय नहीं

करते थे। इस प्रकार जार और जारीना दोनों रासपुटिन के हाथों की कठपुतली बन चुके थे। उसी के परामर्श पर मन्त्रियों की नियुक्ति और हटाना निर्भर था। इसके प्रभाव में आकर जार ने एक बार गुप्त समझौता करने का भी प्रयत्न किया। उसके कहने के अनुसार जार ने थोड़े से समय में 4 प्रधानमन्त्री, 6 गृह मन्त्री, 4 युद्ध मन्त्री और 3 विदेश मन्त्री नियुक्त किये थे। राजपुटिन के प्रभाव के कारण जनता में असंतोष फैल रहा था। राज्य में भ्रष्टाचार और अव्यवस्था का बोलबाला था। क्रान्तिकारियों ने इस अव्यवस्था और अत्याचार की जड़ रासपुटिन को समझा। इसलिये उन्होंने जार से माग की कि रासपुटिन को दरबार से बाहर निकाल दिया जाय, परन्तु सम्राट ने इस माग को अस्वीकार कर दिया। परिणामस्वरूप जार के कुटुम्ब के एक सदस्य ने राजपुटिन की हत्या कर दी। ग्लैंट जीन और ड्रमंड ने लिखा है कि "1916 में सरदारों के एक गुट ने जो उसे जार सरकार की दुर्बलता, अक्षमता और भ्रष्टाचार का दोषी मानता था, रासपुटिन की हत्या कर दी।"[1] इससे भी जार की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। इसलिये क्रान्ति का होना अवश्यम्भावी हो गया था। लिप्सन का मानना है कि "जार की अन्धी सरकार ने जमाने को नहीं पहचाना और मौका हाथ से खो दिया। जिससे सुधार आन्दोलन ने क्रान्ति का रूप धारण कर लिया। इस क्रान्ति ने राज सत्ता का ही नहीं रूसी समाज के आकार प्रकार का ही अन्त कर दिया।"

(2) सामाजिक कारण—क्रान्ति का दूसरा मुख्य कारण सामाजिक क्षेत्र में व्याप्त असमानता थी। इस समय समाज तीन वर्गों में विभाजित था —

(i) कुलीन वर्ग
(ii) मध्यम वर्ग
(iii) निम्न वर्ग

(i) कुलीन वर्ग—कुलीन वर्ग में जागीरदार, धर्माधिकारी और धनी व्यक्ति आते थे। इस वर्ग के लोगों को विशेषाधिकार प्राप्त थे। रूस की अधिकांश भूमि पर इस वर्ग के लोगों का अधिकार था। शासन व्यवस्था का संचालन इसी वर्ग के व्यक्तियों द्वारा किया जाता था। इस वर्ग के व्यक्ति भोग विलासपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे, और निम्न वर्ग के व्यक्तियों पर अत्याचार करते थे।

(ii) मध्यम वर्ग—इस वर्ग की स्थिति भी ज्यादा अच्छी नहीं थी। औद्योगिक विकास के कारण इस वर्ग का विकास हो चुका था परन्तु इस वर्ग के व्यक्तियों को कुलीन वर्ग की भांति विशेषाधिकार प्राप्त नहीं थे। इस वर्ग के व्यक्ति मार्क्स के समाजवादी विचारों से प्रभावित होते जा रहे थे। इसलिये इस वर्ग ने क्रान्ति का नेतृत्व किया।

1—ग्लैंट जीन और ड्रमंड—विश्व का इतिहास, 638

(ii) निम्न वर्ग निम्न वर्ग में किसान और मजदूर आते थे। रूस की अधिकांश जनता कृषि का कार्य करती थी। इस समय कृषकों की दशा बहुत शोचनीय थी। कृषकों का जमीन पर अधिकार नहीं था। जमीन पर कुलीन वर्ग का अधिकार था। यह वर्ग किसानों पर नाना प्रकार के अत्याचार करता था। कृषकों की आय का अधिकांश भाग कर के रूप में चला जाता था। फिर भी उनके साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया जाता था। कृषक दास प्रथा समाप्ति के पूर्व भूमिपति लोग अपनी भूमि के साथ दासों को भी बेच देते थे। वे दासों से बेगार लेते थे। भूमिपति दासों को कृषि के अतिरिक्त भाड़े पर कारखाने में काम करने के लिये भेज सकते थे। 1861 ई० में दास प्रथा की समाप्ति के लिये एक कानून बनाया गया जिसमें सामाजिक और आर्थिक क्रान्ति प्रारम्भ हुई। इसके पश्चात रूस का पश्चिमीकरण होना प्रारम्भ हो गया।

दास मुक्ति कानून से रूसी किसानों को जमीदारों से मुक्ति मिल गई लेकिन अभी तक उन्हें आर्थिक स्वतन्त्रता नहीं मिल सकी थी। किसानों के पास भूमि खरीदने के लिये पैसा नहीं था, इसलिये उन्होंने भूमिपतियों से अधिक ब्याज पर रुपया उधार लिया। जब किसान अपना कर्ज नहीं चुका सके तो इन भूमिपतियों ने उनके खेत और घर नीलाम करवा दिये। इससे किसानों की दशा बहुत शोचनीय हो गई। इस कारण किसानों में तीव्र गति से क्रान्तिकारी विचारों का प्रसार हुआ। अब उन्होंने जमीदारों के अत्याचारों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और भूमि की माँग करने लगे।

(3) आर्थिक कारण आर्थिक दृष्टि से रूस एक पिछड़ा हुआ देश था। रूस की अधिकांश जनता कृषि का कार्य करती थी। अभी तक कृषि पुराने ढंग से की जाती थी। वैज्ञानिक आविष्कारों का उपयोग कृषि के क्षेत्र में प्रारम्भ नहीं हुआ था। किसानों के पास जमीन नहीं थी। उनको अपनी आय का अधिकांश भाग कर के रूप में चुकाना पड़ता था। इस प्रकार किसानों की दशा शोचनीय थी। 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में किसान खेती को छोड़कर शहरों की ओर भाग रहे थे। किसान भूख और भूमि से पीड़ित थे। डब्ल्यू० एन० वीच ने लिखा है कि 'किसान भूमि भूख से पीड़ित थे। पचास वर्ष पहले वे दास मात्र थे और अब वे आजाद थे किन्तु फिर भी बुरी तरह गरीब थे। वे अपनी शक्ति व्यर्थ गँवाने को तैयार नहीं थे और गाँवों में अपनी जमीनें छीन लेने के लिये तैयार थे।''[1] किसान अपनी भूमि प्राप्त करने के लिये *हिंसात्मक तरीका अपनाने को तैयार था*। ऐसा वातावरण क्रान्ति के लिये उपयुक्त था। औद्योगिक प्रसार रूस में भी हुआ। इसके पश्चात रूस का औद्योगिक विकास प्रारम्भ हुआ। 1871 ई० के पश्चात रूस में कोयला और लोहा

1—वीच, डब्ल्यू० एन०—हिस्ट्री आफ दी वर्ल्ड पृष्ठ 881

का उत्पादन बढा और वहां अनेका नये कारखाना की स्थापना की गई। औद्योगिक विकास होने के कारण मजदूरो की सम्या म वृद्धि हुई। जिससे औद्योगिक नगरो की जनसख्या बढी क्योकि इन कारखानो मे काम करने के लिये लाखा मजदूरों ने गावा से आकर शहरा मे रहना प्रारम्भ कर दिया था।

कारखानो मे काम करने वाल मजदूरो की दशा अत्यन्त शोचनीय थी उन्ह कारखाना मे 14 घटे प्रतिदिन काम करना पडता था लेकिन वतन कम दिया जाता था। मिल मालिक मजदूरा का शोषण करते थे। मजदूरो को सघ बनाने का अधिकार नही था। कारखानो म इतनी खराब व्यवस्था थी कि आये दिन मजदूर मशीन से कट जाते थे। व गन्दी बस्तियो में रहकर अपना जीवन व्यतीत करते थे। उनके बच्चो के लिये कारखानो के पास शिक्षा की कोई व्यवस्था नही थी। कारखानो के पास न तो अस्पताल था और न ही मनोरजन के साधन। कारखाना म काम करने वाली स्त्रिया नैतिक चरित्र स गिर जाती थी। मजदूरो के मनोरजन क मुख्य साधन वश्या वृत्ति, जुआ और शराब आदि थे। मजदूरा म पूजीपतियो के शोषण के कारण असतोष व्याप्त था। वे शोषण स बचने के लिये सघ का निर्माण करना चाहते थे। औद्योगिक क्रान्ति के कारण रूस मे मध्यम वग का विकास हुआ। इस वग के लोगो ने समाजवादी विचारधारा का प्रचार किया। 1905 ई० की क्रान्ति मे एक लाख साठ हजार मजदूरो ने भाग लिया था। मजदूरो ने अपना असन्तोष प्रकट करने के लिये हडतालो और दगो का सहारा लिया।

(4) रूस-जापान युद्ध (1904–1905)—रूस एशिया म विस्तार करना चाहता था। जापान ने इसे रोक दिया। पोट आयर बन्दरगाह पर अधिकार करन क प्रश्न को लेकर 1904–1905 ई० म रूस और जापान के बीच युद्ध प्रारम्भ हो गया। इस युद्ध म जापान जस छोटे से देश ने रूस जसे शक्तिशाली देश को बुरी तरह से पराजित किया। युद्ध म जापान की विजय होने स रूस को एक अपमान जनक सधि पर हस्ताक्षर करने के लिये बाध्य होना पडा। इस सधि के अनुसार रूस म कोरिया मे जापानी प्रभाव स्वीकार कर लिया। इसक अतिरिक्त पोट आयर का पट्टा भी जापान के नाम कर दिया।

इस युद्ध में रूस की पराजय से अन्तर्राष्ट्रीय जगत म उसकी प्रतिष्ठा कम हो गई और जापान की प्रतिष्ठा म वद्धि हुई। रूस की जनता ने इस पराजय के लिय सरकार को दोषी माना। इस युद्ध क कारण रूस की आर्थिक दशा और खराब हो गई। इस पराजय स रूसी जनता में सरकार के विरुद्ध असतोष और तीव्र गति स फला। अब जनता न सम्राट मे सुधार करन की मांग की।

(5) 1905 ई० की क्रांति—रूमी शासको की निरकुशता नीति के कारण जनता म पहले से ही असन्तोष व्याप्त था। अब रूस की पराजय के कारण यह असन्तोष और भी तीव्र हो गया। अब जनता ने निकोलस के अत्याचारों से परेशान

होकर हिंसात्मक तरीके अपनाने प्रारम्भ कर लिए। रूस म शून्यवाद का भी विकास हो रहा था। रूस का बौद्धिक वर्ग पश्चिमी यूरोप के दर्शन को पढकर जारशाही सरकार का विरोधी बन चुका था। उस समय अराजकतावादियों ने यह नारा लगाना प्रारम्भ कर दिया था कि सरकार की कोई आवश्यकता नहीं है। रूस म कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तों का तेजी से प्रचार हो रहा था।

1898 ई० म रूस मे सोशलिस्ट डेमोक्रेटिक पार्टी का निर्माण हुआ। मजदूर और किसान भारी संख्या म इस दल के सदस्य बने। इस दल ने मजदूरों की दशा सुधारने के लिये अनेक प्रयास किये। इसने यह माग रखी कि मजदूरों के काम के घंटे सीमित कर दिये जाय और उनके वेतन म वृद्धि की जाय। इस पार्टी का यह मानना था कि केवल मजदूर ही क्रान्ति कर सकते हैं। 1907 ई० तक किसानों ने सात हजार बार विद्रोह किया। 1910 से 1914 ई० के बीच 13 हजार बार किसानों ने आन्दोलन किया। मजदूरों ने जार निकोलस से यह माग की कि उन्हे ट्रेड यूनियन बनाने का अधिकार दिया जाय परन्तु उसने इस माग को अस्वीकार कर दिया। उसने रूस में हड़ताल को गैर कानूनी घोषित कर दिया। यदि कहीं हड़ताल होती तो हडतालियों को गद्दार घोषित कर गोली से उडा दिया जाता था। मजदूरों ने अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिये आन्दोलन करना प्रारम्भ कर दिया।

1903 ई० म सोशलिस्ट डेमोक्रेटिक दल म मतभेद प्रारम्भ हो गये। जिसके कारण यह दल दो भागों म विभाजित हो गया। बोल्शेविक दल और मेनशेविक दल। बाल्शेविक दल के सदस्य उग्रवादी और क्रान्तिकारी विचारों के थे। इस दल के सदस्य बहुत अधिक थे। इस दल का नेतृत्व लेनिन और ट्राट्स्की के हाथ म था। दूसरा दल मेनशेविक था जिसके सदस्य उदारवादी विचारधारा के समर्थक थे। इस दल के सदस्यों की संख्या बहुत कम थी। इन दोनों ही दलों ने श्रमिकों के असन्तोष को भडकाना प्रारम्भ किया। रूस मे क्रान्तिकारी साहित्य का प्रचार होने लगा। जनता ने सरकार से भाषण लेखन और धार्मिक स्वतन्त्रता देने की माग की। उस समय रूस का गृहमन्त्री वानप्लेहवे था जिसने जनता पर घोर अत्याचार किये। उसने मजदूरों की हड़तालों को कुचल दिया। इस पर क्रान्तिकारियों ने क्रुद्ध होकर जुलाई 1904 म बम फेंक कर वानप्लेहवे की हत्या कर दी। इसके अतिरिक्त सरकार के अन्य कई अधिकारियों को बम फेंक कर मार डाला।

इस समय सभी शहरों की सडकों पर यह नारे लगाये जाने लगे कि 'निरकुश शासन का अन्त हो'। रूस की जनता संवैधानिक शासन की माग करने लगी। 22 जनवरी 1905 ई० रविवार के दिन मजदूरों का एक विशाल जुलूस फादर गैपन के नेतृत्व म जार निकोलस द्वितीय को अपील करने के लिये शाही महलों की ओर रवाना हुआ। ज्योंही यह जुलूस शाही महलों के पास पहुचा त्योंही जार ने

निशस्त्र मजदूरों की भीड़ पर सैनिकों को गोली चलाने का आदेश दिया। सैनिकों ने निशस्त्र भीड़ पर गोली चलाई। जिससे फादर गेपन के साथ हजारों व्यक्ति मारे गये और दो हजार से अधिक व्यक्ति घायल हुऐ। जिससे शाही महल के आगे लाशों का ढेर लग गया और सेंट पीटर्स बर्ग की सड़क पर खून की नदी बह निकली। रूस के इतिहास में यह दिन 'खूनी रविवार" के नाम से प्रसिद्ध हो गया। जार के इस अत्याचार के विरुद्ध सारे देश में यही नारा लगाया जा रहा था कि "जार को हिंसात्मक तरीके से जवाब दिया जाये।" यहीं से रूस की प्रथम क्रांति प्रारम्भ हुई। किसानों ने भूमिपतियों से बदला लेने के लिये उनके महलों में आग लगवा दी। सरकार ने फौजी कानून का सहारा लेकर क्रांतिकारियों को बेरहमी से कुचलना प्रारम्भ किया। इसका जवाब क्रांतिकारियों ने पुलिस अधिकारियों और अन्य बड़े अधिकारियों की हत्या करके दिया। इस अराजकता के वातावरण में क्रांतिकारियों ने जार के चाचा को मार डाला।

इस अराजकता के वातावरण से परेशान होकर जार ने 1905 में शासन सुधारों की घोषणा की। उसने जनता को यह आश्वासन दिया कि एक ड्यूमा का निर्माण किया जायेगा। जिसे कानून बनाने का अधिकार होगा और जिसके सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित किये जायेंगे। वास्तव में सुधारों की घोषणा कर जार ने एक महत्वपूर्ण कदम उठाया था परन्तु उसने एक आदेश और निकाला, जिसके अनुसार उसने ड्यूमा को विधान सभा का प्रथम सदन माना, और साम्राज्य परिषद के नाम से एक दूसरे सदन का निर्माण कर सुधारों की घोषणा का प्रभाव कम कर दिया। साम्राज्य परिषद के सदस्यों की नियुक्ति जार द्वारा की जाती थी। जार ने यह घोषणा कर दी कि ड्यूमा से पास किये हुए बिल पर साम्राज्य परिषद की स्वीकृति प्राप्त करनी आवश्यक होगी। साम्राज्य परिषद की स्वीकृति के पश्चात् ही बिल जार की अनुमति के लिए भेजा जायेगा। इस प्रकार ड्यूमा नाम मात्र की संस्था रह गई क्योंकि उसके द्वारा पास किये हुए बिल को साम्राज्य परिषद अस्वीकृत कर सकती थी। इस प्रकार स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

क्रान्ति की असफलता के कारण—रूस की प्रथम क्रान्ति की असफलता के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे —

(i) रूस एक विशाल देश है। वहां यातायात एवं संचार साधनों के पूर्ण विकास के अभाव में क्रांतिकारी एक दूसरे के साथ सम्पर्क स्थापित नहीं कर सके। इसलिये रूस में सभी स्थानों पर एक साथ क्रान्ति नहीं हुई।

(ii) उस समय जार ने जापान के साथ संधि करली थी और रूसी सैनिक युद्ध से लौट कर आ चुके थे। उन्होंने जार पद की रक्षा के लिये क्रांति

का बरहमी से दमन किया। सेना के निर्दयी कार्यों से रूस में चारों ओर भय का आतंक का वातावरण उपस्थित हो गया।

(iii) क्रान्तिकारियों में केन्द्रीय व्यवस्था का अभाव था, इसलिये वे संगठित रूप से क्रान्ति नहीं कर सके। इस क्रान्ति को कुचलने के लिये रूस के शासक जार को यूरोपियन देशों ने काफी सहायता दी। फ्रांस ने इस क्रान्ति को कुचलने के लिये रूस को बहुत अधिक धन दिया। इंगलण्ड, जर्मनी और आस्ट्रिया की सहानुभूति भी जार के साथ थी। यूरोप के इन देशों ने क्रान्तिकारियों को बन्दी बना कर रूस को सुपुर्द करना प्रारम्भ किया।

(iv) क्रान्तिकारियों की आपसी फूट भी क्रान्ति की असफलता का कारण बनी। उनकी आपसी फूट के कारण वे संगठित रूप से जार का विरोध नहीं कर सके। किसान वर्ग बिल्कुल असंगठित था। इसके अतिरिक्त इस क्रान्ति का क्षेत्र केवल शहरों तक ही सीमित था। सोशलिस्ट डेमोक्रेटिक पार्टी की हत्याकाण्ड नीति से जनता में आतंक छा गया और उसने इस दल का साथ देना छोड़ दिया। क्रान्तिकारियों के पास जार को हटाकर शासन व्यवस्था स्थापित करने की कोई योजना नहीं थी। इतिहासकार केन्स ने लिखा है कि इस क्रान्ति से रूस में संवैधानिक शासन की स्थापना नहीं हो सकी और 1905 ई० के पूर्व की जार शाही कायम रही।

(6) **ड्यूमा की समाप्ति**—अक्टूबर, 1905 ई० में जार ने शासन सुधारों की घोषणा की जिसके अनुसार एक ड्यूमा की स्थापना की जायगी। जिसके सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित किये जायेंगे और जिसे कानून बनाने का अधिकार होगा। इस घोषणा का बोल्शेविक दल के अतिरिक्त सभी दलों ने स्वागत किया।

प्रथम ड्यूमा—1905 ई० में जार ने प्रथम ड्यूमा का निर्माण किया। 1906 में इसके सदस्यों के चुनाव हुए, जिसमें सुधारकों को भारी बहुमत प्राप्त हुआ। ड्यूमा के सदस्यों ने कार्यकारिणी पर अंकुश लगाने की माग की। इस पर जार ने ड्यूमा को कमजोर बनाने के लिये साम्राज्य परिषद की स्थापना की। अब ड्यूमा प्रथम सदन और साम्राज्य परिषद को दूसरा सदन घोषित किया गया। साम्राज्य परिषद को ड्यूमा के बराबर अधिकार दिये गये। साम्राज्य परिषद के आधे सदस्यों को जार मनोनीत करता था और आधे सदस्यों को निर्वाचित किया जाता था। ड्यूमा द्वारा पास किये हुए बिल को परिषद अस्वीकृत कर सकती थी। इस प्रकार ड्यूमा को अधिकार हीन संस्था बना दिया गया। फिर भी ड्यूमा के सदस्यों ने जार शाही पर नियन्त्रण लगाने का हर संभव प्रयास किया और जार

सरकार की कटु आलोचना की। फलस्वरूप जनता भी सरकार विरोधी होती जा रही थी। इसलिये जार ने 22 जुलाई 1906 ई० को पहली ड्यूमा भग कर दी।

दूसरी ड्यूमा—जार न 5 मार्च 1907 ई० को दूसरी ड्यूमा का निर्वाचन करवाया। रूस के प्रधानमन्त्री स्टोलीपिन ने जनता के असतोष और विद्रोह को दबाने के लिये घोर अत्याचार किये। उसन हजारो व्यक्तियो को या तो देश स बाहर निकाल दिया या जेलो मे बन्द कर दिया। प्रतिनिधियो और जार के बीच सघर्ष चलता रहा। इसलिये जार न समाजवादियो पर षडयन्त्र का आरोप लगाकर 16 जून 1907 ई० को दूसरी ड्यूमा भग कर दिया। परिणामस्वरूप तेजी से आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। सरकार न आन्दोलन को कुचलने के लिये दमन चक्र चलाया। इसलिये जार ने मताधिकार को सीमित करने के लिये प्रयास किया।

तीसरी ड्यूमा—इस ड्यूमा के निर्माण से पूर्व जार ने सितम्बर 1907 मे चुनाव सम्बन्धी कानूनो मे सशोधन किया। जिसके अनुसार मताधिकार को सीमित कर दिया। अब मतदान का अधिकार केवल जमींदार, जागीरदार और कुलीन वर्ग के व्यक्तियों को दिया गया। इसलिये जब 1907 ई० म तीसरी ड्यूमा के सदस्यो का चुनाव हुआ तो अधिकाश सदस्य जमीदार चुनकर आये, जो प्रतिक्रियावादी नीति के समर्थक थे। य सस्था जार के सलाहकार समिति के रूप मे थी। जार न इस सस्था की सहायता स फिर स निरकुश रूप से शासन करना प्रारम्भ किया। यह सस्था नाम मात्र की थी, जिसके सुधारो का कोई मूल्य नही था। जनता को उसके अधिकारो स वचित कर दिया गया था। जनता ने अधिकारो की पुन माग की इसलिय जार ने 1911 ई० म तृतीय ड्यूमा को भग कर दिया। 1911 ई० म एक बार पुन मताधिकार को सीमित कर दिया गया।

चौथी ड्यूमा—चौथी ड्यूमा का चुनाव 1912 ई० म हुआ। इस बार पूजीपति, कुलीन वर्ग और जमींदार वर्ग के लोग इसके सदस्य चुन गये। य सदस्य जार के समर्थक थे। इसलिय जार ने पुन निरकुश रूप से शासन करना प्रारम्भ कर दिया।

मजदूरो और किसानो न अपना असतोष व्यक्त करने के लिये हडतालो का सहारा लिया। बाल्शेविक दल न इन हडतालो का समर्थन किया। कृषको न हडतालों म हिंसात्मक कार्य करना शुरू कर दिये। जिसस सारे देश म अराजकता एव अशान्ति व्याप्त हो गई।

7- पश्चिमी राष्ट्रों का प्रभाव—पीटर न अपने शासनकाल म रूस का पश्चिमी देशो की तरह विकास करना प्रारम्भ कर दिया। रूस जब पश्चिमी देश के सम्पर्क म आया तो उस पर उनके विचारों का बहुत प्रभाव पड़ा। रूस वासियो ने देखा कि पश्चिमी राष्ट्रों म प्रजातन्त्रात्मक शासन व्यवस्था है तो इसम प्रभावित

होकर उन्होंने भी सरकार से रूस में प्रजातन्त्रात्मक शासन व्यवस्था स्थापित करने की माग की। 1789 से 1917 ई० के बीच फ्रांस, बेल्जियम, स्पेन, इंगलण्ड, यूनान, इटली जर्मनी और पोलण्ड आदि देशों में क्रान्तियां हुई और वह सफल रहीं। बाल्कन देश भी स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए प्रयास में लगे हुए थे। यूरोपियन देशों के प्रजातन्त्रात्मक शासन व्यवस्था से प्रभावित होकर रूसी जनता ने अपने देश में भी एक सर्वहारा वर्ग की सरकार स्थापित करने की माग की।

8 – रूस का बौद्धिक जागरण एवं योग्य नेताओं का योगदान—इस समय रूस ने बौद्धिक क्षेत्र में काफी विकास कर लिया था। रूसी लेखकों और विचारकों ने जनता में राष्ट्रीय चेतना की भावनाएं जाग्रत की और जनता को क्रान्ति करने के लिये प्रोत्साहित किया। विद्वानों ने जनता को यह समझाया कि वह सरकार से अपनी स्वतन्त्रता, समानता और मौलिक अधिकारों की माग करे। यूरोप की अनेक क्रान्तिकारी पुस्तकों का रूसी भाषा में अनुवाद किया गया। जब जनता ने उन पुस्तकों को पढ़ा तो उनमें राष्ट्रीय चेतना जाग्रत हुई और उसने क्रान्ति करने का निश्चय कर लिया। टाल्स्टाय, तुर्गनेव, दास्तोविस्की आदि विद्वानों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से जनता को क्रान्ति करने के लिए प्रोत्साहित किया। इन्होंने अपनी रचनाओं में जार शाही सरकार की कटु आलोचना की। इसका परिणाम यह हुआ कि शिक्षित वर्ग ने सुधारों की माग करना प्रारम्भ कर दिया। इस समय क्रान्ति का नेतृत्व लेनिन ने किया। उसने किसानों और मजदूरों को सगठित कर आन्दोलन करने के लिए प्रेरित किया। इस प्रकार लेनिन, स्टालिन, ट्राटस्की ने इस क्रान्ति को पूर्ण कर दिखाया।

9 – जनता का अधिकारों के प्रति जागरूक होना—रूसी जनता की अधिकारों के प्रति जागृति भी क्रान्ति का प्रमुख कारण था। जार ने अपनी सैनिक शक्ति से 1905 ई० की क्रान्ति को कुचल कर असफल कर दिया था। इस क्रान्ति की असफलता के पश्चात् जनता जागरूक हो गई। इसने उन्हें एक नई प्रेरणा दी। इसलिए 1905 ई० की क्रान्ति के पश्चात जनता ने अपने अधिकारों की माग करना प्रारम्भ कर दिया। ड्यूमा की स्थापना से जनता मताधिकार के प्रयोग से परिचित हो चुकी थी। इसलिये रूसी जनता ने प्रजातन्त्रात्मक शासन व्यवस्था की स्थापना के लिये आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। रूस के साम्यवादी दल ने राष्ट्रीय चेतना का प्रचार करने में महत्वपूर्ण सहयोग दिया। साम्यवादी दल ने साम्यवादी विचार धारा का प्रचार किया। इन विचारों से मजदूर वर्ग बहुत अधिक प्रभावित हुआ। साम्यवादी दल के कार्यकर्ताओं ने गुप्त रूप से साम्यवादी साहित्य मजदूरों तक पहुँचाना प्रारम्भ किया। अब मजदूर नेता साम्यवादी विचारों का अध्ययन करने लगे। धीरे धीरे रूसी मजदूर साम्यवादी शासन व्यवस्था के अनुयाई बन गये। अब उन्होंने निरकुश जार शाही को उखाड फेंकने का निश्चय कर लिया।

10—प्रथम विश्व युद्ध का प्रभाव—

(i) युद्ध में रूस की पराजय - प्रथम विश्व युद्ध में रूस ने मित्र राष्ट्रों की तरफ से भाग लिया। युद्ध के प्रारम्भ में रूस को शानदार सफलताएं मिलीं। इससे जनता का ध्यान युद्ध की विजय की ओर गया और रूस में शांति स्थापित हो गई। परन्तु कुछ समय पश्चात् ही जर्मनी ने रूस की सेनाओं को स्थान-स्थान पर बुरी तरह से पराजित किया। रूस की पराजय से जनता में जार के विरुद्ध असंतोष और तीव्र हो गया। जनता ने इस युद्ध में रूस की पराजय का कारण जार शाही सरकार को माना। युद्ध में हजारों रूसी सैनिकों के अनावश्यक मारे जाने से जनता में असंतोष व्याप्त था। इस समय ड्यूमा के सदस्यों ने जार से उत्तरदायी मंत्रि मण्डल नियुक्त करने की मांग की जिसे उसने अस्वीकार कर दिया।

(ii) रूस में अकाल (1916–17)—एक तरफ रूसी सेनाएं युद्ध में बुरी तरह हार रही थीं तो दूसरी तरफ 1916–17 में रूस में अकाल पड़ गया। युद्ध प्रारम्भ होते ही सरकार ने किसानों को बहुत अधिक संख्या में सेना में भर्ती कर लिया। किसानों के युद्ध क्षेत्र में चले जाने से खेतों में काम करने वाले व्यक्तियों का अभाव हो गया। फलस्वरूप खाद्यान्नों का उत्पादन बहुत कम हो गया। जिसके कारण वस्तुओं के भाव बहुत अधिक बढ़ गये।

यातायात के साधनों का पूर्ण रूप से विकास नहीं होने के कारण गांवों में जो थोड़ा बहुत उत्पादन हुआ था, उसे शहरों तक नहीं पहुंचाया जा सका। इस लिए रूस के नगरों में अकाल पड़ गया। वस्तुओं के भाव इतने बढ़ गये कि गरीबों के लिए जीवन निर्वाह करना असम्भव हो गया लेकिन सामंत और दरबारी अपना विलासपूर्ण जीवन व्यतीत करते रहे। उन्होंने जनता के कष्टों को दूर करने का कोई प्रयास नहीं किया। जार की सरकार इस अकाल की समस्या को हल करने में असफल रही। यह वातावरण क्रांति के लिए उपयुक्त था। इसलिए 7 मार्च, 1917 ई० को क्रांति प्रारम्भ हो गई।

(iii) सेना में असंतोष—प्रथम विश्व युद्ध में रूस ने मित्र राष्ट्रों की ओर से भाग लिया। रूस के सैनिक युद्ध के मोर्चे पर भेजे जा रहे थे। जार ने युद्ध के प्रारम्भिक तीन वर्षों में एक लाख पचास हजार सैनिक मोर्चे पर भेज दिये लेकिन सेना के पास खाद्यान्न व युद्ध सामग्री का अभाव होने के कारण रूसी सेना युद्ध में स्थान-स्थान पर बुरी तरह पराजित हुई। इस युद्ध में 20 लाख सैनिक मारे गये और 50 लाख घायल हुए। इस सैनिक विनाश के फलस्वरूप रूसी फौज

म असन्तोष फल गया। इस समय खाद्यान्न व युद्ध सामग्री के अभाव म हजारा सनिक बेमौत मारे जा रहे थे और जार महलो म विलासिता पूण जीवन व्यतीत कर रहा था। इन घटनाओं से सनिक असन्तुष्ट हो गये जिसमे क्रान्ति के स्पष्ट सकेत प्रकट होने लगे। असन्तुष्ट सनिक फौजो स भागन लगे। उन्होने किसानो और मजदूरो की हडतालो का समथन किया। जिससे फलस्वरूप क्रान्ति स्पष्ट रूप म दृष्टिगोचर होने लगी।

क्रान्ति का विकास—रूस की क्रान्ति का फरवरी 1917 ई० से नवम्बर 1917 ई० तक तीन चरणो म विकास हुआ। ये तीन चरण निम्नलिखित हैं—

1—माच 1917 ई० की क्रान्ति और जार शाही का अन्त

2—अक्टूबर 1917 ई० की समाजवादी क्रान्ति,

3—बोल्शेविक क्रान्ति, नवम्बर, 1917।

1 माच, 1917 ई० की क्रान्ति और जार शाही का अन्त—फ्रांस की क्रान्ति की तरह रूस की क्रान्ति तीन परिस्थितियो से होकर गुजरी। रूस म पहली क्रान्ति माच, 1917 ई० में हुई। 1916 ई० तक रूसी जनता अधिकारियो और ड्यूमा के सदस्यो म जार क विरुद्ध भयकर असन्तोष व्याप्त हो गया था। 1916—17 तक हडतालो ने क्रान्ति का रूप धारण करना प्रारम्भ किया। चारो तरफ सुधारो की माग की जान लगी परन्तु जार न इसको अस्वीकार कर दिया। नवम्बर, 1916 ई० म प्रगतिशील दल के नेता मिल्यूकोव ने महल षडयन्त्र रच कर जार को हटाने का प्रयास किया, परन्तु उसे सफलता नहीं मिली।

इसके पश्चात सेनापति गुर्को ने ड्यूमा को भग कर सनिक शासन स्थापित करने का प्रयास किया। अब जार के विरुद्ध जनता म भयकर असन्तोष व्याप्त था। क्रान्तिकारियो ने क्रुद्ध होकर जार क सलाहकार रासपुटिन की 1916 ई० म हत्या कर दी। चारो तरफ अराजकता और अशान्ति का वातावरण पदा होने लगा। इससे दगे फसाद और हडतालें ज्यादा होन लगी। 1917 ई० मे रूस की राजधानी पेट्रोग्राड में अप्रत्यक्ष रूप मे क्रान्ति हो गई। हेज ने लिखा है कि इस समय रूस मे क्रान्ति करने के लिए कोई भी तयार नही था। खूनी रविवार की जयन्ति के दिन मास्को में दो हजार मजदूरो ने एक विशाल जुलूस निकाला। इनका मुख्य नारा यह था कि युद्ध को समाप्त कर दिया जाय। रूस मे चारो ओर जार शाही के विरुद्ध आवाजें उठन लगी।

7 माच को भूख से व्याकुल मजदूरो ने पेट्रोग्राड म एक जुलूस निकाला। उनका मुख्य नारा 'रोटी' था। उन्होन लूटमार करना प्रारम्भ कर दिया। 8 माच को कपडे के कारखानो मे काम करने वाली स्त्रियो ने हडताल कर दी।

उनकी माग थी कि उन्हे भर पेट रोटी चाहिये । उनके समर्थन म मजदूरो ने हड़ताल कर एक विशाल जुलूस निकाला । उनका नारा यह था कि युद्ध को समाप्त किया जाय और सभी क लिए भर पेट भोजन की व्यवस्था की जाय । जार ने मजदूर आन्दोलन को कुचलने के लिये सेना को गोली चलान का आदेश दिया, लेकिन सेना न गोली चलान से इन्कार कर दिया । सेना मे क्रान्ति की भावना का विकास होने लगा । इसलिये सेना मजदूरो स जाकर मिल गई ।

मजदूर हडताल न जोर पकडा । 10 मार्च को पेट्रोग्राड के सभी कारखानो के मजदूर हडताल पर रहे । जिससे कारखाने बन्द हो गये । पेट्रोग्राड के मजदूरो के समर्थन मे रूस के प्रमुख नगरो के मजदूरो न भी हडताल कर दी । 10 मार्च को सारे देश के मजदूर हडताल पर रहे । जार न सैनिको को हडताल का दमन करने के लिये भेजा परन्तु सेना मजदूरो से जाकर मिल गई । 11 मार्च को जार ने ड्यूमा भग कर दी और हडतालो कर्मचारियो को यह चेतावनी दी कि वे काम पर लौट आयें लेकिन मजदूरो न इस आदेश को मानने से इन्कार कर दिया । इसके अतिरिक्त ड्यूमा के प्रतिनिधियो ने अपने पद से हटने के लिए इन्कार कर दिया । 14 मार्च 1917 ई० को जार्ज लवोव क नेतृत्व म एक अस्थाई उदारवादी सरकार की स्थापना कर दी गई । हेज ने लिखा है कि जार ने चुपचाप 15 मार्च, 1917 ई० को सिंहासन छोड दिया और किसी प्रकार का विरोध नही किया । इस प्रकार मार्च की क्रान्ति स रूस मे जार शाही का अन्त हो गया और एक उदारवादी सरकार की स्थापना हुई । इस अस्थाई उदारवादी म समाजवादी उदारवादी मेन्शेविक आदि सभी दलो क प्रतिनिधि थ ।

उदारवादी सरकार क कार्य — प्रिंस लवोव के नेतृत्व म बनी अस्थाई सरकार के अधिकांश सदस्य कुलीन वर्ग के थे । यद्यपि क्रान्ति मजदूरो न की थी परन्तु उन्हें शासन म कोई स्थान नही दिया गया । इस क्रान्ति ने पट्रोग्राड में वही भूमिका अदा की जो पेरिस न फ्रांस की राज्य क्रान्ति में की थी । [1] रूस में भी पेरिस की तरह क्रान्ति मजदूरो क द्वारा की गई, परन्तु सत्ता मध्यम वर्ग के हाथो में आ गई । लिप्सन ने लिखा है कि शासन सत्ता मध्यम वर्ग को सौंपने का कारण यह था कि वे शक्ति अपने पास रखने म असमर्थ थे ।

मित्र राष्ट्रो ने इस नई उदारवादी अस्थाई सरकार को मान्यता प्रदान कर दी । इस सरकार ने निम्न कार्य किये—

1—राजनीतिक कारणो से बनाये गये बन्दियो को रिहा कर दिया गया ।

2—रूस में गणतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था स्थापित करने की घोषणा की गई ।

1—लिप्सन—यूरोप इन नाइनटीन्थ एण्ड ट्वेन्टीथ सेन्चुरीज, पृष्ठ 303

3—जनता को भाषण लेखन व प्रेस की स्वतन्त्रता प्रदान की गई।
4—जार द्वारा रूस से निकाले गये लोगों को पुन रूस म आने की अनुमति दे दी गई।
5—यूनानी चच के विशेषाधिकारों की समाप्ति कर दी गई।
6—मृत्यु दण्ड की सजा समाप्त कर दी गई।
7—यहूदियों पर लाद गये विशेष कानूनों को समाप्त कर दिया गया।
8—रूस म वयस्क मताधिकार के आधार पर नया शासन विधान बनाने की घोषणा की गई।
9—पोलण्ड को स्वायत्त शासन देने का आश्वासन दिया गया।
10—रूस की नई उदारवादी सरकार न अपनी विदेशी नीति निर्धारित करते हुए कहा कि सरकार अपनी मातृभूमि के अधिकारों की सुरक्षा करेगी और उसके साथ ही मित्र राष्ट्रों से किये गये समझौतों का का पालन करेगी। इस प्रकार नई सरकार न यह घोषणा की कि युद्ध को जारी रखा जायेगा। मित्र राष्ट्रों न इस घोषणा का स्वागत किया।

2—अक्टूबर 1917 ई० की समाजवादी क्रांति

उदारवादी सरकार के सुधार भी किसानों मजदूरों और सनिकों म असतोष को दूर करने मे असफल रहे। फलस्वरूप रूस मे किसानों और मजदूरों ने अपने अपने सगठन बनाये। ये सगठन सोवियत सघ के नाम से प्रसिद्ध हुए। सनिक भी इस सघ के सदस्य बन गये। अराजकता के वातावरण म सघ ने सरकार के काय करने प्रारम्भ कर दिये। इस सघ म बोल्शेविकों का बोलबाला था सरकार और सोवियत सघ म आपस म मत भेद था क्योंकि नई सरकार म इस सघ के सदस्यों को कोई स्थान नहीं दिया गया था। नई अस्थाई सरकार के अधिकारियों ने भी आन्दोलनों को बेरहमी से कुचलना प्रारम्भ किया। फलस्वरूप इस नई सरकार के विरुद्ध जनता म असन्तोष व्याप्त था।

इस समय तक अनेक निवासित साम्यवादी नेता लनिन ट्राटस्की और स्टालिन आदि रूस लौट आये थे। लेनिन ने उदारवादी सरकार से माग की कि युद्ध को बन्द कर दिया जाय और रोजी रोटी की समस्या को हल किया जाय। उदारवादी सरकार ने युद्ध जारी रखने की घोषणा की इसलिय उसके विरुद्ध जनता मे असन्तोष बढा। लेनिन ने भी युद्ध जारी रखने का विरोध किया अत रूस म पुन विद्रोह प्रारम्भ हो गये। एक तरफ तो रूसी स्थान-स्थान पर हार रहे थे और दूसरी तरफ जनता म असतोष बढता जा रहा था। इसलिय प्रिंस ल्वोव और उसके समथकों ने उदारवादी सरकार स इस्तीफा दे दिया। 15 जुलाई 1917 को केरेंसकी के नेतृत्व मे समाजवादियों की नई सरकार बनी। केरेंसकी को प्रधानमन्त्री बनाया गया।

करेंसकी सरकार मजदूरों, सैनिकों और किसानों का असंतोष दूर करने में असफल रही। फलस्वरूप इसमें असन्तोष और अधिक बढ़ा। करेंसकी ने भी युद्ध जारी रखने की घोषणा की परन्तु उसे सफलता नहीं मिली। इसका कारण यह था कि लेनिन युद्ध बन्द करने का पक्षपाती था। वह रूस में शांति स्थापित करना चाहता था। जब रूसी सेनायें मोर्चों पर हारने लगी, तब असंतुष्टों ने सरकार के विरुद्ध प्रदर्शन किये। बोल्शेविक दल ने इन प्रदर्शनकारियों का नेतृत्व किया। केरेंसकी इस बिगड़ती हुई परिस्थिति का सामना नहीं कर सका और उसने 6 नवम्बर 1917 को सरकार से स्तीफा दे दिया।

3—बोल्शेविक क्रान्ति (नवम्बर 1917) —

नवम्बर 1917 ई० में लेनिन के नेतृत्व में रूस में दूसरी राज्य क्रांति हुई, जिसे पूर्ण रूप से सफलता मिली। यह क्रान्ति विश्व इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इस क्रांति की मुख्य विशेषता यह थी कि यह एक रक्त हीन क्रांति थी। लेनिन बोल्शेविक दल का नेता और संस्थापक था। सेवाइन ने लिखा है कि "इतिहास में ऐसे अकेले व्यक्ति का उदाहरण कम देखने को मिलता है जिनका घटनाओं की गति पर इतना सीधा प्रभाव हो और इसमें भी अधिक ऐसे कम लोग होंगे जो लेनिन के समान बाधाओं की बाढ़ को लाघने में सफल हुए हों।"[1]

मार्च 1917 ई० में लेनिन को रूस से निर्वासित कर दिया गया था। उसने बाहर रहकर भी क्रांति का वातावरण तैयार किया। अप्रैल, 1917 ई० को वह पट्रोग्राड पहुँचा और उसने बोल्शेविक दल के सम्मुख समाजवादी क्रांतिकारी विचार रखे। लेनिन को ट्राटस्की का सहयोग प्राप्त हो जाने से बोल्शेविक दल अधिक शक्ति शाली बन गया। ट्राटस्की को पट्रोग्राड स्थित सोवियत संघ का प्रधान बना दिया गया। अब बोल्शेविक दल ने सत्ता हथियाने के प्रयास प्रारम्भ कर दिए। बोल्शेविक दल के पास 25 000 सशस्त्र मजदूर थे, जिन्हें 'रेड गार्ड' के नाम से पुकारा जाता था। पेट्रोग्राड में स्थित रूसी सेना भी रेड गार्ड में जाकर मिल गई क्योंकि उन्हें यह भय था कि कहीं उन्हें युद्ध के मोर्चे पर न भेज दें।

5 नवम्बर 1917 ई० को केरेंसकी ने बोल्शेविक दल के नेताओं को गिरफ्तार करने के आदेश जारी किये लेकिन इस समय तक क्रांति की पूरी तैयारी हो चुकी थी, इसलिये उसके आदेशों का पालन नहीं हुआ। 6–7 नवम्बर की रात्रि को बोल्शेविक सैनिक टुकड़ियों ने पेट्रोग्राड के रेलवे स्टेशन स्टेशन, स्टेट बैंक, टेलीफोन एक्सचेंज, डाक घर और अन्य सरकारी भवनों पर कब्जा कर लिया। 7 नवम्बर 1917 को केरेंसकी राज्य सत्ता छोड़कर भाग गया सरकार के अन्य सदस्यों को बोल्शेविक सैनिक टुकड़ियों ने गिरफ्तार कर लिया। रूस की शासन सत्ता पर बोल्शेविकों का अधिकार हो गया। उन्होंने पट्रोग्राड के शरद भवन पर लाल झंडा फहरा दिया। इस क्रांति का नेतृत्व लेनिन ने किया था और उसे ट्राटस्की और स्टालिन ने

1—सेबाइन ए हिस्ट्री आफ वर्ल्ड सिवलीजेशन—पृष्ठ 639

अपना पूर्ण सहयोग किया था। इस प्रकार बोल्शेविक क्रान्ति बिना किसी एक खून की बूंद बहाये सफलता पूर्वक सम्पन्न हो गई। बोल्शेविक दल ने लेनिन को प्रधान मन्त्री और ट्राटस्की को युद्ध मन्त्री के पद पर नियुक्त किया।

लेनिन के पास निश्चित कार्यक्रम थे। युद्ध बन्द करके सन्धि करना भू स्वामियों का भूमि पर से अधिकार बिना मुआवजा दिये समाप्त करना भूमि किसानो म बांटना उद्योग धन्धों पर श्रमिकों का नियन्त्रण रखना, नगरों म अनाज पहुँचाने की व्यवस्था करना व्यक्तिगत सम्पत्ति को जब्त करना निजी कारखाना बैंको और बीमा कम्पनियों का राष्ट्रीयकरण करना आदि। लेनिन ने प्रधान मन्त्री बनने के पश्चात 8 जनवरी 1918 ई को जर्मनी के साथ ब्रस्ट लिटोवस्क की सन्धि कर रूस को युद्ध से अलग कर लिया। यूरोपियन इतिहास म यह सन्धि सर्वाधिक अपमानजनक एव दुर्भाग्यपूर्ण सन्धि थी, परन्तु लेनिन किसी भी कीमत पर युद्ध बन्द करना चाहता था ताकि शान्ति स्थापित कर रोजी रोटी की समस्या को हल किया जा सके। इस सन्धि से मित्र राष्ट्र रूस के विरुद्ध हो गये परन्तु रूस के समक्ष आन्तरिक विकास के लिये सन्धि के अलावा अन्य कोई विकल्प नहीं था।

बोल्शेविक क्रान्ति के पश्चात रूस ने जर्मनी के साथ सन्धि कर युद्ध बन्द कर मित्र राष्ट्रों के साथ विश्वासघात किया था। इसका परिणाम यह हुआ कि जर्मनी की शक्ति म वृद्धि हुई। इसलिये मित्र राष्ट्रों ने बोल्शेविक क्रान्ति को एक चुनौती समझकर इसे कुचलने के लिये रूस का घेरा डाल दिया क्रान्ति के विरोधियों को पश्चिमी राष्ट्रों ने सहायता दी। जिससे रूस म क्रान्ति के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ हो गये। अब बोल्शेविक दल की लालसेना ने ट्राटस्की के नेतृत्व म श्वेत सेना से युद्ध किया। इस युद्ध म बोल्शेविक दल की विजय हुई। इस दल ने घरेलू और बाहरी सभी शत्रुओं को परास्त करके खदेड़ दिया। 1920 ई० मे इस संघर्ष की समाप्ति हुई। अब रूस म साम्यवादी शासन व्यवस्था सुदृढ़ रूप से स्थापित हो गई। इस अवधि म रूस के जार परिवार को यूराल पर्वत पर स्थित इकेटिन वर्ग मे बन्दी बनाकर रखा गया। जिसे 16 जुलाई 1918 को बोल्शेविक दल के अधिकारियों ने गोली से उड़ा दिया। इस प्रकार रोमनोव वंश के अन्तिम शासक का अन्त हुआ।

क्रान्ति की सफलता के कारण—बोल्शेविक क्रान्ति की सफलता के प्रमुख कारण निम्न लिखित थे—

(1) **किसानों और मजदूरों का समर्थन**—बोल्शेविक क्रान्ति का नेतृत्व बोल्शेविक दल ने किया था। किसान और मजदूर इस दल के सदस्य थे। इन दोनों ही वर्गों ने क्रान्ति म अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। किसानो का यह मानना था कि क्रान्ति की सफलता के पश्चात् भूमि पर उनका अधिकार हो जायगा जबकि मजदूरों का यह मानना था कि क्रान्ति के पश्चात उद्योग धन्धो पर उनका नियन्त्रण स्थापित हो जायगा। यदि क्रान्ति

असफल हो जायेगी तो मजदूरों और किसानों का फिर से शोषण प्रारम्भ हो जायेगा। इसलिये बोल्शेविक क्रान्ति को सफल बनाने के लिये किसानों और मजदूरों ने जी जान से बोल्शेविक दल का साथ दिया।

(2) अस्थाई सरकार की असफलता - क्रान्ति के प्रारम्भ में जो अस्थाई सरकार बनी थी, उसमें विभिन्न दलों के प्रतिनिधि थे। जिनमें परस्पर फूट थी। इस प्रकार अस्थाई सरकार में सगठन का अभाव था और वह विभिन्न दलों की खिचड़ी मात्र थी। अस्थाई सरकार ने युद्ध को जारी रखने की घोषणा की परन्तु वह रोजी रोटी की समस्या को हल नहीं कर सकी। युद्ध जारी रखने के कारण मित्र राष्ट्रों ने भी इस अस्थाई सरकार को सहयोग देने का निश्चय किया। मित्र राष्ट्र युद्ध के लम्बे चलने के कारण थक चुके थे। रूस बहुत दूर होने के कारण वे बड़े पैमाने पर कोई कार्यवाही नहीं कर सके। बोल्शेविक शासन को उखाड़ने के लिए इंगलैण्ड, फ्रांस और जापान ने हर सम्भव प्रयास किया, परन्तु वे असफल रहे। जनता ने इस क्रान्ति के पश्चात बोल्शेविकों के शासन को स्वीकार कर लिया। मित्र राष्ट्रों के युद्ध में व्यस्त रहने के कारण बोल्शेविकों ने रूस में अपने पैर जमा लिये।

(3) युद्ध बन्दी की मांग—रूस क्रान्ति की सफलता का एक अन्य कारण बोल्शेविकों द्वारा युद्ध बन्द करने की मांग करना था। रूस की जनता युद्ध से परेशान हो चुकी थी। युद्ध के लम्बे होने के कारण अकाल का क्षेत्र बढ़ता जा रहा था और वस्तुओं के भाव आसमान को छू रहे थे। जब अस्थाई सरकार ने युद्ध जारी रखने की घोषणा की तो बोल्शेविकों ने इसका विरोध किया। परिणामस्वरूप उन्हें जनता का समर्थन प्राप्त हो गया।

(4) बोल्शेविकों का कार्यक्रम जनता की आकांक्षाओं के अनुरूप था—बोल्शेविक दल के कार्यक्रम जनता की इच्छा के अनुरूप थे। इस दल ने यह घोषणा की कि भूमि पर किसानों को अधिकार दे दिया जायेगा। उद्योग धन्धों पर मजदूरों का नियन्त्रण स्थापित कर लिया जायेगा। निजी कारखाना, बैंकों और बीमा कम्पनियों को सरकार अपने हाथ में ले लेगी। इस प्रकार बोल्शेविक दल सर्वहारा शासन और समाज की स्थापना करना चाहते थे। इस दल के कार्यक्रम जन कल्याण पर आधारित होने से यह दल कुछ समय में ही जनता में लोकप्रिय हो गया।

(5) लेनिन का प्रभावशाली व्यक्तित्व—रूस क्रान्ति की सफलता का मुख्य कारण लेनिन का प्रभावशाली व्यक्तित्व होना था। उसी ने क्रान्ति का सफल नेतृत्व किया और किसानों और मजदूरों को बोल्शेविक दल के झण्डे के नीचे एकत्रित कर क्रान्ति करने के लिये प्रोत्साहित किया था।

रूस की क्रान्ति में लेनिन का योगदान - रूसी क्रान्ति का सबसे प्रसिद्ध नेता लेनिन था। उसका वास्तविक नाम ब्लाडीमीर इलियच यूनियानोव था, परन्तु वह

इस गेल म बिलकुल भी रुचि नही थी। वह तो मार्क्स के विचारो का अध्ययन करने म व्यस्त रहता था। 1903 ई० म वह लेनिन का प्रथम अनुयाई बना। लॅगसम ने लिखा है कि स्टालिन निर्भीक तथा कम बोलने वाला व्यक्ति था परन्तु वह भयकर से भयकर कठिनाई का सामना करने म नही घबराता था उसकी मनोवृत्ति किसी के आगे झुकने की नही थी। इसलिय उस लौह पुरुष के नाम से जाना जाता था।

लेनिन की मृत्यु के पश्चात शासन सत्ता पर नियन्त्रण रखने क लिये लियोन ट्राटस्की और जोसेफ स्टालिन क बीच सघष प्रारम्भ हो गया। इस सघष म स्टालिन को सफलता मिली। उसन 1929 ई० म ट्राटस्की को पराजित कर दिया और रूस का तानाशाह बन गया। स्टालिन और ट्राटस्की के बीच सिद्धान्ता का भी सघष था। ट्राटस्की साम्यवाद को अन्तर्राष्ट्रीय बनाने क पक्ष म था जबकि स्टालिन इसका विरोधी था। उसका यह कहना था कि दूसरे देशा म साम्यवाद का प्रसार करन की अपेक्षा पहल इस रूस म दृढतापूवक स्थापित कर दिया जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त रूस को अपना आर्थिक विकास करना चाहिये। इसके विपरीत ट्राटस्की सम्पूण विश्व म साम्यवादी क्रान्ति लाना चाहता था।

स्टालिन यह चाहता था कि रूस कृषि और उद्योग क क्षेत्र म इतना अधिक विकास कर ले कि वह पूजीपति देशो पर निभर न रह। 1936 म स्टालिन ने एक नया सविधान बनाया। जिसक द्वारा लागो को राजनीतिक और आजीविका पान का अधिकार दिया गया। उसने रूस के आर्थिक विकास के लिए दो पच वर्षीय योजनाऐ लागू की। इससे सामन्तो का प्रभाव समाप्त हो गया और रूस म उत्पादन बढा। इस प्रकार स्पष्ट है कि स्टालिन ने लेनिन क अधूरे कार्यो को पूरा कर क्रान्ति को पूण कर दिखाया। 1953 ई० तक वह रूस का अधिनायक बना रहा। उसके समय म रूस म साम्यवाद दृढता पूवक स्थापित हो गया।

क्रान्ति क परिणाम—रूस की इस क्रान्ति का विश्व क इतिहास म महत्वपूर्ण स्थान है। इस क्रान्ति न विश्व क सारे राष्ट्रो को प्रभावित किया। इसस रूस के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षत्र म आश्चयजनक परिवतन हुए। इस क्रान्ति के प्रमुख परिणाम निम्नलिखित हुए—

1— राजनीतिक परिणाम –

(1) **साम्यवादी शासन की स्थापना**—इस क्रान्ति से रूस मे तीन शताब्दी से चले आ रहे निरकुश राजतन्त्र की समाप्ति हो गई और उसक स्थान पर साम्यवादी शासन व्यवस्था स्थापित हुई। पूजीपतियो का कठोरता से दमन किया गया। समाजवाद के विरोधियो को मौत के घाट उतार दिया गया। बड़े जागीरदार पूजीपति, धर्माधिकारी

और जारशाही के अधिकारियों को या तो देश से निष्कासित कर दिया गया या जेल के सीखचों में बन्द कर दिया गया।

रूस की इस क्रांति से वर्ग हीन समाज का उदय हुआ। जिसमें व्यक्ति की योग्यता और श्रम का पूरा मूल्यांकन किया जाता था। इसलिये विद्वानों का यह मानना है कि मार्च 1917 की क्रांति केवल राजनीतिक क्षेत्र तक ही सीमित रही जबकि नवम्बर 1917 ई० की क्रांति से राजनीतिक क्षेत्र के अतिरिक्त आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। इस क्रान्ति से रूस में सामाजिक समानता स्थापित हुई। अब मजदूर किसान व पूंजीपति में कोई अन्तर नहीं रहा। कानून के समक्ष सभी समान थे। इसके अतिरिक्त सभी को अपनी योग्यतानुसार उन्नति का अवसर प्राप्त हुआ।

(ii) **पराधीन राष्ट्रों में नवचेतना का संचार**—रूस की इस क्रान्ति का एशिया और अफ्रीका के पराधीन राष्ट्रों पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। इससे उन पराधीन देशों की जनता में साम्राज्यवाद के विरुद्ध राष्ट्रीयता की नवचेतना का संचार हुआ। अब इन देशों की जनता ने अधिकारों और स्वतन्त्रता को प्राप्त करने के लिये राष्ट्रीय आन्दोलन को और तेज कर दिया। इस क्रान्ति से प्रभावित होकर भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन की गति और तेज हो गई।

(iii) **रूस द्वारा साम्यवाद का प्रसार** इस क्रान्ति के पश्चात रूस ने विश्व के अन्य देशों में साम्यवाद का प्रसार किया। जिसके फलस्वरूप सम्पूर्ण पूर्वी यूरोप के देशों में साम्यवादी शासन व्यवस्था का सूत्रपात हुआ। एशिया में चीन जैसा विशाल देश भी साम्यवादी बन गया। इसके अतिरिक्त एशिया के कुछ अन्य देशों में भी साम्यवादी शासन व्यवस्था की स्थापना हो गई। अन्य कई देशों में भी इस विचार धारा का प्रभाव बढ़ता ही जा रहा है।

(iv) **रूस के पश्चिमी राष्ट्रों से तनावपूर्ण सम्बन्ध**—रूस और मित्र राष्ट्रों के बीच तनावपूर्ण सम्बन्ध होने के तीन कारण थे—पहला कारण यह था कि रूस ने मित्र राष्ट्रों की सलाह लिये बिना युद्ध बन्द कर दिया और जर्मनी के साथ ब्रेस्ट लिटोवस्क की सन्धि कर ली। मित्र राष्ट्र नहीं चाहते थे कि रूस जर्मनी से सन्धि करे। इसलिए वे उससे नाराज हो गये। दूसरा कारण यह था कि मित्र राष्ट्रों ने जार के समय रूस को कर्जा दिया था। उसे बोल्शेविक सरकार ने चुकाने से इन्कार कर दिया। तीसरा कारण यह था कि साम्यवाद दिन प्रति दिन प्रबल होता जा रहा था। इसलिए इंगलैंड, फ्रांस और अमेरिका आदि पूंजीवादी देशों ने रूस में सैनिक हस्तक्षेप कर और क्रान्ति

विरोधी तत्वों की सहायता देकर क्रान्ति को असफल बनाने का प्रयास किया, परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली।

लेनिन और उसके साथी रूस म साम्यवाद को दृढ़तापूर्वक स्थापित कर विश्व क अन्य देशो मे इसका प्रसार करना चाहते थे। जब बोल्शेविक सरकार ने जार के समय की गुप्त सन्धियों को प्रकाशित करवाया तो इससे मित्र राष्ट्रों के साथ रूस के सम्बन्ध और कटु हो गये। जब मित्र राष्ट्रों को रूस की क्रान्ति को विफल बनाने म सफलता नहीं मिली, तो उन्होंने रूस का बहिष्कार करना प्रारम्भ कर दिया।

इसलिये युद्ध समाप्ति के पश्चात पेरिस शान्ति सम्मेलन म रूस को नही बुलाया गया। युद्ध के दौरान जर्मनी ने रूस के जिन प्रदेशो पर अधिकार कर लिया था वे उसे नही लौटाये गये। इसके बाद कई वर्षों तक उसे राष्ट्र संघ का सदस्य नही बनाया गया। रूस के साथ व्यापारिक सम्बन्ध समाप्त कर दिये गये। रूस ने पश्चिमी देशों के विरोध का डट कर सामना किया। इसका परिणाम यह हुआ कि विश्व दो गुटो म विभाजित हो गया, साम्यवादी गुट और पूजीवादी गुट।

(v) **यूरोप में तानाशाही शक्तियों का उदय**—पूजीपति राष्ट्रो ने साम्यवाद को कुचलने का हर सम्भव प्रयास किया। रूस ने इसका डट कर सामना किया। इन दोनो के संघर्ष के कारण यूरोप म तानाशाही शक्तियों का उदय हुआ। जसे जमनी मे हिटलर के नेतृत्व में नाजीवाद और इटली म मुसोलिनी के नेतृत्व म फासिस्टवाद का उत्कर्ष हुआ। इन दोना अधिनायको ने साम्यवादी विरोधी प्रचार किया। फलस्वरूप ब्रिटेन और फ्रास ने इनके प्रति तुष्टिकरण की नीति अपनाई। जिसके कारण तानाशाही शक्तियो का उदय सम्भव हो सका और ससार को द्वितीय महायुद्ध का विनाशकारी परिणाम भुगतान पडा।

2—सामाजिक परिणाम—

(1) **नये समाज का जन्म**—इस क्रान्ति के फलस्वरूप रूस क सामाजिक क्षेत्र मे आश्चर्यजनक परिवर्तन हुए। रूस की पुरानी सामाजिक व्यवस्था समाप्त हो गई। भूमि और उद्योग सरकार ने अपने हाथ म ले लिये। कारखानो, बैंको और बीमा कम्पनिया का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। इस प्रकार के कार्यों से रूस मे पूजीपति, सामन्त और कुलीन वर्ग के प्रभाव का अन्त हो गया। मकनल बर्नस ने लिखा है कि 'कारखाने, खानें, रेल की पटरिया और जनता के प्रयोग की वस्तुएं सबका स्वामी राज्य था। भण्डार या तो सरकारी थे या सहकारिता द्वारा चलाये जाते थे। कृषि का भी पूर्ण रूप से

सरकारीकरण हो गया था। देश की भूमि का दसवां भाग सरकार का था, बाकी सब सहकारिता द्वारा संचालित था। सामाजिक क्षेत्र, मे भी कोई कम क्रान्तिकारी परिवर्तन नही हुये थे।"[1] इस क्रान्ति से शासन में मजदूरों और किसानों का प्रभुत्व स्थापित हो गया। अब रूस म मजदूरो की प्रतिष्ठा होने लगी। अब उनके शोषण की समस्या भी नहीं रही थी।

(ii) शिक्षा का विकास क्रांति के पश्चात शिक्षा के क्षेत्र में भी बहुत अधिक विकास हुआ। सरकार ने शिक्षा का काम अपने हाथ मे ले लिया। 1930 ई० तक रूस में नि शुल्क और अनिवार्य शिक्षा लागू कर दी गई। इसका परिणाम यह हुआ कि 1930 ई० तक रूस की 90 प्रतिशत जनता शिक्षित हो गई।

(iii) धर्म पर प्रभाव—इस क्रान्ति के कारण धर्म पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। साम्यवाद में धर्म के लिये कोई स्थान नही था। इसलिये रूस में धर्म या धार्मिक संस्थाऐं नहीं पनप सकी। रूस म चर्चों की संख्या कम कर दी गई। चर्च की भूमि और सम्पत्ति पर सरकार ने अधिकार कर लिया।

(iv) स्त्रियों की दशा मे सुधार—इस क्रांति मे रूस की स्त्रियो की दशा म महत्वपूर्ण सुधार हुआ। अब उन्होने घर की चार दिवारी से बाहर निकलकर कारखानो म, सेना म और राजकीय नौकरियों म काम करना प्रारम्भ कर दिया। यही कारण है कि आज रूस म 50 प्रतिशत स्त्रिया डाक्टर हैं। अनेक स्त्रिया सेना में जनरल हैं और कारखानो म करोड़ों स्त्रियाँ मजदूर एवं फोरमेन का काम कर रही है।

3—आर्थिक परिणाम—

(i) रूस का औद्योगिक विकास—1917 ई० की क्रान्ति के बाद रूस ने तीव्र गति म औद्योगिक क्षेत्र म प्रगति की। रूस की साम्यवादी सरकार ने कारखानो का राष्ट्रीयकरण कर दिया और जमीन किसानों मे बांट दी। इससे किसानो को राहत मिली और पूंजीपति वर्ग समाप्त हो गया परन्तु रूस म उत्पादन घट गया। जिसके कारण 1921 ई० मे भयंकर अकाल पड़ा। इस अकाल के कारण 50 लाख व्यक्ति भूख से मर गये। इसलिये लेनिन ने 1921 ई० मे नवीन 'आर्थिक नीति' अपनाई। जब स्टालिन रूस का प्रधान बना तो उसने रूस का औद्योगिक विकास करने के लिए दो पंच वर्षीय योजनाऐं लागू कीं।

1—मकनल बनस — वस्टन सिवलीजेशन्स, पृष्ठ 777

इसमे उसे आश्चयजनक सफलता मिली। इन योजनाओ से रूस का औद्योगिक और कृषि के क्षेत्र म बहुत अधिक विकास हुआ। अब रूस आत्म निभर बन गया। इसके पश्चात रूस निरतर विकास कर रहा है। अब रूस विश्व का एक शक्तिशाली राष्ट्र माना जाता है।

(ii) **श्रमिकों के जीवन स्तर में वृद्धि**—इस क्राति के पश्चात पूजीपति वग का अन्त हो गया। सरकार ने कारखानो का राष्ट्रीयकरण कर दिया। क्राति से पूव पूजीपति वग मजदूरों का शोषण करता था। उनकी कोई प्रतिष्ठा नहीं थी। उनको मजदूरी बहुत कम दी जाती थी। उनके लिए कोई व्यवस्था नही थी, परन्तु आज रूस का मजदूर सर्वाधिक सुखी है। उसके रहने के लिए आवास की अच्छी व्यवस्था है। कारखानो मे विश्राम गृह और मनोरजन कक्ष हैं। मनोरजन के साधनो द्वारा श्रमिको को स्वास्थ्य की शिक्षा दी जाती है। वद्धावस्था म पेन्शन बीमारी का बीमा और सामाजिक बीमा की व्यवस्था भी है। सरकार बेरोजगारो को काम देना अपना कत्त य मानती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि रूस की यह क्राति एक महत्वपूण क्राति थी जो विश्व इतिहास में महत्वपूण स्थान रखती है। इससे मजदूरो का शोषण समाप्त हो गया। इस क्राति के पश्चात रूस म किसानो और मजदूरो की सरकार स्थापित हुई, जो सोवियत रूस के नाम से प्रसिद्ध है। रूस मे साम्यवादी शासन व्यवस्था की स्थापना की गई। लेनिन और स्टालिन जसे योग्य नेताओ के नेतृत्व के कारण ही यह क्राति सफल हो सकी। स्टालिन को रूस का तानाशाह कहा जाता है और उसकी बहुत अधिक आलोचना की जाती है। परन्तु उसने कठोर प्रशासन के द्वारा ही लेनिन के अधूरे कार्यों को पूरा कर इस क्राति को सफलता मे सम्पूण किया।

प्रस्तावित सन्दभ पाठ्य पुस्तकें—

1—सेवाइन—ए हिस्ट्री आफ वल्ड सिवलीजेशन
2—बीच डब्ल्यू० एन०—हिस्ट्री आफ दी वल्ड
3—लगसम—वल्ड सिन्स, 1919
4—मकनल बनस—वस्टन सिवलीजेशन
5—प्लेट जीन और ड्रमड विश्व का इतिहास
6—गूच, जी० पी०—आधुनिक यूरोप का इतिहास
7—वेल्स, एच० जी० दी आउट लाइन आफ हिस्ट्री

12

राष्ट्र संघ

प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के पश्चात भविष्य मे युद्ध सम्बन्धी सभावनाओ को रोकने के लिए तथा शान्ति स्थापित करने के लिय पेरिस शान्ति सम्मेलन म राष्ट्र सघ की स्थापना की गई थी। राष्ट्र सघ की स्थापना मनुष्य की शताब्दियो के प्रयास का फल था। इससे अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र म एक नई व्यवस्था प्रारम्भ हुई।

आदिकाल से मनुष्य शान्ति स्थापना के लिए प्रयास करता रहा है। मनुष्य की यह प्रवृत्ति रही है कि उसन सदा से युद्ध के पश्चात शान्ति के प्रयास किये हैं और शान्ति के समय युद्ध की बात करता रहा है। राष्ट्र सघ की स्थापना एक लम्बी ऐतिहासिक प्रगति का परिणाम था। यो तो मध्यकाल से ही यूरोप के दार्शनिको ने शान्ति स्थापित करने के लिए और युद्धो को रोकने के लिए अनेक योजनाऐं प्रस्तुत की थी। 14 वीं शताब्दी म दाते ने "डिवाईन कामेडो" नामक पुस्तक लिखी। जिसम उसने शान्ति स्थापित करन के बारे म सुझाव दिये थे। सोलहवीं से अठारहवीं शताब्दी के बीच शान्ति स्थापित करने सम्बन्धी अनेक योजनाऐं प्रस्तुत की गई। परन्तु नेपोलियन के युद्धो स पूर्व इन योजनाओ को क्रियान्वित नही किया गया। य सिर्फ आदर्शवादियो की कल्पना ही बनी रही। प्राय प्रत्येक युद्ध की समाप्ति के पश्चात शान्ति स्थापित करन के लिए प्रयास आरम्भ हो जाते हैं। नेपोलियन क भयानक युद्धो ने यूरोप की प्राचीन व्यवस्थाओं को समाप्त कर दिया था। अब एक एसी अन्तर्राष्ट्रीय सस्था की आवश्यकता थी, जो यूरोप का पुन निर्माण कर सके। नेपोलियन के उत्थान के बाद यूरोपियन राष्ट्रो न युद्ध की सभावनाओ से भयभीत होकर शान्ति के लिए अनेक प्रयत्न किये थ, तभी से अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति सम्मेलन की परम्परा प्रारम्भ हुई।

1815 ई० में पहली बार वियना कांग्रेस ने एक सम्मेलन बुलाया गया। जिसमें सभी यूरोपियन देशों ने भाग लिया। यह सम्मेलन अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का था। इसमें यूरोप की प्रादेशिक व्यवस्था की गई। इस व्यवस्था को स्थायी बनाये

रखने के लिये 'यूरोपीय व्यवस्था' की स्थापना की गई। शांति स्थापित करने के लिये 'पवित्र संघ' की स्थापना की गई। इन प्रयासों मे यूरोपियन राष्ट्रों ने अपनी समस्याओं को सुलझाने के लिए सम्मेलन बुलाने आरम्भ कर दिये। पेरिस शांति सम्मेलन (1856), बर्लिन कांग्रेस (1878), हेग सम्मेलन (1899 एवं 1907) आदि अंतर्राष्ट्रीय शान्ति बनाये रखने के लिये बुलाये गये थे। इन सम्मेलनों ने राष्ट्र संघ के निर्माण का मार्ग प्रशस्त कर दिया। यद्यपि इन सम्मेलनों की असफलता के कारण ही प्रथम महायुद्ध आरम्भ हुआ था। जिसके परिणाम सभी को भुगतने पड़े थे।

राष्ट्रसंघ का जन्म—प्रथम विश्व युद्ध के भयंकर विनाशकारी परिणाम हुए। इसलिये भविष्य मे ऐसे विनाशकारी युद्धों को रोकने के लिये एवं युद्ध काल में ही शांति स्थापित करने के लिये विद्वानों ने अनेक योजनाएँ प्रस्तुत की। परिणामस्वरूप प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के पश्चात राष्ट्र संघ की स्थापना सम्भव हो सकी।

एच० जी० वेल्स ने लिखा है कि 'राष्ट्र संघ बोतल में बन्द मानववादी एक मनुष्य था, जिससे य० आशा की जा रही थी कि वह समस्त कठिनाईयों को पार कर संसार पर राज्य करेगा।[1]

मकनेल बर्नस ने लिखा है कि युद्ध समाप्त करने वाली संधियां राष्ट्रसंघ में संकलित कर दी गई। विश्व के छोटे और बड़े राज्यों के सहयोग से दीर्घ काल से इच्छित शांति के स्वप्न को पूरा करने के लिये राष्ट्रसंघ की स्थापना की गई। जिस शांति के लिये अमेरिका को युद्ध मे घसीटा गया उसी के राष्ट्रपति विल्सन ने राष्ट्रसंघ को सजीव किया।'[2]

इसी प्रकार स्वेन और जीन डूनंड ने लिखा है कि "एक राष्ट्रसंघ बनाने का विचार लोगों के मन में शताब्दियों से था। प्रथम विश्व युद्ध की विभीषिकाओं ने राष्ट्रपति विल्सन के अलावा बहुत से व्यक्तियों को इस बात के लिये कटिबद्ध कर दिया कि एक राष्ट्रसंघ ही बनाया जाए।"[3]

प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के पश्चात अमरिका के राष्ट्रपति वुडरो विल्सन ने राष्ट्रसंघ की स्थापना की। विल्सन ने 8 जनवरी 1918 ई० को अपने 14 प्रसिद्ध सूत्रों की घोषणा में राष्ट्रसंघ की स्थापना पर जोर दिया था। पेरिस शांति सम्मेलन में राष्ट्रसंघ की रूपरेखा तैयार करने के लिये एक समिति की स्थापना की गई। जिसके अध्यक्ष विल्सन थे। ब्रिटेन के लार्ड सेसिल और फिलीमोर तथा

1—वेल्स एच० जी०—दी आउट लाईन आफ हिस्ट्री—पृष्ठ 1105
2—मकनेल बर्नस—वैस्टन सिवलीजेशन्स—पृष्ठ 752
3—स्वेन और जीन डूनंड—विश्व का इतिहास—पृष्ठ 629

दक्षिणी अफ्रीका के जनरल समुट्स इस समिति के सदस्य थे। इस समिति ने 3 फरवरी को राष्ट्रसघ का प्रारूप तयार किया। जिसे 14 फरवरी 1919 को शाति सम्मेलन मे प्रस्तुत किया गया। 28 फरवरी 1919 ई० को सम्मेलन की आम सभा ने इस प्रारूप को स्वीकार कर लिया। इस प्रारूप म केवल 4000 शब्द थे। इस प्रकार 10 जनवरी, 1920 को राष्ट्रसघ ने वैधानिक दृष्टि से काय करना प्रारम्भ किया।

लैंगसम न लिखा है कि 'इस सघ को वास्तव मे युद्ध को समाप्त करने और शाति व्यवस्था बनाये रखने का काय सौंपा गया था।"[1]

राष्ट्रसघ को वर्साय की सधि का एक अ ग बना दिया गया। इस सधि की प्रथम 26 धाराओं में राष्ट्र सघ के सविधान का वणन किया गया है। राष्ट्रसघ का प्रधान कार्यालय स्विटजरलण्ड के नगर जिनेवा मे रखा गया। इस सघ की बठक प्रति वर्ष सितम्बर म बुलाई जाती थी, परन्तु आवश्यक कारणवश इसकी विशेष बठक भी बुलाई जा सकती थी। इस प्रकार पेरिस शाति सम्मेलन की महत्वपूर्ण देन राष्ट्रसघ की स्थापना करना था। यह पहला सगठन था, जिसे वधानिक मान्यता प्राप्त थी, और जिसका एक सविधान था। इसकी स्थापना को विश्व इतिहास मे एक क्रान्तिकारी बिन्दु कहा जा सकता है।

राष्ट्रसघ के उद्देश्य—हेजन ने लिखा है कि "सघ के निर्माण के पीछे युद्ध को रोकना तथा शाति का बनाये रखने की प्रबल शक्ति थी और इस सस्था का यही उदघोषित उद्देश्य था।'[2]

राष्ट्रसघ की स्थापना विश्व मे शाति स्थापित करने के लिये की गई थी। यह सघ अपने उद्देश्य मे तभी सफल हो सकता था, जबकि सभी राष्ट्र युद्ध को घृणा का दृष्टि स देखें। अन्तर्राष्ट्रीय कानून एव शाति के लिये की गई सधियों का पालन करें। सक्षेप म राष्ट्रसघ के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित थे—

(1) इस सघ का मुख्य उद्देश्य युद्धो को रोकना तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग स शाति व्यवस्था बनाये रखना था। इसके अतिरिक्त इस सघ के सदस्य राष्ट्रो की सुरक्षा करना था। इसका प्रत्येक सदस्य यह शपथ लेता था कि वह अपने सदस्य राष्ट्रो की प्रादेशिक अखण्डता को बनाये रखेगा।

(2) राष्ट्रसघ युद्ध की सभावनाओं को कम करने के लिए अस्त्र शस्त्र की दौड को एव साम्राज्यवाद को सीमित करने का प्रयास करेगा।

(3) राज्यों के आपसी विवादो का बिना युद्ध का सहारा लिये शातिपूर्ण ढग से समाधान करना।

1—लैंगसम—दि वर्ल्ड सिन्स 1919—पृष्ठ 40

2—हेजन आधुनिक यूरोप का इतिहास—पृष्ठ 601

(4) होने वाले युद्धों को मत्रीपूर्ण ढग से सम्मेलनों के द्वारा रोकने का प्रयास करना ।

(5) प्रत्येक काय मे सभी राष्ट्रो के हितो का ध्यान रखना ।

(6) सभी राष्ट्रो के विकास कार्यों म यथा सभव सहायता देना ।

(7) इस सघ का मुख्य उद्देश्य पेरिस शाति सम्मेलन म की गई सधियो का सबधित देशो स पालन करवाना था और पेरिस शाति सम्मलन द्वारा स्थापित व्यवस्था को बनाये रखना था। राष्ट्रसघ को डानजिग नगर और सार की प्रशासन व्यवस्था का सचालन 15 वष के लिये दे दिया था ।

(8) जन साधारण क कल्याण के लिये काय करना। जस दास प्रथा को समाप्त करना, महामारियो को रोकने का प्रयास करना स्वास्थ्य सुधार के लिये प्रयास करना, स्त्रियो के क्रय विक्रय पर प्रतिब ध लगाना और मानव जीवन को सुखी बनाने के लिये आर्थिक, सामाजिक और साहित्य के क्षेत्र मे विकास करना ।

राष्ट्रसघ की सदस्यता—आरभ मे राष्ट्रसघ के सदस्यो की सख्या 31 थी, जो 1928 ई० म बढकर 54 हो गई। भारत भी राष्ट्रसघ का सदस्य था। राष्ट्र सघ का यह दुर्भाग्य था कि कई बडे-बडे देश इसके सदस्य नही बने थ । जसे इस सघ का जन्मदाता विल्सन अमेरिका को राष्ट्र सघ का सदस्य नही बनवा सका था। प्रारम्भ म जमनी और रूस को इसका सदस्य नही बनाया गया।

सघ के नियमो का पालन करने का आश्वासन दन पर कोई भी राष्ट्र इसका सदस्य बन सकता था। ऐसेम्बली का 2/3 बहुमत होने पर ही किसी भी राष्ट्र को राष्ट्रसघ का सदस्य बनाया जाता था। इसी प्रकार यदि कोई राष्ट्र इस सघ की सदस्यता छोडना चाहता, तो उस दो वष पूव इसकी सूचना दनी पडती थी। 1923 ई० मे ब्राजील ने 1933 ई० मे जमनी ने और जापान ने तथा 1937 ई० म इटली ने राष्ट्रसघ की सदस्यता को छोड दिया। यदि कोई सदस्य राष्ट्रसघ के नियमो का पालन नहीं करता तो ऐस दश को कौंसिल की सब सम्मति से राष्ट्रसघ से बाहर निकाल दिया जाता था। 1939 ई० मे रूस को इसी प्रकार राष्ट्रसघ स बाहर निकाला गया था। इस प्रकार महाशक्तियो की उपक्षा के कारण राष्ट्रसघ निरतर कमजोर होता गया।

प्रधान कार्यालय—राष्ट्रसघ का प्रधान कार्यालय स्विट्जरलण्ड की राजधानी जेनेवा मे रखा गया। इस सघ का सचिवालय जिनवा म होने से यहीं सघ की बठक बुलाई जाती थी। वसे सघ की वार्षिक बठक सितम्बर माह में बुलाई जा सकती थी।

राष्ट्रसघ के अग—राष्ट्रसघ की दूसरी धारा के अनुसार सघ के काय का सचालन करने के लिय निम्न तीन विभागो की स्थापना की गई।

1 साधारण सभा (एसेम्बली)
2 परिषद (कौंसिल)
3 सचिवालय ।

इसके अतिरिक्त राष्ट्रसघ के काय म सहयोग दने के लिये सरक्षण आयोग, सनिक आयोग, परामशदाता आयोग आदि गठित किये गये थे। सघ के प्रमुख अ गो का वणन निम्न प्रकार है —

(1) साधारण सभा (एसेम्बली)—राष्ट्रसघ का पहला अ ग एसेम्बली था। इसम सभी देशों क प्रतिनिधि थे। एसेम्बली म छोटे और बड़े सभी राष्ट्रो को एक समान अधिकार प्राप्त थे। प्रत्यक राष्ट्र एसेम्बली में तीन प्रतिनिधि भेज सकता था। परतु उह एक ही मत देन का अधिकार था।

एसेम्बली 2/3 बहुमत से किसी भी राष्ट्र को इस सघ का सदस्य बना सकती थी। इस सघ की धारा 5 के अनुसार किसी भी राजनीतिक विषय पर निणय लेने के लिये बठक मे उपस्थित सभी सदस्यो की सवसम्मति आवश्यक थी। यदि बैठक म एक भी राष्ट्र उस निणय का विरोध करता, तो वह निणय नहीं लिया जा सकता था।

एसेम्बली का काय सचालन के लिये एक सभापति और एक उप सभापति होता था। इसकी बठक प्रतिवष सितम्बर महीने में जिनवा म बुलाई जाती थी। इसके अतिरिक्त आवश्यक कारणवश इसकी विशेष बठकें भी बुलाई जा सकती थी। इस सभा का काय छ समितियो के द्वारा सम्पन्न किया जाता था। सभा के काय की देखभाल महामन्त्री करता था।

एसेम्बली सघ से सम्बन्धित किसी भी समस्या पर वाद विवाद कर सकती थी। जस राष्ट्र सघ के नय सदस्य बनाना, अस्थाई सदस्यो का चुनाव करना राष्ट्र सघ क बजट पर स्वीकृति दना, महासचिव एव अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय क लिय न्यायाधीशो को नियुक्त करना और राष्ट्र सघ के सविधान म सशोधन करना आदि इसके काय थे।

एसेम्बली धारा 3 के अनुसार विश्व शांति को खतरा पहुँचाने वाली सभी परिस्थितियो पर विचार कर सकती थी। लैंगसम ने लिखा है कि 'विश्व शाति को प्रभावित करने वाला कोई भी मसला एसेम्बली के वाद विवाद का विषय था।'[1]

इसके सदस्य राष्ट्र अपनी शिकायतें महासभा में प्रस्तुत कर सकते थे। परन्तु महासभा के सदस्य को राष्ट्रो के आन्तरिक मामलों म हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं था। एसेम्बली का पहला अधिवेशन 15 नवम्बर 1920 ई० को और अन्तिम

1—लैंगसम—दि वल्ड सिन्स, 1919—पृष्ठ 42

अधिवेशन 18 अप्रल 1946 ई० म बुलाया गया था। इस अधिवेशन म उपस्थित सदस्यों ने सवसम्मति से इस सघ को समाप्त करन का प्रस्ताव पास किया था।

(2) कौंसिल (परिषद्)—कौंसिल राष्ट्र सघ की सबस शक्तिशाली सस्था थी। इसम पाच स्थायी और चार अस्थायी सदस्य थे। सयुक्त राज्य अमेरिका, इगलण्ड फ्रास जापान और इटली आदि देश इसके स्थायी सदस्य थ परन्तु अमेरिका की सीनेट ने राष्ट्र सघ का सदस्य बनन पर स्वीकृति नहीं दी। इसलिय अमेरिका ने अपनी सदस्यता का प्रारम्भ से ही उपयोग नहीं किया। कौंसिल के चार अस्थाई सदस्या का निर्वाचन एसम्बली के सदस्यों के द्वारा किया जाता था। 1920 ई० म ब्राजील बेल्जियम, यूनान और स्पेन कौंसिल के अस्थाई सदस्य चुन गये थ। 1922 ई० म अस्थाई सदस्यो की सख्या 4 से बढाकर दस कर दी गइ। अस्थाई सदस्या की सख्या आवश्यकता अनुसार घटाई और बढाई जा सकती थी। 1939 ई० म स्थाई सदस्य केवल तीन देश रूस फ्रांस, और ब्रिटेन रह गय थे। जबकि अस्थाई सदस्यो की सख्या 11 थी।

कौंसिल की बठक वष म तीन बार जनवरी, मई और सितम्बर माह म बुलाई जाती थी परतु आवश्यक कारणवश उसकी विशेष बठक भी बुलाई जा सकती थी। परिषद् की कायवाही का सचालन सभापति करता था जिसका चुनाव फ्रास की वणमाला के अनुसार किया जाता था। इसलिये परिषद के प्रत्यक सदस्य को एक बार सभापति बनन का अवसर अवश्य मिल जाता था। इसके स्थायी सदस्यो का वीटो का अधिकार प्राप्त नही था। कौंसिल म प्रत्येक विषय पर निणय सवसम्मति से लिया जाता था। राष्ट्र सघ की असफलता के लिये यह व्यवस्था बहुत अधिक सीमा तक जिम्मेदार थी। कौंसिल के प्रमुख काय निम्नलिखित थे —

(1) सार तथा डान्जिग प्रदेश की प्रशासन व्यवस्था का सचालन करना।
(2) शासनादेश प्राप्त राज्या का वार्षिक रिपोर्ट पर विचार करना।
(3) अल्प सख्यको की सुरक्षा के लिये काय करना।
(4) युद्ध के खतरे को दूर रखने के लिये नि शस्त्रीकरण की योजनाएँ प्रस्तुत करना।
(5) आक्रामक कायवाहियो को रोकने के लिय यथासम्भव प्रयास करना।
(6) अन्तर्राष्ट्रीय झगडो को शातिपूण ढग से सुलझाने का प्रयास करना।
(7) महासचिव की नियुक्ति पर स्वीकृति देना और सचिवालय के अन्य अधिकारियो की नियुक्ति करना।
(8) सघ के नियमो की अवहेलना करने वाले सदस्य राष्ट्रो के विरुद्ध आवश्यक कायवाही करना।
(9) कौंसिल ऐसे किसी भी विषय पर विचार कर सकती थी, जिससे विश्व की शाति और सुरक्षा को खतरा पदा होता हो।

कौंसिल की पहली बैठक 6 जनवरी 1920 ई० को एव अंतिम बैठक 14 सितम्बर 1938 ई० को बुलाई गई थी। कौंसिल और एसेम्बली ने सदस्य राष्ट्रों को यह अवसर दिया कि वे अपनी समस्याओं को बातचीत के माध्यम से हल कर लें।

(3) सचिवालय—राष्ट्र सघ का प्रशासकीय कार्यालय जिनेवा मे रखा गया, जिसे सचिवालय कहते थे। राष्ट्र सघ का प्रबंध, पत्र व्यवहार और व्यवस्था आदि सभी काय इसी सचिवालय के माध्यम से होते थे। इसमे 750 कमचारी और अधिकारी काम करते थे। जिनकी नियुक्तियां योग्यता के आधार पर महासचिव करता था।

सचिवालय का काम राष्ट्र सघ के प्रशासन की देखभाल करना था। इसका प्रशासनिक अधिकारी महासचिव होता था। जिसकी नियुक्ति कौंसिल एसेम्बली के परामर्श से करती थी। महासचिव के कार्यों मे सहयोग देने के लिये दो सहकारी और दो उप सहकारी सचिव नियुक्त किये जाते थे। सचिवालय 11 भागों मे विभाजित था। प्रत्येक विभाग का एक डाइरेक्टर होता था। सचिवालय परिषद् और सभा दोनों के लिये काय करता था। इसके प्रमुख काय निम्नलिखित थे —

(i) एसेम्बली तथा कौंसिल मे रखे जाने वाले विषयों की सूची तयार करना। उनकी व्यवस्था करना।

(ii) एसेम्बली और कौंसिल की बैठकें आयोजित करना और बैठकों की कायवाही का विवरण तयार करना।

(iii) पत्र व्यवहार करना संधियों का रिकार्ड रखना आदि। इसके मुख्य काय थे।

राष्ट्र सघ की स्वायत्त संस्थाएं — राष्ट्र सघ की निम्न दो स्वायत्त संस्थायें थी —

(1) अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय

(2) अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर सघ

(1) अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय—राष्ट्र सघ की स्थापना अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को मिटाकर शांति स्थापित करने के लिये की गई थी। इसकी धारा 14 के अनुसार सितम्बर 1921 ई० मे हालैण्ड के हेग मे अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना की गई थी। यह संसार का पहला अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय था, जिसका जन्मदाता राष्ट्र सघ था। आरम्भ मे इस न्यायालय मे न्यायाधीशों की संख्या 11 और उप न्यायाधीशों की संख्या 4 निश्चित की गई थी परन्तु काय भार बढ़ जाने से इसकी संख्या बढ़ाकर 15 कर दी गई। न्यायाधीश का कायकाल 9 वर्ष था। इसका वार्षिक बजट पांच लाख डालर था। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के प्रमुख काय निम्नलिखित थे।

(i) अन्तर्राष्ट्रीय झगडा का निर्णय करना ।

(ii) अन्तर्राष्ट्रीय नियमो की अवहेलना करने वाले राष्ट्र के विरुद्ध कार्यवाही करना ।

(iii) परिषद और एसेम्बली को परामर्श देना ।

(iv) सविधान की धाराओ की व्याख्या करना ।

(v) अन्तर्राष्ट्रीय सधियो पर विचार करना तथा क्षतिपूर्ति की राशि निश्चित करना ।

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय म किसी भी विषय पर निर्णय बहुमत स लिया जाता था । इसके कोरम की पूर्ति 9 न्यायाधीशो स होती थी ।

(2) **अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर सघ**—राष्ट्र सघ की धारा 13 के अनुसार मजदूरों की दशा में सुधार करने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर सघ की स्थापना की गई । श्रम सघ का प्रधान कार्यालय जिनेवा मे रखा गया । इस सघ का मुख्य उद्देश्य मजदूरी करने वाली स्त्रियो पुरुषो और बच्चो की दशा म सुधार करने के लिय प्रयास करना था । ससार के सारे मजदूरो म समानता स्थापित करना और मजदूरों की सतुष्टी के लिये कार्य करना था । लगसम ने लिखा है कि 'इस अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सघ का उद्देश्य मनुष्य के श्रम के लिये मानवीय परिस्थितियां प्राप्त कर उन्हे बनाये रखना था ताकि आदमी औरत और बच्चा का शोषण न हो सके ।'[1]

विश्व का कोई भी राष्ट्र इस सघ का सदस्य बन सकता था । सयुक्त राष्ट्र अमेरिका राष्ट्र सघ का सदस्य न होते हुए भी इस सघ का सदस्य था । इस सघ के निम्न तीन विभाग थे

1 साधारण सम्मेलन

2 प्रशासन विभाग

3 अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय

(1) **साधारण सम्मेलन**—प्रत्येक देश साधारण सम्मेलन म चार प्रतिनिधि भेज सकता था । जिनम से एक मजदूरों के द्वारा दो सरकार के द्वारा और एक मिल मालिको के द्वारा भेजा जाता था । इसका अधिवेशन वर्ष म एक बार बुलाया जाता था । दो तिहाई बहुमत स प्रस्ताव स्वीकृत किये जाते थे । साधारण सम्मेलन मजदूरों की दशा म सुधार करने के लिये प्रस्ताव पारित करता था । 1939 ई० तक साधारण सम्मेलन ने 133 प्रस्ताव पारित किये । जिनके अनुसार श्रमिकों के लिये एक सप्ताह म काम करने के 48 घटे निश्चित किये गये । 14 वर्ष से कम आयु वाले बच्चो के कारखाने मे काम करने पर रोक लगा दी गई । महिला मजदूरो की सुविधा के लिये भी कई नियम बनाये गये ।

1— लगसम—दि वर्ल्ड सिन्स 1919—पृष्ठ 46

(2) प्रशासन विभाग—प्रशासन विभाग में 32 सदस्य होते थे। जिनको 3 वर्ष के लिये निर्वाचित किया जाता था। इसमें आठ मजदूरों के, 8 मिल मालिकों के और 16 विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधि होते थे। इस सभा का मुख्य कार्य अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संघ के कार्यालय के निदेशक का चुनाव करना और उस पर नियन्त्रण बनाये रखना था।

(3) अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय—अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय जिनेवा में स्थापित किया गया था। इस कार्यालय का मुख्य कार्य श्रमिकों के कल्याण के लिये सामग्री एकत्रित करना था। साधारण सम्मेलन की बैठक के लिए यह श्रम कार्यालय विचारणीय विषयों की सूची तैयार करता था। इसके अतिरिक्त श्रमिकों के लिये कल्याण का कार्य करने वाली संस्थाओं से सम्पर्क स्थापित करने का प्रयास करता था। श्रमिकों की रिपोर्ट और बुलेटिन भी प्रकाशित करता था। इस श्रम कार्यालय का एक अध्यक्ष होता था जो 350 विशेषज्ञों की नियुक्तियाँ करता था। ये विशेषज्ञ श्रमिकों के कल्याण के लिये सिफारिशें प्रस्तुत करते थे। इस संस्था ने श्रमिकों के कल्याण के लिये अनेक कार्य किए।

मैन्डेट प्रणाली—मैन्डेट प्रणाली को संरक्षण प्रथा या अधिदेशीय आदेश व्यवस्था भी कहा जाता है। प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के पश्चात् पेरिस शांति सम्मेलन की संधियों के अनुसार जर्मनी तथा टर्की के उपनिवेशों को राष्ट्र संघ के अधीन कर लिया गया। राष्ट्र संघ ने ब्रिटेन, फ्रांस, बेल्जियम और जापान आदि देशों के इन उपनिवेशों पर प्रशासन करने का अधिकार लिया। ये देश राष्ट्र संघ की ओर से इन उपनिवेशों के प्रशासन की देखरेख करते थे। इस प्रकार विजयी राष्ट्रों ने राष्ट्र संघ के नाम पर इन उपनिवेशों पर शासन करना प्रारम्भ किया, क्योंकि राष्ट्रसंघ ने इन उपनिवेशों को मित्र राष्ट्रों के संरक्षण में छोड़ दिया था। संरक्षण राज्य राष्ट्र संघ के निर्देशानुसार इन उपनिवेशों पर शासन करते थे। उन्हें शासन प्रबन्ध की रिपोर्ट प्रति वर्ष परिषद् में प्रस्तुत करनी पड़ती थी। इन रिपोर्टों की जाँच राष्ट्र संघ की कौंसिल द्वारा नियुक्त संरक्षण आयोग करता था। इस व्यवस्था को मैन्डेट व्यवस्था कहा जाता है।

राष्ट्र संघ की मैन्डेट व्यवस्था के अन्तर्गत 14 क्षेत्र थे। इन क्षेत्रों को तीन भागों में विभाजित किया गया था। इस व्यवस्था के बावजूद भी संरक्षित प्रदेश अपनी इच्छानुसार शासन करते रहे। अपने हितों को दृष्टिगत रखते हुए इन प्रदेशों का शोषण किया और अपनी महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने के लिए वहाँ की जनता पर नाना प्रकार के अत्याचार किए। इस प्रकार संरक्षण व्यवस्था से साम्राज्यवादी अत्याचारों को समाप्त नहीं किया जा सका। इस व्यवस्था से ब्रिटेन और फ्रांस को बहुत अधिक लाभ पहुँचा। लैंगसम ने लिखा है कि 'राष्ट्र संघ की संरक्षण प्रणाली ने विश्व राजनीति की भावना को प्रोत्साहन दिया। फलस्वरूप

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद यह व्यवस्था संयुक्त राष्ट्र संघ में मिलती गई।'[1]

राष्ट्र संघ की सफलताएँ—राष्ट्रसंघ की सफलता के लिये हम उसके राजनीतिक कार्य और गैर राजनीतिक कार्यों पर विचार करना पड़ेगा। संघ राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति में पूर्णरूप से असफल सिद्ध हुआ परन्तु गैर राजनीतिक कार्यों में उसे काफी सीमा तक सफलता प्राप्त हुई। लगसम ने लिखा है कि 'कदाचित राष्ट्र संघ का सबसे बड़ा योगदान यही है कि उसने अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की भावना का प्रचार किया और निर्णयात्मक रूप से इसके उद्देश्य और सिद्धान्त संयुक्त राष्ट्र संघ में जा मिले जो हर बिन्दु और हर मोड़ पर राष्ट्र संघ का प्रतिबिम्ब है। सेबाइन ने राष्ट्रसंघ के बारे में लिखा है कि राष्ट्रसंघ ने युद्धोपरान्त स्थिति में शान्ति बनाये रखने के लिये अथक परिश्रम किया। जरा इस प्रश्न पर रुक कर विचार कीजिये कि यदि राष्ट्र संघ न होता तो क्या होता? दीर्घकालीन की तो बात छोड़िये कुछ समय के लिये भी शान्ति सुलभ नहीं होती।[3] इतिहासकार प्लेट और जीन डमंड ने लिखा है कि राष्ट्र संघ सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को सुलझाने में अधिक सफल रहा। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा की गई सिफारिशों पर बच्चों से मजदूरी करवाने पर रोक, आठ घंटे का कार्य दिवस और मजदूरों का अपना संगठन बनाने का अधिकार देना संघ की सफलताएँ थी।[4]

राजनीतिक क्षेत्र में सफलताएँ—राष्ट्र संघ के संविधान की धारा 10 से 17 के अनुसार राष्ट्र संघ आपसी झगड़ों को शांतिपूर्ण ढंग से निपटाना था युद्धों को रोकने और सामूहिक सुरक्षा के लिये उपायों की खोज करता था। यदि किसी राष्ट्र पर आक्रमण की सम्भावना हो तो वह राष्ट्र संघ से सहायता के लिए अपील कर सकता था। राष्ट्र संघ पहले दोनों विवादों वाले राज्यों के मतभेदों को शांतिपूर्ण तरीके से दूर करने का प्रयास करता था। यदि आक्रमणकारी राष्ट्र राष्ट्र संघ की बात नहीं मानता तो वह उसके विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्ध लगाता था। इसके पश्चात् आवश्यक होने पर राष्ट्र संघ आक्रमणकारी राष्ट्र के विरुद्ध सामूहिक रूप से सैनिक कार्यवाही के आदेश दे सकता था।

राष्ट्र संघ के पास 20 वर्ष की अवधि में 40 राजनीतिक विवाद आए। उसे छोटे छोटे राज्यों के विवादों को सुलझाने में सफलता मिली। स्थानीय युद्धों को व्यापक रूप से धारण करने से रोका और अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति बनाये रखने में सफल हुआ किन्तु शक्तिशाली राष्ट्रों के विवादों को हल करने से उसे सफलता नहीं मिली।

---

1 लगसम—दी वर्ल्ड सिंस 1919 पृष्ठ 54
2 लैंगसम—दी वर्ल्ड सिंस, 1919 पृष्ठ 55
3 सबाइन–ए हिस्ट्री आफ वर्ल्ड सिविलीजेशन–पृष्ठ 682
4 प्लेट और जीन ड्रमंड–विश्व का इतिहास पृष्ठ 630

बड़े राष्ट्रों ने राष्ट्र संघ के आदेशों का पालन नहीं किया। संघ को निम्नलिखित विवादों का हल करने में सफलता मिली —

(1) आलैण्ड द्वीप विवाद -फिनलैण्ड और स्वीडन दोनों ही देश बाल्टिक सागर के आलैण्ड द्वीप पर अधिकार करना चाहते थे। इसके लिए 1929 ई० में दोनों देशों में झगड़ा प्रारम्भ हो गया। संघ ने फिनलैण्ड को आलैण्ड द्वीप पर अधिकार देकर इस विवाद को निपटाया। यह संघ की पहली महान सफलता थी।

(2) अल्बानिया का सीमा विवाद—1920 ई० में यूनान और युगोस्लाविया में अल्बानिया पर अधिकार करने के प्रश्न को लेकर विवाद प्रारम्भ हो गया। राष्ट्र संघ ने अल्बानिया को एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में स्वीकार कर लिया था। 1920 ई० में यह राष्ट्र संघ का सदस्य भी बन गया था। 1921 ई० में युगोस्लाविया और यूनान ने अल्बानिया पर अधिकार करने के लिए आक्रमण कर दिया। क्योंकि इस देश की सीमा राष्ट्र संघ ने निर्धारित नहीं की थी। संघ ने हस्तक्षेप कर इस मामले को निपटाया। उसके आदेश पर युगोस्लाविया ने सेनाएँ हटा ली और राष्ट्र संघ ने अल्बानिया की सीमा को निर्धारित कर दिया। इस प्रकार बल्कान युद्ध का खतरा टल गया।

(3) मेमल विवाद—1923 ई० में लिथुआनिया ने मेमल पर अधिकार कर लिया। जब यह विवाद राष्ट्रसंघ के समक्ष प्रस्तुत हुआ तो राष्ट्र संघ ने यह निर्णय दिया कि बन्दरगाह के अतिरिक्त सम्पूर्ण मेमल प्रदेश पर लिथुआनिया का अधिकार रहेगा। मेमल की जनता को आन्तरिक स्वतन्त्रता प्रदान की गई। मेमल को एक अन्तरराष्ट्रीय बन्दरगाह घोषित कर, वहां का शासन एक अन्तर्राष्ट्रीय बोर्ड के हाथों में सौंप दिया गया।

(4) यूनान और बल्गेरिया का विवाद—1925 ई० में यूनान और बल्गेरिया के बीच सीमा विवाद को लेकर युद्ध प्रारम्भ हो गया। यूनान ने बल्गेरिया की 70 वर्ग मील भूमि पर अधिकार कर लिया। इस पर बल्गेरिया ने राष्ट्र संघ से सहायता मांगी। राष्ट्र संघ के हस्तक्षेप से यह युद्ध बन्द हो गया और दोनों देशों ने अपनी-अपनी सेनाएँ हटा ली। कौंसिल ने यूनान को आक्रमणकारी घोषित किया और उसे बल्गेरिया को क्षतिपूर्ति देने के लिए कहा। मार्च 1926 ई० में यूनान ने बल्गेरिया को क्षतिपूर्ति की रकम चुका दी। इस प्रकार राष्ट्र संघ ने आसानी से इस विवाद को निपटा दिया।

इसी प्रकार राष्ट्र संघ ने विलना विवाद (1920-1922), ऊपरी साईलेशिया का विवाद, मोसुल का विवाद (1926), हंगरी रूमानिया का विवाद (1923-30) आदि विवादों को भी शान्तिपूर्ण ढंग से सफलतापूर्वक निपटा दिया। कार ने लिखा है कि "1924 ई० से 1930 ई० के काल की अवधि में राष्ट्र संघ उन्नति एवं प्रतिष्ठा के चरम शिखर पर था।'

गैर-राजनीतिक क्षेत्र मे सफलताएँ—राष्ट्र संघ को राजनीतिक कार्यों में बहुत कम सफलता प्राप्त हुई परन्तु गैर-राजनीतिक कार्यों में उसे बहुत अधिक सफलताएँ प्राप्त हुई। उसने सामाजिक, आर्थिक और मानव कल्याण के लिये बहुत से ऐसे काय किये, जिसमे उसे बहुत अधिक सफलता प्राप्त हुई। उसने निम्नलिखित गैर राजनीतिक काय किये थे—

(1) **आर्थिक सहायता**—प्रथम विश्व युद्ध के कारण बहुत से देशो की आर्थिक स्थिति शोचनीय हो गई थी। राष्ट्र संघ ने इन देशो के आर्थिक पुनर्निर्माण के लिए आर्थिक सहायता दी। जैसे कि आस्ट्रिया हंगरी यूनान, बुल्गेरिया और डानजिग को राष्ट्र संघ ने आर्थिक सहायता प्रदान की थी।

(2) **युद्ध बन्दियो और शरणार्थियों की सहायता** राष्ट्र संघ ने युद्ध में बन्दी बनाये गये सैनिकों को छुडाकर वापस उनके देश में पहुचाया। यह राष्ट्र संघ का कल्याणकारी काय था। प्रथम विश्व युद्ध में लाखो सैनिकों को बन्दी बना लिया गया था। इस संघ ने उन्हें वापस उनके देश मे पहुचाया।

राष्ट्र संघ ने शरणार्थियो को बसाने मे भी महत्वपूर्ण सहायता दी। प्रथम विश्व युद्ध में शरणार्थियो को बसाने की एक गम्भीर समस्या उठ खडी हुई। युद्ध के समय लाखो रूसी तुर्क यूनानी और आर्मेनियन लोग बेघर हो गये। राष्ट्र संघ ने इनको बसाने के लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय कार्यालय की स्थापना की। जिसका अध्यक्ष डा० नानसेन को बनाया गया। यूनान के 15 लाख शरणार्थियो को बसाने के लिये राष्ट्र संघ ने 6 करोड डालर की सहायता प्रदान की। इसी प्रकार बल्गेरिया के शरणार्थियो को बसाने के लिये उसे विदेशो से ऋण दिलवाया।

राष्ट्र संघ ने अपनी समिति के माध्यम से केवल चार वर्ष के समय मे दो लाख शरणार्थियो को बसाया। इन शरणार्थियों को शिक्षा की सुविधाएँ प्रदान की गई। डा० नानसेन की मृत्यु के पश्चात राष्ट्र संघ ने इस काय को हाथ मे ले लिया।

(3) **स्वास्थ्य एवं चिकित्सा के क्षेत्र में काय**—राष्ट्र संघ ने स्वास्थ्य और चिकित्सा क्षेत्र में प्रशंसनीय काय किए। जन साधारण के स्वास्थ्य में सुधार करने के लिये एक स्वास्थ्य संगठन की स्थापना की गई। इस संगठन के प्रयासो से मृत्यु दर में कमी हुई। युद्ध के पश्चात रूस में टायफस बुखार की भयंकर महामारी फैल रही थी। राष्ट्रसंघ ने इस महामारी को सीमित करने का प्रयास किया। स्वास्थ्य संगठन ने हैजा मलेरिया चेचक और क्षय रोगो के इलाज ढूंढ निकाले।

(4) **सामाजिक उन्नति के लिये प्रयास**—राष्ट्र संघ ने सामाजिक उन्नति के लिये निम्न प्रयास किये —

(1) **दास प्रथा पर रोक**—राष्ट्रसंघ ने दास प्रथा को समाप्त करने के लिये अनेक प्रस्ताव पारित किये। इस क्षेत्र में उसे अच्छी सफलता मिली।

(2) बच्चों व स्त्रियों की दशा में सुधार—राष्ट्रसंघ ने बच्चों व स्त्रियों के व्यापार को समाप्त करने का प्रयास किया। उसने बच्चों व स्त्रियों की दशा में सुधार लाने के लिये कई महत्त्वपूर्ण कार्य किए। अश्लील प्रकाशनों को रोकने और वेश्यावृत्ति को समाप्त करने का प्रयास किया। स्त्रियों के विवाह की आयु के बारे में भी विचार किया गया। बालकों के कल्याण के लिये अनेक योजनाएँ प्रस्तुत की गईं। राष्ट्रसंघ के सुधारों से प्रभावित होकर अनेक देशों ने इस सम्बन्ध में कई नियम बनाये।

(3) मादक वस्तुओं पर नियन्त्रण—राष्ट्रसंघ ने मादक द्रव्यों अफीम, कोकीन के सेवन पर प्रतिबन्ध लगाने के लिये और मादक वस्तुओं के व्यापार पर नियन्त्रण के लिये एक परामर्शदात्री आयोग की स्थापना की। राष्ट्रसंघ को इस कार्य में भी आशातीत सफलता मिली।

इस प्रकार राष्ट्र संघ को गैर राजनीतिक कार्यों में बहुत अधिक सफलताएँ प्राप्त हुईं। उसने जन साधारण के कल्याण के लिये कल्याणकारी संस्था की भांति अनेक सराहनीय कार्य किये।

राष्ट्रसंघ की असफलताएँ—छोटे छोटे राष्ट्रों के झगड़ों के निपटाने में राष्ट्रसंघ सफल रहा परन्तु बड़े राष्ट्रों के विवादों को सुलझाने में यह असफल रहा।

1 राष्ट्रसंघ की जापान के विरुद्ध असफलता—

(i) मंचूरिया संकट (1931 ई०)—जापान ने राष्ट्रसंघ का सदस्य होते हुए भी उसके सिद्धान्तों की अवहेलना करते हुए 1931 ई० में चीन के मंचूरिया प्रदेश पर आक्रमण कर दिया। इस पर चीन ने राष्ट्रसंघ से सहायता करने की अपील की। परिषद ने जापान को मंचूरिया में सेना हटाने का आदेश दिया लेकिन जापान ने इस आदेश का पालन नहीं किया। इसके विपरीत उसने 1931 ई० तक सम्पूर्ण दक्षिणी मंचूरिया पर कब्जा कर लिया। इससे राष्ट्रसंघ की दुर्बलता स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगी।

1932 ई० में साधारण सभा ने जापान के कार्य की निंदा की। संघ ने मंचूरिया काण्ड की जांच करने के लिये लिटन कमीशन की नियुक्ति की। लिटन कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में जापान को आक्रामक घोषित किया और उसे दोषी ठहराया परन्तु राष्ट्रसंघ जापान के विरुद्ध कुछ भी कदम नहीं उठा सका। जापान ने सम्पूर्ण मंचूरिया पर अधिकार कर लिया और 1933 ई० में राष्ट्रसंघ की सदस्यता त्याग दी। राष्ट्रसंघ जापानी आक्रमण से चीन की रक्षा नहीं कर सका। इससे यह स्पष्ट हो गया कि राष्ट्रसंघ बड़े राष्ट्रों के आक्रमणों से छोटे राज्यों की रक्षा करने में असमर्थ है।

(ii) चीन जापान युद्ध (1937–45 ई०)—जापान ने 1937 ई० में एक सामान्य बात को लेकर बिना युद्ध की घोषणा किए चीन के प्रदेशों पर अधिकार

करना प्रारम्भ कर दिया। चीन ने दुबारा राष्ट्रसघ से सहायता की अपील की और जापान क विरुद्ध आर्थिक प्रतिब ध लगान की माग की लेकिन राष्ट्रसघ के सदस्य जापान के विरुद्ध आर्थिक प्रतिब ध नहीं लग ना चाहते थे। इसलिये जापान चीन के प्रदेशो पर अधिकार करते हुए आगे बढता गया। 1941 ई० म चीन जापान युद्ध द्वितीय विश्व युद्ध म परिणित हो गया। चीन क प्रतिनिधि वलिगटन कू ने उस अवसर पर सत्य ही कहा था द्वितीय विश्व युद्ध क दौरान राष्ट्रसघ मिश्र की ममी की तरह मूक बनकर सिर्फ तमाशा ही देखता रहा।

(2) **राष्ट्रसघ की पोलण्ड के विरुद्ध असफलता**—विलना नगर पोलण्ड और लिथुआनिया क बीच म स्थित था। वर्साय की सधि क द्वारा विलना नगर पर लिथुआनिया को अधिकार दे दिया गया था परन्तु पोलण्ड न बलपूर्वक विलना पर अधिकार कर लिया। लिथुआनिया ने राष्ट्रसघ म पोलण्ड क विरुद्ध शिकायत की। पोलण्ड को फ्रांस का समर्थन प्राप्त होने के कारण राष्ट्रसघ उसके विरुद्ध कुछ भी कार्यवाही नही कर सका। इस प्रकार राष्ट्रसघ का आक्रमणकारी को सजा देने मे सफलता नही मिल सकी। वह दोनो पक्षा म समझौता नही रख सका। इसके अतिरिक्त राष्ट्रसघ ने इस विवाद को निपटाने क लिये जो हल प्रस्तुत किया, वह वर्साय की सधि के विरुद्ध था।

3 **राष्ट्रसघ की इटली के विरुद्ध असफलता**—

(1) **कोर्फू द्वीप पर अधिकार** (1923 ई०)—1923 ई० म यूनान मे कुछ इटालियन लोगो की हत्या कर दी गई। इस पर मुसोलिनी ने यूनान क कोर्फू द्वीप पर अधिकार कर लिया। यूनान न राष्ट्रसघ से इटली के विरुद्ध शिकायत की परन्तु वह इटली के विरुद्ध कुछ भी कार्यवाही नही कर सका। इस प्रकार राष्ट्रसघ की असमर्थता प्रकट हो गई और बडी शक्तियो को आक्रामक कार्यवाहियो के लिये प्रोत्साहन मिला।

(11) **इटली की एबीसीनिया पर विजय**—जापान के विरुद्ध राष्ट्रसघ की असफलता से उत्साहित होकर इटली क अधिनायक मुसोलिनी ने 1935–36 ई० म सघ के सदस्य राष्ट्र एबीसीनिया पर हमला कर दिया। वहा के सम्राट हेल सेलासी ने राष्ट्रसघ मे उपस्थित होकर इटली क विरुद्ध शिकायत की। उसने इटली की सेनाओ को एबीसीनिया स बाहर निकालने की माग की। राष्ट्रसघ ने इटली को आक्रामक मानते हुए उसके विरुद्ध 18 नवम्बर 1835 इ० को कुछ आर्थिक प्रतिब ध लगाये। जर्मनी, आस्ट्रिया हगरी और सयुक्त राज्य अमेरिका के विरोध के कारण राष्ट्रसघ का यह कदम असफल रहा। फ्रास और इगलण्ड भी इटली को नाराज नही करना चाहते थे। इसलिये मुसोलिनी ने एबीसीनिया पर अधिकार कर लिया और राष्ट्रसघ के आदेशो की स्पष्ट रूप स अवहेलना की। इससे यह स्पष्ट हो गया

कि राष्ट्रसंघ बड़े देशों का आक्रमण होने पर छोटे राष्ट्रों की सुरक्षा नहीं कर सकता है।

(4) **राष्ट्रसंघ की स्पेन के विरुद्ध असफलता**—स्पेन के मामले को निपटाने में भी राष्ट्रसंघ असफल रहा। स्पेन में गणतन्त्रीय सरकार के विरुद्ध 1937 ई० में जनरल फ्रांको ने गृह युद्ध प्रारम्भ कर दिया। जनरल फ्रांको गणतन्त्र को समाप्त कर स्पेन में राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था स्थापित करना चाहता था। जर्मनी और इटली ने अपनी सेना जनरल फ्रांको की सहायता के लिये भेजी। इस पर स्पेन की गणतन्त्रीय सरकार ने राष्ट्रसंघ से सहायता की अपील की। राष्ट्रसंघ की साधारण सभा ने जर्मनी और इटली को स्पेन से सेनाएँ हटाने का आदेश दिया लेकिन दोनों राष्ट्रों ने इस आदेश का पालन करने से इन्कार कर दिया। राष्ट्रसंघ इनके विरुद्ध कुछ भी कार्यवाही नहीं कर सका। गृह-युद्ध में जनरल फ्रांको विजयी हुआ। राष्ट्र संघ के कई सदस्यों ने उसकी सरकार को मान्यता भी प्रदान कर दी। यह राष्ट्रसंघ की एक महान असफलता थी।

(5) **राष्ट्रसंघ की रूस के विरुद्ध असफलता**—रूस और फिनलैण्ड के युद्ध ने राष्ट्रसंघ को मृतप्राय बना दिया। हिटलर की आक्रामक कार्यवाही से भयभीत होकर रूस ने आत्म रक्षा के लिए 30 नवम्बर 1939 ई० में फिनलण्ड पर आक्रमण कर दिया। फिनलण्ड ने राष्ट्रसंघ से रक्षा करने की अपील की। राष्ट्रसंघ ने रूस को संघ से निष्कासित कर दिया परन्तु इससे फिनलण्ड को कोई लाभ नहीं पहुँचा और रूस आगे बढ़ता ही रहा। 12 मार्च 1940 ई० को फिनलैण्ड ने रूस के सामने हथियार डाल दिये। जर्मनी जापान और इटली ने राष्ट्रसंघ के आदेशों की अवहेलना की थी परन्तु उन्हें संघ से निष्कासित नहीं किया गया था। रूस को निष्कासित करने का कारण यह था कि राष्ट्रसंघ के अधिकांश सदस्य साम्यवाद के विरोधी थे। राष्ट्रसंघ फिनलैण्ड की रक्षा करने में असफल रहा।

(6) **राष्ट्रसंघ की जर्मनी के विरुद्ध असफलता**—जब राष्ट्रसंघ इटली को एबीसीनिया पर अधिकार करने से नहीं रोक सका तो यह स्पष्ट हो गया कि राष्ट्र संघ बड़ी शक्तियों से छोटे देशों की रक्षा करने में और युद्ध को रोकने में असमर्थ है। जर्मनी 1926 ई० में राष्ट्रसंघ का सदस्य बन चुका था। 1935 ई० में जर्मनी के अधिनायक हिटलर ने पेरिस शांति समझौते के विरुद्ध जर्मनी में अनिवार्य सैनिक सेवा लागू कर दी। जिससे चिन्तित होकर दूसरे राष्ट्रों ने भी अपने शस्त्रों में वृद्धि करना प्रारम्भ कर दिया। 1936 ई० में हिटलर ने वर्साय की संधि के विरुद्ध राइनलैण्ड में सेनायें भेजी और उस पर अधिकार कर लिया। राष्ट्रसंघ हिटलर के विरुद्ध कुछ भी कार्यवाही नहीं कर सका।

इससे हिटलर का उत्साह बढ़ा और उसने 1938 ई० में आस्ट्रिया पर अधिकार कर लिया। उसके पश्चात उसने चेकोस्लोवाकिया के अधिकांश भाग पर अधिकार कर लिया।

अधिकार कर लिया। राष्टसंघ हिटलर के विरुद्ध कुछ न कर सका। अन्त में हिटलर ने सितम्बर 1939 ई० में पोलैंड के बन्दरगाह डानजिग पर आक्रमण कर दिया। जिससे द्वितीय विश्व युद्ध प्रारम्भ हो गया। राष्ट्रसंघ द्वितीय विश्व-युद्ध को मूकदर्शक की तरह देखता रहा और उसे रोकने के लिये कुछ भी नहीं कर सका।

8 अप्रल 1946 ई० में राष्ट्रसंघ का अन्तिम अधिवेशन जिनवा में बुलाया गया था। इसमें 34 देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। 19 अप्रल 1946 ई० को एसेम्बली ने सर्वसम्मति से एक प्रस्ताव पारित कर राष्ट्रसंघ का विघटन कर दिया।

राष्टसंघ की असफलता के कारण—राष्ट्रसंघ से लोगों को बड़ी आशाएँ थी। लोगों को यह विश्वास हो गया था कि अब राष्ट्रसंघ भविष्य में युद्ध नहीं होने देगा और विश्व में शांति बनाये रखेगा। परन्तु जनता की यह आशायें शीघ्र ही निराशाओं में बदल गईं। इसकी स्थापना के 20 वर्ष बाद ही द्वितीय विश्व-युद्ध प्रारम्भ हो गया, जिसके विनाशकारी परिणाम संसार को भुगतने पड़े। राष्ट्रसंघ अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में और विश्व में शांति स्थापित करने में असफल रहा। राष्ट्रसंघ की असफलता के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे —

(1) **वर्साय की संधि का एक अंग**—राष्ट्रसंघ का जन्म वर्साय की संधि के द्वारा हुआ था। इस संधि की प्रथम 26 धाराओं में राष्ट्रसंघ के संविधान का वर्णन किया गया था। विल्सन ने यह प्रावधान रखा था कि आवश्यकता पड़ने पर राष्ट्रसंघ इन संधियों में संशोधन कर सकेगा परन्तु फ्रांस के नेतृत्व में एक गुट ने संशोधन का विरोध किया।

राष्टसंघ का वर्साय की संधि से सम्बन्ध होने के कारण पराजित राष्ट्र इसे विजेताओं का एक संघ मानते थे और उसे घृणा की दृष्टि से देखते थे। राष्टसंघ का कार्य वर्साय की संधि की व्यवस्थाओं को बनाये रखना था। इसलिये पराजित राष्ट्र यह मानते थे कि यह विजित राष्ट्रों के स्वार्थ सिद्धि का यन्त्र है। इस प्रकार राष्ट्रसंघ को वर्साय की संधि का एक अंग बनाना दुर्भाग्य पूर्ण सिद्ध हुआ। नामन बेर्डविच ने कहा है कि 'राष्ट्रसंघ एक कुख्यात माता की कुप्रतिष्ठित पुत्री थी।'

(2) **संयुक्त राज्य अमेरिका का सदस्य न बनना**—संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति विल्सन राष्ट्रसंघ के जन्मदाता थे। विल्सन सीनेट के विरोध के कारण अमेरिका को राष्ट्रसंघ का सदस्य नहीं बनवा सका था। सीनेट संघ का सदस्य बन कर यूरोपियन मामलों में नहीं उलझना चाहती थी। अमेरिका के सदस्य न बनने से संघ की शक्ति कमजोर हो गई। अमेरिका ही एक ऐसा राष्ट्र था जो यूरोपीय मामलों में निष्पक्ष कार्यवाही कर सकता था। 'उसके सदस्य न बनने से राष्ट्रसंघ की नींव ही कमजोर हो गई।' इसलिये वह अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में असफल रहा। गेथोन और हार्डी ने लिखा है कि 'एक बालक यूरोप के दरवाजे पर अनाथों

की भांति छोड़ दिया गया। जिसके चेहरे मोहरे पर अमेरिकन पतृकता स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो रही थी।"[1]

संयुक्त राज्य अमेरिका के सदस्य न बनने से संघ की नींव कमजोर हो गई। अब यदि राष्ट्रसंघ किसी देश के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्ध लगाता तो वह देश अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ अमेरिका से खरीद सकता था। इसके अतिरिक्त दूसरे राष्ट्र राष्ट्रसंघ को छोड़ने की बार बार धमकी देने लगे। जर्मनी और जापान ने तो राष्ट्रसंघ को छोड़ भी दिया।

(3) संवैधानिक त्रुटियाँ—राष्ट्रसंघ निम्न संवैधानिक त्रुटियों के कारण कार्य करने के लिये असफल रहा —

(i) सदस्य राष्ट्र राष्ट्रसंघ के आदेशों का पालन करने के लिये बाध्य नहीं थे। इसका कारण यह था कि अगर परिषद का निर्णय उसके विरुद्ध होता तो वह देश राष्ट्रसंघ की सदस्यता से त्यागपत्र दे देता था और राष्ट्रसंघ उस देश के विरुद्ध कुछ भी कार्यवाही नहीं कर सकता था।

(ii) राष्ट्रसंघ में किसी भी विषय पर निर्णय लेने के लिये परिषद के सदस्यों का एकमत होना आवश्यक था। दूसरे शब्दों में सर्वसम्मति से निर्णय लिया जाता था। यदि एक भी सदस्य राष्ट्र उस निर्णय का विरोध कर दे तो वह निर्णय नहीं लिया जा सकता था। किसी भी अपराधी राष्ट्र के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्ध और सैनिक कार्यवाही करने के लिये कौंसिल के सदस्यों का एक मत होना आवश्यक था। राजनीतिक प्रतिस्पर्धा और गुटबन्दी के युग में सभी राष्ट्रों का एकमत होना अत्यन्त कठिन काम था। यह बात भी संघ की असफलता का मुख्य कारण थी।

(iii) संघ के कार्य करने का तरीका बहुत जटिल था। किसी भी विषय पर बहुत दिनों तक बहस होती रहती थी। शीघ्रता में निर्णय नहीं लिया जा सकता था।

(iv) संघ के संविधान में युद्ध को पूर्णरूप से निषेध घोषित नहीं किया गया था। रक्षात्मक युद्ध को संघ ने वैध मान लिया था। इसका लाभ बड़े राष्ट्रों ने उठाया।

(4) संघ की सीमित सदस्यता—संघ की सीमित सदस्यता भी उसकी असफलता में सहायक सिद्ध हुई। विश्व के सभी राष्ट्र इस संघ के सदस्य नहीं थे। प्रारम्भ से ही संयुक्त राज्य अमेरिका सीनेट के विरोध के कारण इस संघ का सदस्य नहीं बन सका। फ्रांस की हठधर्मी के कारण जर्मनी का एक लम्बे समय तक इस

1—गैथोर्न और हार्डी—ए हिस्ट्री आफ इंटरनेशनल अफेयर्स पृष्ठ 505

सग का सदस्य नही बनाया गया। आस्ट्रिया और रूस को भी इसका सदस्य नही बनाया गया। इस प्रकार राष्ट्रसघ विश्व-व्यापी सस्था नही बन सकी, क्योकि विश्व के अनेक राष्ट्र इसके सदस्य नही थे।

राष्ट्रसघ ऐसे राष्ट्र के विरुद्ध कुछ भी कार्यवाही नही कर सकता था, जो उसका सदस्य नही हो चाहे वह राष्ट्रसघ के नियमो की अवहेलना ही क्यो न करे? यदि राष्ट्रसघ ऐसे राष्ट्र के विरुद्ध कुछ कार्यवाही करता तो भी वह राष्ट्रसघ की आज्ञाओ का पालन करने के लिये बाध्य नही था। इतना ही नही ये राष्ट्र अपराधी सदस्य राष्ट्र की सहायता कर सघ की कार्यवाही को असफल कर सकते थे।

सघ का एक अन्य महत्वपूर्ण दोष यह था कि इसमे सदस्यता समाप्त करने की व्यवस्था की गई थी। कोई भी राष्ट्र दो वर्ष पूर्व नोटिस देकर इसकी सदस्यता को छोड सकता था। इसलिये समयानुसार जापान जर्मनी और इटली ने राष्ट्रसघ को छोड दिया। बडे राष्ट्रो के अलग हो जाने से राष्ट्रसघ की शक्ति को काफी धक्का लगा।

(5) अन्तर्राष्ट्रीय सेना का अभाव राष्ट्रसघ के पास अन्तर्राष्ट्रीय सेना का अभाव था। इसलिये उसके आदेशो की अवहेलना करने वाले देशो को वह दण्ड नही दे सका। राष्ट्रसघ आवश्यक होने पर सदस्य राष्ट्रों को सेना भेजने के लिये आदेश दे सकता था, परन्तु उसका पालन करने के लिये वे राष्ट्र बाध्य नही थे। यदि राष्ट्रसघ के पास अन्तर्राष्ट्रीय सेना होती तो वह शक्तिशाली राष्ट्रो को निर्बल राष्ट्रो पर अधिकार करने से रोक सकता था। बडे राष्ट्रो ने खुले आम राष्ट्रसघ की अवहेलना की। इसलिये निर्बल देश उसे शान्ति बनाये रखने मे असमर्थ समझने लगे। इस कारण सदस्य राष्ट्रो का राष्ट्रसघ से विश्वास उठने लगा।

(6) अधिनायकवाद का उदय—यूरोप मे अधिनायकवाद के उदय से इस सघ को बडा धक्का लगा। राष्ट्रसघ की स्थापना विवादो को शान्तिपूर्ण ढग से निपटाने के लिये की गई थी। 1930 ई० के बाद जर्मनी मे हिटलर के नेतृत्व मे नाजीवाद, इटली मे मुसोलिनी के नेतृत्व मे फासिस्टवाद और जापान मे सैनिकवाद के उदय ने इस मान्यता को समाप्त कर दिया। हिटलर और मुसोलिनी जैसे तानाशाह रक्त और लोह नीति के आधार पर अपनी समस्याओ को हल करना चाहते थे। वे राष्ट्रसघ की परवाह न करते हुए अपनी मागें पूर्ण करवाने के लिये सैनिक शक्ति का सहारा लेते थे। राष्ट्रसघ हिटलर और मुसोलिनी की तानाशाही प्रवृत्ति पर अकुश नही लगा सका। ऐसे वातावरण मे राष्ट्रसघ का असफल होना अवश्यम्भावी था।

(7) शस्त्रीकरण को सीमित करने मे असफलता—राष्ट्रसघ ने धारा 8 के अनुसार शस्त्रीकरण को सीमित करने के लिये कई योजनाऐं बनाई परन्तु सम्बन्धित राष्ट्रो की अनुमति के अभाव मे ये योजनाएँ क्रियान्वित नही की जा सकी। 1930

ई० के बाद प्रत्येक राष्ट्र अपनी सैनिक शक्ति में वृद्धि करता रहा परन्तु राष्ट्रसंघ उन पर कोई अंकुश नहीं लगा सका। जर्मनी ने अनिवार्य सैनिक सेवा लागू कर दी। इससे प्रभावित होकर अन्य यूरोपियन राष्ट्रों ने अपनी सैनिक शक्ति में वृद्धि करना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार यूरोपियन राष्ट्रों में फिर से शस्त्रों की होड़ प्रारम्भ हुई। जिसके फलस्वरूप द्वितीय विश्व युद्ध प्रारम्भ हो गया।

(8) अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण का अभाव—राष्ट्रसंघ के सदस्यों में अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण का अभाव था। सभी सदस्य राष्ट्र इस संघ के माध्यम से अपनी स्वार्थ सिद्धि करना चाहते थे। इस कारण राष्ट्रसंघ अपने उद्देश्य प्राप्ति में असफल रहा। संयुक्त राज्य अमेरिका चाहता था कि राष्ट्रसंघ युद्ध के पूर्व की शांति स्थापित करे परन्तु वह किसी प्रकार का उत्तरदायित्व नहीं लेना चाहता था। इस प्रकार इस संकीर्ण दृष्टिकोण के कारण राष्ट्रसंघ असफल रहा।

(9) राष्ट्रसंघ के प्रति दृष्टिकोण में अन्तर—सदस्य राष्ट्रों का राष्ट्रसंघ के प्रति दृष्टिकोण में अन्तर भी उसकी असफलता का एक कारण बना। सभी सदस्य राष्ट्र इस संघ के माध्यम से अपना अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते थे। फ्रांस राष्ट्र संघ को वर्साय की संधि का पालन करवाने वाली संस्था मानता था। वह चाहता था कि संघ जर्मनी पर नियंत्रण बनाये रखे। ब्रिटेन इस संघ के माध्यम से साम्यवाद को कुचलना चाहता था। इसलिये उसने मंचूरिया पर जापानी आक्रमण का विरोध नहीं किया था। जिससे राष्ट्रसंघ की प्रतिष्ठा को काफी धक्का पहुंचा। फ्रांस और इंगलैण्ड दोनों ही देश राष्ट्र संघ द्वारा शान्ति स्थापित करना चाहते थे, परन्तु वे अपने हितों का बलिदान करने के लिये तैयार नहीं थे। ऐसी स्थिति में राष्ट्रसंघ के लिये शांति स्थापित करना असम्भव था। इन दोनों राष्ट्रों ने मुसोलिनी के विरुद्ध राष्ट्रसंघ के आदेशानुसार कार्यवाही इसलिये नहीं की, क्योंकि वे इटली से अपने सम्बन्ध खराब नहीं करना चाहते थे।

प्रारम्भ में जर्मनी के राष्ट्रसंघ का सदस्य नहीं होने से उसकी संघ के प्रति कोई सहानुभूति नहीं थी। जर्मनी की दृष्टि में राष्ट्रसंघ विजयी राष्ट्रों की एक संस्था थी। जिसका कार्य वर्साय की संधि का पालन करवाना था। 1926 ई० में जर्मनी राष्ट्रसंघ का सदस्य बना। इसके पश्चात उसने वर्साय की संधि का उल्लंघन करना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार सदस्य राष्ट्रों के विभिन्न दृष्टिकोणों के कारण राष्ट्रसंघ असफल रहा।

(10) आर्थिक संकट—1930 ई० के आर्थिक संकट ने राष्ट्रसंघ की असफलता में बहुत बड़ा सहयोग दिया। इस आर्थिक मंदी के कारण सभी देशों की आर्थिक दशा शोचनीय हो गई। उन्होंने अपनी आर्थिक दशा सुधारने के लिये विभिन्न प्रकार के आर्थिक प्रतिबन्ध, सीमा-कर और तट कर लगाए। आर्थिक संकट के कारण सभी देशों में आर्थिक राष्ट्रवाद की शक्तियां प्रबल हो उठीं। जिसके फलस्वरूप

जर्मनी में हिटलर के नेतृत्व में नाजीवाद, इटली में मुसोलिनी के नेतृत्व में फासिस्टवाद और जापान में सैनिकवाद का उदय हुआ। इन्होंने अपने साम्राज्य में वृद्धि करने के लिये एवं समस्याओं को हल करने के लिये सैनिक शक्ति का सहारा लिया। फलस्वरूप यूरोप में फिर से शस्त्रीकरण की होड़ प्रारम्भ हो गई।

(11) ब्रिटेन और फ्रांस की तुष्टीकरण की नीति—राष्ट्रसंघ में अमेरिका के न होने के कारण ब्रिटेन और फ्रांस की गिनती महान राष्ट्रों में की जाती थी। ये दोनों देश साम्यवाद के विरोधी थे और उसे हर संभव कुचलना चाहते थे। इसलिये उन्होंने जर्मनी, जापान और इटली के प्रति तुष्टीकरण की नीति अपनाई। उनकी दृष्टि में हिटलर और मुसोलिनी से भी साम्यवाद ज्यादा खतरनाक था। फलस्वरूप जापान के मंचूरिया पर आक्रमण और इटली के एबीसीनिया पर आक्रमण के समय राष्ट्रसंघ उनके विरुद्ध कुछ भी कार्यवाही नहीं कर सका। अतः में हिटलर की साम्राज्यवादी क्षुधा के कारण द्वितीय विश्व युद्ध आरम्भ हो गया।

(12) हमलावरों का संरक्षक—राष्ट्रसंघ की स्थापना समानता एवं न्याय के सिद्धांत पर की गई थी। जब कभी छोटे राष्ट्र बड़े राष्ट्रों के आक्रमण पर राष्ट्रसंघ से शिकायतें करते तो बड़ी शक्तियों का आक्रांताओं को समर्थन मिलने के कारण राष्ट्रसंघ उनके विरुद्ध कुछ भी कार्यवाही नहीं कर सकता था। इस प्रकार राष्ट्रसंघ छोटे राष्ट्रों की बड़े राष्ट्रों से रक्षा करने में असमर्थ रहता था। परिणामस्वरूप छोटे राष्ट्र इस संघ को हमलावरों का संरक्षक समझने लगे। धीरे धीरे दुर्बल राष्ट्रों का इस संघ से विश्वास हटने लगा।

(13) राष्ट्रसंघ के सिद्धान्तों के प्रति अविश्वास—राष्ट्रसंघ की स्थापना के समय इसके सदस्य राष्ट्रों ने यह आश्वासन दिया था कि वे संघ की धारा 11, 11, 15 एवं 16 के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय दायित्व एवं सामूहिक सुरक्षा के सिद्धान्तों का पालन करेंगे। जब उत्तरदायित्वों के पालन का समय आया तो बड़े राष्ट्र पीछे हटने लगे। इससे यह स्पष्ट हो गया कि बड़े राष्ट्रों का राष्ट्रसंघ के सिद्धान्तों में विश्वास नहीं है। वे यह मानने को तैयार नहीं थे कि राष्ट्रसंघ विश्व में शांति को स्थापित करने में सफल हो सकता है। यद्यपि वे शांति की दुहाई देते रहे थे परन्तु वे व्यावहारिक तौर पर कोई कदम उठाने के लिये तैयार नहीं थे। बड़े बड़े राष्ट्र दुहरी नीति पर चल रहे थे। सैद्धान्तिक रूप से राष्ट्रसंघ ने एबीसीनिया पर इटली का आक्रमण रोकने के लिये आर्थिक प्रतिबन्ध लगाए परन्तु व्यावहारिक रूप में इंगलैण्ड और फ्रांस ने इटली का सहयोग कर इन आर्थिक प्रतिबन्धों को प्रभावहीन बना दिया। ब्रिटेन और फ्रांस ने ऐसी ही नीति जापान के मंचूरिया पर आक्रमण के समय अपनाई थी। जब राष्ट्रसंघ की बड़ी शक्तियां ही उनके साथ विश्वासघात कर रही थीं तो यह संघ कैसे सफल हो सकता था। शूमैन ने लिखा है कि 'संघ की सफलता के लिये यह आवश्यक था कि सदस्य राज्यों में इसके सिद्धान्तों के प्रति निष्ठा, बुद्धिमता और साहस होता किन्तु इनमें इसका सर्वथा अभाव था, अतः एक जिनेवा की झील'

के तट पर एरियाना पाक मे निर्मित उसका भव्य प्रासाद शीघ्र ही उसका सुदर समाधि स्थल बन गया।"[1]

राष्ट्रसघ का मूल्यांकन—राष्ट्रसघ अपने उद्देश्यो म आंशिक रूप से सफलता प्राप्त कर सका। उसको युद्ध को रोकने, निशस्त्रीकरण करने और शान्ति स्थापित करने मे पूणतया सफलता नहीं मिली परतु गर राजनीतिक कार्यों मे उसे आशातीत सफलता मिली। राष्ट्रसघ ने पहली बार यह स्पष्ट कर दिया कि अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के द्वारा ही विश्व म शान्ति स्थापित रह सकती है। वाल्टर ने लिखा है कि "राष्ट्रसघ की स्थापना इस रूप मे क्रान्तिकारी कदम था कि इसके साथ अतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध मे सद्धान्तिक परिवतन आया।"

राष्ट्रसघ के प्रयासो से सभी देशो मे युद्ध के प्रति घृणा की भावनायें विकसित हुई। यद्यपि यह सघ आक्रमणो को रोकने मे असफल रहा, तथापि आक्रमणो को रोकने के लिये सामूहिक प्रयास का सिद्धात व्यापक होने लगा। लैंगसम ने लिखा है कि 'सघ की सबसे बडी देन अतर्राष्ट्रीय सहयोग के विचार को उन्नत करना था।'

सघ ने सदस्य राष्ट्रो म विवादो को हल करने के लिये वाद विवाद, कूटनीति और समझौते का माग अपनाने पर जोर दिया। इससे अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का वातावरण तैयार हुआ। इसलिये यह कहा जाता है कि यद्यपि राष्ट्रसघ असफल रहा तथापि उसने सयुक्त राष्ट्र की स्थापना म महत्वपूण सहयोग दिया। वाल्टर ने लखा है कि "सयुक्त राष्टसघ के उद्देश्यो, सिद्धातो, सस्थाओं और कायप्रणाली पर राष्टसघ की स्पष्ट छाप है।"

प्रस्तावित सदभ पाठय पुस्तकें

1—शूमैन–इटरनेशनल पोलिटिक्स

2—कैटलबी–ए हिस्ट्री ऑफ मॉडन टाइम्स

3—हेजन–आधुनिक यूरोप का इतिहास

4—मोरगेथों–पोलिटिक्स अमग नेशस

5—गूच, जी॰ पी॰–आधुनिक यूरोप का इतिहास

6—लगसम–दि वल्ड सिस, 1919

7—ग्राट एण्ड टेम्परले—यूरोप का इतिहास —उन्नीसवीं और बीसवी शताब्दी मे।

8—गेथोन और हार्डी—ए हिस्ट्री ऑफ इटरनेशनल अफेयर्स।

1—शूमैन–इटरनेशनल पोलिटिक्स पृष्ठ 313

13

आधुनिक चीन

इतिहासकार थामसन का कहना है कि चीन का प्राचीन इतिहास बहुत अधिक जटिल है। चीन भी भारत की भांति एक प्राचीन देश है। यहां 22 वंशों ने शासन किया। यहां का अंतिम सम्राट मंचू वंश का था जो 1912 ई० तक शासन करता रहा। चीन मे सातवी शताब्दी से लेकर नवी शताब्दी तक टांग वंश के शासकों ने शासन किया। डॉ० बी० आर० बेनर्जी का मानना है कि इस वंश के अधीन चीन ने काफी प्रगति की। मंगोल वंश का शासन भी चीन से प्रारम्भ होता है। मंगोल बहुत निर्दयी और अत्याचारी थे। उनका नेता चंगेज खां अपनी क्रूरता और नृशंसता के लिये संसार में प्रसिद्ध हो चुका था। उसके शासनकाल में भी चीन ने प्रगति की। चंगेज खां के पश्चात उसका पौत्र कुबलाई खां चीन का शासक बना। यह जनता में बहुत अधिक लोकप्रिय था। उसने पेकिंग शहर को चीन की राजधानी बनाया। उसके शासनकाल मे कला और साहित्य का बहुत अधिक विकास हुआ। उसने सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता की नीति अपनाई। बौद्ध धर्म के अनुयाईयों के विद्रोह के कारण मंगोल वंश का शासन समाप्त हो गया और उसके स्थान पर 1368 ई० में मिंगवंश का शासन स्थापित हुआ।

मिंगवंश के शासनकाल में चीन ने बहुत अधिक उन्नति की। इस वंश के शासकों ने विदेशियों के चीन में आने पर प्रतिबंध लगा दिया। 1644 ई० तक मिंगवंश के शासक चीन पर शासन करते रहे। 1644 ई० के पश्चात मंचू वंश ने चीन पर अधिकार कर लिया। मंचू वंश के शासक असभ्य होते हुए भी साहसी थे। इस वंश का दूसरा सम्राट काङ्गसि था। जिसने 1662 ई० से 1723 ई० तक चीन पर शासन किया। उसने साहित्य और कला को प्रोत्साहन दिया। इसलिये शासनकाल मे कला और साहित्य का बहुत अधिक विकास हुआ। मंचू वंश के शासकों ने 1912 ई० तक चीन पर राज्य किया। उनके शासन काल में चीन ने प्रत्येक क्षेत्र में प्रगति की, और साम्राज्य का काफी विस्तार हुआ। अठारहवी शताब्दी मे मंचू वंश का पतन होने लगा।

आधुनिक चीन

इस प्रकार चीन मे कई वश के शासको ने शासन किया। चीन ने मगोल और
मचू वश के विजेताओ को अपने मे मिला लिया। इस प्रकार चीन की प्राचीन
सभ्यता अविच्छिन्न गति से चलती रही, परन्तु 20वी शताब्दी म चीन पाश्चात्य
सभ्यता से अपनी सभ्यता और सस्कृति की रक्षा करने म असफल रहा। स्पष्ट है
कि बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ म चीन का आधुनिकीकरण आरम्भ हुआ। पाश्चात्य
देशो के प्रभाव से चीन के रहन-सहन खान पान चिन्तन और शिक्षा के क्षेत्र मे
परिवतन होने लगे। इस परिवतन को चीन का आधुनिकीकरण कहा जाता है।
चीन के आधुनिकीकरण से प्राचीन सस्कृति की परम्पराएँ टूटने लगी।

चीन में राजनैतिक एकता के स्थान पर सास्कृतिक एकता विद्यमान थी।
यहा पर सम्राट दवी सिद्धात के अनुसार शासन करता था। सम्राटो ने शासन की
सुविधा के लिये चीन को कई प्रान्तों म विभाजित कर रखा था। इन प्रान्तो की
सख्या घटती बढती रहती थी। 19 वीं शताब्दी म इन प्रातो की सख्या
18 थी। प्रातो का शासन प्रबध चलाने के लिये सम्राट राज्यपाल, कोषा-
ध्यक्ष और न्यायाधीश आदि अधिकारियों की नियुक्तिया करता था। नागरिक प्रशासन
के अधिकारियो की नियुक्ति परीक्षा प्रणाली के द्वारा होती थी। चीनी सम्राट कन्फ्यू-
शियस के सिद्धान्तो पर शासन चलाते थे। ताओवादी परम्पराओ का भी चीनी
प्रशासन पर बहुत अधिक प्रभाव था। गाव, चीनी प्रशासन की सबस छोटी इकाई
थी। वृद्धपच गाव का शासन चलाते थे। चीनी शासन में विकेन्द्रीकरण अधिक होने
से विदेशी आक्रमणकारियों को सफलता प्राप्त हुई।

चीनी समाज मे कुटुम्ब का महत्वपूण स्थान था। उनके कुटुम्ब मे जीवित
सदस्यो के अतिरिक्त मृतको को भी महत्वपूण स्थान प्राप्त था। व अपन पूवजो की
पूजा करते थे। उनके लिखित रिकार्डों का बडा सम्मान करते थे। चीनी समाज मे
माता पिता का बहुत आदर किया जाता था। चीन म सयुक्त परिवार प्रणाली
प्रचलित थी। स्त्रियो को समाज मे कोई विशेष स्थान प्राप्त नही था। पुत्र के जन्म
लेने पर खुशिया मनाई जाती थी।

चीनी लोगो का मुख्य व्यवसाय कृषि था। इसके अतिरिक्त यहा के लोग
रेशम के कपडे बनाने का धधा करते थे। समाज मे विद्वान तथा कृषको को बहुत
अधिक सम्मान दिया जाता था। चीनी व्यापारी सघ मे बधे हुए थे। विदेशों से
व्यापार करते समय चीनी व्यापारी चादी का प्रयोग भी किया करते थे। चीन मे
कागजी मुद्रा का प्रयोग भी किया गया। यहा सामन्त कृषको से अत्यधिक मात्रा मे
कर वसूल करते थे। इस शोषण के कारण चीन म गरीबो की दशा बहुत शोचनीय
हो गई।

चीनी लोग कन्फ्यूशियस के नतिक सिद्धातो का पालन करना अपना कत्तव्य
समझते थे। यहा के नागरिक किसी एक धम को नहीं मानते थे ~~और विभिन्न धर्मों~~
में विश्वास करते थे। चीन के कुछ लोग ताओवाद में विश्वास करते थे, तो कुछ

बौद्ध धर्म की मूर्तियों की पूजा म विश्वास रखते थे। 19वी शताब्दी में चीन में इस्लाम धम का प्रवेश भी हो चुका था। चीनी लोग परलोक म भी विश्वास करते थे। यहां के मुख्य देवता "यीन" (अधकार की देवी) और "याग" (प्रकाश, सत्य और न्याय देवता) आदि थे। चीन म कन्फ्यूशियस ताओ और बौद्ध धम के अनेक स्थानों पर मदिर, मठ और बिहार बने हुए थे, जहा पुरोहित और बौद्ध भिन्नु रहते थे।

चीन मे केन्टन, फूचाऊ तथा टीन्सटीन आदि क्षेत्रा म अलग-अलग भाषाएँ बोली जाती थी। इन सब भाषाओ की लिपि एक जसी थी। 19वी शताब्दी तक चीन ने लिपी और भाषा के क्षेत्र में बहुत अधिक प्रगति कर ली थी परन्तु शब्द जटिल और अधिक थे। चीनी विद्वानो ने कृषि तथा चिकित्सा शास्त्र पर अनेक पुस्तकें लिखी। यहां की शिक्षा मे परीक्षा को महत्वपूण स्थान प्राप्त था। परीक्षा में सफल अभ्यार्थी को राज्य और समाज मे बडा सम्मान मिलता था। राज्य की नौकरियो के लिये भी परीक्षाएँ आयोजित की जाती थी और सफल अभ्यार्थी को राजकीय नौकरी म नियुक्ति दी जाती थी। चीन की सरकार निजी शिक्षण सस्थाओ को आर्थिक सहायता देती थी।

चीन में विदेशियों का आगमन—उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक पश्चिमी देशो को चीन मे अपना साम्राज्य स्थापित करने म सफलता नही मिली। इसका कारण यह था कि मचू वश के शासको ने पश्चिमी लोगो के चीन मे आने पर प्रतिबध लगा दिया था, परतु उन्हे सफलता नही मिली। मचू वश के दुबल शासको के समय अग्रेज व्यापारियो ने चीन से व्यापारिक सम्पक स्थापित करने का प्रयास किया। परन्तु उन्हें अपमानित कर चीन से बाहर निकाल दिया गया। 1816 ई० में लाड एमहस्ट पेकिंग में व्यापारिक सुविधा प्राप्त करने के लिये आया था परतु उसे भी अपने उद्देश्य में सफलता नही मिली। चीनी सरकार ने उसे अपमानित कर निकाल दिया। इसी प्रकार 1834 ई० में लाड नपियर भी चीन आया परन्तु उसे भी अपन उद्देश्य में सफलता नही मिली।

अब अग्रेजों ने चीन म अपना साम्राज्य स्थापित करने के लिये दूसरा तरीका अपनाया। उन्होंने चीन से अफीम का व्यापार शुरू किया। इस नशीले व्यसन का प्रचार कर चीनी लोगो को अफीम खाने का आदि बना दिया। अब अग्रेज चीन से सामान मंगवाने लगे और उसके बदले में भारत से अफीम ले जाकर उनको देने लगे।

प्रथम अफीम युद्ध (1839-42 ई०)—क्लाइड ने लिखा है कि "चीन के लिये यह सैनिक पराजयो की शताब्दि का आरम्भ था।"[1] अग्रेज व्यापारी अफीम के व्यापार के द्वारा चीन का आर्थिक शोषण कर रहे थे। चीनी सरकार अफीम के बुरे परिणामों से चिंतित हो उठी। उसने अफीम के व्यापार पर प्रतिबन्ध लगा दिया

1—क्लाइड-दी फार ईस्ट-पृष्ठ 118

और इसका व्यापार करने पर कठोर सजा देने की घोषणा की गई। अंग्रेजों ने इसको बहाना बनाकर 1839 ई० में चीन से युद्ध प्रारम्भ कर दिया। इसे प्रथम अफीम युद्ध कहा जाता है। यह युद्ध 1839 ई० से 1842 ई० तक चलता रहा। इस युद्ध में अंग्रेज सेना ने चीनी सेना को बुरी तरह से पराजित किया। इसमें चीन के 20 हजार और अंग्रेज सेना के 500 सैनिक मारे गये। एप्सटीन ने लिखा है कि "इस युद्ध में पश्चिम के अप्रगण्य व सभ्य राज्यों की निरंतर और चीन के सामन्तवादी पिछड़े साम्राज्य की दुर्बलता का पता सारे संसार को चल गया।"[1]

नानकिंग की संधि (1842 ई०)—प्रथम अफीम युद्ध में इंगलैण्ड की विजय हुई। इसलिये उसने 29 अगस्त, 1842 ई० को चीन को एक संधि पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य किया, जिसे नानकिंग की संधि कहा जाता है। इस संधि की प्रमुख शर्तें निम्नलिखित थीं —

(1) हांगकांग का बन्दरगाह अंग्रेजों को दे दिया गया।

(2) चीन ने अपने पांच बन्दरगाह केंटन, अमोय, फूचो, निंगपो और संघाई में अंग्रेजों को व्यापार करने की सुविधा प्रदान की। अंग्रेज सरकार इन बन्दरगाहों पर अपने प्रतिनिधि नियुक्त कर सकती थी।

(3) चीन ने युद्ध क्षतिपूर्ति के रूप में 21 लाख डालर अंग्रेजों को देना स्वीकार कर लिया।

(4) चीन में रहने वाले अंग्रेजों को विदेशाधिकार प्रदान किये गये। इस अधिकार के अनुसार अंग्रेजों के अभियोग पर केवल अंग्रेजी न्यायाधीश ही निर्णय दे सकते थे।

ब्रिटेन की विजय से प्रोत्साहित होकर अन्य पाश्चात्य देशों ने भी चीन के साथ व्यापारिक समझौते कर लिए। 1844 ई० में चीन और अमेरिका के बीच एक व्यापारिक संधि हुई। इस संधि के अनुसार चीन ने यह स्वीकार किया कि वहाँ रहने वाले अमेरिकन लोगों के अभियोगों की सुनवाई का अधिकार अमेरिकन न्यायाधीशों को होगा। यह शर्त चीन के लिये अपमानजनक थी, परन्तु उसे बाध्य होकर इस शर्त को स्वीकार करना पड़ा। शीघ्र ही फ्रांस, बेल्जियम, हॉलैंड, प्रशा और पुर्तगाल ने चीन के पाँचों बन्दरगाहों पर अपनी अपनी व्यापारिक कोठियां स्थापित कर लीं। अब चीन को बाध्य होकर अकेलेपन की नीति का परित्याग करना पड़ा तथा राजदूतों का आदान प्रदान करने के लिये विवश होना पड़ा।

द्वितीय अफीम युद्ध (1856-60 ई०)—नानकिंग की अपमानजनक संधि से चीनी लोग असंतुष्ट थे। वे अंग्रेजों को सुविधाएँ नहीं देना चाहते थे। परन्तु नानकिंग की संधि से बाध्य होकर सुविधायें देनी पड़ी। उधर अंग्रेज नानकिंग की

1—इजराइल-एप्सटीन-फ्रोम ओपियम वार टू लिबरेशन पृष्ठ 5

संधि से प्राप्त सुविधाओं से सन्तुष्ट नहीं थे वे और अधिक सुविधायें प्राप्त करना चाहते थे। इसलिये 1853 ई० में दोनों के बीच मतभेद उग्र हो गये। 1856 ई० में *चीनी सरकार ने एक फ्रेंच रोमन कैथोलिक पादरी को मृत्युदण्ड दिया।* इस समय अंग्रेजों ने विशेषाधिकारों को लेकर पुनः चीन से युद्ध प्रारम्भ कर दिया। इसे द्वितीय अफीम युद्ध कहते हैं। यह युद्ध 1856 से 1860 ई० तक चलता रहा। इस युद्ध में फ्रांस ने इंगलण्ड का साथ दिया। इस प्रकार फ्रांस और इंगलण्ड की संयुक्त सेना ने चीन को इस युद्ध में बुरी तरह से पराजित कर संधि करने के लिये विवश किया।

टिन्सटीन की संधि (1858 ई०) —

(1) चीनी सरकार ने अफीम के व्यापार पर लगाये गये प्रतिबन्ध को हटा लिया। अब अफीम का व्यापार खुले तौर पर हो सकता था।

(2) चीन ने अपने 11 बन्दरगाहों में विदेशी व्यापारियों को व्यापारिक सुविधायें प्रदान की।

(3) चीन में ईसाई धर्म का प्रचार करने की स्वतन्त्रता दी गई।

(4) चीन में रहने वाले विदेशियों पर चीनी कानून लागू नहीं होगा।

इस युद्ध में फ्रांस को भी चीन में विशेषाधिकार प्राप्त हुए। इसके अतिरिक्त अमेरिका को भी चीन में व्यापारिक सुविधायें प्राप्त हुईं। अब चीन ने पश्चिमी शक्तियों के लिये अपने द्वार खोल दिये। हेराल्ड एम० विनाके ने लिखा है कि "तथ्य यही है कि नयी व्यवस्था को सहज रूप से स्वीकार न करने से सबसे अधिक अहित चीन का ही था, यद्यपि यह नयी व्यवस्था चीन पर थोपी गई थी।"[1]

ताई पिंग विद्रोह— चीनी अंग्रेजी युद्धों के पश्चात पश्चिमी देशों ने चीन में अपना साम्राज्य स्थापित करने का निश्चय कर लिया। यहाँ ईसाई धर्म का प्रचार होने लगा। इससे चीनी कृषक बहुत अधिक प्रभावित हुए। चीन के कृषकों और ईसाईयों ने चीनी सम्राट की निरंकुशता के विरुद्ध हुंग शियु चुआन के नेतृत्व में ताईपिंग में विद्रोह कर दिया। इस विद्रोह का मुख्य उद्देश्य चीन के आन्तरिक मामलों में विदेशी शक्तियों के हस्तक्षेप को समाप्त करना था। 1853 ई० में हुंग शियु चुआन ने नानकिंग पर अधिकार कर लिया और वहां पर एक नई सरकार की स्थापना की। जिसे "महान् शान्ति का स्वर्गीय राज्य" कहा जाता है। इसे चीनी भाषा में 'ताईपिंग तिन कुओ" के नाम से जाना जाता है। 1850 ई० से लेकर 1865 ई० तक क्रान्तिकारियों की सरकार नानकिंग का शासन चलाती रही। इस अवधि में न तो चीनी सरकार नानकिंग पर अधिकार कर सकी और न ही क्रान्तिकारी पेकिंग पर अधिकार कर सके। क्रान्तिकारियों ने मंचू वंश के शासकों की

1—विनाके, हराल्ड, एम०—पूर्व एशिया का आधुनिक इतिहास पृष्ठ 58

निरंकुशता के विरुद्ध विद्रोह किया था। इस विद्रोह का प्रभाव 1854 1865 ई० तक बना रहा।

क्रांतिकारी सरकार के सुधार – क्रान्तिकारी सरकार ने निम्नलिखित सुधार किये —

(1) जमींदार और सामन्त वर्ग का अन्त कर दिया और भूमि किसानों में बांट दी गई। इसके अतिरिक्त कृषकों को सामूहिक रूप से कृषि कार्य करने की शिक्षा दी गई। आगस्टस लिंडले ने लिखा है कि 'आकाश के नीचे सारी भूमि, आकाश के नीचे रहने वालों द्वारा जोती जानी चाहिये। सब उन्हें मिलकर जोतने दो।"[1]

(2) सैनिक संगठन के सम्बन्ध में अनेक महत्वपूर्ण सुधार किये गये।

(3) अफीम का प्रयोग बन्द कर दिया गया। इसका प्रयोग करने पर कठोर सजा देने की घोषणा की गई।

(4) स्त्रियों की दशा में सुधार करने के लिये कई प्रयास किये गये। स्त्रियों के वेश्यावृत्ति और लोहे के जूते पहनने पर रोक लगा दी गई।

(5) मजदूरों की दशा में सुधार करने के लिये कई प्रयास किये गये। ऐप्स्टीन ने लिखा है कि 'ताईपिंग क्रान्तिकारी किसानों का युद्ध उन्नीसवीं शताब्दी का सबसे भयानक और साहसी युद्ध था। और मानव स्वतन्त्रता के लिये विश्व के सबसे महान युद्धों में से एक था।'[2]

ताईपिंग राज्य में व्यापार के क्षेत्र में भी काफी उन्नति हुई। चाय का निर्यात दुगुना हो गया। इतना सब कुछ होने पर भी यह क्रान्ति असफल रही। क्लाइड ने लिखा है कि "एक दफा जब ताईपिंग ने रास्ता तैयार कर दिया तो चीन गणतन्त्र और ईसाई धर्म की भावना से, शिक्षित लोगों की शक्ति और व्यापारिक मेलजोल से प्रगति करता स्वतन्त्र होकर रहेगा।'[3] विनाके ने लिखा है कि "आन्दोलन ने रचनात्मक नेतृत्व का सृजन नहीं किया, अधिकतम योग्यता के लोगों ने आरम्भ में ही अपने प्राण होम दिये और चूंकि अधिकतम योग्यता और कट्टरपंथी नेताओं का ढंग पर प्रभाव रहा, इसलिये ताईपिंग अपनी ही कमजोरियों के कारण समाप्त हो गया।"[4]

चीनी जमींदारों ने 1858 ई० में हुंग शियु चुआन का कत्ल करवा दिया। चुआन की मृत्यु के पश्चात् ताईपिंग सेना का संगठन कमजोर हो गया। ऐसे समय

1—आगस्टस लिंडले—दी हिस्ट्री आफ ताईपिंग रेवोल्यूशन पृष्ठ-78
2—इजराइल एप्स्टीन– फ्रोम ओपियम वार टू लिबरेशन पृष्ठ 21
3—क्लाइड, पाल एच०–दी फार ईस्ट–पृष्ठ 143
4—विनाके, हेराल्ड एम०–पूर्व एशिया का आधुनिक इतिहास पृष्ठ 75

1899 ई० म यह आ दोलन शान्टुग से प्रारम्भ हुआ और धीरे धीरे चीन के अय प्रदेशो म फैलने लगा। दश भक्ता न विदेशियो को बाहर निकालने के लिय लूटमार अग्निकाड और हत्यायें करना प्रारम्भ कर दिया। इस समय ईसाई धम प्रचारको की भी हत्या की गई। विदेशियो की सयुक्त सेना ने आन्दोलन को कुचलने का प्रयास किया। एसी परिस्थिति म चीन की सेना बोक्सर्स की सहायता के लिये आ गई। इससे उत्साहित होकर बोक्सर्स ने जमनी तथा जापान के राजदूतो को मार डाला। इस पर जमनी, फ्रास रूस और जापान ने पेकिंग स्थित अपने दूतावासो की रक्षा करने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय सेना भेजी। इस सेना न 1900 की अगस्त म बाक्सर आन्दोलन को बुरी तरह से कुचल दिया गया और चीन के सम्राट को एक अपमानजनक सधि पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य किया।

इस सधि के अनुसार चीन न युद्ध का खचा देना स्वीकार कर लिया परन्तु चीनी सरकार खचा चुकाने म असमथ थी इसलिये विदेशी राष्ट्रो न चीन से यह अधिकार प्राप्त कर लिया कि वे चीन की विदेशी कर स प्राप्त होन वाली आय लेंगे। इस प्रकार का अधिकार प्राप्त हो जाने स पाश्चात्य देशो को आर्थिक और राजनीतिक लाभ प्राप्त हुआ। इस विभाजन के कारण चीन को पूव का तरबूज भी कहा जाता है।

इस बोक्सर आन्दोलन के कारण चीनी साम्राज्ञी त्सूहीसी ने कुछ सुधार किये। इन सुधारो के अनुसार राज्य के उच्च पदो पर अब उन्ही व्यक्तियो को नियुक्ति दी जाती थी जो पाश्चात्य विषय (अथशास्त्र राजनीति शास्त्र और रसायन शास्त्र) लेकर परीक्षा म सफल होते थे। इससे चीन के प्राचीन विषयो का महत्व कम होने लगा।

(5) रूसी जापानी युद्ध (1904-1905)—बाक्सर क्रान्ति स चीन मे नव चेतना का सचार हुआ। इसी बीच रूस और जापान के बीच 1904-5 ई० म युद्ध प्रारम्भ हो गया। इस युद्ध म जापान जसे छोटे से देश ने रूस जैसे महान राष्ट्र को बुरी तरह पराजित किया। इस युद्ध म जापान की विजय से चीनवासी समझ गये कि जापान पाश्चात्य शस्त्रो व युद्ध प्रणाली के कारण रूस जसे महान राष्ट्र को हराने म सफल हुआ है। इसका परिणाम यह हुआ कि चीन ने भी पाश्चात्य देशो क आधार पर अपनी शिक्षा, शासन और औद्योगिकरण करने का निश्चय किया ताकि वह भी जापान के समान एक शक्तिशाली राष्ट्र बन सके।

(6) चीन की 1911 ई० की गणतन्त्रवादी क्रान्ति—1908 ई० म मन्चू सरकार ने शासन सम्बन्धी कई सुधार किये। मन्चू वश के सम्राट ने नये ढग से चीनी सेना का सगठन किया। सम्पूर्ण देश मे कई विद्यालयो की स्थापना की गई। अफीम का प्रयोग गैर कानूनी घोषित कर दिया गया। सरकार ने जनता को यह आश्वासन दिया कि 1917 ई० में एक नया सविधान लागू किया जायेगा। सम्राट

के इन सुधारो का सामन्तो ने विरोध किया। इसलिए ये सुधार क्रियान्वित नहीं किये जा सके। इससे जनता असन्तुष्ट थी। चीनी जनता ने विदेशियो के बढते हुये प्रभाव के लिए अपनी सरकार को जिम्मेदार माना। अन्त 1911 ई० में चीन में क्रान्ति हुई। जिसके फलस्वरूप चीन में गणतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था कर दी गई। 8 नवम्बर 1911 ई० में को चा र क म . वश के अतिम सम्राट ने सिंहासन छोड दिया।

गणतन्त्रवादी क्रान्ति के कारण—इस क्रांति के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे —

(1) चीन की जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि होती जा रही थी, 1885 ई० मे चीन की जनसंख्या 37 करोड 70 लाख थी परन्तु 1911 ई० में यह बढकर 43 करोड हो गई। इस अनुपात में उत्पादन तथा पैदावार में वृद्धि नहीं हो रही थी। इसके अतिरिक्त चीन में लगभग हर साल अकाल पडता था, जिससे हजारो व्यक्ति मारे जाते थे। सरकार ने इस समस्या को हल करने के लिये कुछ भी प्रयास नहीं किये, इसलिये जनता मे सरकार के विरुद्ध असंतोष का व्याप्त होना स्वाभाविक ही था।

(2) छापखाने के आविष्कार, समाचार पत्रों के प्रकाशन एवं रेलमार्गों के निर्माण के कारण दूर दूर के प्रान्तो की दूरी को कम कर दिया। इसके अतिरिक्त आवागमन के साधनो का विकास होने के कारण प्रान्तो के निवासी एक दूसरे के निकट सम्पर्क में आये। समाचार पत्रो के द्वारा क्रान्तिकारी विचारों का प्रसार किया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि जनता ने सामूहिक रूप से निरंकुश शासन को समाप्त करने का प्रयास किया।

(3) चीनी जनता में विदेशियो के विशेषाधिकार के प्रति भयंकर असंतोष व्याप्त था। इसलिये जनता ने विदेशियो का प्रभाव समाप्त करने के लिये सरकार को बदलना आवश्यक समझा।

(4) चीन के कई परिवार पश्चिमी देशो मे जाकर बस गये थे। वहां उन्होंने देखा कि जनता किस प्रकार अपने अधिकारों का प्रयोग करती है। इससे प्रभावित होकर उन्होने चीन में क्रान्तिकारी भावनाओं का प्रचार किया। डा० सनयात सेन ने एक क्रान्तिकारी दल की स्थापना की।

(5) केन्द्र व प्रान्तीय सरकारो के बीच मतभेद भी क्रान्ति का कारण बना। उस समय चीन की केन्द्रीय सरकार विदेशों की सहायता से चीन में रेलवे लाइन का निर्माण करवा रही थी। जिसका प्रान्तीय सरकारो ने विरोध किया। प्रान्तीय सरकार यह चाहती थी कि वे स्वय रेल्वे लाइन का निर्माण करवाये। इसका केन्द्रीय सरकार ने विरोध किया।

(6) क्रांति का तत्कालीन कारण सेना का विद्रोह था। 10 अक्टूबर 1911 ई०

1899 ई० म यह आ दालन शा टुग से प्रारम्भ हुआ और धीरे धीरे चीन के अय प्रदशो म फनने लगा। इश भक्ता ने विदेशिया का बाहर निकालने के लिये लूटमार, अग्निकाड और हत्यायें करना प्रारम्भ कर दिया। इस समय ईसाई धम प्रचारका की भी हत्या की गई। विदेशिया की सयुक्त सेना ने आ दोलन को कुचलने का प्रयास किया। ऐसी परिस्थिर्ति मे चीन की सेना बाक्सस की सहायता के लिये आ गई। इससे उत्साहित होकर बोक्सस ने जमनी तथा जापान के राजदूता को मार डाला। इम पर जम ी, फ्रास रूस और जापान ने पेकिंग स्थित अपने दूतावासा की रक्षा करने के लिए एव अतर्राष्टीय सेना भेजी। इस सेना न 1900 की अगस्त म बाक्सर आन्दोलन को बुरी तरह से कुचल दिया गया और चीन क सम्राट को एक अपमानजनक सधि पर हस्ताक्षर करने क लिए बाध्य किया।

इस सधि क अनुसार चीन न युद्ध का खचा देना स्वीकार कर लिया, पर तु चीनी सरकार खर्चा चुकान म असमथ थी इसलिय विदेशी राष्ट्रा न चीन से यह अधिकार प्राप्त कर लिया कि वे चीन का विदेशी कर स प्राप्त हान वाली आय लेंग। इस प्रकार का अधिकार प्राप्त हा जाने से पाश्चात्य देशा को आर्थिक और राजनीतिक लाभ प्राप्त हुआ। इस विभाजन के कारण चीन को पूव का तरबूज भी कहा जाता है।

इस बोक्सर आन्दोलन के कारण चीनी साम्राज्ञी त्युह्मीसी न कुछ सुधार किये। इन सुधारो के अनुसार राज्य के उच्च पदा पर अब उ ही व्यक्तियो को नियुक्ति दी जाती थी जो पाश्चात्य विषय (अथशास्त्र राजनीति शास्त्र और रसायन शास्त्र) लेकर परीक्षा म सफल होते थे। इसमे चीन के प्राचीन विषया का महत्व कम होने लगा।

(5) रूसी जापानी युद्ध (1904-1905)—बाक्सर क्रान्ति स चीन मे नव चेतना का सचार हुआ। इसी बीच रूस और जापान के बीच 1904-5 ई० मे युद्ध प्रारम्भ हो गया। इस युद्ध म जापान जसे छोटे से देश ने रूस जसे महान राष्ट को बुरी तरह पराजित किया। इस युद्ध म जापान की विजय से चीनवासी समझ गये कि जापान पाश्चात्य शस्त्रा व युद्ध प्रणाली के कारण रूस जसे महान राष्ट को हरान म सफल हुआ है। इसका परिणाम यह हुआ कि चीन ने भी पाश्चात्य देशो क आधार पर अपनी शिक्षा, शासन और औद्योगिकरण करने का निश्चय किया ताकि वह भी जापान के समान एक शक्तिशाली राष्ट बन सके।

(6) चीन की 1911 ई० की गणतन्त्रवादी क्रान्ति—1908 ई० म मचू सरकार ने शासन सम्बन्धी कई सुधार किये। मचू वश के सम्राट ने नये ढग से चीनी सेना का सगठन किया। सम्पूण देश म कई विद्यालयो की स्थापना की गई। अफीम का प्रयोग गर कानूनी घोषित कर दिया गया। सरकार ने जनता को यह आश्वासन दिया कि 1917 ई० म एक नया सविधान लागू किया जायगा। सम्राट

के इन सुधारों का सामन्तो ने विरोध किया। इसलिए ये सुधार नियान्वित नहीं किये जा सके। इससे जनता असन्तुष्ट थी। चीनी जनता ने विदेशियों के बढ़ते हुये प्रभाव के लिए अपनी सरकार को जिम्मेदार माना। अन्त 1911 ई० में चीन में क्रान्ति हुई। जिसके फलस्वरूप चीन में गणतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था कर दी गई। 8 नवम्बर 1911 ई० में चीन के मंचू वंश के अन्तिम सम्राट ने सिंहासन छोड़ दिया।

गणतन्त्रवादी क्रान्ति के कारण—इस क्रान्ति के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे —

(1) चीन की जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि होती जा रही थी 1885 ई० में चीन की जनसंख्या 37 करोड़ 70 लाख थी परन्तु 1911 ई० में यह बढ़कर 43 करोड़ हो गई। इस अनुपात में उत्पादन तथा पैदावार में वृद्धि नहीं हो रही थी। इसके अतिरिक्त चीन में लगभग हर साल अकाल पड़ता था, जिससे हजारों व्यक्ति मारे जाते थे। सरकार ने इस समस्या का हल करने के लिये कुछ भी प्रयास नहीं किये, इसलिये जनता में सरकार के विरुद्ध असन्तोष का व्याप्त होना स्वाभाविक ही था।

(2) छापखाने के आविष्कार, समाचार पत्रों के प्रकाशन एवं रेलमार्गों के निर्माण के कारण दूर दूर के प्रान्तों की दूरी को कम कर दिया। इसके अतिरिक्त आवागमन के साधनों का विकास होने के कारण प्रान्तों के निवासी एक दूसरे के निकट सम्पर्क में आये। समाचार पत्रों के द्वारा क्रान्तिकारी विचारों का प्रसार किया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि जनता ने सामूहिक रूप से निरंकुश शासन को समाप्त करने का प्रयास किया।

(3) चीनी जनता में विदेशियों के विशेषाधिकार के प्रति व्यापक असंतोष व्याप्त था। इसलिये जनता ने विदेशियों का प्रभाव समाप्त करने के लिये सरकार को बदलना आवश्यक समझा।

(4) चीन के कई परिवार पश्चिमी देशों में जाकर बस गये थे। वहां उन्होंने देखा कि जनता किस प्रकार अपने अधिकारों का प्रयोग करती है। इससे प्रभावित होकर उन्होंने चीन में क्रान्तिकारी भावनाओं का प्रचार किया। डा० सनयात सेन ने एक क्रान्तिकारी दल की स्थापना की।

(5) केन्द्र व प्रान्तीय सरकारों के बीच मतभेद भी क्रान्ति का कारण बना। उस समय चीन की केन्द्रीय सरकार विदेशों की सहायता से चीन में रेलवे लाइन का निर्माण करवा रही थी। जिसका प्रान्तीय सरकारों ने विरोध किया। प्रान्तीय सरकार यह चाहती थी कि वे स्वयं रेलवे लाइन का निर्माण करवायें। इसका केन्द्रीय सरकार ने विरोध किया।

(6) क्रान्ति का तात्कालीन कारण सेना का विद्रोह था। 10 अक्टूबर 1911 ई०

को बम विस्फोट की घटना घटित हुई। बम से फटने वाला मकान क्रांतिकारी व्यक्ति का था। जब सरकारी अधिकारियों ने इस मकान की तलाशी ली तो वहां काफी मात्रा म युद्ध की सामग्री प्राप्त हुई। इस पर सरकार ने क्रान्तिकारियों को बन्दी बनाना प्रारम्भ किया। सैंकड़ों क्रान्तिकारियो को मृत्यु दण्ड दिया गया। इन क्रान्तिकारियों म अनेक सेना के उच्च पदाधिकारी थे जिनको भी मृत्यु दंड दिया गया था। फलस्वरूप चीन मे सेना ने विद्रोह कर दिया और क्रान्ति प्रारम्भ हो गई।

वूचाग प्रान्त की सेनाओ ने 11 अक्टूबर 1911 ई० को ली-युआन हुग के नेतृत्व म सरकार के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। जनता ने सेना को सहयोग दिया। परिणामस्वरूप वूचांग म गणतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था की स्थापना कर दी गई। चीनी सरकार ने इस क्रान्ति को कुचलने के लिए यूआन शी-काई को बुलाया। वह शासक से अप्रसन्न था, क्योकि कुछ समय पूर्व उसे राज्य से निर्वासित कर दिया गया था। इसलिये उसने क्रान्ति को दबाने म विशेष रुचि नही ली। जब सम्राट ने उस प्रधानमन्त्री के पद पर नियुक्त कर दिया, तो वह सेना लेकर क्रांति को कुचलने के लिए रवाना हुआ। इस समय तक क्रान्तिकारियो ने नानकिंग को अपनी राजधानी घोषित कर दिया था और वहां पर गणतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था की स्थापना कर दी थी। 29 दिसम्बर 1911 ई० को डॉ० सनयात सेन को अस्थाई राष्ट्रपति बनाया गया। उन्होने 1 जनवरी 1912 ई० को राष्ट्रपति पद की शपथ ग्रहण की।

यूआन शी काई राजतन्त्र का समर्थक और क्रान्तिकारियो का कट्टर शत्रु था। इसलिए उसने प्रधान मन्त्री बनने के बाद क्रांतिकारियो का कुचलना प्रारंभ कर दिया। इस समय क्रांतिकारी डॉ० सनयातसेन के नेतृत्व मे नानकिंग म एक सामयिक सरकार की स्थापना कर चुके थे परन्तु डॉ० सेन चीन म एक सरकार की नव चेतना[illegible] मे थे। परिणामस्वरूप 12 फरवरी 1912 ई० को युआन शी-काई म युद्ध प्रारम्भ के बीच एक समझौता हो गया। इस समझौते के अनुसार चीन के राष्ट्र को बुरी तरह ने सिहासन त्याग दिया। चीन म गणतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था समझ गये कि जापाई। 14 फरवरी 1912 को डॉ० सेन ने राष्ट्रपति पद से त्याग राष्ट्र को हराने म नानकिंग की क्रांतिकारी समिति ने युआन शी काई को चीन का [illegible]शो क[illegible] बनाया। इस प्रकार डा० सेन ने चीन की एकता को बनाये रखने [illegible] को भग कर दिया।

। की नजर
हुए प्रभाव
सनयात

डॉ० सनयात सेन हृदय से देश भक्त था। वह चीन का पाश्चात्य ढग से आधुनिकीकरण कर उसे विश्व का एक महान राष्ट्र बनाना चाहता था। इस काय म उसे उसकी पत्नी चिंग लिंग ने बडा सहयोग दिया। डॉ० सेन को प्रजातान्त्रिक चीन का निर्माता कहा जाता है।

डा० सेन का जन्म हिचाग शान केन्टन बन्दरगाह से 40 मील दूर गाव मे एक कृषक के घर म हुआ था। इनका बडा भाई हवाई टापू म व्यापार करता था। इन्होंने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा हवाई द्वीप मे प्राप्त की। यहा पर उन्होंने ईसाई धर्म को स्वीकार कर लिया। प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् डा० सेन चीन लौट आये। चीन म उन्होंने मूर्ति पूजा का विरोध किया पर तु पुरातनवादियों ने इन्हें चीन से भागने के लिए विवश कर दिया। 1892 ई० म उन्होंने हाग काग म डाक्टर की डिग्री प्राप्त की।

डा० सनयात सेन चीन के मन्चू राजवश के विरोधी थे। 1894-95 ई० के युद्ध म जब जापान ने चीन को बुरी तरह म पराजित कर दिया, तब इन्होंने केन्टन म क्रान्ति की परन्तु उन्हें सफलता नही मिली। क्रान्ति की असफलता के पश्चात् वे सयुक्त राज्य अमरिका भाग गये। अमरिका जाने से पूर्व उन्होंने एक क्रान्तिकारी दल की स्थापना की थी जिसका उद्देश्य पाश्चात्य ढग से चीन का आधुनिकीकरण करना और मन्चू राजवश को उखाड फकना था। अमेरिका जाने के पश्चात् भी वे चीन के सम्राट के विरुद्ध क्रान्तिकारी आन्दोलन का सचालन करते रहे। 1905 ई० म डॉ० सेन ने गणतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था पर आधारित तुग मिंग हुई" नामक दल की स्थापना की। आगे चलकर 1912 ई० म यही दल कुओमिताग दल के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

1911 ई० में चीन की राज्य क्रान्ति के समय डा० सनयात सेन पुन चीन लौट आये। उन्होंने केन्टन म गणतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था की स्थापना की। क्रान्तिकारी दल ने डा० सेन को 1912 ई० म केन्टन का अस्थाई राष्ट्रपति बना दिया। डा० सेन ने चीन की एकता को ध्यान म रखते हुए अपने पद से इस्तीफा दे दिया और अपने स्थान पर युआन शी-काई को चीन का राष्ट्रपति बनाया। उन्होंने राष्ट्रवादी दल का नाम कुओमिताग रखा। नानकिंग की ससद म इस दल का बहुमत था। जिससे यह दल राष्ट्रपति पर नियन्त्रण रख सका।

1913 ई० मे युआन शी-काई ने मन्चू वश की नीति का अनुसरण करना प्रारम्भ कर दिया। डॉ० सेन ने इसका विरोध किया। फलस्वरूप युआन शी-काई ने कुओमिताग दल को अवैधानिक घोषित कर दिया और स्वय को सम्राट घोषित करने के प्रयास मे लग गया। इससे चीन म आतरिक विद्रोह प्रारम्भ हो गया। युआन ने विद्रोह को कुचल दिया और डा० सेन को विवश होकर जापान भागना पड़ा। उसने निरकुशता पूर्वक शासन करना प्रारम्भ किया। चीन म राजतन्त्रात्मक

शासन व्यवस्था स्थापित करने का प्रयास किया, परन्तु उसे सफलता नहीं मिली। 1916 ई० म युआन की मृत्यु के पश्चात् कुओमिताग दल पुन ताकतवर हो गया।

प्रथम विश्व युद्ध और चीन—प्रथम विश्व युद्ध के समय चीन तटस्थ रहा। जापान ने साम्राज्यवादी नीति पर चलते हुए जीन के कोरिया, मचूरिया और शाशा तु ग प्रदेश पर अधिकार कर लिया। इतना ही नही जापान ने चीन को "इक्कीस मागे" स्वीकार करने के लिये विवश किया। परिणामस्वरूप चीन को बाध्य होकर 21 मागे स्वीकार करनी पडी। 1916 ई० राष्ट्रपति युआन शी काई की मृत्यु होने के पश्चात् डॉ० सनयात सेन के नतृत्व म कण्टन म ससदीय सरकार की स्थापना की गई। इस प्रकार चीन पुन दो भागो में विभाजित हो गया।

प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के पश्चात् चीन न भी पेरिस शाति सम्मेलन म भाग लिया। इस सम्मेलन मे चीन को उपक्षा की गई। उसके विरोध के बावजूद भी शातुग प्रदेश पर जापान को अधिकार दे दिया गया। इस सूचना के चीन पहुचते ही सम्पूण चीनी जनता ने जापान के विरुद्ध विद्रोह प्रारम्भ कर दिया। सभी स्थानो पर जापानी माल का बहिष्कार किया जाने लगा। काफी प्रयासो के बाद इस विद्रोह को शान्त किया जा सका।

वाशिंगटन समझौता (1922 ई०)—चीन म जापान के बढते हुए प्रभाव एव अ य समस्याओ को हल करने के लिए अमेरिका ने नवम्बर 1921 ई० मे वाशिंगटन मे एक सम्मेलन आयोजित किया। इसम चीन के सम्ब ध म नौ राष्ट्रो की सधि की गई। इस सम्मेलन मे भाग लेने वाल सदस्यो ने चीन के आतरिक मामलो म हस्तक्षेप न करने का आश्वासन दिया।

चीनी गह युद्ध मे कुओमिताग दल की शक्ति मे वृद्धि—युआन शी काई की मृत्यु के पश्चात् चीन की आतरिक दशा शोचनीय हो गई। देश म दो सरकारें काम कर रही थी। एक कण्टन म और दूसरी पकिंग मे। पकिंग की सरकार सनिक नेताओ के हाथो की कठपुतली बन चुकी थी। ये सेना नायक आपस म लडते झगते रहत थे। इस प्रकार 1917 ई० के बाद चीन मे पुन गृह युद्ध प्रारम्भ हो गया। *1921 ई० म डा० सेन ने कण्टन म प्रजात त्रात्मक शासन व्यवस्था की स्थापना* की। इस समय डा० सेन को चीन का राष्ट्रपति निर्वाचित किया गया। उसने 1921 ई० मे देश की एकता समृद्धि और शक्ति म वृद्धि करने के लिए निम्न तीन सिद्धा तो की घोषणा की—

1 जनता मे राष्ट्रीय भावना जाग्रत करना।
2 प्रजात त्रात्मक शासन व्यवस्था स्थापित करना।
3 समाजवाद

ये तीनो सिद्धा त डा० सेन की वसीयत मान जाते है। विनाके ने लिखा है

कि "उनका वसीयतनामा' दल के लिए पवित्र सिद्धान्त बन गया और जनता के तीन सिद्धान्त राष्ट्रपिता वादियों का धर्म ग्रंथ हो गया।"[1]

राष्ट्रीयता के अन्तर्गत डॉ० सेन चीन से विदेशियों का प्रभाव समाप्त करना चाहते थे और जनता में राष्ट्र के प्रति प्रेम की भावना जाग्रत करना चाहते थे। प्रजातन्त्र के अन्तर्गत डा० सेन चीन में गणतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था स्थापित करना चाहते थे। वह जनता को अधिकार देना चाहते थे ताकि जनता संविधान सभा के सदस्यों को चुनकर भेज सके। समाजवाद के अन्तर्गत सामाजिक न्याय अथवा जनता के भरण पोषण के साधनों को जुटाना था।

डा० सेन के तीनों सिद्धान्त साम्यवादी विचारधारा के काफी निकट थे। इसलिए रूस ने कुओमिनतांग दल की सहायता करने का निश्चय किया। डा० सेन ने च्यांग-काई शेक को रूस भेजा, ताकि रूस की सहायता प्राप्त की जा सके। तब रूस ने बोरोडिन को डॉ० सेन की सहायता करने के लिए चीन भेजा। बोरोडीन ने चीन में साम्यवादी दल की नींव रखी। अब चीन में साम्यवादी विचारों का तेजी से प्रसार हो रहा था। 1924 ई० में डा० सेन ने कैण्टन के पास वाम्पोआ में एक सैनिक संस्था की स्थापना की। यह संस्था क्रान्तिकारियों को सैनिक शिक्षा देने का कार्य करती थी। इस संस्था का अध्यक्ष च्यांग काई शेक था। धीरे धीरे कुओमितांग दल ताकतवर बना गया और मास्को में एक विश्वविद्यालय की स्थापना की गई जिसमें हजारों चीनियों को साम्यवादी सिद्धान्तों की शिक्षा दी जाती थी। इन सब प्रयासों का परिणाम यह हुआ कि कुओमिनतांग दल चीन का एक शक्तिशाली दल बन गया। इस दल में दो वर्ग प्रभावशाली थे। एक राष्ट्रीय जनतन्त्रवादी और दूसरा साम्यवादी। इस प्रकार चीन में दो सरकारें काम कर रही थीं। चीन दो भागों में विभाजित था। डॉ० सेन देश की एकता के लिए प्रयास करते हुए 12 मार्च 1925 ई० को मृत्यु को प्राप्त हुये। उनकी मृत्यु के पश्चात् भी चीन में उनके विचारों का प्रसार किया जाता रहा।

डॉ० सेन के द्वारा किये गये सुधार—डॉ० सेन ने अपने शासनकाल में निम्न लिखित सुधार किये —

1. डॉ० सेन ने शिक्षा और साहित्य के विकास के लिए काफी प्रयास किये। उसने शिक्षा और साहित्य को प्रोत्साहन दिया। उसने चीनी भाषा के 40 हजार संकेतों के स्थान पर 13 हजार संकेत रख दिये इससे चीनी भाषा सरल हो गई। परिणामस्वरूप जनसाधारण आसानी से शिक्षा ग्रहण करने लगा।

---

1 विनाके हैराल्ड०एम०—पूर्व एशिया का आधुनिक इतिहास पृष्ठ—487

2 डा० सेन ने यूरोपियन साहित्य का चीनी भाषा म अनुवाद करवाया, ताकि जनसाधारण उस आसानी स पढ सकें। इसके अतिरिक्त समाचार पत्रो को प्रोत्साहित किया गया।

3 अब तक कन्फ्यूशियस के विचारो का प्रभाव समाप्त हो चुका था। इसलिये स्कूलो में अब नवीन विचारो की पुस्तकें पढाई जाने लगी।

4 चीन के नवीन धर्म द्वारा राष्ट्रीय भावनाओं का प्रसार किया गया।

5 पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव के कारण चीन की संयुक्त परिवार प्रथा तथा अन्य प्राचीन रीति रिवाज समाप्त होने लगे। अब चीन मे आधुनिक तरीके स विवाह होने लगे। इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालय म शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियो के जीवन म भी महान परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा।

6 डॉ० सेन ने चीन म लघु उद्योगो के स्थान पर बडे उद्योगो को प्रोत्साहन दिया। इससे परिणामस्वरूप उत्पादन म वृद्धि हुई।

इससे स्पष्ट है कि डॉ० सनयात सेन चीन का एक महान् क्रान्तिकारी नेता और उच्चकोटि का सुधारक था। उसके सुधारो से चीन मे एक नये युग का आरम्भ हुआ। इसलिये उसके शासनकाल को सनयात सेन काल के नाम से जाना जाता है। उसकी मृत्यु से चीनवासियो को काफी दुख हुआ। इतिहासकार थोमसन ने लिखा है कि डॉ० सनयात सेन ईमानदार था। वह एक गरीब व्यक्ति की तरह मर गया।

1911 ई० की क्रान्ति के परिणाम—इस क्रान्ति के प्रमुख परिणाम निम्नलिखित हुये —

(i) चीन म राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था की समाप्ति हो गई।
(ii) क्रान्ति के पश्चात् चीन म गणतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था की स्थापना की गई।
(iii) चीन पाश्चात्य देशो की अपेक्षा रूस की ओर अधिक झुकने लगा।
(iv) चीन म साम्यवादी दल की स्थापना हो गई।
(v) चीन म रूस के बढते हुए प्रभाव को देखकर पश्चिमी राष्ट्रो ने चीन को सहायता देना बन्द कर दिया।

च्यांग काई शेख का आधुनिकीकरण मे योगदान—च्यांग काई शेख डा० सनयात सेन का विश्वास पात्र व्यक्ति था। च्यांग काई शेख को 188- ई० म एक बौद्ध धर्म की अनुयाई स्त्री ने जन्म दिया था। उसने 1907 ई० से लेकर 1911 ई० तक जापान म सैनिक शिक्षा प्राप्त की। डा० सेन से उसका प्रथम सम्पर्क 1907 में हुआ था। वह 1911 ई० की क्रान्ति से बहुत अधिक प्रभावित हुआ। डा० सनयात सेन ने उसे रूस म सैनिक शिक्षा प्राप्त करने के लिये भेजा। इसलिये उस पर

साम्यवादी विचारों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। 1925 ई० में उसने अपने भाषण में कहा था कि "यदि हमने अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त की है तो इस सफलता का श्रेय हमारे सोवियत रूस के साथियों को है। यदि चीनी क्रांति की विजय होती है तो वह विजय रूसी क्रांति की भी है।" परन्तु बाद में च्यांग काई शेक साम्यवाद का विरोधी हो गया। 1926 ई० में उसे सेनापति के पद पर नियुक्त किया गया। उसके नेतृत्व में कुओमिंताग सेना ने सम्पूर्ण चीन को एक करने के लिये 1926 ई० में उत्तरी चीन पर आक्रमण कर दिया। 1927 ई० तक उसे काफी सफलता मिली। चीन की एकता एक सरकार के नीचे सम्भव होने लगी।

1927 ई० में कुओमिंताग दल में मतभेद पैदा हो गये और यह दल दो भागों में विभाजित हो गया। एक भाग च्यांग-काई शेक का समर्थक था तो दूसरा साम्यवादी-विचारधारा का। अब धीरे धीरे चीन में साम्यवादी दल का प्रभाव बढ़ने लगा। ऐसे समय में च्यांग काई शेक ने श्रीमती सनयात सेन की बहिन से विवाह कर अपनी शक्ति में वृद्धि की। 1927 ई० में च्यांग ने नानकिंग पर अधिकार कर लिया और उसे चीन की राजधानी बना दिया। साम्यवादी दल ने उसका विरोध किया और उसने हानको में अपनी सरकार स्थापित की। च्यांग के पास सेना थी। उसे पश्चिमी देशों का सहयोग प्राप्त था। इसलिये उसने साम्यवादी दल की हानको की सरकार को समाप्त कर दिया। च्यांग ने साम्यवादियों को कुचलकर 1928 ई० में पीकिंग पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार सम्पूर्ण चीन में एक सरकार का राज्य स्थापित हुआ। च्यांग ने 6 जुलाई 1928 को चीन में गणतंत्रात्मक शासन व्यवस्था की स्थापना की। अब चीन की राजधानी नानकिंग बनाई गई तथा च्यांग को राष्ट्रपति बनाया गया।

चीनी जापानी युद्ध (1931 ई०) —

जापान द्वारा मंचूरिया पर आक्रमण—चीन में प्रजातंत्रात्मक शासन-व्यवस्था की स्थापना के पश्चात् भी उसका एकीकरण नहीं हो सका। मंचूरिया में चागत्सो लिन एक स्वतन्त्र शासक की तरह शासन कर रहा था। साम्यवादियों ने मई 1931 में कन्टन में एक सरकार बनाई। इसके अतिरिक्त हैंको तथा आसपास के प्रदेशों पर साम्यवादियों का अधिकार था। च्यांग की साम्यवादी विरोधी नीति के कारण पश्चिमी राष्ट्र उसे सहायता दे रहे थे। इतना ही नहीं उन्होंने च्यांग की सरकार को मान्यता भी दे दी थी। च्यांग ने पश्चिमी देशों के साथ कई संधियां की। उसने विदेशी सहायता प्राप्त कर चीन का एकीकरण करने का प्रयास किया। फलस्वरूप चीन में पुनः गृह युद्ध प्रारम्भ हो गया। इसी समय जापान ने मंचूरिया पर आक्रमण कर दिया।

आक्रमण करने के कारण—जापान द्वारा चीन के मंचूरिया प्रदेश पर

आक्रमण करने के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे —

(1) भौगोलिक कारण—

(i) जापान मचूरिया के निकट स्थित है।

(ii) दोना देशा की जलवायु अनुकूल है।

(iii) मचूरिया एक उपजाऊ प्रदेश है। जहा पर चावल, सोयाबीन व अन्य अनाज का उत्पादन काफी मात्रा मे होता है। जापान ने व्यावसायिक उन्नति तो करली थी, परन्तु वहा अभी तक, खाद्य पदार्थों का उत्पादन आवश्यकता से कम होता था। जापान मचूरिया से कच्चा माल, लोहा, कोयला और तेल सस्ती दरो पर प्राप्त कर सकता था और अपना अतिरिक्त उत्पादन वहा इच्छानुसार दरा पर बेच सकता था। इस प्रकार मचूरिया जापान के लिये एक अच्छा बाजार भी था। जापान ने अपने औद्योगिक विकास के लिये इस प्रदेश पर अधिकार करने का निश्चय किया। जापान के लिये मचूरिया की सामरिक स्थिति भी काफी महत्वपूर्ण थी। गेथोन हार्डी ने लिखा है कि "जापान के लिये मचूरिया का प्रतिरक्षा और आक्रमण की दृष्टि से सामरिक महत्व इसकी भौगोलिक स्थिति के कारण है।'

(2) आर्थिक कारण—

(i) जापान की जनसख्या म 9 लाख प्रतिवर्ष के हिसाब से वृद्धि हो रही थी। इस बढती हुई जनसख्या को बसाने के लिये जापान को जगह की आवश्यकता थी। 1924 ई० म अमेरिका ने जापानियो के प्रवेश पर रोक लगा दी थी। इसी प्रकार के प्रतिबन्ध आस्ट्रेलिया ने भी लगा दिये थे।

(ii) 1923 ई० में जापान मे एक भयकर भूकम्प आया। जिससे काफी क्षति हुई। उसके बाद बाढा से भी काफी क्षति हुई। अत जापान की आर्थिक व्यवस्था दयनीय हो गई थी।

(iii) 1930–31 के विश्व व्यापी आर्थिक सकट के कारण जापान की आर्थिक व्यवस्था काफी शोचनीय हो गई थी।

(iv) जापान मचूरिया से सस्ती दरा पर कच्चा माल प्राप्त कर सकता था और वहा इच्छानुसार दरा पर अपना माल बेच सकता था।

(v) जापान ने कोरिया पर 1894 ई० म अधिकार कर चुका था। अब वह मचूरिया का अपने अधिकार म लाना चाहता था। जापान ने दक्षिणी मचूरिया म एक रेल्वे लाईन का निर्माण करवाया। पट्टे के आधार पर उस पर जापान का अधिकार था। मचूरिया मे जापानी पूजीपतियो ने कई कारखानो की स्थापना की। 1931 ई० तक जापानी पूजीपति एक मिलियन डालर पूजी मचूरिया म लगा चुके

थे। जापानी पूंजीपतियों को यह भय था कि कहीं राष्ट्रवादी चीन राष्ट्रीयकरण कर उनकी सम्पत्ति को जब्त न कर ले। अत वे सरकार पर निरंतर दबाव डाल रहे थे।

(3) सामरिक महत्व—

(i) जापान मंचूरिया पर अधिकार करने के पश्चात् ही चीन के दक्षिणी प्रदेशों में अपना साम्राज्य स्थापित कर सकता था।

(ii) रूस और जापान दोनों ही देश मंचूरिया पर अधिकार करना चाहते थे, परन्तु इस समय रूस अपनी आन्तरिक समस्याओं को हल करने में व्यस्त था। इसलिये अवसर का लाभ उठाकर जापान ने इस प्रदेश पर अधिकार करने का निश्चय किया।

(4) चीन और जापान की आन्तरिक स्थिति—

(i) जापान ने वाशिंगटन सम्मेलन के द्वारा निश्चित नौबेडे के निर्माण की सीमाओं का पालन करने से इन्कार कर दिया। इस सम्मेलन में उसने चीन की अखण्डता का वचन दिया था। परन्तु जापान के राजनीतिक दलों ने इसका विरोध किया। परिणामस्वरूप 1930 ई० में जापानी सरकार ने साम्राज्यवादी नीति पर चलते हुए मंचूरिया पर अधिकार करने का निश्चय किया।

(ii) चीन में 1912 ई० में राज्य क्रांति हुई परन्तु पिछले 18 वर्षों में आन्तरिक मतभेदों के कारण चीन किसी भी क्षेत्र में प्रगति नहीं कर सका था। च्यांग काई शेख का साम्यवादी दल से मतभेद चल रहा था। चीन में दो सरकारें शासन चला रही थीं। एक कैंटन में और दूसरी नानकिंग में। उस समय ऐसी सम्भावना थी कि इन दोनों दलों में कभी भी समझौता हो सकता है।

(iii) चीन में साम्यवादी दल माओ और जौन के नेतृत्व में राष्ट्रवादी दल का विरोध कर रहा था। फिर भी इस समय साम्यवादी दल ने जापान के विस्तार को रोकने के लिये एक संयुक्त मोर्चा स्थापित करने का सुझाव दिया। जिसे च्यांग काई शेख ने अस्वीकार कर दिया, क्योंकि वह साम्यवाद को जापानियों से भी ज्यादा खतरनाक मानता था। फिर भी जापानियों को यह भय था कि वह संयुक्त मोर्चा कभी भी स्थापित हो सकता है।

(iv) यद्यपि चीन के प्रमुख राजनीतिज्ञ और शासक जापान के प्रश्न पर एकमत नहीं थे, परन्तु चीनी जनता में जापान के विरुद्ध असंतोष व्याप्त था। इसलिये कई प्रान्तों में जापानी माल का बहिष्कार किया

जा रहा था। जनता ने सभी दलो को सगठित होकर जापान का मुकाबला करने की माग की।

(v) प्रारभ म मचूरिया के शासक चाग त्सोलिन ने जापान का विरोध नही किया। उसने 1928 ई० म च्याग काई शेख स समझौता कर लिया परतु उसका पुत्र च्याग लिआग मचूरिया सं जापानी प्रभाव समाप्त करना चाहता था। इससे भी जापान ने शीघ्र ही मचूरिया पर अधिकार करने का निश्चय किया।

(5) अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितिया जापान के अनुकूल थीं—

(i) इस समय सभी देशो की आर्थिक स्थिति आर्थिक मदी के कारण शोचनीय हो गई थी।

(ii) चीन म 1931 ई० म बाढो के कारण भयकर अकाल पडा। इसके अतिरिक्त इस समय चीन के सनिक पदाधिकारी आपस म लडने म व्यस्त थे।

(iii) जापान जानता था कि इगलण्ड फ्रास व अमेरिका साम्यवादी विरोधी होने से मचूरिया पर अधिकार करने का विरोध नहीं करेंगे। यदि उन्होंने विरोध किया तो जापान यह कह सकता था कि रूस चीन दुर्बलता का लाभ उठाकर कहीं मचूरिया पर अधिकार न कर ले। इसलिए वह मचूरिया पर अधिकार कर रहा है।

(6) आकस्मिक कारण—18 सितम्बर 1931 ई० की रात्रि को मचूरिया मे मुक्डेन के निकट जापानी रल्व लाईन को कुछ व्यक्तियो न बम से उडा दिया। जापान ने इसक लिय चीन को दोषी मानत हुए मुक्डेन नगर पर अधिकार कर लिया। इसके बाद 1932 ई० म जापानी सना ने सम्पूण मचूरिया पर अधिकार कर लिया और वहा पर अपनी कठपुतली सरकार स्थापित कर दी। चीन की सरकार जापान को मचूरिया पर अधिकार करने से नही रोक सकी। राष्ट्रसघ भी इस सबध म कोई ठोस कदम नहीं उठा सका। जब राष्ट्रसघ ने जापान के विरुद्ध कार्यवाही करने का निश्चय किया तो जापान ने राष्ट्रसघ की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया।

जापान न मचूरिया पर अधिकार करन क पश्चात चीन क अन्य प्रदेशों पर अधिकार करने का प्रयास किया। चीन की जनता ने जापान के विरुद्ध राष्ट्रीय आदोलन प्रारभ कर दिया परन्तु चीन का राष्ट्रपति जापान के विरुद्ध अपनी शक्तियों का प्रयोग करने के स्थान पर साम्यवादियो के कुचलने म लगा हुआ था। साम्यवादी दल ने यह प्रस्ताव रखा कि यदि राष्ट्रवादी सरकार जापान का मुकाबला करे तो वह सरकार क साथ समझौता करन क लिय तयार है परन्तु च्याग काइ शेख ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। 1936 ई० म जब च्याग काई शेख शासी प्रदश

में साम्यवादियों का सफाया कर रहा था। तब सैनिकों ने इसका अपहरण कर लिया और उसे तभी मुक्त किया गया, जबकि उसने साम्यवादियों के साथ मिलकर जापान का विरोध करने का वायदा कर लिया।

1937 में जापान ने चीन पर आक्रमण कर दिया। उस समय राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिये साम्यवादी दल और राष्ट्रवादी दल में समझौता हो गया। च्याग काइ शेक के नेतृत्व में दोनों दलों ने संयुक्त रूप से जापान का मुकाबला किया। जापान ने चीन के होपेइ शांसी तथा शान्तुंग प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। चीन और जापान का युद्ध द्वितीय महायुद्ध के अन्त तक चलता रहा। यद्यपि चीन को जापान को पराजित करने में सफलता नहीं मिली फिर भी उसने बहादुरी के साथ जापान का सामना किया और अंतिम समय तक साहस नहीं खोया।

चीन में साम्यवादी क्रान्ति (1949 ई०)—द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात् चीन को जापान के आक्रमण से मुक्ति मिल गई परन्तु इसके पश्चात चीन में पुनः गृह युद्ध प्रारम्भ हो गया। यद्यपि महायुद्ध के समय चीन के साम्यवादी और राष्ट्रवादी दल ने मिलकर जापान का मुकाबला किया था, परन्तु युद्ध के बाद दोनों दलों में पुनः गृह-युद्ध प्रारम्भ हो गया। इस संघर्ष में साम्यवादियों की विजय हुई और च्यांग काई शेक को चीन से भागना पड़ा। चीन में साम्यवादी शासन की स्थापना हो गई। इतिहासकार शूमा ने साम्यवादियों की सफलता के बारे में लिखा है कि 'द्वितीय महायुद्ध के विनाश तथा संहार ने मित्रों तथा शत्रुओं की मूर्खता के साथ मिलकर चीन को साम्यवाद के हाथ सौंप दिया। अमरिका के अनेक लोगों ने चीन की क्रान्ति को 'रूसी षडयन्त्र' अथवा 'वाशिंगटन में विश्वासघातियों के षडयन्त्र" का किसी न किसी रूप में परिणाम बताया। चीन की लाल विजय बीसवीं शताब्दी में रूस की सबसे भारी विजय तथा अमेरिका की सबसे बड़ी पराजय होते हुए भी, न तो अमेरिका के लोगों का कार्य था और न रूसियों का, वरन चीनियों का ही कार्य था।'

पकिंग विश्वविद्यालय के प्रोफेसर चिन तु सिउ ने अपनी पत्रिका "सिन चिंग निन' के माध्यम से सर्व प्रथम चीनी जनता को साम्यवाद का संदेश पहुंचाया था। कुछ लोगों की ऐसी मान्यता है कि प्रोफेसर चेन तु सिउ ने 1921 ई० में चीन में साम्यवादी दल की स्थापना की। माओत्से तुग, चाऊ एन लाई और चुतह आदि इस दल के सदस्य बने।

1922 ई० से 1927 ई० तक साम्यवादी दल और कुओमिन्तांग दल में आपसी सहयोग बना रहा परंतु उसके पश्चात च्यांग काई शेक साम्यवादी दल का विरोधी बन गया। अब उसने साम्यवादियों को कुचलना प्रारम्भ किया। साम्यवादियों का केन्द्र दक्षिणी चीन था। जब च्यांग काई शेक की सेनाओं ने उन्हें दक्षिण में घेर लिया तो उन्होंने उत्तरी चीन की तरफ प्रयाण किया। दक्षिणी चीन से उत्तरी

चीन की दूरी तीन हजार वर्ग मील थी साम्यवादियो को इस दूरी को पार करने में 8 महीने का समय लग गया और रास्ते म हजारो व्यक्ति मारे गये। इसे "एतिहासिक प्रयाण" के नाम से जाना जाता है। च्यांग ने काफी प्रयास किये परन्तु साम्यवादियो की प्रगति को रोकन म असफल रहा। साम्यवादियो न शेन्शी प्रात में अपनी अलग सरकार बना ली। द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति तक साम्यवादी दल ने जापान का मुकाबला करन के लिये राष्ट्रवादी दल को पूरा सहयोग दिया।

द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात चीन म पुन गृह युद्ध प्रारम्भ हो गया। उत्तरी चीन पर साम्यवादिया का अधिकार था और शेष चीन पर च्याग काई शेख का अधिकार था। च्याग काई शेख को अमेरिका सहायता दे रहा था जबकि साम्यवादी दल को रूस सहायता द रहा था। गृह युद्ध के दौरान समझौते के प्रयास असफल रहे। मार्च, 1947 म च्याग काई शेख को भारी सफलता मिली। उसने साम्यवादियो के यनान मचूरिया और शातुग प्रदेशो पर अधिकार कर लिया परन्तु शीघ्र ही साम्यवादियो न उन्हें वहा से खदेड दिया। इसके पश्चात साम्यवादी सेनायें निरतर आगे बढती रही।

चीन म 1945 ई० से 1949 तक गृह-युद्ध चलता रहा। इस गृह-युद्ध म साम्यवादियो को सफलता प्राप्त हुई। 1 अक्टूबर 1949 ई० को चीन में साम्यवादी गणतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था की स्थापना की गई। नई सरकार की राजधानी पकिंग बनाई गई। साम्यवादी दल न नये गणतन्त्र का अध्यक्ष माओत्से तु ग को एव प्रधानमन्त्री चाऊ एन लाई को बनाया। च्याग काई शेख ने चीन स भाग कर फार मूसा द्वीप म शरण ली। वहा पर उसन अमेरिका की सहायता से राष्ट्रीय चीन की सरकार स्थापित की। इसम प्रजातन्त्रात्मक शासन व्यवस्था की स्थापना की गई। साम्यवादी चीन (लाल चीन) के नाम से जाना जाता है। जबकि च्याग काई शेख का चीन राष्ट्रवादी चीन के नाम से प्रसिद्ध है। साम्यवाद की स्थापना क पश्चात् चीन ने बहुत उन्नति की। अब वह विश्व का एक शक्तिशाली राष्ट्र बन गया है। इसके अतिरिक्त सयुक्त राष्ट्रसघ को सुरक्षा परिषद के पाच स्थायी सदस्यो म से वह एक है। अब उसकी गिनती विश्व क पाच महान राष्ट्रो मे की जाती है।

गृहयुद्ध की साम्यवादी दल की विजय के कारण—चीन के गृह युद्ध म साम्यवादी दल की विजय के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे —

(1) च्याग काई शेख की नीति के कारण साम्यवादियो को सफलता मिली। उसकी पूजीवादी नीति क कारण अमेरिका उसको सहायता दे रहा था। धीरे धीरे अमेरिका ने चीन म अपना आर्थिक विस्तार करना प्रारम्भ कर दिया। जिसके फलस्वरूप चीन के उद्योग धधे ठप्प हो गये और लाखो मजदूर बेकार हो गये। इन मजदूरो ने कुओमितांग दल के विरुद्ध साम्यवादी दल का समर्थन किया।

इन्हीं मजदूरों के सहयोग के कारण गृह-युद्ध में साम्यवादी दल विजय प्राप्त कर सका।

(2) च्यांग काई शेख सत्ता में आते ही डॉ० सनयात सेन के सिद्धान्तों को भूल गया और उसने शासन की समस्त शक्ति अपने हाथों में केन्द्रित कर निरंकुशता पूर्वक शासन करना प्रारम्भ कर दिया। उसने अपने विरोधियों का कठोरतापूर्वक दमन किया। इतना ही नहीं सरकार के प्रत्येक विभाग में अपने विश्वासपात्र व्यक्तियों को नियुक्त किया। नियुक्तियां करते समय योग्यता पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। उसने सेना के उच्च पदों पर अपने विश्वासपात्र व्यक्तियों को नियुक्त किया।

(3) च्यांग काई शेख ने देश में राजनीतिक और आर्थिक सुधारों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि शासन में अव्यवस्था फैलने लगी और भ्रष्टाचार बढ़ने लगा। चीन की आर्थिक दशा निरंतर दयनीय होती जा रही थी। चीनी सिक्के का मूल्य काफी गिर गया था। विदेशों से चीन को जो आर्थिक सहायता प्राप्त होती थी, उसे च्यांग के कृपा पात्र हजम कर जाते थे। सैनिकों को समय पर वेतन नहीं मिलने से उनमें भी च्यांग के प्रति असंतोष था। शासन की दमनकारी नीति के कारण समाज का प्रत्येक वर्ग सरकार का विरोधी होता जा रहा था। बुद्धिजीवी वर्ग अधिकारों की तथा सुधारों की मांग कर रहा था, परन्तु सरकार ने इस दिशा में कोई कदम नहीं उठाया। च्यांग की प्रतिक्रियावादी नीति के कारण उसकी लोकप्रियता धीरे धीरे कम होती जा रही थी। जन साधारण में च्यांग के विरुद्ध असंतोष व्याप्त था। इसलिये उसकी सरकार का पतन होना आवश्यम्भावी था।

इसके विपरीत साम्यवादी दल ने प्रारम्भ से ही देश भक्ति का परिचय दिया। जापान का विरोध करने में साम्यवादी दल ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने च्यांग काई शेख के सामने यह प्रस्ताव रखा कि हमें आपस के मतभेद भुला कर जापान का मुकाबला करना चाहिये। परंतु च्यांग ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया, क्योंकि वह साम्यवाद को जापानियों से ज्यादा खतरनाक मानता था। इसलिये उसने अपनी सारी शक्ति साम्यवादियों को कुचलने में लगा दी। साम्यवादियों ने जनता के सामने अपने निम्न कार्यक्रम रखे —

(1) इसके अनुसार चीन से विदेशियों का प्रभाव समाप्त किया जायेगा।
(2) देश के धन का दुरुपयोग करने वालों को दण्ड दिया जायेगा।
(3) निर्धनों तथा बेरोजगारों को सहायता दी जायगी।
(4) जनता को मौलिक अधिकार दिये जायेंगे और उसकी रक्षा भी की जायेगी।
(5) चीन की अखण्डता को बनाये रखा जायेगा।
(6) यदि साम्यवादी दल का शासन स्थापित हुआ तो जन-कल्याण के कार्यों को प्रोत्साहन दिया जायेगा।

चीन की दूरी तीन हजार वग मील थी साम्यवादियों को इस दूरी को पार करने में 8 महीने का समय लग गया और रास्ते म हजारों व्यक्ति मारे गये। इसे "एतिहासिक प्रयाण" के नाम से जाना जाता है। च्यांग ने काफी प्रयास किये परन्तु साम्यवादियो की प्रगति को रोकने म असफल रहा। साम्यवादियों ने दक्षी प्रात में अपनी अलग सरकार बना ली। द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति तक साम्यवादी दल ने जापान का मुकाबला करने के लिए राष्ट्रवादी दल को पूरा सहयोग दिया।

द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात चीन म पुन गृह-युद्ध प्रारम्भ हो गया। उत्तरी चीन पर साम्यवादियो का अधिकार था और शेष चीन पर च्यांग काई शेक का अधिकार था। च्यांग काई शेक को अमेरिका सहायता दे रहा था जबकि साम्यवादी दल को रूस सहायता दे रहा था। गृह युद्ध के दौरान समझौते के प्रयास असफल रहे। मार्च, 1947 म च्यांग काई शेक को भारी सफलता मिली। उसने साम्यवादियो के येनान मचूरिया और शांतुग प्रदेशो पर अधिकार कर लिया परन्तु शीघ्र ही साम्यवादियो ने उन्हें वहा से खदेड दिया। इसके पश्चात साम्यवादी सेनायें निरतर आगे बढ़ती रही।

चीन म 1945 ई० से 1949 तक गृह-युद्ध चलता रहा। इस गृह-युद्ध म साम्यवादियो को सफलता प्राप्त हुई। 1 अक्टूबर 1949 ई० को चीन में साम्यवादी गणतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था की स्थापना की गई। नई सरकार की राजधानी पकिंग बनाई गई। साम्यवादी दल ने नये गणतन्त्र का अध्यक्ष माओत्से तुग को एव प्रधानमन्त्री चाऊ एन लाई को बनाया। च्यांग काई शेक ने चीन से भाग कर फार मूसा द्वीप मे शरण ली। वहा पर उसने अमेरिका की सहायता से राष्ट्रीय चीन की सरकार स्थापित की। इसम प्रजातन्त्रात्मक शासन व्यवस्था की स्थापना की गई। साम्यवादी चीन (लाल चीन) के नाम से जाना जाता है। जबकि च्यांग काई शेख का चीन राष्ट्रवादी चीन के नाम से प्रसिद्ध है। साम्यवाद की स्थापना के पश्चात चीन ने बहुत उन्नति की। अब वह विश्व का एक शक्तिशाली राष्ट्र बन गया है। इसके अतिरिक्त सयुक्त राष्ट्रसघ की सुरक्षा परिषद् के पाच स्थायी सदस्यो म से वह एक है। अब उसकी गिनती विश्व के पाच महान राष्ट्रो म की जाती है।

गृहयुद्ध की साम्यवादी दल की विजय के कारण—चीन के गृह युद्ध म साम्यवादी दल की विजय के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे —

(1) च्यांग काई शेक की नीति के कारण साम्यवादियो को सफलता मिली। उसका पूजीवादी नीति के कारण अमेरिका उसको सहायता दे रहा था। धीरे धीरे अमरिका ने चीन म अपना आर्थिक विस्तार करना प्रारम्भ कर दिया। जिसके फलस्वरूप चीन के उद्योग धधे ठप्प हो गये और लाखो मजदूर बेकार हो गये। इन मजदूरो ने कुओमिताग दल के विरुद्ध साम्यवादी दल का समथन किया।

इन्हीं मजदूरों के सहयोग के कारण गृह-युद्ध में साम्यवादी दल विजय प्राप्त कर सका।

(2) च्यांग काई शेक सत्ता में आते ही डॉ० सनयात सेन के सिद्धान्तों को भूल गया और उसने शासन की समस्त शक्ति अपने हाथों में केन्द्रित कर निरंकुशता पूर्वक शासन करना प्रारम्भ कर दिया। उसने अपने विरोधियों का कठोरतापूर्वक दमन किया। इतना ही नहीं सरकार के प्रत्येक विभाग में अपने विश्वासपात्र व्यक्तियों को नियुक्त किया। नियुक्तियां करते समय योग्यता पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। उसने सेना के उच्च पदों पर अपने विश्वासपात्र व्यक्तियों को नियुक्त किया।

(3) च्यांग काई शेक ने देश में राजनीतिक और आर्थिक सुधारों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि शासन में अव्यवस्था फैलने लगी और भ्रष्टाचार बढ़ने लगा। चीन की आर्थिक दशा निरंतर दयनीय होती जा रही थी। चीनी सिक्के का मूल्य काफी गिर गया था। विदेशों से चीन को जो आर्थिक सहायता प्राप्त होती थी, उसे च्यांग के कृपा पात्र हजम कर जाते थे। सैनिकों को समय पर वेतन नहीं मिलने से उनमें भी च्यांग के प्रति असंतोष था। शासन की दमनकारी नीति के कारण समाज का प्रत्येक वर्ग सरकार का विरोधी होता जा रहा था। बुद्धिजीवी वर्ग अधिकारों की तथा सुधारों की मांग कर रहा था, परन्तु सरकार ने इस दिशा में कोई कदम नहीं उठाया। च्यांग की अनिश्चिय वाली नीति के कारण उसकी लोक प्रियता धीरे धीरे कम होती जा रही थी। जन साधारण में च्यांग के विरुद्ध असंतोष व्याप्त था। इसलिये उसकी सरकार का पतन होना अवश्यम्भावी था।

इसके विपरीत साम्यवादी दल ने प्रारम्भ से ही देश भक्ति का परिचय दिया। जापान का विरोध करने में साम्यवादी दल ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने च्यांग काई शेक के सामने यह प्रस्ताव रखा कि हम आपस के मतभेद भुलाकर जापान का मुकाबला करना चाहिये। परंतु च्यांग ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया क्योंकि वह साम्यवाद को जापानियों से ज्यादा खतरनाक मानता था। इसलिये उसने अपनी सारी शक्ति साम्यवादियों को कुचलने में लगा दी। साम्यवादियों ने जनता के सामने अपने निम्न कार्यक्रम रखे —

(1) इसके अनुसार चीन से विदेशियों का प्रभाव समाप्त किया जायगा।
(2) देश के धन का दुरुपयोग करने वाला को दण्ड दिया जायेगा।
(3) निधनों तथा बेरोजगारों को सहायता दी जायगी।
(4) जनता को मौलिक अधिकार दिये जायेंगे और उनकी रक्षा भी की जायगी।
(5) चीन की अखण्डता को बनाये रखा जायेगा।
(6) यदि साम्यवादी दल का शासन स्थापित हुआ तो जन-कल्याण के कार्यों को प्रोत्साहन दिया जायेगा।

(7) रोजी रोटी की समस्या को हल किया जायेगा।

साम्यवादी दल के इन कार्यक्रमो से उसे शीघ्र ही जनता का समर्थन प्राप्त हो गया। साम्यवादी जिस प्रदेश पर अधिकार करते थे, वहा जमीदारो से भूमि छीन कर उसे किसानो म बाट देते थे। इस नीति के कारण साम्यवाद दल को किसानो का सहयोग प्राप्त हो गया।

(4) साम्यवादी दल के सनिक छापामार प्रणाली से युद्ध लडते थे। इस कारण उन्हें च्याग काई शेक के विरुद्ध निरतर सफलता प्राप्त होती रही। साम्यवादी दल के सेनानायक योग्य थे। उनम राष्ट्रीय भावनाएँ कूट-कूट कर भरी हुई थी। सेना म एकता और अनुशासन था। इस प्रकार साम्यवादियो की सफल नीति और कुशल युद्ध सचालन के कारण उन्हे गृह युद्ध में सफलता प्राप्त हुई।

चीनी क्रांति मे माओत्से तु ग का योगदान—माओत्से तु ग को आधुनिक चीन का निर्माता कहा जाता हैं। वह चीन के साम्यवादी दल के सस्थापको में से एक था। 1893 ई० म यह हुनान प्रात के एक कृषक परिवार मे पदा हुआ था। माओत्से तु ग की बचपन म ही शादी कर दी गई। शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात वह पकिंग विश्वविद्यालय म सहायक पुस्तकालयाध्यक्ष क पद पर नियुक्त हुआ। यहा उसने मार्क्स के विचारो का अध्ययन किया।

1919 ई० मे माओत्से की चीन के प्रोफेसर चेन तु सिउ से मुलाकात हुई। वह उनके विचारो से बहुत प्रभावित हुआ। इसलिये 1921 ई० मे जब साम्यवादी दल की स्थापना की गई तो वह भी उसका सदस्य बन गया। माओत्से तु ग को हुनान प्रात का सचिव बनाया गया। जहा उसन किसानो और मजदूरो को सगठित किया। 1923 ई० मे उसे केन्द्रीय समिति का सदस्य नियुक्त किया गया। शघाई म मजदूरो की हडताल के समय माओत्से हुनान लौट आया। यहा आकर उसन भूमि को किसानो म वितरण करने की माग की। 1927 ई० म माओत्से के नेतृत्व मे हुनान के किसानो ने क्राति की। जिसे सरकार ने कुचल दिया। परन्तु माओ को हुनान तथा किग्यासी के किसानो को सगठित करने म सफलता मिली। माओ ने चिंग कासान म एक साम्यवादी केन्द्र की स्थापना की।

इस समय चीन के साम्यवादी दल की स्थिति शोचनीय थी। इस दल की शघाई शाखा ने माओत्से को हुनान के सचिव क पद से हटा दिया। 1928 ई० म चू तेह माओत्से क साथ आकर मिल गया। इससे माओ की स्थिति सुदृढ हो गई। माओत्से ने किग्यासी, क्वागतु ग और शेन्शी आदि प्रान्तो मे साम्यवादी केन्द्र स्थापित करने की प्रेरणा दी। 1930 ई० म माओ के नेतृत्व मे किग्यासी प्रात म साम्यवादी सरकार की स्थापना की गई। माओ ने चूतेह को प्रधान सेनापति के पद पर नियुक्त किया। उसने यहा पर भूमि सम्बन्धी सुधार किये। जिसके कारण उसे किसानो का समर्थन प्राप्त हो गया। 1931 ई० तक दल के अन्य कई सदस्यो ने माओत्से को अपना नेता स्वीकार कर लिया।

च्याग काई शेक ने कियासी केन्द्र में साम्यवादियों की शक्ति को कुचलने के हर सम्भव प्रयास किया परन्तु माओत्से की छापा मार युद्ध प्रणाली के कारण उसे सफलता नहीं मिली। 1932 ई० में साम्यवादी सेना ने फुकियन, हुनान तथा क्वाग तुग आदि प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। इस पर अक्टूबर 1933 ई० में च्याग काई शेक ने साम्यवादियों का सफाया करने के लिये दस लाख सैनिक भेजे। जिन्होंने माओ को चारों ओर से घेर लिया। ऐसी स्थिति में माओत्से ने अपने 90 हजार सैनिकों के साथ कियासी से दक्षिण की ओर प्रयाण किया। इस दूरी का पार करने में उसे 8 महीने लग गये। इस अभियान में उसके 60,000 सैनिक मारे गये। उसका यह प्रयाण 'ऐतिहासिक प्रयाण'' के नाम से प्रसिद्ध है। इस अभियान म माओत्से को सफलता मिली। अब उसने येनान मे एक नया केन्द्र स्थापित किया। इस केन्द्र को रूस के निकट होने के कारण आसानी से रूसी सहायता प्राप्त हो सकती थी।

1935 ई० म माओत्से ने च्याग काई शेख के समक्ष प्रस्ताव रखा कि साम्यवादी और कुओमिंताग दल आपस के मतभेद भुलाकर सयुक्त रूप से जापान का मुकाबला करें, परन्तु च्याग काई शेख ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। च्याग काई शेख साम्यवाद को जापान से अधिक खतरनाक समझता था। इसलिये उसने साम्यवादियों का सफाया करना प्रारम्भ कर दिया। परिस्थितियों से विवश होकर च्याग काई शेख को साम्यवादी दल से समझौता करना पड़ा। 1937 ई० मे दोनों दलों ने सयुक्त मोर्चा बनाया। युद्धकाल म साम्यवादियों ने जापानी सेना का डटकर मुकाबला किया। उन्होने जापान अधिकृत प्रदेशो पर अधिकार कर वहा साम्यवादी शासन व्यवस्था स्थापित करनी प्रारम्भ कर दी। इन क्षेत्रों की जनता का समर्थन प्राप्त करने के लिये साम्यवादियों ने कई आर्थिक सुधार किये।

1940 ई० में माओत्से ने "नये जनतन्त्र" नामक पुस्तक लिखी। इसमें उसने राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक सुधारों का वर्णन किया। 1942 43 ई० मे उसने साम्यवादी दल मे कई सुधार किये। महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात माओत्से ने च्यांग काई शेख को पूर्ण रूप से पराजित कर चीन से भगा दिया। उसने साम्यवादी सेना में एकता और अनुशासन बनाये रखा और चीन मे विदेशियों का प्रभाव समाप्त करने में साम्यवादी सेना ने माओत्से के नेतृत्व में शानदार सफलताएँ प्राप्त कीं।

प्रस्तावित सन्दर्भ पाठ्य पुस्तकें —

1—क्लाइड, पाल० एच०—दी फार ईस्ट
2—ग्रिसवोल्ड, ए० विटनी—फार ईस्टन पालिसी आफ यूनाइटेड स्टेटस
3—इजराइल ऐपस्टीन—फ्रोम ओपियम वार टू लिबरेशन
4—विनाके, हैराल्ड एम-पूर्व एशिया का आधुनिक इतिहास
5 आगस्टस लिडले—दी हिस्ट्री आफ ताईपिंग रेवोल्यूशन

14

जापान का आधुनिकीकरण

जापान दूसरे विश्व युद्ध के पूव तक एशिया मे सवशक्तिशाली और विश्व की एक महान शक्ति बन चुका था। 19वी शताब्दी के अतिम वर्षों म उसने तीव्र गति से विकास किया और 20वी शताब्दी के प्रारम्भ म वह इगलण्ड के समकक्ष हो गया। इतिहासकार यनगा ने लिखा है कि 'जापान का उदय और अस्त उसी प्रकार हुआ जिस प्रकार एक उल्का अपन तीव्र प्रकाश से सारी अधेरी रात को प्रकाशमान कर थोडी ही दर म लुप्त हो जाती है।'[1]

प्राचीन जापान— जापान का इतिहास बहुत अधिक प्राचीन नही है। क्लाइड ने लिखा है कि 500 ई० पू० जब कन्फ्यूशियस इतिहास की महानतम चरित्र सबधी व्याख्याओं म से एक का प्रतिपादन कर रहा था तो जापान का इतिहास शुरू भी नही हुआ था और इसके मैदान अभद्र और जगली लोगो के युद्धस्थल मात्र थे।"[2]

जापान 2500 मील लम्बे टापुओ का समूह है। वहा सबसे पहले सूर्योदय होता है इसलिये जापानी अपने देशो म निपोन" भी कहते हैं। जापानी मगोल जाति के है। इनका रग पीला कद छोटा और आखें छोटी होती है। जापान के दक्षिणी भाग म रहने वाले लोग पोलोनेशियन जाति के हैं। यद्यपि जापान के टापुओ म पहाडी भाग अधिक है। फिर भी पहाडो की घाटिया और नदियो के मदानो मे कृषि योग्य भूमि होने से पदावार अच्छी होती है। यहा की मुख्य उपज चाय चावल और शहतूत आदि है। प्राचीन और मध्यकाल मे जापानी लोगो का मुख्य व्यवसाय रेशम का कपडा बनाना था।

छठी शताब्दी के मध्य तक जापानियो की कोई लिखित भाषा नही थी।

1—यनेगा—जापान सिन्स परी पृष्ठ 7

2—क्लाइड, पाल० एच०- दी फार ईस्ट 58

550 ई० में बौद्ध भिक्षु कोरिया होते हुए जापान में आये। वहाँ जापानी जनता ने उनका बहुत अच्छा स्वागत किया। जापानी लोगों ने बौद्ध भिक्षुओं से चीनी भाषा सीखी और वे बौद्ध धर्म के अनुयायी बन गये। इस समय के जापानी शासक शोताकु ने बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों और राजकीय कानूनों का सकलन किया। बौद्ध धर्म के साथ जापानी लोग शिन्टो धर्म में भी विश्वास करते रहे। यह धर्म प्रकृति, पूर्वजों और सम्राट की पूजा पर अधिक जोर देता था।

प्राचीन कथाओं के अनुसार जापान का इतिहास बहुत पुराना है। पश्चिमी देशों के सम्पर्क में आने से पहले जापान की राजनीतिक दशा सोचनीय थी। ऐसा माना जाता है कि 11 फरवरी 630 ई० पू० में जिम्मू नामक व्यक्ति ने जापान के साम्राज्य की स्थापना की थी। जापानी सम्राट अपने को 'सूर्य पुत्र' कहते थे, क्योंकि जापान में सबसे पहले सूर्योदय होता था। यहाँ के लोग कठोर परिश्रमी और युद्ध कला में दक्ष थे। यहाँ पर सामन्तवादी शासन-व्यवस्था विद्यमान थी।

8वीं शताब्दी से लेकर 12वीं शताब्दी तक राज्य की शक्ति सामन्तों के हाथों में केन्द्रित थी। 12वीं शताब्दी में जापान के सम्राट ने अपनी सहायता के लिये 'शोगुन' नियुक्त किये। शोगुन सम्राट का शासन सम्बन्धी कार्यों में सहयोग देते थे। शासन का प्रधान राजा था, लेकिन वह नाम मात्र का शासक था। उसके पास किसी प्रकार की शक्ति नहीं थी। सम्राट क्योटो के राजमहल में रहता था। राजकीय आय का एक निश्चित भाग उसके खर्च के लिये दिया जाता था। जापानी जनता सम्राट को ईश्वर तुल्य मानती थी। जन साधारण सम्राट से नहीं मिल सकता था।

राज्य की वास्तविक शक्ति सम्राट के हाथ में न होकर शोगुन के हाथ में थी, जो जापान का प्रधानमन्त्री होता था। सम्राट सामन्तों के नेता को शोगुन के पद पर नियुक्त करता था। धीरे धीरे प्रशासन में सामन्तों का प्रभाव बढ़ने लगा। जापानी शासन सामन्ती प्रथा पर आधारित था। शोगुन के नीचे छोटा सामन्त होता था, उसको 'डायमीओज' कहा जाता था। डायमीओज के अधीन जागीरदार होता था, उसको समूराई कहा जाता था। धीरे धीरे जापान में शोगुन का पद पैतृक हो गया।

1868 ई० के पश्चात जापान ने पाश्चात्य सम्पर्क के कारण आश्चर्यजनक प्रगति की। इसका परिणाम यह हुआ कि 1905 ई० में उसने रूस को बुरी तरह पराजित किया। इस प्रकार जापान एशिया का सब शक्तिशाली और विश्व का एक शक्तिशाली राष्ट्र बन गया।

जापान का पश्चिमी देशों से सम्पर्क—1542 ई० में पुर्तगाली सर्वप्रथम जापान पहुँचे। इसके पश्चात 16वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में स्पेनिश, 17वीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में डच और अंग्रेज व्यापारी भी ओर से जापान पहुँचे। इन्होंने नागासाकी में अपनी व्यापारिक कोठियाँ स्थापित कीं। प्रारम्भ में जापानियों

न इन विदेशी लोगो का स्वागत किया परन्तु बाद में इनके पारस्परिक झगड़ो को देखकर जापानी लोग सतर्क हो गये। शोगुन इन विदेशियो को घृणा की दृष्टि से देखता था। इसलिये 1614 ई० में उसने एक आज्ञा के द्वारा ईसाई धर्म प्रचारको के जापान में आने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। जापान में गिरजाघरो को नष्ट कर दिया गया। जिन जापानियो ने ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया था, उन्हे फिर से बौद्ध धर्म स्वीकार करवाया गया।

चीन ने पाश्चात्य देशो के प्रभाव को सुगमता से स्वीकार कर लिया था। परन्तु जापान की जनता पश्चिमी सभ्यता को घृणा की दृष्टि से देखती थी। इसलिये जापान की सरकार ने 1936 ई० में एक और कानून बनाया। जिसके अनुसार —

(1) जापान ने पश्चिमी देशो से अपने सम्बन्ध स्थगित कर दिये।
(2) स्पेनिश पुर्तगाली और अंग्रेज व्यापारियो के जापान में आने पर रोक लगा दी गई।
(3) जापानियो का पश्चिमी राष्ट्रो के साथ व्यापार करना गैर कानूनी घोषित किया गया।
(4) जापान में बस हुये विदेशियो को जापान से बाहर निकाल दिया गया।
(5) सरकार ने जापानियो के देश से बाहर जाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया।
(6) डच व्यापारियो को नागासाकी में व्यापार करने की इजाजत दी गई।

इस प्रकार जापान की सरकार ने पृथक्करण की नीति अपनाई। जापान दो वर्ष तक इस नीति पर चलता रहा, परन्तु इन प्रतिबन्धो के बावजूद भी जापान की सरकार पश्चिमी देशो के लोगो को अपने यहा आने से नही रोक सकी।

19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में औद्योगिक क्रान्ति हुई। जिसके फलस्वरूप वाष्पचलित जहाज से लोग यात्रा करने लगे। प्रशान्त महासागर में जहाजो के विश्राम व पानी लेने के लिये जापान के बन्दरगाह काफी लाभदायक सिद्ध हो सकते थे, परन्तु जापान ने विदेशियो के आगमन पर प्रतिबन्ध लगा रखा था। अतः इस प्रतिबन्ध को हटवाने की आवश्यकता थी। इस काम का नेतृत्व संयुक्त राज्य अमेरिका ने किया।

1840 ई० में संयुक्त राज्य अमेरिका ने दो जहाज जापान के साथ राजनीतिक सम्पर्क स्थापित करने के लिये भेजे परन्तु इसमें उसे सफलता नहीं मिली। 1853 ई० में अमरिका ने दुबारा चार जहाज कोमोडोर पेरी के नेतृत्व में भेजे। जापानियो के विरोध के बावजूद भी पेरी जापानी समुद्र तट पर पहुंच गया। वहा पहुंचकर उसने जापान के अधिकारियो को अमेरिका के राष्ट्रपति का पत्र दिया। और उनसे कहा कि वे यह पत्र जापान के सम्राट के पास पहुंचा दें। उसने यह भी कहा कि वह एक वर्ष बाद पुनः उस पत्र का जवाब लेने के लिये जापान आयेगा।

जापानी अधिकारियों ने पेरी का पत्र शोगुन के पास पहुंचा दिया। अब जापान के लिये पश्चिम वालों को रोकना असम्भव लग रहा था। इसके अतिरिक्त पश्चिमी देशों ने चीन के साथ जो जबरदस्ती की थी, उससे भी वह चिंतित था।

1854 ई० में पेरी दुबारा 10 जहाजों और 2,000 सैनिकों के साथ जापान पहुंचा। जापानी शोगुन ने पेरी की सेना से भयभीत होकर 1854 ई० में संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ संधि कर ली। इस संधि के अनुसार जापान ने अपने तीन बन्दरगाह अमेरिका के व्यापार के लिये खोल दिये। इसके अतिरिक्त जापान ने अमेरिका द्वारा इन बन्दरगाहों पर एक प्रतिनिधि रखने की शर्त को भी स्वीकार कर लिया। अब अमेरिकन जहाज जापानी बन्दरगाह पर कोयला, पानी और रसद सामग्री ले सकते थे। इस प्रकार अमेरिका ने जापान की एकान्तवास की नीति का भंग कर दिया। शूमा ने अपनी पुस्तक अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध में इस मत का समर्थन किया है। थोमसन ने लिखा है कि जापान ने अमेरिका की सैनिक शक्ति से भयभीत होकर अपनी एकान्तवास की नीति का परित्याग कर दिया। इसके अलावा जापान के पास अन्य कोई विकल्प नहीं था।

इसके पश्चात् जापान ने 1854 ई० में इंगलैण्ड के साथ नागरिग की संधि, 1855 ई० में रूस के साथ शिमाण्डा की संधि और 1857 ई० में हालैण्ड के साथ संधि की। जापान ने सभी विदेशियों के लिये नागासाकी बन्दरगाह के द्वार खोल दिये। जनता ने इन संधियों का विरोध किया परन्तु उसका कोई परिणाम नहीं निकला। जापान ने पृथक्ता की नीति का परित्याग कर सभी विदेशियों के लिये अपने द्वार खोल दिए। फिर भी इन संधियों के कारण जापान अपना आंतरिक विकास करने में सफल हुआ।

सम्राट की शक्ति की पुनर्स्थापना—जापानी जनता विदेशियों के विरुद्ध था। इसलिये उसने उनके विरुद्ध आन्दोलन करना प्रारम्भ कर दिया। इस कारण सम्राट अपनी शक्ति को पुनः प्राप्त करने में सफल हुआ। पश्चिमी देशों के साथ शोगुन ने संधियां की थी। इसलिये जनता ने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। इस आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य विदेशियों को जापान से बाहर निकालना, शोगुन को पद से हटाना और सम्राट की शक्ति की पुनर्स्थापना करना था। इस आन्दोलन से पश्चिमी राष्ट्रों ने संधियों पर सम्राट के हस्ताक्षर करवाना आवश्यक समझा।

शोगुन के विरोधी सामन्तों ने सम्राट को उसके द्वारा की गई संधियों के विरुद्ध भड़काया। जापान में शोगुन के विरुद्ध विशाल पैमाने पर आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। जापानी जनता 'सम्राट का आदर करो, विदेशियों को भगा दो' के नारे लगाने लगी। शोगुन के विरोधियों ने ब्रिटिश तथा अमेरिकन दूतावास में आग लगा दी और अनेक अंग्रेजों का कत्ल कर दिया। जब शोगुन इन आक्रमणों को रोकने में असफल रहा, तब विदेशियों ने संयुक्त रूप से कार्यवाही कर आन्दोलनकारियों के

क्लिों को नष्ट भ्रष्ट कर दिया। इन घटनाओ स शोगुन की प्रतिष्ठा धूल म मिल गई। 1866 ई० म पुराने शोगुन की मृत्यु हो गई।

इसके पश्चात केइकी" नामक युवक नया शोगुन बना। जिसम देश भक्ति की भावनाएँ कूट कूटकर भरी हुई थीं। इस समय जापान का नया सम्राट मुत्सुहितो बना। उस समय उसकी आयु 24 वष की थी। मुत्सुहितो कूटनीतिज्ञ और दूरदर्शी शासक था। इतिहासकार हेज और मून ने लिखा है कि मुत्सुहितो उत्साही था एव जापान का आधुनिकीकरण करना चाहता था। अब वह देश की वास्तविक शक्ति अपने हाथ म केद्रित करना चाहता था। इसलिये उसने शोगुन को अधिकारहीन बनाने का प्रयास किया। इस बात से जनता न शासक का समथक किया। नये शोगुन ने समय को पहचानत हुए 1867 ई० म पद त्याग दिया। इस प्रकार सदियो के पश्चात सम्राट वास्तविक शासक बन पाया। अब जापान म शोगुन का प्रभाव समाप्त हो गया। *शासन की वास्तविक शक्ति मुत्सुहितो क हाथ म आने के पश्चात* उसने शासन म कई नवीन प्रकार के सुधार किये। राजनीतिज्ञ शू मा ने लिखा है कि जापान ने शोगुन के प्रभाव की समाप्ति क पश्चात ही आश्चयजनक विकास किया और विश्व का एक महान् आधुनिक राष्ट्र बन गया।

सम्राट मुत्सुहितो न अपन शासन का नाम मजी शासन रखा। जिसका अथ 'बुद्धिमत्तापूण शासन' होता है। अब शासन की वास्तविक शक्ति सम्राट के हाथ म निहित थी। सम्राट की शक्ति की पुनर्स्थापना को मजी पुनस्थापना क नाम से जाना जाता है।

मेजी युग मे जापान का विकास—मुत्सुहितो ने चीन के डा० सनयात सन की भाँति जापान का आधुनिकीकरण किया।

(1) **राजनीतिक क्षेत्र मे विकास** जापान म सम्राट की पुनस्थापना एक क्रांतिकारी घटना थी। 1868 ई० म मुत्सुहितो न अपनी राजधानी क्योतो सहटा कर यदो नगर को बनाइ। अब इस नगर का नाम टाकियो रखा गया। टोकियो ही सारे देश की राजधानी था। अब मत्सुहिता न शासन का केन्द्रीयकरण करना प्रारम्भ किया। इस काय म साम ती प्रथा बाधक बना हुई थी। इसलिये सम्राट ने 1868 इ० म प्रत्यक जागीर म एक केन्द्रीय अधिकारी की नियुक्त किया। 1871 ई० में *मुत्सुहितो न एक कानून बनाया। जिसक द्वारा* साम ती प्रथा को समाप्ति कर दिया गया। साम तो की भूमि क बदले उनको मुआवजा दे दिया गया और उस भूमि का किसानो म बाट दिया गया।

मुत्सुहिता न पाश्चात्य ढग स जापान की सना का पुनगठन किया। उसने 1872 इ० म जापान म अनिवाय सनिक सवा लागू कर दी। परिणामस्वरूप सभी वर्गो क लोग सेना म भर्ती होन लग। इसस सेना म साम तो का प्रभाव समाप्त हो गया। यामागाता न फ्रेंच और जमन विशेषज्ञों की सहायता से जापानी सेना का

पुनर्गठन किया। जापान ने इंग्लैण्ड का अनुसरण करते हुए भारी जल सेना का विकास किया। इसके लिये ब्रिटिश विशेषज्ञों की सेवाएँ प्राप्त की गई। सेना के सर्वोच्च अधिकारी सम्राट के प्रति उत्तरदायी थे। इसलिये आगे चलकर जापान में उग्र सैनिकवाद का उदय हुआ।

शासन में जनता को प्रतिनिधित्व देने के लिये मुत्सुहितो ने 1874 ई० में सीनेट तथा केन्द्रीय न्यायालय की स्थापना की। 1878 ई० में उसने स्थानीय स्वशासन को सगठित किया। प्रान्तीय शासक उनसे सलाह लेकर शासन करते थे। 1882 ई० में मुत्सुहितो ने कुछ राजनीतिज्ञों को पाश्चात्य देशों में संविधानों का अध्ययन करने के लिये भेजा। काफी प्रयासों के बाद एक नया संविधान बनाया गया। जिसे 1889 ई० में लागू किया गया। इस नये संविधान में द्विसदनात्मक संसद और जनता को मौलिक अधिकार दिये गये। इस प्रकार जापान का आधुनिकीकरण पूरा हुआ।

(ii) आर्थिक विकास—मुत्सुहितो ने जापान के औद्योगिक विकास के लिए बड़े पैमाने पर कारखाने स्थापित किये। सरकार ने मशीनों का बाहर से आयात किया। इस समय लोहे और वस्त्र उद्योग के कारखाने भी स्थापित किये गये। इसका परिणाम यह हुआ कि जापान में लोहा और कपड़े का विशाल पैमाने पर उत्पादन होने लगा। कारखानों में नये-नये आविष्कारों और वैज्ञानिक यन्त्रों का प्रयोग किया गया। परिणामस्वरूप 1890 ई० तक जापान में 250 कारखानें वाष्प शक्ति की सहायता से चलने लगे। इन कारखानों में कागज सीमेन्ट कपड़ा, रेशम, लोहा और बारूद आदि का उत्पादन विशाल पैमाने पर होने लगा। गाँवों से किसान रोजी की तलाश में औद्योगिक शहरों में आने लगे। जिससे मजदूरों की समस्या नहीं रही। जापान में मजदूरी की दर सस्ती थी। अतः माल कम खर्च में तैयार हो जाता था।

जापान ने व्यापार के क्षेत्र में भी काफी उन्नति की। 1873 ई० में वहाँ राष्ट्रीय बैंक की स्थापना की गई। 1879 ई० तक जापान में 151 बैंकों की स्थापना हो चुकी थी। 1885 ई० में 'जापान बैंक' की स्थापना की गई, जिसे केन्द्रीय बैंक कहा जाता था। केवल इस बैंक को ही नोट छापने का अधिकार दिया गया। जिससे मुद्रा पर सरकार का नियन्त्रण स्थापित हो गया।

जापान ने व्यावसायिक उन्नति के लिये परिवहन तथा संचार साधनों का विकास किया। 1873 ई० में जापान में टोकियो से याकोहामा तक पहला रेल मार्ग बनाया गया। 1894 ई० तक जापान 2112 मील रेल मार्ग का निर्माण कर चुका था। पनगा ने लिखा है कि 'पहली रेल्वे लाइन 1872 ई० में टोकियो से याकोहामा के बीच बनी और 1894 ई० तक जापान में रेलों का जाल बिछ गया और दो

हजार एर सौ अठारह मील लम्बी रेल लाईन बन गई।"[1]

1868 ई० म टेलीग्राफ खोला गया। फिर सारे देश म डाक घर स्थापित किये गये। 1877 ई० मे जापान म टेलीफोन का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। इस समय तक जापान के बडे बडे वाष्प चलित जहाजो का निर्माण करना प्रारम्भ कर दिया था। इस प्रकार जापान ने पाश्चात्य देशो के आधार पर प्रत्येक क्षेत्र म विकास किया। यनेगा ने लिखा है कि 'इन सुधारा से जापान का कायाकल्प हो गया।" जापान न औद्योगिक क्षेत्र म बहुत अधिक विकास कर लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि उसको अपने अतिरिक्त उत्पादन को खपाने के लिये और कच्चा माल प्राप्त करने क लिये बाजारा की तलाश करनी पडी।

(iii) सांस्कृतिक विकास—शोगुना ने अपने शासनकाल मे जापानियो के विदेश जाने पर प्रतिबन्ध लगा रखा था। फिर भी डचो के सम्पर्क से जापानी लोग पाश्चात्य सभ्यता एव सस्कृति के सम्पर्क म आये। शोगुनो के पतन के पश्चात् मुत्सुहिता ने विदेश यात्रा पर से प्रतिबन्ध हटा दिया। अब जापानी विदेशो म अध्ययन करने क लिये जाने लगे।

मुत्सुहितो न जापान म पाश्चात्य ढग पर आधारित शिक्षा व्यवस्था लागू की। जापान मे प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य कर दी। इस शिक्षा के लिए अमेरिकन पद्धति का अनुसरण किया गया। जापान म अनेक नये स्कूल खोले गये। पाठयक्रम मे देश भक्ति तथा सम्राट प्रति निष्ठा की भावना पर अधिक बल दिया जाता था। लडकियो के पाठयक्रम म गृह कार्यों पर अधिक जोर दिया जाता था। जापान की उच्च शिक्षा फ्रेंच पद्धति और विश्वविद्यालयी शिक्षा जर्मन पद्धति पर आधारित थी। 1877 ई० म टोकियो विश्वविद्यालय की स्थापना की गई। इस समय पश्चिमी देशो के ग्रन्थो का बडी सख्या म जापानी भाषा म अनुवाद किया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि जापान मे एक नये बुद्धिजीवी वर्ग का उदय हुआ, जो ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र म किसी देश से पीछे नही था।

मुत्सुहितो का योगदान—जापान के आधुनिकीकरण म मुत्सुहितो ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। जब वह जापान का सम्राट बना तब जापान सक्रमण काल से गुजर रहा था। पश्चिमी देश क लोगा के आगमन के विरुद्ध सारे देश मे आदोलन चल रहा था। शोगुन की प्रतिष्ठा मिट्टी मे मिल चुकी थी। ऐसे समय मे यदि वह जापान को सही दिशा नही देता तो उसका विनाश अवश्यम्भावी था।

मुत्सुहितो यह जानता था कि पश्चिमी देशा से युद्ध करने का अर्थ था जापान के विनाश का आमन्त्रित करना। इसलिए उसने जापान का नये सिर से निर्माण करने

1—यनेगा—जापान सिन्स पैरी—पृष्ठ 98

2—यनेगा—जापान सिन्स पैरी—पृष्ठ 93

का प्रयास किया। वह जापान को शक्ति सम्पन्न तथा समृद्ध देश बनाना चाहता था, ताकि जापान पश्चिमी राष्ट्रों का मुकाबला करने के योग्य बन सके। इसलिए उसने जापान में सामन्ती प्रथा को समाप्त कर दिया। उसने जापान में एक नया संविधान लागू किया, जिसमें जनता को मौलिक अधिकार दिये गये। जापान की राजधानी टोक्यो बनाई। उसने जापान का बहुत अधिक औद्योगिक विकास किया। जापानी लोगों को ज्ञान विज्ञान अर्जित करने के लिये विदेशों में भेजा जाने लगा। वहां पाश्चात्य ढंग पर आधारित शिक्षा प्रणाली लागू की गई। प्रारम्भिक शिक्षा सभी के लिये अनिवार्य कर दी गई। जापान की सैनिक शक्ति को मजबूत बनाया गया। इस प्रकार मुत्सोहिता के कार्यों के कारण जापान का कायाकल्प सम्भव हो सका।

जापान की साम्राज्यवादी नीति—जब जापान का आधुनिकीकरण हो गया तो उसने साम्राज्यवादी नीति का पालन करना प्रारम्भ कर दिया। इस नीति के पालन करने के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे—

1. जापान के आधुनिकीकरण के कारण उसकी सैनिक शक्ति सबल बन चुकी थी। वहां के सेनापति अपनी प्रतिष्ठा में वृद्धि करने के लिए युद्ध की नीति पर चलना चाहते थे।
2. जापान की जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ती जा रही थी। इस बढ़ती हुई जनसंख्या को बसाने के लिए जगह की आवश्यकता थी।
3. जापान अपनी आवश्यकतानुसार खाद्यान्न का उत्पादन नहीं कर पा रहा था। खाद्यान्न अविकसित एवं पिछड़े हुए देशों से प्राप्त हो सकता था।
4. जापान को अपने अतिरिक्त उत्पादन को बेचने के लिए एवं कच्चे माल की प्राप्ति के लिए बाजारों की आवश्यकता थी। बाजारों की स्थापना के लिये साम्राज्यवादी नीति का पालन करना अनिवार्य था।
5. जापान के आधुनिकीकरण के कारण उसकी विदेश नीति में परिवर्तन होना अवश्यम्भावी था। वह पश्चिमी देशों के साथ की गई अपमानजनक संधियों में संशोधन चाहता था, क्योंकि इन संधियों के अनुसार उसे विदेशी नागरिकों के अभियोगों को सुनने का अधिकार नहीं था। इसके अतिरिक्त वह व्यापार पर शुल्क निश्चित नहीं कर सकता था।

जापान ने 1858 ई० में की गई संधियों में संशोधन करने के लिये 1873 ई० में एक मिशन पश्चिमी देशों में भेजा। परन्तु उसे अपने उद्देश्य में सफलता नहीं मिली। 1888 ई० में जापान ने इस सम्बन्ध में दुबारा प्रयास किया, परन्तु इस बार भी उसे असफलता का मुंह देखना पड़ा। अब जापान यह समझ गया कि शक्ति-प्रदर्शन के द्वारा ही इन पुरानी संधियों को समाप्त किया जा सकता है। इसलिये अब वह अवसर की प्रतीक्षा करने लगा।

इन उपरोक्त कारणो से जापान ने 19वी शताब्दी के अन्तिम वर्षों म साम्राज्यवादी नीति पर चलने का निश्चय किया।

1 *चीन जापान युद्ध (1849–95 ई०)*—जब चीन पर पश्चिमी देश अपना साम्राज्य स्थापित कर रहे थे तो जापान ने भी चीन मे अपना साम्राज्य स्थापित करने का निश्चय किया। यनेगा ने लिखा है कि 'नजर के सामने कमजोर और असहाय चीन की समृद्ध दशा ने उन्हें (जापान) असहनीय प्रलोभन प्रदान किया।"[1]

जापान ने साम्राज्यवादी नीति पर चलते हुये 1894 ई० म फारमोसा और 1879 ई० मे लू चू द्वीप पर अधिकार कर लिया। इसके पश्चात् उसने कोरिया पर अधिकार करने का प्रयास किया, ताकि उसे कच्चा माल आसानी से प्राप्त होता रहे। कोरिया एक राजतन्त्र था। उस पर अप्रत्यक्ष रूप से चीन का प्रभाव स्थापित था। जब जापान ने 1894 ई० मे कोरिया पर अधिकार करने का प्रयास किया तो चीन जापान युद्ध प्रारम्भ हो गया। इस युद्ध म जापान की नयी शिक्षित व अनुशासित सेना ने चीन को बुरी तरह से पराजित किया और उसको एक अपमानजनक सधि पर हस्ताक्षर करने के लिये बाध्य किया।

शिमोनोसकी की सधि (1895 ई०)—चीन और जापान के बीच 17 अप्रेल 1895 ई० को शिमोनोसकी की सधि हुई। इस सधि की प्रमुख शर्तें निम्नलिखित थी—

1 चीन ने युद्ध क्षति पूर्ति के रूप मे एक अरब 75 करोड डालर जापान को देना स्वीकार कर लिया। क्षतिपूर्ति की राशि प्राप्त होने तक चीन के 'वे हाई वे' बन्दरगाह पर जापान का अधिकार रहेगा।
2 चीन ने कोरिया को एक स्वतन्त्र राज्य के रूप मे स्वीकार कर लिया। इस प्रकार कोरिया पर से चीनी प्रभाव समाप्त हो गया।
3 चीन ने लियाओतुग प्रायद्वीप, फारमोसा तथा पेस्केडोस द्वीप पर जापान को अधिकार दे दिया।
4 चीन ने अपने चार बन्दरगाह जापान के व्यापार के लिए खोल दिये।

इस युद्ध मे विजय से जापान की प्रतिष्ठा म वृद्धि हुई और कोरिया मे उसके साम्राज्य का विस्तार हुआ। इस विजय के विषय म थोमसन ने लिखा है कि जापान की इस प्रथम विजय से जापानी बहुत प्रसन्न हुए। पाल० एच० क्लाइड ने लिखा हैं कि "जापान की सनिक और नाविक विजय ने सुदूरपूर्व म एक नये युग का प्रारम्भ अकित किया जिसका प्रभाव एशिया और यूरोप पर समान पडा।"-

---

1 यनेगा–जापान सिन्स परी–पृष्ठ 94

1 क्लाइड,–पाल० एच०–दी फार ईस्ट, पृष्ठ 302

इस युग म जापान की विजय म उसकी गणना विश्व की महान शक्तिया मे होने लगी। उसका आन्तरिक विकास हुआ। कोरिया पर जापान का अधिकार हो जाने से उसे कच्चा माल आसानी से सस्ती दरा पर प्राप्त होने लगा। इससे उसके उत्पादन म वृद्धि हुई। उत्पादन म वृद्धि होन स उसके व्यापार म भी वृद्धि हुई।

चीन मे जापान की विजय से रूस चिंतित हो उठा क्योकि मचूरिया म जापानी प्रभाव रूस के लिए खतरनाक सिद्ध हो सकता था। इसलिए रूस ने फ्रास और जमनी को इसमे हस्तक्षेप करने की अपील की। इस पर फ्रास, जमनी और रूस ने जापान पर लियाओतुग और पोर्टआर्थर बन्दरगाह चीन का लौटाने के लिए दबाव डाला। जापान को बाध्य होकर य प्रदेश चीन को लौटाने पडे क्योकि जापान इस समय ऐसी स्थिति म नही था कि मित्र राष्ट्रो की माग को ठुकरा सके। जापान की इस विजय स प्रभावित होकर अमेरिका और इगलैण्ड ने पुरानी सधिया मे सशोधन कर दिया। इस प्रकार जापान को उन अपमानजनक सधियो मे मुक्ति मिली।

इगलण्ड के साथ सधि (1902 ई०)—जापान ने चीन का युद्ध म पराजित कर लियाओतुग का प्रदेश प्राप्त किया था परन्तु महान शक्तियो के विरोध के कारण उसे यह प्रदेश पुन चीन को लौटाना पडा था। जापान इस कूटनीतिक पराजय का बदला लेना चाहता था। इसलिये उसे एक शक्तिशाली मित्र की आवश्यकता अनुभव हुई। उधर इगलैण्ड यूरोप मे अकेला पड गया था। एक तरफ जमनी, आस्ट्रिया और इटली का त्रिगुट बन चुका था और दूसरी तरफ फ्रास एव रूस मे सधि हो चुकी थी। इगलैण्ड का इन दोनो ही गुटा से विरोध चल रहा था। इसलिय उसे अपने उपनिवेशा की रक्षा करने के लिए सुदूरपूर्व म मित्र की आवश्यकता अनुभव हुई। इगलण्ड जापान की चीन विजय से बहुत प्रभावित था। उसका यह मानना था कि एशिया मे रूस के बढते हुय प्रभाव को जापान राक सकता है। परिणामस्वरूप 1902 ई० म जापान और इगलैण्ड के बीच सधि हो गई जिसे आग्ल-जापानी सधि कहा जाता है। इस सधि की प्रमुख शर्तें निम्नलिखित थीं—

1 दोना देशा ने यह वचन दिया कि वे एक दूसरे के व्यापारिक हितो की रक्षा करेंगे।

2 दोनो ने चीन की शान्ति और सुरक्षा की रक्षा करने का आश्वासन दिया।

3 इगलण्ड न कोरिया म जापान के विशेषाधिकारा को स्वीकार कर लिया।

4 इगलण्ड ने मचूरिया म जापानी प्रभाव को स्वीकार कर लिया।

5 यदि दो या दो से अधिक शक्तिया चीन पर आक्रमण करेंगी तो दोना सयुक्त रूप स उनका मुकाबला करेंगे ।

यह सधि पाच वप के लिए की गई थी । इगलण्ड जसे विश्व के शक्तिशाली राष्ट्र की जापान जस छोटे स राष्ट्र के साथ सधि को दखकर विश्व के तत्कालीन राजनीतिज्ञ आश्चय करन लग । इस सधि स जापान की प्रतिष्ठा म वृद्धि हुई । वह पाश्चात्य देशा की बराबरी का दम भरने लगा । इस सधि से रूस के विरुद्ध इगलण्ड न जापान का समथन प्राप्त कर लिया था । इससे रूस सुदूरपूव म अकेला पड गया ।

रूस के साथ युद्ध (1904–5)—19वी शताब्दी म रूस एशिया का सव शक्तिशाली और विश्व का एक महान् राष्ट्र माना जाता था, परन्तु 1905 ई० म जापान जसे छोटे से राष्ट्र ने उसे युद्ध म बुरी तरह पराजित किया । इस युद्ध के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे —

1 जापान ने चीन को युद्ध म पराजित कर लियाओतु ग और पोट आथर के बन्दरगाह पर अधिकार कर लिया था परन्तु रूस के प्रयासो से उसे ये प्रदेश चीन को पुन लौटाने पडे । इसलिये जापान अपनी इस कूटनीतिक पराजय का रूस से बदना लना चाहता था ।

2 1902 ई० म जापान की ब्रिटेन के साथ सधि हो जाने के कारण उसकी अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र म प्रतिष्ठा बढी । अब वहा का सम्राट साम्राज्यवादी नीति पर चलना चाहता था ।

3 रूस और जापान दोनो ही कोरिया और मचूरिया पर अधिकार करना चाहते थे । जब रूस क विरोध के कारण जापान ने शिमोनोसकी सधि से प्राप्त प्रदेश पुन चीन को लौटा दिये तो रूस ने इन प्रदेशो मे अपना प्रभाव बढाना शुरू किया । रूस ने 1898 ई० मे पोट आथर बन्दरगाह पर और 1903 ई० म मचूरिया पर अपना प्रभाव स्थापित कर लिया था । इसके पश्चात् उसने कोरिया मे अपना प्रभाव स्थापित करने का प्रयास किया ।

रूस जापान युद्ध—मचूरिया तथा कोरिया म रूस का प्रसार जापान की सुरक्षा तथा प्रगति म बाधक था । जापान ने रूस के कोरिया और मचूरिया म बढते हुए प्रभाव का कडा विरोध किया । उसन रूस से मचूरिया व कोरिया की सीमा से सेना हटाने के लिए कहा परन्तु रूस ने इस ओर कोई ध्यान नही दिया । परिणाम स्वरूप 1904 ई० म जापान न रूस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी । जापान ने पोट आडर म स्थित रूसी बडे का नष्ट कर दिया और उस पर अधिकार कर लिया । इसके पश्चात् उसने कोरिया म अपनी सेनायें भेज दी । इस युद्ध म फ्रास और जमनी की सहानुभूति रूस के साथ थी । इगलैण्ड तथा अमेरिका न जा । न को आर्थिक सहायता प्रदान की ।

यह युद्ध फरवरी 1904 ई० से सितम्बर 1905 ई० तक चलता रहा। इस युद्ध मे जापान जसे छोटे से राष्ट्र न रूस जैसे विशाल राष्ट्र को बुरी तरह स पराजित किया और उसने रूस को पोर्टस माउथ की अपमानजनक सधि पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य किया।

पोर्टस माउथ की सधि (1905 ई०)–यह सधि 1905 ई० मे जापान और रूस के बीच हुई थी। इस सधि की प्रमुख शर्ते निम्नलिखित थी।

1 रूस ने कोरिया मे जापानी प्रभाव को स्वीकार कर लिया।

2 जापान का लियाओतुग व पोर्ट आर्थर बन्दरगाह पर पुन अधिकार हो गया। इसके अतिरिक्त मचूरिया के रेल का दक्षिणी हिस्सा एव दक्षिणी साखालिन प्रदेश प्राप्त हुआ।

3 मचूरिया पर चीन का अधिकार मान लिया। जापान तथा रूस ने वहा से अपनी सेनाएँ हटाना स्वीकार कर लिया।

4 रूस ने युद्ध क्षति पूर्ति के रूप मे जापान को 2 करोड 80 लाख पौण्ड देना स्वीकार कर लिया।

रूसी जापानी युद्ध का महत्व—

1 इस युद्ध मे जापान ने रूस जैसे विशाल राष्ट्र को पराजित किया था। इसलिए अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र म उसकी प्रतिष्ठा बढी और वह एशिया का सब शक्तिशाली राष्ट्र बन गया। अब जापान की गिनती विश्व के शक्तिशाली राष्ट्रो म होने लगी। इस युद्ध के पश्चात् जापान न साम्राज्यवादी नीति का पालन किया। 1910 ई० मे उसने कोरिया पर अधिकार कर लिया। पश्चिमी राष्ट्र जापान की सैनिक शक्ति का लोहा मानने लगे क्योकि रूस जैसे शक्तिशाली देश को पराजित करना कोई साधारण बात नहीं थी। अब जापान म उग्र सैनिकवाद का उदय हुआ। जिसस जापान का विनाश अवश्यम्भावी हो गया। गुमा न लिखा है कि रूस को पराजित करने के पश्चात् जापान की गिनती विश्व में शक्तिशाली राष्ट्रो म होने लगी। अब जापान के साम्राज्य विस्तार का माग प्रशस्त हो गया।

2 यह युद्ध रूस के लिए घातक सिद्ध हुआ। रूस की पराजय होने से अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे उसकी प्रतिष्ठा कम हो गई। इस पराजय के कारण रूस म सरकार विरोधी आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। इस युद्ध म बिना कारण रूस के डेढ लाख सैनिक मारे गये। रूस की जनता म पहले से जार के निरकुश शासन के विरुद्ध असतोष था। इस पराजय के कारण यह असतोष और अधिक तीव्र हो गया। जनता न युद्ध म रूस की पराजय के लिए सम्राट को उत्तरदायी माना। फलस्वरूप 1905 ई० म रूस में क्रान्ति हुई। यद्यपि जार ने क्रान्ति को कुचल दिया फिर भी उसने रूस के अकेलेपन को दूर करने के लिये इगलैण्ड और फ्रास के साथ सधि की।

3. अमेरिका चीन की सुरक्षा के लिये किसी भी देश को विशेषाधिकार देने के पक्ष मे नही था परन्तु अमेरिका की मध्यस्थता से रूस और जापान के बीच पोर्ट्स माउथ की संधि हुई थी, जिसके द्वारा अमेरिका ने जापान को चीन में विशेष अधिकार प्रदान कर दिये ।

प्रथम विश्व युद्ध और जापान—1914 ई० में प्रथम विश्व युद्ध प्रारम्भ हो गया । 1902 ई० की आग्ल जापानी संधि के कारण जापान ने मित्र राष्ट्रों की ओर से युद्ध मे भाग लिया । युद्धकाल में उसने प्रशान्त महासागर में जर्मनी की पनडुब्बियो को नष्ट कर दिया । इसके अतिरिक्त चीन मे जर्मनी अधिकृत शान्तुग प्रदेश पर अधिकार कर लिया ।

युद्ध के दौरान जापान का वाणिज्य व्यापार तथा उद्योग धन्धो का जबरदस्त विकास हुआ । इस दौरान इंगलैण्ड फ्रास, जर्मनी तथा इटली एशिया में अपना माल नही पहुंचा सके । जापान ने इस अवसर का लाभ उठाकर एशिया के देशों मे अपना माल पहुचाया । युद्धकाल मे जापान सारे एशिया का कारखाना बन गया इस प्रकार प्रथम विश्व युद्ध ने जापान की प्रगति का द्वार खोल दिया ।

इक्कीस मांगे—जापान चीन को अपना आर्थिक उपनिवेश बनाना चाहता था । इसलिये उसने युद्ध के दौरान 18 जनवरी 1915 ई० को चीन के सामने 21 मागे रखी और उसको स्वीकार करने के लिये विवश किया । उसकी ये इक्कीस मांगे पांच भागो मे विभाजित थी ।

1. पहले खण्ड मे जापान ने शान्तुग प्रदेश के बारे मे चार शर्तें रखी । इसके अनुसार शान्तुग प्रान्त पर जापान का अधिकार रहेगा । जापान को इस प्रदेश मे राजनैतिक, व्यापार और रेल निर्माण करने के विशेषाधिकार प्राप्त होगे तथा उसमे किसी भी विदेशी शक्ति का हस्तक्षेप बर्दाश्त नही किया जायेगा ।

2. दूसरे भाग मे पोर्ट आर्थर, मुकदमे तथा दक्षिणी मचूरिया के प्रदेश पर जापान को 99 के वर्ष के लिए पट्टा दिया जायेगा । जापान को मंगोलिया मे भी व्यापारिक और रेल आदि बनाने के विशेषाधिकार होंगे ।

3. तीसरे भाग में चीन मे बड़े नगरो में जापान के लोहे के कारखाने स्थापित करने की इजाजत दी जायेगी । इसके अतिरिक्त चीन अन्य किसी देश को अपने यहां खानें खोदने का अधिकार नही देगा ।

4. चौथे खण्ड मे जापान ने वचन दिया कि वह चीन की सुरक्षा करेगा परन्तु चीन बिना जापान की स्वीकृति के अपना कोई भी बन्दरगाह या द्वीप किसी विदेशी को नहीं देगा ।

5. पाचवे भाग मे जापान ने सात शर्तें रखी थी । इसके अनुसार जापान चीन मे अपने सलाहकार रखेगा । वह चीन में जापानी स्कूल, चर्च, अस्पताल बनायेगा । चीन के महत्वपूर्ण स्थानों की सुरक्षा जापान और चीन की पुलिस संयुक्त रूप से करेगी । जापान ने चीन से कहा कि वह विदेशी पूंजी का प्रयोग करने से

[सहम]ने उससे स्वीकृति लेगा। इसके अतिरिक्त चीन अपने युद्ध की 50 प्रतिशत सामग्री जापान से ही खरीदेगा।

ये 21 मांगे पांच भागों में जापान ने चीन के समक्ष रखी। चीन ने बाध्य होकर 25 मई 1915 ई० को इन अपमानजनक मांगों को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार जापान ने चीन पर अपना प्रभाव स्थापित कर लिया।

पेरिस शांति सम्मेलन और जापान—प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के पश्चात् विजित राष्ट्रों की पराजित राष्ट्रों के साथ संधियां करने के लिए पेरिस में एक शांति सम्मेलन हुआ। जापान ने भी इस सम्मेलन में भाग लिया। इस सम्मेलन में जापान को विश्व की पांच प्रमुख शक्तियों में स्थान मिला। जिससे अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में उसकी प्रतिष्ठा बढी। सम्मेलन में जापान की विदेश नीति के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित थे :—

1. चीन में जापान की स्थिति को और अधिक सुदृढ बनाया जाय।
2. जर्मन उपनिवेशों पर उसके अधिकार को मान्यता दिलवाना।

अमेरिका के राष्ट्रपति विलसन के विरोध के बावजूद भी चीन जर्मनी अधिकृत शान्तुग प्रदेश जापान के अधिकार में दे दिया गया। चीन ने इसका विरोध किया, परन्तु उस पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। प्रशान्त महासागर में स्थित जर्मनी के कुछ उपनिवेश जापान को दे दिये गये। परन्तु जापान की अन्य मांगे स्वीकार नहीं की गई। युद्ध के दौरान उसने चीन के जिन प्रदेशों पर अधिकार कर लिया था, वहां से उसे अपनी सेनाएँ हटाने को कहा गया।

जापान को शांति सम्मेलन में आंशिक सफलता ही प्राप्त हुई। वह पेरिस शांति सम्मेलन में किये गये निर्णयों से असन्तुष्ट था। इटली की भांति जापान में यह भावना घर करने लगी कि उसने युद्ध में जो कुछ जीता था, उसे संधि में खो दिया।

वाशिंगटन सम्मेलन (1922 ई०)—जापान निरन्तर प्रगति कर रहा था और चीन में अपने साम्राज्य का विस्तार कर रहा था। चीन में जापान के विस्तार को रोकने के लिये और उसकी बढ़ती हुई शक्ति पर प्रतिबन्ध लगाने के लिये 12 नवम्बर, 1921 ई० को अमेरिका ने वाशिंगटन में एक सम्मेलन बुलाया। इस सम्मेलन में इंगलैण्ड, फ्रांस, इटली, बेल्जियम, पुर्तगाल, हालैण्ड, चीन, जापान, और अमेरिका आदि नौ राष्ट्रों ने भाग लिया। इसमें प्रशान्त महासागर में नौसैनिक शक्ति कम करने तथा पूर्वी एशिया की स्थिति पर विचार किया गया।

वाशिंगटन सम्मेलन में प्रशान्त महासागर में सभी देशों के जहाजों की संख्या एवं उन पर सैनिक और तोपों की संख्या भी निश्चित कर दी गई। इसमें तीन प्रकार की संधियां की गई। समुद्री निशस्त्रीकरण की प्रमुख संधि—यह संयुक्त राज्य

अमेरिका, ब्रिटेन, जापान, फ्रांस और इटली आदि पांच राष्ट्रों के बीच में हुई थी। इस संधि के अनुसार अमेरिका, ब्रिटेन और जापान के जहाजों का अनुपात 5:5:3 निश्चित किया गया। इसके अतिरिक्त इटली और फ्रांस के जहाजों का अनुपात 1.75 निश्चित किया गया। इसका तात्पर्य यह था कि यदि प्रशान्त महासागर में अमेरिका और ब्रिटेन पांच-पांच जहाज रख सकते थे तो जापान केवल तीन और इटली तथा फ्रांस केवल 1.75, 1.75 जहाज रख सकते थे। जापान इस सम्मेलन में विश्व की तीसरी नाविक शक्ति बन गया।

इस सम्मेलन में 1902 ई० की आंग्ल-जापानी संधि को समाप्त कर दिया गया। उसके स्थान पर ब्रिटेन, फ्रांस, जापान और संयुक्त राज्य अमेरिका आदि इन चार राष्ट्रों में संधि हुई। इसे चार राष्ट्रों की संधि कहा जाता है। इस सम्मेलन में सभी नौ राष्ट्रों ने चीन की अखण्डता को बनाये रखने और उसकी सुरक्षा करने का आश्वासन दिया। सभी देशों को चीन में एक समान व्यापारिक अधिकार दिये गये। जापान ने चीन से चार करोड़ स्वर्ण यान लेकर उसका शान्तुग का प्रदेश लौटा दिया। क्लाइड ने लिखा है कि "1921-22 का वाशिंगटन सम्मेलन कई तरह से जापान के लिये एक दुखदायी कूटनीतिक दस्तावेज था।"[1]

वाशिंगटन सम्मेलन का महत्व :—

1. यद्यपि यह सम्मेलन राष्ट्रों का पूर्ण रूप से निशस्त्रीकरण नहीं कर सका परन्तु इस बात को मानने से इन्कार नहीं किया जा सकता कि इस सम्मेलन के कारण सुदूरपूर्व में 17 वर्ष तक शांति स्थापित रही।
2. इस सम्मेलन से जापान की ब्रिटेन से मित्रता समाप्त हो गई। इतिहासकार यनेगा ने लिखा है कि "जापान का तेईस वर्ष का किया हुआ काम समाप्त करने की विकल चेष्टा की गई। इस सम्मेलन से एक लाभ हुआ कि ब्रिटेन व जापान की दोस्ती टूट गई।"[2]
3. यह सम्मेलन जापान के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने के लिये तथा उसकी सैनिक शक्ति पर नियन्त्रण स्थापित करने के लिये बुलाया गया था, परन्तु जापान ने इसके निर्णयों का पालन करने से इन्कार कर दिया। अब जापान साम्राज्यवादी नीति पर चलने लगा। इस कारण पश्चिमी राष्ट्रों से उसका मनमुटाव हो गया।

(4) इस सम्मेलन के बाद चीन की विदेश नीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। अब चीन सरकार स्वतन्त्रता का दावा करने लगी। इतिहासकार विनाके ने लिखा है कि " जिन परिस्थितियों को ध्यान में रखकर वाशिंगटन सम्मेलन में समझौते

1—क्लाइड, पाल० एच०—दी फार ईस्ट—पृष्ठ 352

2—यनेगा—जापान सिन्स पैरी पृष्ठ 94

हुए थे। उनसे सुदूरपूर्व की राजनीति में एक नये तत्व का उदय अवश्य हुआ। यह तत्व था चीनी सरकार द्वारा स्वतन्त्रता का दावा। सीमित रूप से इससे चीन की परराष्ट्र नीति को एक नई दिशा मिली।"

जापान द्वारा मंचूरिया पर अधिकार (1931 ई०) 1928 ई० में जापान में राजनैतिक शक्ति सैनिक वर्ग के हाथ में आ गई। इस नई सरकार ने पुनः साम्राज्यवादी नीति पर चलने का निश्चय किया। जापान के मंचूरिया पर आक्रमण करने के कई कारण थे, जिनका विस्तृत अध्ययन हम पिछले अध्याय में कर चुके हैं। जापान ने मंचूरिया की खनिज सम्पदा से आकर्षित होकर और अपनी बढ़ती हुई जनसंख्या को वहां बसाने के लिए उस पर अधिकार करने का निश्चय किया। लैंगसम ने लिखा है कि "इस प्रकार मंचूरिया ने अपने अत्यधिक साधनों, अविकसित क्षेत्रों, भौगोलिक निकटता और महत्वपूर्ण स्थिति के कारण जापान को प्रलोभित किया।"[1]

18 सितम्बर 1931 ई० की रात्रि में कुछ लोगों ने मुकडेन में बम में से जापानी रेल्वे लाइन को उड़ा दिया। अतः इसको बहाना बनाकर जापान ने मंचूरिया पर आक्रमण कर दिया। गैथोर्न और हार्डी ने लिखा है कि "18 सितम्बर 1931 ई० की रात को मुकडेन के निवासियों ने इस तथ्य पर ध्यान नहीं दिया कि एक जोरदार विस्फोट हुआ, जिसके बाद गोलियां चलाये जाने की आवाज आई और सवेरे देखा गया कि नगर जापानियों के कब्जे में है।"[2]

चीन ने राष्ट्र संघ से इस सम्बन्ध में शिकायत की, परन्तु जापान मंचूरिया में निरन्तर आगे बढ़ता रहा। 1932 ई० के अन्त तक उसने सम्पूर्ण मंचूरिया पर अधिकार कर लिया और वहां पर अपनी कठपुतली सरकार स्थापित कर दी। राष्ट्र संघ द्वारा नियुक्त लिटन कमीशन ने जांच के दौरान जापान को दोषी पाया। इस पर राष्ट्र संघ ने जापान से अनुरोध किया कि वह मंचूरिया से अपनी सेना हटा ले। जापान ने इस अनुरोध को अस्वीकार कर दिया और 24 फरवरी 1933 ई० को उसने राष्ट्र संघ से त्यागपत्र दे दिया। कार ने लिखा है कि "जापान ने मार्च 1933 ई० में राष्ट्रसंघ की सदस्यता त्याग दी। जिससे सुदूरपूर्व में एक तनावपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो गई। जापान ने शीघ्र ही मंचूरिया को जीतकर पूर्वी एशिया में अपनी स्थिति और अधिपत्य को सुदृढ़ कर लिया।"[3]

जब राष्ट्र संघ जापान के विरुद्ध कुछ भी कार्यवाही नहीं कर सका तो इससे

1—लैंगसम—दी वर्ल्ड सिन्स 1919, पृष्ठ 426

2—गैथोर्न और हार्डी—अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का संक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ 266

3—कार, ई० एच०—इन्टरनेशनल रिलेशन्स बिट्विन दी टू वर्ल्ड वार्स, पृष्ठ 242

जापान की साम्राज्यवादी तृष्णा और अधिक बढ़ी और उसने चीन के एक अन्य प्रान्त जेहोल पर भी अधिकार कर लिया। अब जापान ने यह नारा लगाया कि "एशिया एशिया वासियों के लिए है।" लेटारिटू ने लिखा है कि "सही मायने में इसलिए द्वितीय विश्व युद्ध का आरम्भ सितम्बर 1931 ई० की उस आधी रात को हो गया था, जब गोला फूटा था। वही विश्व युद्ध के आरम्भ की सूचना थी।"[1] इस प्रकार मंचूरिया कांड ने ऐसी परिस्थितियों को जन्म दिया जिसके कारण द्वितीय विश्व युद्ध प्रारम्भ हो गया। कार ने लिखा है कि "जापानियों द्वारा मंचूरिया विजय प्रथम विश्व युद्ध के बाद इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है।"[2]

जापान की घोषणा (1934 ई०)—अप्रेल 1934 ई० में जापान की विदेश नीति में एक नया परिवर्तन हुआ। इस समय जापान ने यह घोषणा की कि "एशिया एशिया वासियों के लिये है"। इसे एशिया के लिये नई व्यवस्था भी कहा जाता है। इसके द्वारा जापान ने पश्चिमी राष्ट्रों को चीन से हटने की चेतावनी दी। इस घोषणा का अर्थ यह था कि यदि किसी भी पश्चिमी राष्ट्र ने एशिया के किसी भी मामले में हस्तक्षेप किया तो जापान उसे सहन नहीं करेगा। जापान की यह घोषणा अमेरिका के मुनरो सिद्धान्त के अनुकूल थी। इस प्रकार जापान समस्त पूर्वी एशिया को अपना उपनिवेश बनाना चाहता था।

साम्यवाद विरोधी समझौता (1936 ई०)—1936 ई० में जापान की विदेश नीति मे एक और नया मोड़ आया। इस सम्बन्ध में शूंमा ने लिखा है कि "जब यह बात स्पष्ट हो गई कि साम्यवाद का विरोध, देश-भक्ति उभाड़ने तथा पश्चिमी प्रजातन्त्रो को भ्रमित करने के लिये लाभदायक सिद्ध हो सकता है तो जापान के नीति निर्माताओं ने 25 नवम्बर 1936 ई० को एन्टी कोमिर्टन पेक्ट पर हस्ताक्षर करने मे नाजीदल का साथ दिया।"

जापान का साम्यवाद विरोधी समझौते पर हस्ताक्षर करना वस्तुतः एक नया कदम था। इससे इटली और जर्मनी जापान के मित्र बन गये। इसके अतिरिक्त साम्यवाद विरोधी कार्यों मे उसे इंगलैण्ड, फ्रांस व अमेरिका का भी मौन समर्थन प्राप्त हो गया।

द्वितीय विश्व युद्ध और जापान—1937 ई० में जापान ने पुनः चीन पर आक्रमण कर दिया। चीन और जापान के बीच युद्ध चल रहा था कि द्वितीय विश्व-युद्ध प्रारम्भ हो गया। द्वितीय विश्व-युद्ध में जापान ने जर्मनी और इटली का साथ

1—लेटारिटू—ए शोर्ट हिस्ट्री ऑफ दी फार ईस्ट पृष्ठ 576

2—कार, ई० एच०—इन्टरनेशनल रिलेशन्स बिट्विन दी टू वर्ल्ड वार्स, पृष्ठ 171

दिया और उनके पक्ष में मित्र राष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। जापान ने शीघ्र ही फिलीपाइन द्वीप समूह, हिन्द चीन, मलाया, श्याम, हिन्देशिया, बर्मा आदि देशों पर अधिकार कर लिया। उसने दक्षिणी पूर्वी एशिया में अपना साम्राज्य स्थापित करने के पश्चात् भारत पर आक्रमण करने का निश्चय किया। 1944 ई० तक जापान को युद्ध में शानदार सफलताएँ मिली परन्तु इसके पश्चात् जापान के पैर उखड़ने लगे।

1945 ई० में जापान के साथी देश जर्मनी तथा इटली ने मित्र राष्ट्रों के समक्ष आत्म-समर्पण कर दिया, परन्तु जापान ने युद्ध जारी रखा। ऐसी स्थिति में अमेरिका ने जापान के हिरोशिमा नगर पर 6 अगस्त को एव नागासाकी नगर पर 9 अगस्त 1945 ई० को अणुबम गिराये। जिसमें लाखों व्यक्ति मारे गये। इससे भयभीत होकर व 14 अगस्त 1945 ई० को जापान ने आत्म-समर्पण कर दिया। इस प्रकार जापानी साम्राज्य का पतन हो गया। जापान पर मित्र राष्ट्रों का अधिकार हो गया। 26 अप्रेल 1952 ई० को जापान को स्वतन्त्र देश घोषित कर दिया और वहां पर प्रजातन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था स्थापित कर दी गई। सिर्फ 28 वर्षों में जापान ने इतना अधिक विकास कर लिया कि आज विश्व के प्रगतिशील और औद्योगिक देशों में उसकी गिनती की जाती है। हमें उसकी कार्य क्षमता से सबक लेना चाहिये।

प्रस्तावित सन्दर्भ पाठ्य पुस्तकें :—

1—क्लाइड, पाल० एच०—दी फार ईस्ट
2—यनेगा—जापान सिन्स पैरी
3—विनाके, हैराल्ड एम०—पूर्व एशिया का आधुनिक इतिहास
4—प्रो० गोविन्स—मैकिंग ऑफ मोडर्न जापान
5—कार, ई० एच०—इन्टरनेशनल रिलेशन्स बिट्विन दी वर्ल्ड वार्स
6—लैंगसम—दी वर्ल्ड सिन्स 1919
7—गेथोर्न और हार्डी—अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का संक्षिप्त इतिहास

15

द्वितीय विश्व युद्ध

अधिनायक वाद का उदय अधिनायक वाद के उदय के बीज शान्ति समझौतों में निहित है। प्रोफेसर कार ने लिखा है कि 1919 ई० से लेकर 1939 ई० तक जितनी भी घटनाएँ घटित हुई हैं, उन सब पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वर्साय की संधि का प्रभाव पड़ा है। जापान और इटली ने प्रथम विश्व युद्ध में मित्र राष्ट्रों की ओर से भाग लिया था, परन्तु पेरिस शान्ति सम्मेलन मे उनकी सभी मांगें स्वीकार नही की गई, इसलिये ये दोनों देश शान्ति संधियों से असतुष्ट थे। सोवियत रूस को शांति समझौते मे आमन्त्रित नही किया, इसलिये वह असतुष्ट था।

पेरिस शांति सम्मेलन मे मित्र राष्ट्रों ने जर्मनी के साथ बहुत ही बुरा व्यवहार किया। जर्मनी ने विल्सन के 14 सिद्धान्तो पर हथियार डाल दिये थे, परन्तु पेरिस शांति सम्मेलन मे जर्मनी के साथ की गई सधि में विल्सन के सिद्धान्तों का पूर्णरूप से पालन नही किया गया। उसके कई प्रदेश मित्र राष्ट्रो ने छीन लिए। उसके प्रतिनिधियों को अपमानित कर दिया और उनको संधि पर हस्ताक्षर करने के लिये बाध्य किया गया। उसकी आर्थिक व्यवस्था को नष्ट करने का प्रयास किया गया तथा उस पर भारी जुर्माना लाद दिया गया। उसे राष्ट्र संघ की सदस्यता से वंचित रखा गया। जिसका परिणाम यह हुआ कि जर्मनी मे पेरिस शांति सम्मेलन मे की गई संधियो के प्रति भयकर असंतोष व्याप्त था। जर्मनी के नेता इन सधियों की शर्तों का उल्लधन करना चाहते थे।

1919 ई० के शांति समझौते में यूरोप की आर्थिक दशा को सुधारने का कोई प्रयास नही किया गया था। 1923 ई० तक जर्मनी की आर्थिक स्थिति शोचनीय हो गई थी। इसका प्रभाव यूरोपियन देशो पर भी पड़ा। 1919 ई० में नवनिर्मित बाल्कन राज्यो की आर्थिक दशा को सुधारने का भी कोई प्रयास नही किया गया था। परिणामस्वरूप 1931 ई० मे सारे यूरोप मे एक महान् आर्थिक संकट छा गया। इससे इटली और जर्मनी की आर्थिक स्थिति बहुत शोचनीय हो गई। इस

कारण अधिनायकों का उत्कर्ष संभव हो सका। जर्मनी में हिटलर के नेतृत्व में नाजीवाद, इटली में मुसोलिनी के नेतृत्व में फासिस्टवाद की स्थापना हुई। इन तानाशाहों का उद्देश्य युद्ध के माध्यम से अपनी शक्ति और साम्राज्य का विस्तार करना था।

जापान ने औद्योगिक विकास के लिये साम्राज्यवादी नीति का पालन करना प्रारम्भ कर दिया। परिणामस्वरूप वहां पर उग्र सैनिकवाद का उदय हुआ। पश्चिमी राष्ट्रों ने रूस की साम्यवादी क्रान्ति को कुचलने का प्रयास किया था। इसलिये स्टालिन ने अपने देश में साम्यवादी अधिनायक के रूप में कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। जर्मनी में नाजीवाद, इटली में फासिस्टवाद, रूस में साम्यवाद और जापान में उग्र सैनिकवाद के उदय के कारण अन्तर्राष्ट्रीय तनाव बढ़ा। जिसके फलस्वरूप द्वितीय विश्व युद्ध हुआ।

इटली में फासिस्टवाद का उत्कर्ष—इटली में 1870 ई० में संवैधानिक राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था की स्थापना की गई थी। वहां कई राजनीतिक दल होने से विभिन्न दलों के संयुक्त मन्त्रीमण्डल बनते थे और बिगड़ते थे। इस प्रकार प्रथम विश्व युद्ध तक इटली में स्थायी सरकार नहीं बन सकी। जिसके कारण इटली का विकास नहीं हो सका और न ही इटली अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त कर सका।

इटली की सरकार का पोप से मतभेद चल रहा था। इसलिये इटली की कैथोलिक जनता सरकार से नाराज थी। उसने सरकार को अपना सक्रिय सहयोग कभी नहीं दिया। इटली सरकार की पोप विरोधी नीति के कारण कैथोलिक देश फ्रांस से भी उसकी मित्रता होना असंभव था। वहां के प्राकृतिक साधन सीमित होने के कारण यहां पर औद्योगिक क्रान्ति की प्रगति बहुत धीमी रही। इटली उपनिवेशों की दौड़ में बहुत देर से शामिल हुआ था, इसलिये उसके पास अफ्रीका में बहुत कम उपनिवेश थे।

'प्रथम विश्व युद्ध के पूर्व तक इटली एक सामान्य शक्ति था। वह 1882 ई० में बिस्मार्क के "त्रिगुट" का सदस्य बन चुका था, परन्तु जब युद्ध आरम्भ हुआ तो उसने अधिकाधिक लाभ उठाने का प्रयास किया। 1915 ई० में लंदन में एक गुप्त संधि की गई, जिसके द्वारा इटली को यह प्रलोभन दिया गया कि यदि उसने मित्र राष्ट्रों के पक्ष में युद्ध की घोषणा कर दी तो उसे युद्ध की समाप्ति के पश्चात् लंदन संधि में प्रस्तावित प्रादेशिक भाग पर अधिकार दे दिया जायेगा।

इटली ने लंदन की गुप्त संधि के लालच में आकर प्रथम विश्व-युद्ध में अपने त्रिगुट के मित्र जर्मनी के विरुद्ध मित्र राष्ट्रों के पक्ष में युद्ध की घोषणा कर दी। युद्ध के दौरान जर्मनी ने सम्पूर्ण इटली पर अधिकार कर लिया। तब मित्र राष्ट्रों ने जर्मनी से उसे छुटकारा दिलवाया। प्रथम विश्व-युद्ध में मित्र राष्ट्रों की विजय हुई।

युद्ध की समाप्ति के पश्चात् पेरिस शान्ति सम्मेलन में इटली के प्रधानमन्त्री ऑरलैण्डों ने भाग लिया, परन्तु मित्र राष्ट्रों ने युद्ध से पूर्व किये गये वायदों को सम्मेलन में पूरा नहीं किया। इसलिये इटली की जनता मे पेरिस शान्ति सम्मेलन के विरुद्ध भयंकर असंतोष व्याप्त था। इसके लिये उसने अपनी सरकार को जिम्मेदार ठहराया। ऐसी परिस्थितियों में मुसोलिनी का उत्कर्ष हुआ। उसने एक नया आंदोलन प्रारम्भ किया जिसे फासिस्टवाद कहा जाता है। मुसोलिनी के समर्थकों की संख्या निरंतर बढ़ती रही। 1922 ई० में वह इटली का प्रधानमन्त्री बन गया। शीघ्र ही शासन की समस्त शक्ति अपने हाथों में केन्द्रित कर इटली में संसदीय सरकार के स्थान पर तानाशाह शासन स्थापित कर दिया। इसके पश्चात् उसने तानाशाह की तरह शासन करना प्रारम्भ किया।

इटली में फासिस्टवाद के उदय के कारण—इटली में फासिस्टवाद के उदय के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे—

1. **वर्साय की संधि से असन्तोष**—प्रथम विश्व-युद्ध में इटली ने मित्र राष्ट्रों का साथ दिया था। युद्ध में इटली ने मित्र राष्ट्रो की विजय होने से इटली को यह आशा थी कि मित्र राष्ट्र अपने किये गये वायदों को पूरा करेंगे, जिससे इटली की स्थिति सुधर जायेगी। युद्ध की समाप्ति के पश्चात् इटली ने भी एक विजेता राष्ट्र के रूप में पेरिस शान्ति सम्मेलन में भाग लिया। इस सम्मेलन में मित्र राष्ट्रों ने जर्मनी के साथ वर्साय की संधि की। इसमें इटली को उपनिवेश नही दिये गये। मित्र राष्ट्रों ने युद्ध के पूर्व किये गये प्रादेशिक वायदों को पूरा नही किया। इटली फ्यूम बन्दरगाह पर अधिकार करना चाहता था, परन्तु इस विषय पर कोई निर्णय नहीं किया गया।

इस प्रकार पेरिस शान्ति सम्मेलन में उसकी समस्त आशायें धूल में मिल गई। इटली की जनता मे पेरिस शान्ति सम्मेलन के विरुद्ध घोर असन्तोष और निराशा फैल गई। जनता ने इसके लिये अपनी दुर्बल सरकार को जिम्मेदार ठहराया। इस प्रकार इटली मे संसदीय सरकार के स्थान पर शक्तिशाली तानाशाही सरकार का मार्ग प्रशस्त हो गया।

2. **इटली की शोचनीय आर्थिक दशा**—प्रथम विश्व-युद्ध में भाग लेने के कारण इटली की आर्थिक दशा बहुत शोचनीय हो गई थी। जैसे कि:—

(i) युद्ध में भाग लेने के कारण इटली को जन तथा धन की अपार हानि हुई।

(ii) युद्ध के कारण इटली का व्यापार और उद्योग धन्धे नष्ट हो चुके थे। उत्तरी इटली के कारखानों मे उत्पादन कम होने के कारण आये दिन मजदूरों को निकाल दिया जाता था, जिससे वहां के मजदूर हड़ताल करते रहते थे।

(iii) युद्ध के दौरान जर्मनी की फौजों ने फसलों को नष्ट कर दिया था।

(iv) इटली पर इस समय 12 लाख डालर ऋण था।

(v) क्षतिपूर्ति की रकम उसे अभी तक नहीं मिल पाई थी।

(vi) युद्ध के दौरान इटली की खानें बरबाद हो चुकी थी। इन खानों से पुनः कोयला और लोहा निकालने के लिये धन चाहिये था।

(vii) मित्र राष्ट्रों की आर्थिक दशा खराब होने के कारण वे इटली को सहायता नहीं दे पा रहे थे।

(viii) इटली सरकार के कोष में पैसा नहीं था।

(ix) इस समय सरकार ने कर बहुत अधिक मात्रा में बढ़ा दिये थे। इस प्रकार इटली की दयनीय आर्थिक व्यवस्था के कारण अशान्ति और अव्यवस्था फैलने लगी। जिससे इटली में एक शक्तिशाली शासन व्यवस्था का मार्ग प्रशस्त हुआ।

(x) कारखानों में उत्पादन कम होने से खाद्यान्न और आवश्यक वस्तुओं के भाव आसमान को छू रहे थे।

3 बेरोजगारी की समस्या—युद्ध के दौरान उद्योग धन्धे एवं कारखानें नष्ट हो चुके थे। इसलिये भारी संख्या में मजदूर बेरोजगार हो गये। इसके अतिरिक्त युद्ध से लौटे हुए सिपाहियों को सरकार नौकरी देने में असमर्थ थी। इसलिये सिपाही भी बेकार हो गये। इस प्रकार युद्ध की समाप्ति के पश्चात् इटली में बेरोजगारी की समस्या ने विकराल रूप धारण कर लिया। ये बेरोजगार इटली की सरकार से असन्तुष्ट थे, इसलिये मुसोलिनी की पार्टी के सदस्य बन गये थे।

4. साम्यवाद का बढ़ता हुआ प्रभाव—एक ओर इटली में असन्तोष और निराशा फैल रही थी, तो दूसरी ओर उत्तरी इटली से औद्योगिक क्षेत्र में साम्यवाद का प्रभाव तेजी से बढ़ता जा रहा था। मुसोलिनी ने साम्यवादी विरोधी संगठन बनाया, जिसके कारण उसे अमेरिका, फ्रांस, इंगलैण्ड आदि पूंजीपति देशों का सह-योग प्राप्त हो गया।

5. इटली में राजनीतिक अस्थिरता—1919 से 1923 ई० तक इटली में कई मन्त्रिमण्डल बने और बिगड़े, लेकिन कोई भी दल स्थाई सरकार नहीं बना सका। विभिन्न दलों के संयुक्त मन्त्रिमण्डल बनते थे, जो चुनाव में सफलता प्राप्त करने के लिये लम्बे चौड़े वायदे करते थे परन्तु स्थायी सरकार बनाने में असमर्थ होने के कारण इन वायदों को पूरा करने में असमर्थ थे। इस कारण इस समय इटली का आन्तरिक विकास नहीं हुआ और जनता में संसदीय सरकार के विरुद्ध असन्तोष व्याप्त था।

ऐसी परिस्थितियों में मुसोलिनी ने इटली में फासिस्टवाद दल की स्थापना की। इस दल के सदस्य "फेसियो" कहलाते थे। फेसियो शब्द की उत्पति लैटिन

भाषा के "फामेज" शब्द से हुई है, जिसका अर्थ "कठोर और दण्ड" होता है। धीरे-धीरे इटली में फासिस्ट दल का प्रभाव बढ़ता गया।

6 **बेनिटो मुसोलिनी** मुसोलिनी ने इटली में फासिस्ट दल की स्थापना की। 1883 ई० में वह रोमेगना प्रान्त के एक क्रान्तिकारी के घर में पैदा हुआ था। उसके पिता लुहार का काम करते थे, परन्तु समाजवादी विचारधारा के समर्थक थे। मुसोलिनी अपने पिता के विचारों से बहुत अधिक प्रभावित हुआ। शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् वह अध्यापक बन गया। शिक्षक के रूप में कार्य करते हुए उसका साम्यवादी दल से सम्पर्क हो गया। 1908 ई० में उसने सरकार विरोधी आन्दोलन में भाग लिया, जिसके कारण सरकार ने उसे जेल में बन्द कर दिया। जेल से मुक्त होने पर उसने "अवन्ती" नामक पत्र प्रकाशित करना प्रारंभ किया।

प्रथम विश्व-युद्ध के समय मुसोलिनी चाहता था कि इटली युद्ध में भाग ले क्योंकि इससे इटली की आकांक्षा पूरी हो सकती थी। परन्तु साम्यवादी दल प्रथम विश्व-युद्ध मे भाग लेने के पक्ष मे नही था क्योंकि वह उसे पूंजीपतियों का युद्ध मानता था। इसलिए मुसोलिनी का साम्यवादी दल के साथ मतभेद हो गया। प्रथम विश्व-युद्ध प्रारम्भ होने पर मुसोलिनी इटली की सेना में भर्ती हुआ और 1915 ई० में युद्ध के दौरान उसने आईसोना नामक स्थान पर अपनी बहादुरी का प्रदर्शन किया। परिणामस्वरूप वह इटली जनता में लोकप्रिय हो गया।

(i) **फासिस्ट दल का संगठन** - प्रथम विश्व-युद्ध की समाप्ति के पश्चात् मार्च 1919 ई० में मीलान नामक नगर मे मुसोलिनी ने फासिस्ट दल की नींव रखी। इस दल का संगठन बहुत मजबूत था। दल के प्रत्येक सदस्य को कठोर अनुशासन मे रहना पड़ता था। इस दल के प्रत्येक सदस्य को अनिवार्य रूप से सैनिक शिक्षा दी जाती थी और उसे सब प्रकार के बलिदान के लिये तैयार किया जाता था। मुसोलिनी ने स्वय सेवक दल की स्थापना की। ये काली कमीज पहनते थे। इसलिए इन्हे "काले कुर्ते वाले" कहा जाता था। इनका अलग से झण्डा था। इस दल के लोग प्रत्यक्ष कार्यवाही में विश्वास करते थे।

(ii) **पार्टी का प्रोग्राम** फासिस्ट दल का प्रोग्राम जनता की इच्छा के अनुकूल था। इस दल ने यह घोषणा की थी कि इटली के लिये उपनिवेश प्राप्त किये जायेंगे। इसके अतिरिक्त औद्योगिक, कृषि एवं यातायात के क्षेत्र में विकास किया जायेगा। राज्य के नियन्त्रण में एक ऐसी व्यवस्था कायम की जायेगी, जिससे सभी लोग सहयोग के साथ जीवित रह सकें। इस प्रकार पार्टी का घोषणा पत्र जनता की मनोभावनाओं के अनुकूल होने के कारण यह दल शीघ्र ही लोकप्रिय हो गया।

(iii) **मुसोलिनी का योग्य नेतृत्व**—मुसोलिनी का योग्य एवं प्रभावशील नेतृत्व भी फासिस्टवाद के उदय का कारण बना। मुसोलिनी भाषण देने की कला में प्रवीण था। उसने अपने भाषणों के द्वारा फासिस्टवाद के सिद्धान्तों का बहुत अधिक

प्रचार किया। उसमें जनता की मनोभावनाओं को समझने की अद्भुत क्षमता थी। उसने विपक्षियों के प्रति एक संगठित तथा सुनिश्चित नीति अपनाई।

7. आकस्मिक कारण—(1) 1919 ई० में मुसोलिनी ने फासिस्ट दल का संगठन किया। 1921 ई० के चुनाव में फासिस्ट दल के प्रतिनिधि बहुत अधिक संख्या में विजयी हुए। इस दल की शक्ति में निरन्तर वृद्धि होती रही। इस समय मुसोलिनी ने यह घोषणा की कि यदि इटली की शासन सत्ता हमारे हाथों में नहीं आई तो हम रोम पर आक्रमण कर देंगे। इससे 1922 ई० में संवैधानिक गतिरोध उत्पन्न हो गया।

28 अक्टूबर, 1922 ई० में मुसोलिनी ने अपने पचास हजार स्वयं सेवकों के साथ रोम पर आक्रमण कर दिया। इस पर इटली के राजा विक्टर एमेनुएल तृतीय ने मुसोलिनी को सरकार बनाने के लिये आमंत्रित किया। 31 अक्टूबर 1922 ई० को मुसोलिनी इटली का प्रधानमन्त्री बना। इसके कुछ महीनों पश्चात् ही उसने इटली में तानाशाही शासन स्थापित कर दिया।

प्रधानमन्त्री बनने के पश्चात् मुसोलिनी ने इटली में शांति और व्यवस्था स्थापित की। उसने 1924 ई० में चुनाव करवाये, जिसमें फासिस्ट दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हुआ। इसके पश्चात् उसने अपने विरोधियों का दमन करना प्रारम्भ किया। विरोधी दलों के नेताओं को वन्दी बना लिया गया और उन्हें जेल में भयंकर यातनाएँ दी गईं। मुसोलिनी ने विरोधियों के समाचार पत्रों के प्रकाशन पर प्रतिबंध लगा दिया और उनकी सम्पत्ति पर सरकार ने कब्जा कर लिया। 1924-28 ई० की अवधि में बनाये गये कानूनों के अनुसार उन सभी राजकीय कर्मचारियों को राज्य सेवा से निकाल दिया गया, जो फासिस्ट दल के सदस्य नहीं थे। मुसोलिनी ने सभी राजकीय पदों पर फासिस्ट दल के सदस्यों को नियुक्त किया। इसके अतिरिक्त उसने सभी विरोधी राजनीतिक दलों को भंग कर दिया। इस प्रकार मुसोलिनी इटली का तानाशाह बन गया।

फासिस्टवाद के सिद्धान्त—प्रो० लिप्सन ने लिखा है कि फासिस्टवाद व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, प्रजातन्त्र, साम्यवाद और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में शांति का विरोधी है। फासिस्टवाद के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं:—

(1) फासिस्टवाद व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का विरोधी है। उसमें अन्य किसी राजनीतिक दल की स्वतन्त्रता के लिये कोई स्थान नहीं है।

(2) फासिस्ट दल प्रजातन्त्रात्मक शासन व्यवस्था का विरोधी है। मुसोलिनी का मानना था कि फ्रांसीसी क्रान्ति के पश्चात् प्रजातन्त्र पद्धति के प्रयोग असफल रहे हैं। इसका कारण यह है कि प्रजातन्त्रात्मक शासन व्यवस्था में किसी भी प्रश्न पर जल्दी से निर्णय नहीं लिया जा सकता। मुसोलिनी कहता था कि 20वीं

शताब्दी प्रजातन्त्र का नहीं अपितु तानाशाही का युग है। इसलिये उसने प्रजातन्त्र विरोधी विचारों का प्रचार किया। फासिस्ट दल एक नेता और एक शासन में विश्वास करता था। मुसोलिनी ने अपने दल के सदस्यों से कहा कि "विश्वास करो, आज्ञा मानों, और लड़ो।"

(3) साम्यवाद विरोधी—फासिस्टवाद साम्यवाद का विरोधी है। मुसोलिनी का मानना था कि राज्य के और व्यक्तियों के हित समान हैं। एक देश में सभी वर्गों के मनुष्य सह अस्तित्व की भावना से जी सकते हैं। वर्ग संघर्ष राजनीतिक तनावों के कारण होता है। मुसोलिनी के अनुसार यदि राज्य सभी वर्गों के हितों को ध्यान में रखकर नीति का निर्धारण करता है तो पूंजीपतियों और मजदूरों में सहयोग बना रह सकता है। इसके लिये साम्यवाद की आवश्यकता नहीं है। यद्यपि फासिस्टवाद साम्यवाद विरोधी था, तथापि व्यापार और उद्योग पर सरकार का नियन्त्रण आवश्यक मानता था।

(4) शान्ति विरोधी—फासिस्टवाद अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में शांति का विरोधी है। मुसोलिनी के अनुसार इटली शांतिपूर्ण ढंग से अपने साम्राज्य का विस्तार करना चाहता है, लेकिन यदि कोई भी राज्य उसके विस्तार के मार्ग में बाधा उपस्थित करेगा, तो इटली युद्ध का आश्रय लेने से नहीं चूकेगा। मुसोलिनी का कहना था कि युद्ध अनादिकाल से होते चले आये हैं और भविष्य में भी होते रहेंगे। इसलिये यह कहना कि हम भविष्य में युद्धों को रोकने का प्रयास कर सकते हैं, यह बात इतिहास के निर्णय के विरुद्ध है। मुसोलिनी का कहना था कि "इटली का विस्तार उसके जीवन और मरण का प्रश्न है, इटली का विस्तार होना चाहिये, नहीं तो उसका विनाश हो जायेगा।

इस प्रकार मुसोलिनी अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में इटली की प्रतिष्ठा में वृद्धि करने के लिये साम्राज्य का विस्तार करना चाहता था। उसका कहना था कि वर्साय की सधि मे इटली के साथ अन्याय किया गया है। इसलिये इटली को अधिक से अधिक उपनिवेश स्थापित करने चाहिये। मुसोलिनी ने एक भाषण में कहा था कि "हम भूमि के भूखे हैं क्योंकि हमारी जनसंख्या मे वृद्धि हो रही है और हम ऐसा चाहते भी हैं।"

मुसोलिनी प्राचीन रोमन साम्राज्य जैसा विशाल साम्राज्य स्थापित करना चाहता था और भूमध्यसागर पर अधिकार करके उसे इटली की झील बनाना चाहता था। उसने कहा था कि प्राचीन काल मे भूमध्य सागर पर हमारा अधिकार था और फिर शीघ्र अधिकार हो जायेगा।

(5) फासिस्टवाद शक्तिशाली राज्य का समर्थक था। मुसोलिनी ने कहा था कि "राज्य के भीतर सब कुछ है, राज्य के बाहर कुछ नहीं हैं, राज्य के विरुद्ध कुछ भी नहीं है।

इस प्रकार फासिस्टवाद सैनिक शक्ति में विश्वास करता था। मुसोलिनी का यह मानना था कि बिना सैनिक शक्ति बढ़ाये अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में उसकी बात को कोई नहीं मानेगा। यद्यपि इटली 1923 ई० में राष्ट्रसंघ का सदस्य बन गया था, परन्तु सामूहिक सुरक्षा के सिद्धान्त में वह विश्वास नहीं करता था। इसलिये अवसर मिलते ही उसने राष्ट्रसंघ के सिद्धान्तों का उल्लंघन किया।

मुसोलिनी की विदेश नीति—मुसोलिनी शांति का विरोधी और युद्ध का समर्थक था। प्रथम विश्व-युद्ध के बाद मित्र राष्ट्रों ने पेरिस शांति सम्मेलन में इटली की मांगों को स्वीकार नहीं किया था। इसलिए मुसोलिनी उसकी क्षतिपूर्ति प्राप्त करना चाहता था। उसने इटली के लिये उपनिवेश स्थापित करने का निश्चय किया। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये उसने कड़ी विदेश नीति का पालन करने का निश्चय किया। उसकी विदेश नीति से विश्व शांति के लिये संकट पैदा हो गया।

(1) **यूनान-अल्बानिया सीमा विवाद**—अल्बानिया और यूनान की सीमा विवाद की जांच करने के लिये राष्ट्रसंघ ने एक कमीशन नियुक्त किया था। इस कमीशन में इटली के मेम्बर भी थे। जब यह कमीशन सीमा विवाद के बारे में जांच कर रहा था, उस समय यूनान के कोर्फ्यू द्वीप में 1923 ई० में इटालियन मेम्बरों की हत्या कर दी गई। इटली ने यूनान को भारी हर्जाने की रकम देने के लिये कहा। यूनान के विलम्ब करने पर मुसोलिनी ने कोर्फ्यू नामक द्वीप पर अधिकार कर लिया। इस प्रश्न पर उसने राष्ट्र संघ का निर्णय मानने से इन्कार कर दिया। मुसोलिनी को चाहिये था कि वह इस मामले को राष्ट्रसंघ के समक्ष प्रस्तुत करता परन्तु उसने सीधी कार्यवाही कर यह स्पष्ट कर दिया कि इटली स्वयं शक्तिशाली है और उसे राष्ट्रसंघ के सहयोग की आवश्यकता नहीं है। कोर्फ्यू की घटना से दुनिया के देशों को यह पता चल गया कि दक्षिणी यूरोप में एक आक्रामक राष्ट्र का उत्कर्ष हुआ है।

(2) **अल्बानिया पर अधिकार**—पेरिस शांति सम्मेलन में बाल्कन क्षेत्र के अल्बानिया को एक स्वतन्त्र राज्य के रूप में स्वीकार कर लिया गया था, परन्तु यहां की अशिक्षित तथा अनुभवहीन जनता का लाभ उठाकर अहमद जोगू नामक व्यक्ति अल्बानिया का शासक बन बैठा। अहमद ने अल्बानिया का आर्थिक विकास करने के लिये इटली से आर्थिक सहायता मांगी। तो मुसोलिनी ने तुरन्त अल्बानिया को आर्थिक सहायता प्रदान की। मुसोलिनी अल्बानिया पर अधिकार करना चाहता था। इसलिये उसने आर्थिक सहायता के साथ-साथ अल्बानिया पर सैनिक नियन्त्रण स्थापित करना शुरू कर दिया। 1930 ई० में अहमद को इटालियन नीति का पता चला, परन्तु अब उसकी सतर्कता बेकार थी। 1939 ई० में मुसोलिनी ने अल्बानिया पर अधिकार कर लिया और उसे इटालियन साम्राज्य में मिला लिया।

(3) एबीसीनिया पर विजय—1934 ई० में मुसोलिनी ने एबीसीनिया राज्य को हड़पने का निश्चय किया। इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित थे:—

(i) एबीसीनिया प्राकृतिक साधनों से सम्पन्न देश था। इटली यहाँ से खनिज पदार्थ, ऊन, रूई, और कच्चा माल आसानी से प्राप्त कर सकता था।

(ii) इटली की बढती हुई जनसंख्या को बसाने के लिये जगह की आवश्यकता थी।

(iii) एबीसीनिया के समीपस्थ प्रदेश इरिट्रिया और सोमालीलैण्ड पर इटली का पहले से ही अधिकार था। अब वह एबीसीनिया पर अधिकार करना चाहता था। 1935 ई० मे एबीसीनिया की सीमा पर इटली के सैनिको की एबीसीनिया के सैनिको से मुठभेड़ हो गई। इस पर *मुसोलिनी ने एबीसीनिया के सम्राट हेल सिलासी से सफाई मांगी।* हेल सिलासी ने इस विवाद के बारे मे राष्ट्रसघ से अपील की। राष्ट्रसघ ने दोनो ही देशो को शातिपूर्ण तरीके से विवाद हल करने की सलाह दी परन्तु मुसोलिनी ने राष्ट्रसघ की सलाह को मानने से इन्कार कर दिया। और 1935 ई० मे एबीसीनिया पर हमला कर दिया। राष्ट्रसंघ ने इटली के इस कार्य की कटु आलोचना करते हुए 7 अक्टूबर 1935 ई० को उसको आक्रामक घोषित किया। 18 नवम्बर 1935 ई० को उसके विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्ध लगाये गये। परन्तु इटली राष्ट्रसघ के आदेश की अवहेलना करते हुए एबीसीनिया मे आगे बढ़ता ही गया। 1936 ई० तक मुसोलिनी ने सम्पूर्ण एबीसीनिया पर अधिकार कर लिया और उसे इटलियन साम्राज्य में मिला लिया।

एबीसीनिया युद्ध के परिणाम—एबीसीनिया युद्ध के प्रमुख परिणाम निम्नलिखित हुए :—

(i) इस घटना ने राष्ट्रसघ की दुर्बलता को स्पष्ट कर दिया।

(ii) अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में इटली की प्रतिष्ठा बढी।

(iii) इस घटना से इंगलैण्ड और फ्रास के सम्बन्ध कटु हो गये। इसका लाभ उठाकर अधिनायकों ने अपने साम्राज्य विस्तार की योजनाओं को पूर्ण करने का निश्चय किया।

(iv) जब इटली एबीसीनिया पर अधिकार करने में लगा हुआ था तो राष्ट्रसंघ ने उसके विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्ध के आदेश जारी किये, परन्तु जर्मनी ने राष्ट्रसघ के आदेश की अवहेलना करते हुए इस समय इटली को शस्त्र तथा अन्य आवश्यक सहायता पहुंचाई। इसका परिणाम

यह हुआ कि जर्मनी और इटली घनिष्ठ मित्र बन गये। जिससे रोम बर्लिन टोकियो धुरी के निर्माण का मार्ग प्रशस्त हो गया।

(v) **रोम बर्लिन धुरी (1936 ई०)**—1936 ई० में इटली और जर्मनी के बीच एक संधि हुई, जिससे रोम बर्लिन धुरी का निर्माण हुआ। इस संधि के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे :—

(i) जर्मनी और इटली पेरिस शान्ति सम्मेलन की वर्साय की संधि से असंतुष्ट थे।

(ii) हिटलर और मुसोलिनी साम्राज्य विस्तार करने की आक्रामक नीति का पालन कर रहे थे। दोनों ही देश संसार की सहानुभूति खो चुके थे। इसलिये अब दोनों के सामने दोस्ती करने के अलावा अन्य कोई विकल्प नहीं था।

(iii) दोनों ही राष्ट्रों का इंगलैण्ड, फ्रांस और रूस से युद्ध होना अनिवार्य था क्योंकि उनकी साम्राज्यवादी नीति में ये देश बाधक बन रहे थे।

(iv) 1936 ई० में स्पेन में गृह-युद्ध प्रारम्भ हो गया था। मुसोलिनी ने राजतन्त्र के समर्थक जनरल फ्रैंको को सहायता पहुँचाने का निश्चय किया परन्तु अधिकांश यूरोपियन देशों की सहानुभूति फ्रैंको के विरोधी गणतन्त्र दल के साथ थी। ऐसे समय में हिटलर ने मुसोलिनी की सहायता की। जिसके फलस्वरूप 25 अक्टूबर 1936 ई० को दोनों देशों के बीच एक संधि हुई। इस संधि से दोनों ही देशों के अधिनायक मित्रता के सूत्र में बँध गये। इस प्रकार रोम-बर्लिन धुरी का निर्माण हुआ।

(5) राष्ट्रसंघ का परित्याग मुसोलिनी की नीतियां राष्ट्रसंघ विरोधी थी। वह राष्ट्रसंघ के निर्णय और आदेशों का उल्लंघन करता रहा। एबीसीनिया पर अधिकार करने के पश्चात् 1936 ई० में व मुसोलिनी ने क्षुब्ध होकर राष्ट्रसंघ का परित्याग कर दिया।

(6) स्पेन का गृह-युद्ध (1936 ई०)—1936 ई० में स्पेन में गृह-युद्ध प्रारम्भ हो गया। इस समय स्पेन में गणतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था विद्यमान थी इसके विरुद्ध राजतन्त्र के समर्थक जनरल फ्रैंको ने विद्रोह कर दिया। इस प्रकार स्पेन में गृह-युद्ध प्रारम्भ हो गया। इंगलैण्ड और फ्रांस ने स्पेन के किसी भी दल को सहायता नहीं दी, परन्तु मुसोलिनी ने जनरल फ्रैंको को खुले आम सहायता पहुँचाई। हिटलर ने भी मुसोलिनी का साथ दिया। परिणामस्वरूप स्पेन के गृह-युद्ध में फ्रैंको सफल हुआ। उसने 1939 ई० तक सम्पूर्ण स्पेन पर अधिकार कर लिया। इस गृह युद्ध में जनरल फ्रैंको की सफलता ने पश्चिमी राष्ट्रों की दुर्बलता को स्पष्ट कर दिया।

(7) द्वितीय विश्व-युद्ध और इटली—1939 ई० में हिटलर ने डॉनजिग समस्या को हल करने के लिये पोलैण्ड पर आक्रमण कर दिया, जिससे द्वितीय विश्व-युद्ध प्रारम्भ हो गया। इटली ने जर्मनी का साथ दिया। इस युद्ध में मित्र राष्ट्रों की शानदार विजय हुई। महायुद्ध के अन्तिम दिनों में इटली के लोगों ने मुसोलिनी को मार डाला। उसकी मृत्यु के पश्चात् इटली में तानाशाही शासन की समाप्ति हो गई। द्वितीय विश्व-युद्ध की समाप्ति के पश्चात् इटली में गणतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था की स्थापना की गई।

जर्मनी में नाजीदल का उदय—प्रथम विश्व-युद्ध की समाप्ति के पश्चात् जर्मनी मे राजतन्त्र के स्थान पर गणतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था की स्थापना की गई थी। जर्मनी के गणतन्त्र को "वाइमर गणतन्त्र" भी कहा जाता है, क्योंकि जर्मनी की लोकसभा का पहला अधिवेशन वीमर नगर मे प्रारम्भ हुआ था। वर्साय की संधि को जर्मनी की जनता अपने राष्ट्र के लिये कलकपूर्ण दस्तावेज मानती थी। इस संधि को वाइमर गणतन्त्र की सरकार ने स्वीकार किया था। इसलिए जनता में सरकार के विरुद्ध असन्तोष व्याप्त था।

1930 ई० मे विश्व-व्यापी आर्थिक संकट छा गया। जर्मनी की आर्थिक स्थिति पहले से शोचनीय थी, परन्तु इस आर्थिक सकट के कारण उसकी स्थिति और अधिक दयनीय हो गई। इससे सरकार का दिवाला निकल गया। उद्योग धन्धे चौपट हो गये। बेरोजगारी की समस्या ने भयकर रूप धारण कर लिया। वस्तुओं के भाव आसमान को छूने लगे। स्थान-स्थान पर हड़तालें और उपद्रव होने लगे। जर्मनी की प्रजातन्त्रीय सरकार इस आर्थिक स्थिति में सुधार करने में असफल रही, क्योंकि जर्मनी को विदेशो से किसी प्रकार की सहायता प्राप्त नही हो सकी। ऐसे समय हिटलर के नेतृत्व मे नाजी दल ने सरकार के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया।

हिटलर का उत्कर्ष नाजी दल के संस्थापक हिटलर का जन्म 20 अप्रेल, 1889 ई० को आस्ट्रिया के एक साधारण परिवार मे हुआ था। उसके पिता चुंगी विभाग में नौकरी करते थे। प्रथम विश्व-युद्ध के प्रारम्भ होने के समय हिटलर जर्मनी की सेना मे भर्ती हो गया। उसने इस युद्ध में अपनी वीरता का प्रदर्शन किया। जिसके फलस्वरूप जर्मनी की सरकार ने उसे "आइरन क्रास" नामक पुरस्कार प्रदान किया। प्रथम विश्व-युद्ध मे जर्मनी की पराजय होने से मित्र राष्ट्रो ने उसे वर्साय की अपमानजनक सधि पर हस्ताक्षर करने के लिये बाध्य किया। हिटलर ने प्रथम विश्व-युद्ध की पराजय और कलंकित सधि का वदला लेने का निश्चय किया। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये उसने नाजीदल पर राष्ट्रीय समाजवादी दल की स्थापना की।

हिटलर और उसका नाजीदल—जर्मनी में नाजीदल का जन्मदाता ड्रेक्सटर नामक व्यक्ति था, जिसने 1919 ई० में इस दल की नीव रखी। कुछ ही समय मे

मिक और कुशल कारीगर काफी संख्या में इस दल के सदस्य बन गये। धीरे-धीरे जर्मनी के अन्य नगरों में इसकी शाखाएँ खुलने लगी। हिटलर नामक श्रमिक भी इस दल का सदस्य बन गया। उसने 1920 ई० में इस दल के कार्यक्रमों की घोषणा की। दल के प्रमुख कार्यक्रम निम्नलिखित थे :—

(i) वर्साय की संधि का अन्त करना।

(ii) जर्मनी से छीने गये उपनिवेश पुनः प्राप्त करना।

(iii) जर्मनी को एक सूत्र में बांधकर एक विशाल जर्मन साम्राज्य की स्थापना करना।

(iv) यहूदियों को जर्मनी से भगाना।

(v) जर्मनी में अनिवार्य सैनिक सेवा लागू करना आदि लक्ष्य पार्टी ने अपने सामने रखे। हिटलर शीघ्र ही इस दल का नेता बन गया। उसे इस दल का 'फ्यूरर' कहा जाता था।

1923 ई० में हिटलर ने लुन्डेडोर्फ के साथ मिलकर बवेरिया के गणतन्त्रीय सरकार के विरुद्ध असफल विद्रोह किया। सरकार ने इस विद्रोह को कुचल दिया और उसे छः महीने के लिये जेल भेज दिया गया। जेल में रहते हुए उसने "Mein Kampf" (मेरा संघर्ष) नामक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक में उसने प्रोग्राम और सिद्धान्तों का वर्णन किया था।

1924 ई० के बाद हिटलर के दल के सदस्यों की संख्या में वृद्धि होने लगी। पहले नाजी दल का केन्द्र म्युनिक था। अब इस दल की शाखाएँ सम्पूर्ण जर्मनी के नगरों में खोली जाने लगी। 1924 ई० के चुनाव में इस दल के 24 सदस्य विजयी हुए, लेकिन बाद के चुनावों में इसे कोई विशेष सफलता नहीं मिली। 1930 ई० में प्रसिद्ध इतिहासज्ञ टोयनवी जर्मनी की यात्रा पर गया, तब उसने कहा कि नाजी-दल का जर्मन की राजनीति में कोई विशेष स्थान नहीं है। लेकिन 1930 ई० के आर्थिक संकट के बाद नाजीदल की लोकप्रियता बढ़ने लगी।

हिटलर द्वारा सत्ता की प्राप्ति और अधिनायक बनना—1932 ई० में हिटलर तत्कालीन राष्ट्रपति हिण्डेन बर्ग के खिलाफ राष्ट्रपति पद के लिये खड़ा हुआ, परन्तु इस चुनाव में हिटलर की हार हुई और हिण्डेन बर्ग विजयी हुआ। इस चुनाव के परिणामस्वरूप हिटलर एक राष्ट्रीय नेता के रूप में उभरा। इस समय रीष्टाग के चुनाव में 584 स्थानों में से 196 पर नाजी दल के सदस्य विजयी हुए। नाजीदल ने रीष्टाग में नेशनल कन्जरवेटिव दल से समझौता कर लिया था। इस तरह कुल मिलाकर 230 स्थान नाजियों को मिले।

हिण्डेन बर्ग ने हिटलर के स्थान पर दूसरे दल के नेता श्लीचर को अपना चांसलर बनाया। राष्ट्रपति बनने के पश्चात् हिण्डेन बर्ग ने कहा था कि "मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि वह (हिटलर) बोहेमन सिपाही मेरे रहते कभी भी जर्मनी का चांसलर

नहीं बनेगा। मैं अधिक से अधिक उसे किसी उप नगरीय डाकखाने का पोस्ट मास्टर बना सकता हूं।" परन्तु हिण्डेन बर्ग की भविष्यवाणी गलत निकली, क्योंकि उसे 30 जनवरी 1933 ई० को हिटलर को चांसलर के पद पर नियुक्त करना पड़ा। इसका कारण यह था कि उसके द्वारा नियुक्त चांसलर श्लीचर ने 8 माह में ही त्याग पत्र दे दिया था।

हिटलर ने चांसलर बनने के बाद 27 फरवरी 1933 में चुनाव की घोषणा की। चुनाव से पूर्व नाजी सरकार ने अपने विरोधियों को कुचलना प्रारम्भ कर दिया। 1933 के चुनाव में 647 स्थानों में से 288 पर नाजी दल के सदस्य और 52 स्थानों पर इनके मित्र विजयी हुए। नई सरकार को 647 में से 340 सदस्यों का समर्थन प्राप्त था। इस प्रकार नाजी दल को रीष्टाग मे बहुमत प्राप्त था। रीष्टाग ने 1933 ई० में सविधान को स्थगित करके हिटलर को तानाशाही अधिकार प्रदान कर दिये। अगस्त 1934 ई० को जर्मनी के राष्ट्रपति हिण्डेन बर्ग की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के पश्चात् हिटलर ने राष्ट्रपति और प्रधानमन्त्री के पद को एक कर दिया और उसका नाम "राइक्स फ्यूहरर" रखा। हिटलर ने इस पद को ग्रहण किया। इस कार्य के लिये हिटलर ने जनमत का संग्रह करवाया। 90 प्रतिशत जनता ने हिटलर के इस कार्य का समर्थन किया। इस प्रकार जर्मनी में प्रजातन्त्रात्मक शासन व्यवस्था की समाप्ति हुई और तानाशाही शासन का उदय हुआ। अब हिटलर ने तानाशाह की तरह शासन करना प्रारम्भ कर दिया।

नाजी दल के उत्थान के कारण - नाजी दल के उत्थान के प्रमुख कारण निम्न लिखित थे :—

1. वर्साय की संधि का अन्याय—नाजी दल के उत्कर्ष का पहला कारण वर्साय की संधि का अन्याय था। वर्साय की संधि मे मित्र राष्ट्रो ने जर्मनी के साथ बुरा व्यवहार किया था। उसके उपनिवेश छीन लिये, निःशस्त्रीकरण कर दिया गया, उस पर युद्ध हर्जाने की भारी रकम लाद दी गई। इस सन्धि की अपमानजनक शर्तों को जर्मनी ने बाध्य होकर स्वीकार किया था। यह संधि जर्मनी के लिये कलंकपूर्ण दस्तावेज था। इससे उसकी राष्ट्रीय भावनाओं को गहरा आघात पहुँचा था। जर्मनी की जनता मे इस संधि के विरुद्ध भयंकर असंतोष व्याप्त था। वाइमर गणतन्त्रीय सरकार वर्साय की संधि के अपमान को नही धो सकी। ऐसी स्थिति में हिटलर ने जनता से यह वायदा किया कि यदि वह सत्ता मे आया तो वर्साय की संधि को रद्द कर देगा और जर्मनी से छीने गये उपनिवेशो को पुनः प्राप्त करेगा। लैंगसम ने लिखा है कि नाजी दल के लोकप्रिय होने का मुख्य कारण 1930 ई० का आर्थिक संकट था, वर्साय की सन्धि नहीं थी। यदि यह सबसे मुख्य कारण होता तो नाजी दल अपने जन्म के समय से ही लोकप्रिय हो जाता।

2. प्रजातन्त्र विरोधी—जर्मनी की जनता सदा से प्रजातन्त्र विरोधी तथा

सैनिक प्रवृत्ति की थी। इसलिये प्रथम विश्व-युद्ध के पश्चात् जर्मनी में स्थापित गण-तन्त्रात्मक शासन के विरुद्ध प्रतिक्रिया स्वाभाविक थी। जब वाइमर गणतन्त्र सरकार वर्साय की संधि के अपमान का बदला लेने में असफल रही तो जनता ने हिटलर का स्वागत किया।

3. वाइमर गणतन्त्र की असफलता—इसकी असफलता के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे :—

(i) पराजय के समय उसका जन्म हुआ था।

(ii) वाइमर गणतन्त्र को जन्म के समय ही वर्साय की अपमानजनक संधि पर हस्ताक्षर करने के लिये बाध्य होना पड़ा था। संधि पर हस्ताक्षर करने के कारण जनता में गणतन्त्रीय सरकार के प्रति भयंकर असंतोष व्याप्त था।

(iii) प्रजातन्त्र के दलों में आपसी एकता का अभाव था। इसलिये जर्मनी में कभी स्थायी सरकार स्थापित नहीं हो सकी।

(iv) क्षतिपूर्ति और अन्य प्रश्नों पर किये गये समझौते के विरुद्ध जनता में असंतोष था।

(v) इसकी विदेश नीति कमजोर थी। इस कारण जर्मनी अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपनी प्रतिष्ठा फिर से स्थापित नहीं कर सका।

(vi) यह सरकार जर्मनी की अर्थ व्यवस्था में सुधार नहीं कर सकी। डावेस योजना के बाद अमेरिका ने जर्मनी को ऋण दिया। इससे उसकी आर्थिक स्थिति में कुछ सुधार हुआ परन्तु क्षतिपूर्ति की समस्या के कारण उसकी अर्थ व्यवस्था संभल नहीं पा रही थी।

4. 1930 की आर्थिक मंदी—1930–31 ई० में सारे विश्व में आर्थिक संकट छा गया। जर्मनी की आर्थिक दशा पहले से ही खराब थी। इस आर्थिक संकट के कारण उसकी आर्थिक दशा और अधिक शोचनीय हो गई। जर्मनी को इस समय विदेशों से किसी भी प्रकार की सहायता प्राप्त नहीं हो सकी। परिणामस्वरूप उसके उद्योग धन्धे चौपट हो गये। जर्मनी में बेरोजगारी और भुखमरी बढ़ी। लाखों श्रमिक बेरोजगार हो गये। उनके सामने रोजी-रोटी की समस्या थी। ऐसे समय हिटलर ने सभी को रोजी-रोटी देने का वायदा किया। परिणामस्वरूप हिटलर का नाजीदल जनता में सर्वाधिक लोकप्रिय हो गया। गेथॉन हार्डी तथा शूमैन का मानना है कि नाजीवाद के उत्थान का सबसे महत्वपूर्ण कारण 1930–31 की आर्थिक मन्दी है।

5. नाजीदल के आकर्षक कार्यक्रम—हिटलर ने अपनी पार्टी नेशनल सोश-लिस्ट जर्मन लेबर पार्टी को जनता की इच्छाओं और आकांक्षाओं के अनुरूप कार्यक्रम प्रदान किया। लैंगसम ने लिखा है कि हिटलर के आर्थिक कार्यक्रम से जनता बहुत

अधिक प्रभावित हुई। हिटलर ने अपनी पार्टी को निम्नलिखित कार्यक्रम प्रदान किए—

(i) यहूदियों ने जनसाधारण को जो ऋण दिया था, उसे हिटलर ने माफ करने का वायदा किया। इससे जनता प्रसन्न थी।

(ii) हिटलर ने कहा कि वह श्रमिकों को पूंजीपतियों के शोषण से मुक्ति दिलवायेगा।

(iii) साम्यवाद का विरोध किया जायेगा।

(iv) हिटलर पूंजीपतियो का समर्थक था।

(v) उसने थोक व्यापारियो के लाभ को सीमित करने के लिये ऐसे प्रस्ताव रखे, जिससे छोटे दुकानदार बहुत अधिक प्रभावित हुए।

(vi) हिटलर ने कहा कि बड़े-बड़े फार्मों की भूमि किसानो में बांट दी जायेगी। इससे किसान हिटलर के समर्थक बन गये।

(vii) हिटलर ने क्षतिपूर्ति की राशि चुकाने का वायदा किया।

हिटलर ने अपने इन कार्यक्रमों का जोर-शोर के साथ प्रचार किया। इससे जन साधारण बहुत अधिक सन्तुष्ट हुआ। परिणामस्वरूप हिटलर की लोकप्रियता बढने लगी।

6. यहूदी विरोधी विचार—हिटलर यहूदियो का विरोधी था। इसलिये उसने उनके द्वारा जन साधारण को दिये गये ऋणों को माफ करने का वायदा कर लिया। इसके अतिरिक्त हिटलर ने यहूदियो को जर्मनी से बाहर निकालने के लिये एक योजना रखी, जिसका जनता ने भारी स्वागत किया।

7. विशुद्ध आर्य रक्त का सिद्धान्त—हिटलर ने आर्यों का उद्गम जर्मनी बताया। उसके अनुसार केवल जर्मनी मे रहने वाले व्यक्ति ही शुद्ध आर्य थे। जो व्यक्ति जर्मनी से बाहर चले गये थे, उसने उनको शुद्ध आर्य नही माना क्योंकि उन्होंने वहां के आदि निवासियो की लड़कियो से विवाह कर लिया था। इसलिये उनका रक्त अशुद्ध हो गया था। हिटलर यह मानता था कि आर्य जाति दुनियां की सर्वश्रेष्ठ जाति है और उसे शासन करने का जन्म सिद्ध अधिकार है। हिटलर जर्मन जाति को विश्व की महान शक्ति बनाना चाहता था।

8. नाजी दल का संगठन—प्रथम विश्व-युद्ध की समाप्ति के पश्चात् हिटलर ने नेशनल सोशलिस्ट दल (नाजीदल) की स्थापना की। इस दल का प्रमुख कार्यालय म्युनिख में रखा गया। धीरे-धीरे इस दल की शाखाएँ जर्मनी के अन्य नगरो में भी खोली जाने लगी। नाजी दल के प्रत्येक सदस्य को सैनिक शिक्षा दी जाती थी और उन्हे कठोर अनुशासन मे रहना पड़ता था। इस दल के सदस्य अपने नेता के आदेशों का पालन आंख मूंद कर करते थे। नाजीदल के सदस्यों का चिन्ह स्वस्तिक (卐)

था। इस दल के सदस्यों को भूरे रंग की कमीज पहननी पड़ती थी। ये स्वयं सेवक थे। इनका काम दूसरे राजनीतिक दलों की सभाओं में गड़बड़ी पैदा करना था। हिटलर ने स्वयं सेवकों की रक्षा के लिए एक पुलिस दल का भी गठन किया। इस दल के सदस्य काले रंग की कमीज पहनते थे। ये काले रंग की कमीज पर सफेद खोपड़ी का चिन्ह लगाते थे। हिटलर ने अपनी पार्टी के कार्यक्रम तथा सिद्धान्तों का अपनी पुस्तक "मेरा संघर्ष" में वर्णन किया है।

9. नाजी आन्दोलन के नये तरीके—नाजी दल के सदस्यों ने चुनाव में नये-नये तरीके अपनाये। हिटलर ने स्थान-स्थान पर भाषण दिये और अपनी पार्टी के कार्यक्रम का जोर-शोर के साथ प्रचार किया। सभी स्थानों पर पोस्टर लगाये गये, जिनमें नाजीदल के कार्यक्रमों का उल्लेख होता था। नाजी दल के सदस्य हथियार सहित प्रदर्शन करते थे। जिससे विरोधी दल भयभीत हो गये।

10. चुनाव में सभी प्रकार के साधनों का उपयोग—नाजी दल के सदस्यों ने चुनाव में सभी प्रकार के तरीके अपनाए। इस दल के सदस्यों ने अपने विरोधियों को मौत के घाट उतार दिया अथवा उन्हें घायल कर दिया या उन्हें आतंकित कर दिया। नाजीदल ने मतदाताओं को भी आतंकित कर दिया और विरोधियों का मुँह बन्द कर दिया। इससे जनता को यह विश्वास हो गया कि नाजीदल वर्साय की संधि के अपमान का बदला लेने में समर्थ है और देश में शान्ति तथा समृद्धित्व ला सकता है।

11. हिटलर का असाधारण व्यक्तिगत—हिटलर के असाधारण व्यक्तित्व ने नाजीदल के उत्थान में महत्वपूर्ण योगदान दिया। वह राजनीति में चतुर तथा कूटनीतिज्ञ था। उसमें वे सभी गुण मौजूद थे, जो एक योग्य नेता में होने चाहिये। वह भाषण देने की कला में दक्ष था। उसने जोर-शोर के साथ अपने भाषणों में नाजी दल के प्रोग्राम और सिद्धान्तों का प्रचार किया। उसके कार्यक्रम जनता की आकांक्षाओं के अनुरूप थे। उसके भाषण को सुनने के लिये दूर-दूर से श्रोतागण आते थे और जो भी सुनता वह मुग्ध हो जाता था। हिटलर का प्रचार मन्त्री गोबुल्स कहा करता था कि "एक झूठ यदि सौ बार बोला जाय तो वह सच बन जाता है।"[1]

12. साम्यवादी विरोधी—हिटलर और नाजीदल के उत्थान का कारण जर्मनी में साम्यवाद का बढ़ता हुआ प्रभाव था। उसने साम्यवाद का विरोध किया। जिसके कारण इंगलैण्ड और फ्रांस आदि पूंजीपति देशों का मौन समर्थन प्राप्त हो गया। पूंजीपति देशों ने नाजीदल के उत्थान का विरोध नहीं किया।

13. मुसोलिनी की सफलता—इटली में मुसोलिनी को तानाशाह शासक के रूप में सफलता प्राप्त हो चुकी थी। अतः जर्मनी के सामने मुसोलिनी का उदाहरण

---

1. "A lie told hundred times, becomes truth." —Gobuls.

था। मुसोलिनी से प्रभावित होकर हिटलर ने भी जर्मनी में अधिनायक बनने का निश्चय किया।

14. जर्मनी में उस समय अन्य कोई राजनीतिक दल इतना संगठित नहीं था।

15. **तत्कालीन कारण**—1933 ई० में श्लीचर ने चांसलर के पद से त्यागपत्र दे दिया। तब राष्ट्रपति हिण्डेन बर्ग ने हिटलर को चाँसलर के पद पर नियुक्त किया। हिटलर ने सत्ता का दुरुपयोग किया और आतंकवादी कार्य किये। जिसके कारण नये चुनावों में उसके दल के सदस्यों को साधारण बहुमत प्राप्त हुआ। रीष्टांग की हार के बाद भी हिटलर ने सभी अधिकार अपने हाथ मे ले लिये और जर्मनी में तानाशाही शासन स्थापित कर दिया।

हिटलर ने तानाशाह बनने के पश्चात् सभी विरोधी दलो को भंग कर दिया। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता समाप्त कर दी गई। सभा, भाषण, प्रेस, रेडियो, सिनेमा और शिक्षा आदि पर नियन्त्रण लगा दिया गया। हिटलर ने यहूदियों और अपने विरोधियों का दमन करने के लिये कुछ शिविरो की स्थापना की, जहा उन्हे कठोर यातनाएँ दी जाती थी। उसने अपने विरोधियो को मार डाला। हिटलर ने अपने गुप्तचर विभाग (गेस्टापो) के द्वारा जर्मनी मे भय और आतक का शासन स्थापित कर दिया। इस प्रकार हिटलर जर्मनी का सर्वेसर्वा बन गया।

हिटलर की विदेश नीति—हिटलर की विदेश नीति के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित थे :—

(i) वर्साय की सधि को रद्द करना।

(ii) समस्त जर्मन जाति को एक सूत्र में बाधकर विशाल साम्राज्य की स्थापना करना।

(iii) जर्मनी की बढ़ती हुई जनसख्या को बसाने के लिये उपनिवेशों की स्थापना करना।

इन उद्देश्यों की प्राप्ति करने के लिये हिटलर ने जर्मनी की सैनिक शक्ति को सुदृढ बनाया। इसके अतिरिक्त उसने आक्रामक कार्यों को प्रोत्साहन देने वाले मित्रों की खोज प्रारम्भ कर दी। इस प्रकार उसकी विदेश नीति सैनिक शक्ति एवं साम्राज्यवाद पर आधारित थी।

2. **राष्ट्रसंघ का परित्याग**—हिटलर ने अपने उद्देश्यों की प्राप्ति करने के लिये जर्मनी की सैनिक शक्ति को मजबूत बनाना आवश्यक समझा। उसने राष्ट्रसघ द्वारा आयोजित निःशस्त्रीकरण सम्मेलन में भाग लिया। इस सम्मेलन मे हिटलर ने यह प्रस्ताव रखा कि यदि सभी देशो ने अपने शस्त्रों में कमी नहीं की, तो जर्मनी भी शस्त्रों में वृद्धि करेगा। यूरोप की महान् शक्तियों ने उसके प्रस्ताव को स्वीकार नही

लिया। इस पर हिटलर निःशस्त्रीकरण सम्मेलन से अलग हो गया और राष्ट्रसंघ की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया। हिटलर ने पश्चिमी राष्ट्रों को सन्तुष्ट करने के लिए अपनी दूसरी घोषणा में कहा कि जर्मनी अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को शान्तिपूर्ण ढग से निपटायेगा और शक्ति का आश्रय नहीं लेगा। इस घोषणा की पुष्टि में उसने पोलैण्ड के साथ 10 वर्ष के लिये अनाक्रमण समझौता कर लिया। इस समझौते के पीछे हिटलर का मुख्य उद्देश्य यह था कि वह पोलैण्ड की तरफ से चिन्ता मुक्त होकर आस्ट्रिया में अपने साम्राज्य का विस्तार कर सकता था। 1935 ई० में हिटलर ने जर्मनी में अनिवार्य सैनिक सेवा लागू कर दी।

2. आस्ट्रिया को हड़पने का असफल प्रयास—हिटलर आस्ट्रिया को हड़पना चाहता था। इसलिये उसने वहां के प्रधानमन्त्री डाल्फस का कत्ल करवा दिया। इसके पश्चात् उसने आस्ट्रिया के नाजियों से वहां की सरकार के विरुद्ध विद्रोह करवा दिया। आस्ट्रिया की सेना ने इस विद्रोह को कुचल दिया। हिटलर आस्ट्रियन नाजियों की सहायता के लिये जर्मन सेना भेजना चाहता था परन्तु मुसोलिनी के विरोध के कारण नहीं भेज सका। इस समय मुसोलिनी ने आस्ट्रिया की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए इटली की सेना भेजी। इसके अतिरिक्त उसने हिटलर को चेतावनी दी कि यदि उसने आस्ट्रिया पर अधिकार करने का प्रयास किया तो इटली उसके विरुद्ध युद्ध घोषित कर देगा। इसलिये हिटलर ने आस्ट्रिया के विरुद्ध कुछ भी कदम नहीं उठाया। इस प्रकार उसकी आस्ट्रिया पर अधिकार करने की योजना असफल रही परन्तु इस घटना ने हिटलर को मुसोलिनी की मित्रता का महत्व समझा दिया।

3. सार की प्राप्ति— 1 मार्च, 1935 ई० में वर्साय की सन्धि की शर्त के अनुसार सार प्रदेश में जनमत संग्रह किया गया। सार की अधिकांश जनता ने फ्रांस के विरुद्ध जर्मनी के साथ मिलने के पक्ष में मतदान किया। परिणामस्वरूप सार का प्रदेश पुनः जर्मनी में मिला लिया गया।

4. वर्साय की संधि की अवहेलना— 16 मार्च, 1935 ई० को हिटलर ने घोषणा की कि जर्मनी वर्साय की सधि की सैनिक व्यवस्थाओं का पालन करने के लिये बाध्य नहीं है। इसके पश्चात् उसने जर्मनी में अनिवार्य सैनिक सेवा लागू कर दी और जर्मनी की सैनिक शक्ति में वृद्धि करने लगा। इस प्रकार हिटलर ने वर्साय की सधि का उल्लंघन कर दिया।

5. ब्रिटेन और जर्मनी के बीच नौ सेना संधि—सार पर अधिकार करने के पश्चात् हिटलर जर्मनी का शस्त्रीकरण करने लगा। इससे इंगलैण्ड और फ्रांस चिन्तित हो उठे। ऐसे समय में हिटलर ने इंगलैण्ड को भुलावे में रखने के लिये उसके सामने एंगलो-जर्मन नौ सैनिक समझौते का प्रस्ताव रखा। इंगलैण्ड ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। दोनों देशों के बीच 18 जून, 1935 ई० को नौ सेना संधि हो गई। इस सधि के अनुसार ब्रिटेन ने जर्मनी को ब्रिटिश जल सेना के

था। मुसोलिनी से प्रभावित होकर हिटलर ने भी जर्मनी में अधिनायक बनने का निश्चय किया।

14. जर्मनी में उस समय अन्य कोई राजनीतिक दल इतना संगठित नही था।

15. तत्कालीन कारण—1933 ई० में श्लीचर ने चांसलर के पद से त्यागपत्र दे दिया। तब राष्ट्रपति हिण्डेन वर्ग ने हिटलर को चांसलर के पद पर नियुक्त किया। हिटलर ने सत्ता का दुरुपयोग किया और आतंकवादी कार्य किये। *जिसके कारण नये चुनावों मे उसके दल के सदस्यो को साधारण बहुमत प्राप्त* हुआ। रीष्टांग की हार के बाद भी हिटलर ने सभी अधिकार अपने हाथ में ले लिये और जर्मनी मे तानाशाही शासन स्थापित कर दिया।

हिटलर ने तानाशाह बनने के पश्चात् सभी विरोधी दलो को भंग कर दिया। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता समाप्त कर दी गई। सभा, भाषण, प्रेस, रेडियो, सिनेमा और शिक्षा आदि पर नियन्त्रण लगा दिया गया। हिटलर ने यहूदियो और अपने विरोधियो का दमन करने के लिये कुछ शिविरो की स्थापना की, जहा उन्हें कठोर यातनाऐं दी जाती थी। उसने अपने विरोधियों को मार डाला। हिटलर ने अपने गुप्तचर विभाग (गेस्टापो) के द्वारा जर्मनी मे भय और आतंक का शासन स्थापित कर दिया। इस प्रकार हिटलर जर्मनी का सर्वेसर्वा बन गया।

हिटलर की विदेश नीति—हिटलर की विदेश नीति के प्रमुख उद्देश्य निम्न-*लिखित थे :—*

(i) वर्साय की सधि को रद्द करना।

(ii) समस्त जर्मन जाति को एक सूत्र में बांधकर विशाल साम्राज्य की स्थापना करना।

(iii) जर्मनी की बढ़ती हुई जनसंख्या को बसाने के लिये उपनिवेशो की स्थापना करना।

इन उद्देश्यों की प्राप्ति करने के लिये हिटलर ने जर्मनी की सैनिक शक्ति को सुदृढ बनाया। इसके अतिरिक्त उसने आक्रामक कार्यों को प्रोत्साहन देने वाले मित्रो *की खोज प्रारम्भ कर दी। इस प्रकार उसकी विदेश नीति सैनिक शक्ति एवं साम्रा-*ज्यवाद पर आधारित थी।

2. **राष्ट्रसंघ का परित्याग**—हिटलर ने अपने उद्देश्यो की प्राप्ति करने के लिये जर्मनी की सैनिक शक्ति को मजबूत बनाना आवश्यक समझा। उसने राष्ट्रसघ द्वारा आयोजित निःशस्त्रीकरण सम्मेलन में भाग लिया। इस सम्मेलन मे हिटलर ने यह प्रस्ताव रखा कि यदि सभी देशो ने अपने शस्त्रों में कमी नहीं की, तो जर्मनी भी शस्त्रों में वृद्धि करेगा। यूरोप की महान् शक्तियों ने उसके प्रस्ताव को स्वीकार नही

किया। इस पर हिटलर निःशस्त्रीकरण सम्मेलन से अलग हो गया और राष्ट्रसंघ की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया। हिटलर ने पश्चिमी राष्ट्रों को सन्तुष्ट करने के लिए अपनी दूसरी घोषणा मे कहा कि जर्मनी अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को शान्तिपूर्ण ढंग से निपटायेगा और शक्ति का आश्रय नही लेगा। इस घोषणा की पुष्टि में उसने पोलेण्ड के साथ 10 वर्ष के लिये अनाक्रमण समझौता कर लिया। इस समझौते के पीछे हिटलर का मुख्य उद्देश्य यह था कि वह पोलैंण्ड की तरफ से चिन्ता मुक्त होकर आस्ट्रिया में अपने साम्राज्य का विस्तार कर सकता था। 1935 ई० में हिटलर ने जर्मनी में अनिवार्य सैनिक सेवा लागू कर दी।

2. आस्ट्रिया को हड़पने का असफल प्रयास—हिटलर आस्ट्रिया को हड़पना चाहता था। इसलिये उसने वहां के प्रधानमन्त्री डाल्फस का कत्ल करवा दिया। इसके पश्चात् उसने आस्ट्रिया के नाजियों से वहां की सरकार के विरुद्ध विद्रोह करवा दिया। आस्ट्रिया की सेना ने इस विद्रोह को कुचल दिया। हिटलर आस्ट्रियन नाजियों की सहायता के लिये जर्मन सेना भेजना चाहता था परन्तु मुसोलिनी के विरोध के कारण नही भेज सका। इस समय मुसोलिनी ने आस्ट्रिया की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए इटली की सेना भेजी। इसके अतिरिक्त उसने हिटलर को चेतावनी दी कि यदि उसने आस्ट्रिया पर अधिकार करने का प्रयास किया तो इटली उसके विरुद्ध युद्ध घोषित कर देगा। इसलिये हिटलर ने आस्ट्रिया के विरुद्ध कुछ भी कदम नही उठाया। इस प्रकार उसकी आस्ट्रिया पर अधिकार करने की योजना असफल रही परन्तु इस घटना ने हिटलर को मुसोलिनी की मित्रता का महत्व समझा दिया।

3. सार की प्राप्ति— 1 मार्च, 1935 ई० मे वर्साय की संधि की शर्त के अनुसार सार प्रदेश में जनमत संग्रह किया गया। सार की अधिकांश जनता ने फ्रांस के विरुद्ध जर्मनी के साथ मिलने के पक्ष में मतदान किया। परिणामस्वरूप सार का प्रदेश पुनः जर्मनी मे मिला लिया गया।

4. वर्साय की संधि की अवहेलना— 16 मार्च, 1935 ई० को हिटलर ने घोषणा की कि जर्मनी वर्साय की संधि की सैनिक व्यवस्थाओं का पालन करने के लिये बाध्य नही है। इसके पश्चात् उसने जर्मनी में अनिवार्य सैनिक सेवा लागू कर दी और जर्मनी की सैनिक शक्ति मे वृद्धि करने लगा। इस प्रकार हिटलर ने वर्साय की संधि का उल्लंघन कर दिया।

5. ब्रिटेन और जर्मनी के बीच नौ सेना संधि—सार पर अधिकार करने के पश्चात् हिटलर जर्मनी का शस्त्रीकरण करने लगा। इससे इंगलैण्ड और फ्रांस चिन्तित हो उठे। ऐसे समय में हिटलर ने इगलैण्ड को भुलावे में रखने के लिये उसके सामने एंगलो-जर्मन नौ सैनिक समझौते का प्रस्ताव रखा। इंगलैण्ड ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। दोनो देशों के बीच 18 जून, 1935 ई० को नौ सेना संधि हो गई। इस संधि के अनुसार ब्रिटेन ने जर्मनी को ब्रिटिश जल सेना के

35 प्रतिशत अनुपात से जल सेना रखने की स्वीकृति दे दी। यह समझौता करके इंगलैण्ड ने वर्साय की सन्धि को पंगु बना दिया।

6. **राइन प्रदेश पर अधिकार करना**—हिटलर लोकार्नो संधि की अवहेलना करके राइन प्रदेश पर अधिकार करना चाहता था। इस समय फ्रांस और चेकोस्लोवाकिया ने लोकार्नो की भावना के विरुद्ध रूस के साथ पारस्परिक सुरक्षा के समझौते पर हस्ताक्षर कर दिये। हिटलर ने इस समझौते का विरोध किया। इसके प्रत्युत्तर में 2 मार्च, 1936 ई० को उसने राइन लैण्ड पर अधिकार कर लिया। संसार को भुलावे में रखने के लिये हिटलर ने यह वायदा किया कि राइन लैण्ड मे शांति व्यवस्था स्थापित की जायेगी परन्तु उसने गुप्त रूप से इस प्रदेश में शस्त्रीकरण करना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रदेश पर जर्मनी का अधिकार हो जाने से जर्मन सेना को आक्रमण करने का मार्ग मिल गया।

रोम-बर्लिन-टोकियो धुरी—हिटलर ने ऐसे मित्रों की तलाश प्रारम्भ कर दी थी, जो आक्रामक नीति पर चलते हो। उसने इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए इटली और जापान के साथ मित्रता करने का निश्चय किया।

हिटलर 1934 ई० में मुसोलिनी के विरोध के कारण आस्ट्रिया पर अधिकार नहीं कर सका था परन्तु जब मुसोलिनी ने एबीसीनिया पर आक्रमण किया तो यूरोप के अधिकाश देश इटली का विरोध कर रहे थे। ऐसे समय में हिटलर ने मुसोलिनी का विरोध करने के स्थान पर उसका साथ दिया। इतना ही नहीं हिटलर ने मुसोलिनी की एबीसीनिया की विजय को मान्यता भी दे दी। जब राष्ट्रसघ ने इटली को आक्रान्त घोषित कर उसके विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्ध लगाये तो हिटलर ने राष्ट्रसघ के आदेश का उल्लघन करते हुए इटली को सहायता पहुँचाई। हिटलर ने मुसोलिनी की एबीसीनिया विजय को उचित मानते हुए एबीसीनिया मे मुसोलिनी की सरकार को मान्यता प्रदान की। हिटलर के इन उपकारो से प्रभावित होकर मुसोलिनी ने उससे मित्रता करने का निश्चय कर लिया। 1936 ई० में स्पेन के गृह युद्ध मे हिटलर ने मुसोलिनी को खुश करने के लिये जनरल फ्रेंको की सहायता की।

इन उपकारों से मुसोलिनी हिटलर का मित्र बन गया। हिटलर और मुसोलिनी के बीच अक्टूबर 1936 ई० मे एक गुप्त सधि हुई। जिससे रोम-बर्लिन धुरी का निर्माण हुआ। नवम्बर 1936 ई० मे हिटलर ने जापान के साथ एन्टी कोमिण्टर्न पैक्ट पर हस्ताक्षर कर दिये। यह सधि साम्यवादी रूस का विरोध करने के लिये की गई थी। हिटलर के अनुरोध पर 6 नवम्बर 1937 ई० को मुसोलिनी ने भी इस पैक्ट पर हस्ताक्षर कर दिये। इस प्रकार रोम-बर्लिन-टोकियो धुरी का निर्माण हुआ और जर्मनी-जापान और इटली ये तीनो ही राष्ट्र धुरी-राष्ट्र कहलाये।

ये तीनों धुरी राष्ट्र साम्यवाद विरोधी समझौते की आड में अपना साम्राज्य विस्तार करना चाहते थे। साम्यवाद विरोधी समझौते के कारण उन्हें पश्चिमी राष्ट्रों का मौन समर्थन प्राप्त हो गया, क्योंकि पश्चिमी राष्ट्र साम्यवाद से बहुत भयभीत थे। धुरी राष्ट्रों का यह समझौता रूस के अलावा इंगलैण्ड और फ्रांस के विरुद्ध भी था। इस समझौते के द्वारा हिटलर ने वर्साय की संधि के अपमान का बदला लेने का प्रयास किया। इस संधि के पश्चात् हिटलर ने आक्रामक नीति का पालन करना प्रारम्भ कर दिया।

7. आस्ट्रिया पर अधिकार—हिटलर ने इटली तथा जापान से समझौता करने के पश्चात् पुनः आस्ट्रिया को हड़पने का निश्चय किया। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उसने आस्ट्रिया मे नाजीदल का सगठन किया। इस दल ने हिटलर के इशारे पर स्थान-स्थान पर विध्वंसात्मक कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। इससे आस्ट्रिया की आन्तरिक स्थिति बिगड़ गई। 11 मार्च, 1938 ई० को जर्मनी की सेना ने बिना किसी चेतावनी के आस्ट्रिया पर आक्रमण कर दिया और उस पर अधिकार कर लिया। हिटलर ने आस्ट्रिया की ससद को भग कर दिया। इसके पश्चात् जनमत सग्रह के आधार पर आस्ट्रिया को जर्मनी मे मिलाने का निश्चय किया गया। हिटलर ने जनमत संग्रह करवाया। आस्ट्रिया की 88.65 प्रतिशत जनता ने जर्मनी के साथ मिलने के पक्ष में मतदान किया। हिटलर ने आस्ट्रिया को जर्मनी मे सम्मिलित कर लिया। इस प्रकार उसने आस्ट्रिया पर अधिकार कर लिया।

8. म्युनिख समझौता (29 सितम्बर 1938 ई०)—आस्ट्रिया पर अधिकार करने के पश्चात् हिटलर ने चेकोस्लोवाकिया पर अधिकार करने का निश्चय किया। इसका कारण यह था कि चेकोस्लोवाकिया मे 32,31,600 व्यक्ति जर्मन जाति के थे। चेकोस्लोवाकिया के सूडेटनलैण्ड के क्षेत्र मे जर्मन जाति के लोग बहुत अधिक सख्या में निवास करते थे। चेकोस्लोवाकिया के जर्मन नागरिकों ने सरकार के समक्ष ऐसी मांगें रखी, जिनको स्वीकार करना उसके लिये असम्भव था परन्तु हिटलर ने उनकी मांगों का समर्थन किया और चेकोस्लोवाकिया की सरकार को चेतावनी दी कि यदि जर्मन नागरिकों की मांगे स्वीकार नहीं की गई तो जर्मनी चेकोस्लोवाकिया पर आक्रमण कर देगा।

अन्त में इस समस्या को हल करने के लिये म्युनिख में एक सम्मेलन आयोजित किया गया। इसमें इंगलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी और इटली आदि देशों ने भाग लिया। परन्तु इस समस्या से सम्बन्धित देश चेकोस्लोवाकिया को और उसके समर्थक देश रूस को इस सम्मेलन में नहीं बुलाया गया। इस सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य यह था कि हिटलर की साम्राज्यवादी नीति पर अंकुश लगा दिया परन्तु इंगलैण्ड और फ्रांस ने इस सम्मेलन मे हिटलर के प्रति तुष्टीकरण की नीति अपनाई। 29 सितम्बर

1938 ई० को म्यूनिख में उपस्थित चारों देशों ने एक संधि पर हस्ताक्षर किये, जिसे म्यूनिख समझौता कहते हैं। इस समझौते में निम्नलिखित निर्णय लिये गये—

(i) सूडेटन लैण्ड पर जर्मनी को अधिकार दे दिया गया।

(ii) हिटलर ने आश्वासन दिया कि वह अब चेकोस्लोवाकिया के किसी भी भाग पर अधिकार नहीं करेगा।

*(iii) हिटलर ने चेम्बरलेन तथा दलादियर को यह वचन दिया कि सूडेटन-*लैण्ड लेने के पश्चात् अन्य किसी प्रदेश पर अधिकार करने का प्रयास नही करेगा।

म्यूनिख समझौता हिटलर की एक महान् कूटनीतिक विजय थी। इस समझौते से इंगलैण्ड और फ्रांस की दुर्बलता स्पष्ट हो गई परन्तु हिटलर की साम्राज्यवादी लालसा शान्त न हुई और धीरे-धीरे उसने सम्पूर्ण चेकोस्लोवाकिया पर अधिकार कर लिया।

9. मेमल पर अधिकार—हिटलर ने 21 मार्च 1939 ई० को लिथुआनिया से मेमल प्रदेश देने की माग की। लिथुआनिया ने पश्चिमी देशों की सहायता के अभाव में मेमल प्रदेश हिटलर को दे दिया। हिटलर को मेमल जैसा उपजाऊ प्रदेश प्राप्त हो गया।

10. रूस के साथ समझौता (23 अगस्त 1939)—अब हिटलर पोलैंड पर अधिकार करना चाहता था परन्तु उसे भय था कि रूस पोलैंण्ड की सहायता कर सकता है। इसलिये उसने रूस से सधि वार्ता प्रारम्भ की। इस समय पश्चिमी देश भी जर्मनी के विरुद्ध रूस का सहयोग प्राप्त करने का प्रयास कर रहे थे परन्तु सफलता हिटलर को मिली। 23 अगस्त 1939 ई० मे रूस और जर्मनी के बीच मे अनाक्रमण सधि हुई। इसके अतिरिक्त हिटलर ने रूस के साथ एक गुप्त सधि भी की, जिसके अनुसार यह निश्चय किया गया कि दोनों ही देश पूर्वी यूरोप पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् आपस मे प्रदेश बाट लेंगे।

11. पोलैण्ड पर आक्रमण (1939 ई०)—रूस से समझौता करने के पश्चात् हिटलर ने 28 अप्रैल, 1939 ई० को पोलैण्ड से डांजिग बन्दरगाह की माग की। इंगलैण्ड और फ्रांस ने पोलैण्ड की सहायता करने का वचन दिया था, इसलिये उसने हिटलर की माग को ठुकरा दिया। इस कारण (एक) सितम्बर 1939 ई० में हिटलर ने बिना चेतावनी दिये पोलैण्ड पर आक्रमण कर दिया। इंगलैण्ड और फ्रांस ने हिटलर को चेतावनी दी कि यदि उसने पोलैण्ड से अपनी सेनाएँ नही हटाई तो वे उसके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर देंगे। हिटलर ने पोलैण्ड से सेना हटाने से इन्कार कर दिया। अब इंगलैण्ड और फ्रांस के समक्ष युद्ध के अलावा अन्य कोई विकल्प नही था। इसलिये उन्होने 3 सितम्बर 1939 ई० को जर्मनी के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया। इस प्रकार द्वितीय विश्व-युद्ध प्रारम्भ हो गया। युद्ध के प्रारम्भ मे

जर्मनी को शानदार सफलताएँ मिली परन्तु अन्त में उसकी पराजय हुई। हिटलर अपनी आंखों से जर्मनी की पराजय नहीं देखना चाहता था इसलिये उसने आत्महत्या कर ली। हिटलर की मृत्यु तथा जर्मनी की पराजय के साथ ही जर्मनी में तानाशाही शासन की समाप्ति हो गई।

द्वितीय विश्व युद्ध के कारण—प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के पश्चात् पेरिस शांति सम्मेलन मे मार्शल फोच ने यह भविष्यवाणी की थी कि वर्साय की संधि 20 वर्ष के लिये युद्ध-विराम संधि है। वास्तव में मार्शल फोच की भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई और ठीक 20 वर्ष बाद ही द्वितीय विश्व-युद्ध प्रारम्भ हो गया और विश्व-शांति के सभी प्रयास असफल रहे। मैक्नेल बर्नस ने लिखा है कि "सितम्बर 1939 ई० में यूरोप पुनः एक अथाह खड्डे की सतह पर कूद पड़ा। 1919-1920 की संधि एक युद्ध विराम में परिणित हो गई और असंख्य लोग एक ऐसे संघर्ष में जकड़ गये जो पिछले सभी विनाशकारी युद्धों से भयानक था।"[1] एलिस और जौन ने लिखा है कि "दुनियां अभी प्रथम महायुद्ध के राष्ट्रों से नहीं उभर पाई थी कि दूसरा विश्व-युद्ध शुरू हो गया। दुनियां की घटनाओं का अध्ययन करने वाले छात्रों के लिये यह युद्ध अप्रत्याशित नही था। दरअसल जो घटनाएँ कई वर्षों से जमा होती आ रही थी उनके परिणामस्वरूप 1 सितम्बर, 1939 को प्रथम हमला शुरू हो गया।"[2] 1 सितम्बर, 1939 को प्रारम्भ होने वाले द्वितीय विश्व-युद्ध के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे :—

1. वर्साय की संधि के प्रति असंतोष प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के पश्चात् मित्र राष्ट्रों ने पेरिस शांति सम्मेलन में जर्मनी को वर्साय की संधि पर हस्ताक्षर करने के लिये बाध्य किया। यह संधि जर्मनी के सिर पर कलंक का टीका थी। इस संधि की अपमानजनक शर्तों का पालन करना जर्मनी जैसे स्वाभिमानी राष्ट्र के लिए असम्भव था। मित्र राष्ट्रों ने पेरिस शांति सम्मेलन में जर्मनी के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया।

इस संधि पर हस्ताक्षर करते समय जर्मन प्रतिनिधियों के साथ अपराधियों की भांति व्यवहार किया गया। संधि की शर्तें एक पक्षीय थी। पराजित राष्ट्रों पर तो बहुत अधिक शर्तें लाद दी गई किन्तु विजेताओं को उनसे मुक्त रखा गया। जर्मनी पर युद्ध हर्जाने की भारी राशि लाद दी गई, जिसको चुकाना उसके लिये असम्भव था। जर्मनी के सभी उपनिवेशों पर मित्र राष्ट्रों ने अधिकार कर लिया। उसका निशस्त्रीकरण कर दिया गया। जर्मनी के सार के प्रदेश को छीनना, राइनलैण्ड में

1—मैक्नेल बर्नस-वैस्टर्न सिवलीजेशन्स पृष्ठ 805

2—एलिस और जोन—संसार का इतिहास—पृष्ठ 542

मित्र राष्ट्रों की सेनाएँ रखना और युद्ध के लिये जर्मनी को दोषी मानना आदि जर्मनी का प्रबल राष्ट्रीय अपमान था। जर्मनी की जनता इस अपमानजनक संधि का बदला लेना चाहती थी। जब हिटलर ने इस संधि को रद्द करने का आश्वासन दिया तो जनता ने उसका समर्थन किया। हिटलर ने चासलर बनने के बाद यह घोषणा की थी कि "जर्मनी वर्साय की आरोपित संधि की किसी भी शर्त के अनुकूल कार्य करने के लिये बाध्य नही है।"

इस प्रकार हिटलर ने चांसलर बनने के बाद वर्साय की संधि की शर्तों का खुले *आम उल्लघन करना प्रारम्भ कर दिया, जिसका परिणाम द्वितीय विश्व-युद्ध के* रूप मे प्रकट हुआ। पेरिस शाति सम्मेलन मे जापान तथा जर्मनी की मांगें मित्र राष्ट्रो ने स्वीकार नही की। इसलिये ये दोनों देश भी इस सम्मेलन के निर्णयों से असंतुष्ट थे। परिणामस्वरूप इन दोनों देशों मे अधिनायकवाद का जन्म हुआ।

2. **राष्ट्रसंघ की असफलता**—राष्ट्रसघ की असफलता भी द्वितीय विश्व-युद्ध का कारण बनी। राष्ट्रसंघ की स्थापना विश्व मे शाति स्थापित करने के लिये की गई थी परन्तु उसे अपने उद्देश्य मे सफलता नही मिल सकी क्योंकि अमेरिका जैसा बडा राष्ट्र इसका सदस्य नही था। इसके अतिरिक्त पराजित राष्ट्र जर्मनी और सोवियत सघ को इसका सदस्य नही बनाया गया। परिणामस्वरूप राष्ट्रसंघ केवल विजेता राष्ट्रों का संघ बन गया जिसका एकमात्र उद्देश्य पेरिस शांति सम्मेलन में हुई संधियो का सम्बन्धित राष्ट्रो से पालन करवाना था।

इस प्रकार राष्ट्रसघ लुटेरो और डाकुओं की एक ऐसी संस्था थी, जिसमें प्रत्येक राष्ट्र अपने व्यक्तिगत लाभ के पीछे था। राष्ट्रसंघ छोटे-छोटे राष्ट्रो के विवादों को सुलझाने मे सफल रहा परन्तु बडे राष्ट्रो के विवादो को सुलझाने मे उसे सफलता नही मिली। इसका कारण यह था कि उसके पास अन्तर्राष्ट्रीय सेना का अभाव था। इसलिये वह जापान द्वारा मंचूरिया पर किये गये आक्रमण को इटली द्वारा एबीसीनिया पर किये गये आक्रमण को एव हिटलर द्वारा वर्साय की सधि को रद्द करने के लिये उठाये गये कदम को रोकने मे असफल रहा। छोटे-छोटे राष्ट्रो का राष्ट्रसंघ से विश्वास समाप्त हो गया। इसलिये उन्होने अपनी सुरक्षा के लिये सैनिक संधियां करनी प्रारम्भ कर दी। परिणामस्वरूप समस्त संसार पुन: दो सशस्त्र शिविरों मे विभक्त हो गया। यूरोप मे शस्त्रीकरण की होड़ से सैनिकवाद का जन्म हुआ जिसका परिणाम द्वितीय विश्व-युद्ध के रूप में प्रकट हुआ।

3. **निशस्त्रीकरण की असफलता**—मित्र राष्ट्रों ने वर्साय की सधि के द्वारा जर्मनी का तो निशस्त्रीकरण कर दिया था परन्तु अपनी सैन्य शक्ति पर किसी भी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगाया था। अब मित्र राष्ट्र अपनी सैनिक शक्ति मे वृद्धि करते रहे तो इससे अन्य राष्ट्रों मे सदेह तथा भय की वृद्धि हुई। प्रथम विश्व-युद्ध की

समाप्ति के पश्चात् राष्ट्रसंघ के तत्वाधान में तथा बाहर मित्र राष्ट्रों ने निशस्त्रीकरण के लिये कई सम्मेलन प्रायोजित किये परन्तु वे असफल रहे।

जर्मनी और रूस ने कई बार निशस्त्रीकरण का प्रस्ताव रखा परन्तु फ्रांस और इंगलैण्ड के विरोध के कारण उसे सफलता नहीं मिली। इसका कारण यह था कि फ्रांस अपनी सुरक्षा पहले और निशस्त्रीकरण बाद में चाहता था। इसी प्रकार इंगलैण्ड अपनी नौ-सैनिक शक्ति को कम करने के लिये तैयार नहीं था। जब राष्ट्रसंघ विश्व के शक्तिशाली राष्ट्रों का निशस्त्रीकरण नहीं कर सका तो अन्य राष्ट्रों ने भी अपनी सैन्य शक्ति में वृद्धि करना प्रारम्भ कर दिया। ऐसे समय में हिटलर ने भी जर्मनी की सैन्य शक्ति में वृद्धि करनी शुरू कर दी। जापान जर्मनी और इटली की आक्रामक कार्यवाहियों से घबराकर सभी देशों ने अपनी सैन्य शक्ति में तेजी के साथ वृद्धि करना प्रारम्भ किया। इससे यूरोप में शस्त्रीकरण की होड़ प्रारम्भ हो गई, जिसका अन्तिम परिणाम द्वितीय विश्व-युद्ध हुआ।

4. तुष्टीकरण की नीति—इंगलैण्ड और फ्रांस की तुष्टीकरण की नीति भी द्वितीय विश्व-युद्ध का कारण बनी। म्युनिख समझौते में यह नीति अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई थी। इंगलैण्ड का प्रधान मन्त्री चेम्बरलेन इस तुष्टीकरण की नीति का जन्मदाता था। उसका मानना था कि यदि हिटलर और मुसोलिनी की छोटी-छोटी मांगों को स्वीकार कर लिया तो वे सन्तुष्ट हो जायेंगे। इससे युद्ध को टाला जा सकेगा। चेम्बरलेन की इस नीति को तुष्टीकरण की नीति कहा जाता है। इस नीति के अपनाने के कुछ अन्य कारण निम्नलिखित थे :—

(i) इंगलैण्ड एक पूंजीपति देश था। उसे सबसे ज्यादा खतरा साम्यवाद से था। उसकी विदेश नीति का मुख्य उद्देश्य साम्यवाद के प्रसार को रोकना था। इंगलैण्ड साम्यवाद का विरोध करने वाले प्रत्येक देश को सहायता करने के लिये तैयार था। चाहे वह राष्ट्र शांति संधियों का उल्लंघन ही क्यों न करे। साम्यवाद विरोधी देशों को इंगलैण्ड सब प्रकार की छूट देने के लिये तैयार था। इटली, जर्मनी और जापान ने इंगलैण्ड की इस कमजोरी का लाभ उठाया। उन्होंने अपने आपको साम्यवाद विरोधी घोषित करते हुए खुले आम शांति संधियों का उल्लंघन किया। इतना ही नहीं उन्होंने दूसरे राज्यों को हड़पने का सफल प्रयास भी किया।

(ii) इंगलैण्ड ने अपनी आर्थिक नीति के कारण भी जर्मनी के प्रति तुष्टीकरण की नीति अपनाई। इंगलैण्ड जानता था कि युद्ध के पूर्व जर्मनी उसका बहुत बड़ा ग्राहक था। युद्ध के पश्चात् भी इंगलैण्ड के लिये जर्मनी बहुत अच्छा ग्राहक सिद्ध हो सकता था। इसलिये उसने

व्यापारिक हित को ध्यान में रखते हुए जर्मनी के प्रति उदार रुख अपनाये रखा।

(iii) चेम्बरलेन हिटलर के असली रूप को नही पहचान सका। उसे यह विश्वास हो गया था कि यदि हिटलर की माँग पूरी कर दी गई तो वह फिर दुबारा मांग नही करेगा। हिटलर की यह विशेषता थी कि वह जब कभी किसी संधि का उल्लघन करता या किसी प्रदेश की *माग करता तो यह वायदा करता था कि इसके बाद इसकी कोई* महत्वाकाक्षा नही है और अब वह सतुष्ट है। चेम्बरलेन ने यहीं पर हिटलर को समझने मे भूल की थी। ज्यो-ज्यों वह हिटलर को सन्तुष्ट करता गया त्यो-त्यों उसकी तृष्णा बढती गई। यदि प्रारम्भ मे ही उनके प्रति तुष्टीकरण की नीति नही अपनाई जाती और शक्ति से उनको दबाया जाता तो आज का इतिहास ही दूसरा होता।

(iv) इंगलैण्ड शक्ति सन्तुलन को बनाये रखना चाहता था। जबकि फ्रांस ने अपने को सब तरह से सुरक्षित करके यूरोप का सबसे अधिक शक्ति शाली राष्ट्र बनने का प्रयास किया। इसलिये दोनों महायुद्धो के बीच इंगलैण्ड और फ्रांस के बीच मतभेद बने रहे। ब्रिटेन न तो फ्रांस की भांति जर्मनी को क्षीण बनाना चाहता था और न ही फ्रांस को शक्तिशाली देखना चाहता था। इसलिये जहा फ्रांस ने जर्मनी को पंगु बनाने का प्रयास किया, इंगलैण्ड ने इसका विरोध किया। वह जर्मनी को आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ बनाना चाहता था। हिटलर के उत्कर्ष के पश्चात् भी फ्रांस और इंगलैण्ड के बीच मतभेद बने रहे।

1930 ई० के बाद शक्ति सन्तुलन बिगड जाने से ब्रिटेन ने जर्मनी के प्रति उदारवादी तुष्टीकरण की नीति अपनाई। शक्ति सन्तुलन बिगडने का मुख्य कारण *यह था कि साम्यवाद का तेजी से प्रसार होता जा रहा था। इस समय इटली, जर्मनी* और जापान भी काफी शक्तिशाली बन चुके थे। इसलिये ब्रिटेन ने साम्यवाद के विरुद्ध तानाशाहो को खडा किया। उसका यह मानना था कि या तो रूस और जर्मनी *एक दूसरे पर नियन्त्रण बनाये रखेंगे अथवा लडने-लडते दोनों की शक्ति समाप्त हो* जायेगी। इसलिये ब्रिटेन ने हिटलर के प्रति तुष्टिकरण की नीति अपनाई। जिसके फलस्वरूप हिटलर को वर्साय की संधि की धाराओं का उल्लंघन करने में सफलता मिली। *ब्रिटेन और फ्रांस के मतभेदों का लाभ उठाकर धुरी राष्ट्र दिन प्रतिदिन शक्तिशाली बनते गए। जापान ने मचूरिया पर, इटली ने एबीसीनिया* पर और जर्मनी ने आस्ट्रिया पर अधिकार कर लिया और रूस की इच्छा के विरुद्ध चेकोस्लोवाकिया के बँटवारे का उल्लंघन किया। धुरी राष्ट्रो ने खुले आम राष्ट्रसंघ के आदेशों की अवहेलना की और राष्ट्रसंघ इनके विरुद्ध कुछ भी कार्यवाही नही कर सका। धुरी राष्ट्रों की अग्रगामी नीति का परिणाम *द्वितीय* विश्व-युद्ध हुआ।

5. तानाशाही का उदय और उनकी विस्तारवादी नीतियां—प्रथम विश्व-युद्ध की समाप्ति के पश्चात् जर्मनी, आस्ट्रिया और हंगरी में जबरन प्रजातन्त्रात्मक शासन व्यवस्था की स्थापना की गई थी। इस नवीन शासन व्यवस्था के विरुद्ध प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक था। परिणामस्वरूप जर्मनी में नाजीवाद, इटली में फासिस्टवाद, रूस मे साम्यवाद और जापान में सैनिकवाद का उदय हुआ। हिटलर, मुसोलिनी और जनरल फ्रेंको जैसे तानाशाहों के उदय के कारण विश्व-शांति खतरे में पड़ गई क्योंकि ये अधिनायक सिद्धान्ततः युद्ध को अनिवार्य मानते थे।

ब्रिटेन, फ्रांस व अमेरिका विशाल औपनिवेशिक साम्राज्य के स्वामी थे, जबकि जर्मनी, जापान और इटली के पास उपनिवेश नहीं थे क्योंकि ये देश उपनिवेशों की दौड़ में देर से शामिल हुए थे। ये तीनों राष्ट्र भी अपने लिए नवीन उपनिवेश चाहते थे, ताकि अपना माल वहां बेच सकें, और वहां से कच्चा माल सस्ती दरों पर प्राप्त कर सकें। इसके अतिरिक्त अपनी बढ़ती हुई जनसंख्या को वहा बसा सकें। इन तीनों धुरी राष्ट्रों ने उपनिवेशों की स्थापना के लिये विस्तारवादी नीति को अपनाया। इसलिये इनका उन राज्यों से संघर्ष होना स्वाभाविक था, जो पहले से विशाल साम्राज्य के स्वामी थे।

6. धुरी राष्ट्रों में उग्र राष्ट्रवाद और सैनिकवाद—धुरी राष्ट्रों का (जापान, जर्मनी और इटली) उग्र राष्ट्रवाद और प्रबल सैनिकवाद द्वितीय विश्व युद्ध का कारण बना। जर्मनी वर्साय की संधि के अपमान का बदला लेना चाहता था। हिटलर ने इस कलंक को धो डालने का वायदा किया। इससे नाजीदल जर्मनी में बहुत शीघ्र लोकप्रिय हो गया। नाजीदल ने जर्मनी मे "करो या मरो" का नारा प्रचलित किया। हिटलर ने जर्मनी मे अनिवार्य सैनिक सेवा लागू की और आस्ट्रिया को हड़प लिया। उसने चेकोस्लोवाकिया पर भी अधिकार कर लिया। हिटलर ने जर्मन जनता को विश्वास दिला दिया कि "मेरे समय मे युद्ध छिड़ जाना चाहिये।" जर्मनी के उग्रराष्ट्रवाद और हिटलर की आक्रमणी नीति ने द्वितीय विश्व-युद्ध को अवश्यम्भावी कर दिया।

जर्मनी की भांति इटली व जापान में भी उग्रराष्ट्रवाद और सैनिकवाद का उदय हुआ। मुसोलिनी युद्ध का पुजारी था। उसके लिये युद्ध जीवन और शांति मृत्यु थी। जापान के नेता भी उग्र सैनिकवादी थे। इन तीनों धुरी राष्ट्रों के उग्र राष्ट्रवाद और सैनिकवाद के कारण अन्तर्राष्ट्रीय शांति खतरे मे पड़ गई और विश्व-युद्ध अनिवार्य हो गया। प्रसिद्ध इतिहासकार टायनबी ने लिखा है कि "उग्र राष्ट्रवादिता मनुष्य का बड़ा शत्रु है, जिसका दो शताब्दी तक दुरुपयोग किया गया और जिसके फलस्वरूप द्वितीय विश्व-युद्ध हुआ।"

7. धुरी राष्ट्रों की आर्थिक आवश्यकताएँ—जर्मनी, जापान, और इटली ने अपने तैयार माल को बेचने के लिये एवं कच्चे माल की प्राप्ति के लिये बाजारों की

खोज करनी प्रारम्भ कर दी। इसके अतिरिक्त अपनी बढ़ती हुई जनसंख्या को बसाने के लिये उन्होंने उपनिवेशों की स्थापना करने का निश्चय किया। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये धुरी राष्ट्रों ने साम्राज्यवादी नीति अपनाई। तीनों ही धुरी राष्ट्रों के उद्देश्य एक समान होने से ये मित्रता के सूत्र में बंध गये और पारस्परिक सहयोग से अपनी साम्राज्यवादी आकांक्षाओं की पूर्ति में लग गये। इससे द्वितीय विश्व-युद्ध प्रारम्भ हो गया। जापान ने मंचूरिया पर इटली ने एबीसीनिया पर विजय प्राप्त की। जर्मनी ने आस्ट्रिया और चेकोस्लोवाकिया पर अधिकार कर लिया। जब हिटलर ने पोलैण्ड पर आक्रमण किया तो विश्व-युद्ध प्रारम्भ हो गया।

8. विभिन्न अल्पसंख्यक जातियों का असंतोष—पेरिस शान्ति सम्मेलन में मित्र-राष्ट्रों ने "आत्म-निर्णय" के सिद्धान्तों का पालन करने का आश्वासन दिया था परन्तु अनेक स्थानों पर इस सिद्धान्त का पालन नहीं किया गया। वर्साय की संधि और बाद में अन्य कई संधियों द्वारा अल्पसंख्यक जातियों का निर्माण किया गया। इसमें अनेक स्थानों पर एक दूसरे की विरोधी अल्पसंख्यक जातियों को एक ही शासन के अधीन रखा गया। एक ही राष्ट्रीयता के व्यक्तियों को दूसरे देशों में अल्पसंख्यक जाति की तरह रखा गया। इसका परिणाम यह हुआ कि अनेक देशों में बसी हुई अल्पसंख्यक जातियों में असंतोष बढ़ता गया। हिटलर ने इस असंतोष का लाभ उठाते हुए आस्ट्रिया और सूडान पर अधिकार कर लिया। इसके पश्चात् उसने पोलैण्ड पर आक्रमण कर दिया।

9. आर्थिक संकट (1929-30 ई०)—1930 ई० में सम्पूर्ण विश्व में आर्थिक संकट छा गया। इसका अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। इस आर्थिक संकट के कारण जर्मनी में नाजीवाद का उत्कर्ष संभव हो सका। इटली में फासिस्टवाद तथा यूरोप के अन्य देशों में साम्यवाद का तेजी के साथ प्रसार होने लगा। आर्थिक संकट से मुक्ति पाने के लिये सभी देशों ने विदेशी माल पर भारी आयात कर लगा दिये। इसका परिणाम यह हुआ कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार ठप्प हो गया। ऐसी स्थिति में जर्मनी, जापान और इटली ने अपने तैयार माल को बेचने के लिये एवं कच्चे माल को प्राप्त करने के लिये साम्राज्यवादी नीति अपनाई। इस नीति पर चलते हुए जापान ने 1931 ई० में मंचूरिया पर और इटली ने 1935 ई० में एबीसीनिया पर आक्रमण कर दिया। इन आक्रमणों ने विश्व को द्वितीय महायुद्ध की ओर ढकेल दिया।

10. संधियों की असफलता—वर्साय और पेरिस की शान्ति संधियों के द्वारा भविष्य में युद्ध की सम्भावनाओं को टालने का प्रयास किया था। सभी राष्ट्रों ने यह स्वीकार किया था कि वे अधिक युद्धोपयोगी सामग्री अपने पास नहीं रखेंगे। मित्र राष्ट्रों ने जर्मनी का निरस्त्रीकरण तो कर दिया, लेकिन अपनी सैन्य शक्ति में कमी करने के स्थान पर वृद्धि करनी प्रारम्भ कर दी। इस तरह संधि के निर्माताओं ने ही

संधि को अमान्य कर दिया। जब हिटलर का उदय हुआ तो उसने साफ कहा कि जर्मनी वर्साय की संधि का पालन करने के लिये बाध्य नहीं है। मित्रराष्ट्र हिटलर की इस चुनौती का जवाब नहीं दे सके। अतः हिटलर ने उनकी कमजोरियों का फायदा उठाया, जिससे द्वितीय विश्व-युद्ध अवश्यम्भावी हो गया।

11. रोम-बर्लिन-टोकियो धुरी का निर्माण—प्रथम विश्व-युद्ध की भांति द्वितीय विश्व-युद्ध के प्रारम्भ होने से पहले सम्पूर्ण संसार दो परस्पर विरोधी गुटों मे विभाजित हो गया। 1937 ई० मे रोम-बर्लिन टोकियो धुरी का निर्माण हुआ। इससे यूरोप दो गुटों में विभाजित हो गया। एक गुट धुरी राष्ट्रों का, दूसरा मित्र राष्ट्रों का था। एक तरफ जर्मनी, जापान और इटली ये तीनों राष्ट्र धुरी राष्ट्र कहलाये, जो कभी सन्तुष्ट होने वाले नहीं थे। दूसरा गुट मित्र राष्ट्रों का था। इस गुट में इंगलैण्ड, फ्रांस और अमेरिका आदि थे। रूस ने युद्ध के आरम्भ मे जर्मनी का साथ दिया परन्तु बाद में मित्र राष्ट्रों मे जाकर मिल गया और युद्ध के अन्त तक उनके साथ रहा। ब्रिटेन और फ्रांस ने जैसे ही पोलैण्ड की रक्षा के लिये युद्ध की घोषणा की, वैसे ही द्वितीय विश्व-युद्ध प्रारम्भ हो गया।

12. अमेरिका का विश्व युद्ध की राजनीति में भाग न लेना—प्रथम विश्व-युद्ध की समाप्ति के पश्चात् अमेरिका पृथकता की नीति का पालन कर रहा था। इसलिये उसने विश्व राजनीति मे हस्तक्षेप नहीं किया। यदि अमेरिका राष्ट्रसंघ का सदस्य बनकर समस्याओं को सुलझाने में अपना सहयोग प्रदान करता तो सम्भवतः जर्मनी, जापान और इटली इतने आगे नहीं बढ़ पाते। अमेरिका धुरी राष्ट्रों की शक्ति पर अंकुश लगा सकता था।

13. घटनाक्रमों से सम्बन्धित—

(i) जापान ने 1931 ई० में चीन के मंचूरिया प्रदेश पर आक्रमण कर दिया और राष्ट्रसंघ के आदेश की अवहेलना करते हुए 1931-32 में सम्पूर्ण मंचूरिया पर अधिकार कर लिया और वहां पर अपनी कठपुतली सरकार स्थापित कर दी।

(ii) 1935 ई० में इटली ने एबीसीनिया पर आक्रमण कर दिया और राष्ट्रसंघ के आदेश की अवहेलना करते हुए 1936 ई० मे एबीसीनिया पर अधिकार कर लिया।

(iii) हिटलर ने खुले आम वर्साय की संधि की धाराओं का उल्लंघन किया और उसने राष्ट्रसंघ की सदस्यता से त्यागपत्र दिया। जापान तथा इटली से संधि करने के पश्चात् हिटलर ने आस्ट्रिया को हड़प लिया। इसके पश्चात् हिटलर ने चेकोस्लोवाकिया में बहुसंख्यक जर्मन प्रदेश सुडेटनलैण्ड की मांग की। इस पर इंगलैण्ड और फ्रांस ने म्युनिख समझौते के अनुसार हिटलर को सुडेटनलैण्ड का प्रदेश दे दिया। उसने

म्युनिख समझौते का उल्लंघन करते हुए सम्पूर्ण चेकोस्लोवाकिया पर अधिकार कर लिया।

(iv) 1936 ई० मे जनरल फ्रेंको ने स्पेन की गणतन्त्रीय सरकार के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। इससे स्पेन में गृह-युद्ध प्रारम्भ हो गया। यद्यपि इंगलैण्ड और फ्रांस की सहानुभूति स्पेन की गणतन्त्रीय सरकार के साथ थी परन्तु उन्होंने किसी प्रकार की सहायता नही देने का निश्चय किया। जबकि इंगलैण्ड और फ्रांस के विरोध मे हिटलर तथा मुसोलिनी ने जनरल फ्रेंको को खुलकर सक्रिय सहायता पहुंचाई। जिसके परिणामस्वरूप फ्रेंको ने स्पेन के प्रजातन्त्र को समाप्त कर तानाशाही शासन स्थापित कर दिया। गृह-युद्ध मे जनरल फ्रेंको की विजय से फासिस्ट शक्तियो का साहस बढा। अब वे इंगलैण्ड और फ्रांस की धमकियों को कोरी गीदड भभकी समझने लगे। इसलिये वे अग्रगामी नीति का पालन करते रहे। जिसके फलस्वरूप द्वितीय विश्व-युद्ध प्रारम्भ हो गया।

14. **हिटलर का पोलैण्ड पर आक्रमण**—द्वितीय विश्व-युद्ध का तात्कालीन कारण हिटलर द्वारा पोलेण्ड पर आक्रमण करना था। हिटलर ने पोलैण्ड से डानजिग बन्दरगाह की मांग की। इंगलैण्ड और फ्रांस ने पोलैण्ड की सुरक्षा का वचन दे रखा था, इसलिये उसने हिटलर की मांग को ठुकरा दिया। इस पर 1 सितम्बर 1939 ई० को जर्मनी ने पोलैण्ड पर आक्रमण कर दिया। इसलिए इंगलैण्ड और फ्रांस ने हिटलर को चेतावनी दी कि यदि उसने 48 घंटे में पोलैण्ड से अपनी सेनाएँ नही हटाई तो वे उसके विरुद्ध युद्ध घोषित कर देंगे परन्तु हिटलर ने पोलैण्ड से सेना हटाने से इन्कार कर दिया। इस पर 3 सितम्बर 1939 ई० को इंगलैण्ड और फ्रांस ने पोलैण्ड की तरफ से जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इस प्रकार द्वितीय विश्व-युद्ध प्रारम्भ हो गया।

युद्ध के प्रारम्भ मे रूस जर्मनी के साथ था परन्तु जब जर्मनी ने रूस पर आक्रमण कर दिया तो रूस मित्रराष्ट्रों के पक्ष में गया। जब जापान ने अमेरिका के विरुद्ध आक्रमण की कार्यवाही की तो अमेरिका ने युद्ध में मित्र राष्ट्रों का साथ दिया, परन्तु हिटलर और मुसोलिनी के मित्र जनरल फ्रेंको ने युद्ध मे उनका साथ नहीं दिया। वह युद्ध मे तटस्थ रहा। उसने उनके उपकार का बदला नही चुकाया।

द्वितीय विश्व-युद्ध की घटनाएँ—(सितम्बर, 1939 ई० से अगस्त, 1945 ई० तक)—द्वितीय विश्व-युद्ध के प्रारम्भ मे धुरी राष्ट्रों को शानदार सफलताएँ मिली और मित्र राष्ट्रों को निरन्तर पराजयो का मुंह देखना पड़ा। जर्मनी ने पोलैण्ड पर अधिकार करने के पश्चात फ्रांस (पेरिस) पर आक्रमण कर दिया। 1940 ई० तक

हिटलर ने डेनमार्क और नार्वे पर अधिकार कर लिया था। इसके पश्चात् उसको हालैण्ड, बेल्जियम तथा फ्रांस पर अधिकार करने में सफलता मिली। इस समय मुसोलिनी ने अफ्रीका व यूनान पर आक्रमण कर दिया परन्तु उसे असफलता का मुंह देखना पड़ा। ऐसी स्थिति में हिटलर मुसोलिनी की सहायता के लिये पहुंच गया। इस प्रकार यूगोस्लाविया और यूनान पर भी हिटलर ने अधिकार कर लिया।

22 जून, 1941 ई० को हिटलर ने रूस पर अकस्मात हमला कर दिया। यद्यपि युद्ध में जर्मनी को शानदार सफलताएँ मिली परन्तु जर्मनी के सैनिक रूस की भीषण शीत को सहन नहीं कर सके। इसलिये रूसी सेना ने जर्मनी को खदेड़ दिया। अभी तक संयुक्त राज्य अमेरिका युद्ध में शामिल नहीं हुआ था। वह केवल मित्र राष्ट्रों को आर्थिक एवं सैनिक सहायता पहुंचा रहा था परन्तु जापान ने अमेरिका के पर्लहार्बर के नौसैनिक अड्डे पर बम वर्षा की। इस कारण अमेरिका ने मित्र-राष्ट्रों की ओर से युद्ध में भाग लेने की घोषणा कर दी। जापान को युद्ध के दौरान, शानदार सफलताएँ प्राप्त हुई। उसने हांगकांग, फिलिपाइन द्वीप समूह, मलाया, ब्रह्मा, थाइलैण्ड, बर्मा, इण्डोचीन और स्याम आदि पर अधिकार कर लिया। इसके पश्चात् जापान ने भारत पर आक्रमण करने का निश्चय किया।

1942 ई० में युद्ध ने करवट बदली। अब मित्र राष्ट्रों को शानदार सफलताएँ मिलने लगी और धुरी राष्ट्रों को पराजय का मुँह देखना पड़ा। 1944 ई० में इटली ने हथियार डाल दिये। वहां के देश-भक्तों ने मुसोलिनी और उसकी पत्नी को गोली से उड़ा दिया। 7 मई, 1945 ई० को जर्मनी ने भी हथियार डाल दिये। इस समय हिटलर ने आत्महत्या कर ली और उसका शव जला दिया गया था। इस प्रकार यूरोप में युद्ध बन्द हो गया परन्तु जापान के आत्म समर्पण नही करने से एशिया में युद्ध चलता रहा। परिणामस्वरूप अमेरिका ने 6 अगस्त, 1945 ई० को नागासाकी नगर पर अणु बम गिराये। इस भयंकर विध्वंस को देखते हुए 14 अगस्त, 1945 ई० को उसने आत्म-समर्पण कर दिया। इस प्रकार द्वितीय विश्व-युद्ध की समाप्ति हुई।

द्वितीय विश्व-युद्ध के परिणाम—द्वितीय विश्व-युद्ध (1939–1945) लगभग 6 वर्ष तक चलता रहा। इसके परिणाम संसार के इतिहास में सबसे अधिक विनाशकारी सिद्ध हुए। द्वितीय विश्व युद्ध के प्रमुख परिणाम निम्नलिखित हुए:—

(1) जन और धन की अपार क्षति—द्वितीय विश्व-युद्ध में दोनों ही पक्षों को जन और धन की अपार क्षति उठानी पड़ी। इस युद्ध में 2 करोड़ 20 लाख व्यक्ति मारे गये तथा 3 करोड़ 30 लाख व्यक्ति घायल हुए। इस महायुद्ध में ब्रिटेन, फ्रांस, रूस, जापान, जर्मनी और इटली आदि बड़े देशों के अलावा पोलैण्ड, चेकोस्लोवाकिया और डेनमार्क जैसे छोटे-छोटे राष्ट्रों को भी अपार क्षति उठानी पड़ी। इन छोटे राष्ट्रों के लाखों सैनिक और नागरिक इस युद्ध में मारे गये। पोलैण्ड के 60

लाख एवं फिनलैण्ड के एक लाख सत्ताइस हजार व्यक्ति इस युद्ध में मारे गये। यूनान जर्मनी और इटली की फौजों के बीच बुरी तरह पिस गया। इस प्रकार छोटे राष्ट्रों को भी अपार जन धन की क्षति उठानी पड़ी। इस युद्ध से उनकी अर्थ व्यवस्था बिलकुल नष्ट हो गई। मैकनेल बर्नस ने अमेरिकन विश्वविद्यालय द्वारा तैयार आंकड़ों के आधार पर यह बताया है कि इस युद्ध में विश्व ने 13 खरब, 84 अरब, 90 करोड़ डालर व्यय किये।

(2) **सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में प्रभाव**—विश्व-युद्ध के कारण मजदूरों का मिलना कठिन हो गया। ऐसे समय मे स्त्रियो ने कारखानो में काम करना प्रारम्भ कर दिया। इसके अतिरिक्त स्त्रिया सरकारी कार्यालयो मे भी काम करने लगी। इस युद्ध के कारण विश्व की आर्थिक दशा बहुत शोचनीय हो गई। उद्योग धन्धे चौपट हो गये। दैनिक आवश्यकता की वस्तुओ के भाव आकाश को छूने लगे। युद्ध के कारण खाद्यान्न का अभाव हो गया। युद्ध के दौरान सभी राष्ट्र अमेरिका से माल मंगाते रहे। अमेरिका युद्ध भूमि से दूर था, इसलिये वह बिना किसी बाधा के अपना औद्योगिक विकास करता रहा। फलस्वरूप अमेरिका विश्व का एक सम्पन्न वैभवशाली एव पूंजीपति राष्ट्र बन गया। इससे विश्व दो गुटो मे विभाजित हो गया पूंजीवाद और साम्यवाद। पूंजीवाद का नेता अमेरिका और साम्यवाद का नेता रूस बना।

(3) **जर्मनी, जापान तथा इटली का बंटवारा**—युद्ध की समाप्ति के पश्चात् मित्र राष्ट्रो ने जर्मनी को युद्ध के लिये दोषी माना। इसको आधार मानकर जर्मन नेताओ पर अभियोग चलाये गये। जो युद्ध अपराध सिद्ध हुए, उन्हें यथोचित दण्ड दिया गया। विश्व इतिहास मे यह पहली घटना थी, जबकि युद्ध की समाप्ति के पश्चात् पराजित देशो के नेताओ पर अभियोग चलाये गये थे।

जर्मनी की शक्ति को नष्ट करने के लिये इंगलैण्ड, फ्रास, रूस, और अमेरिका ने उसको आपस मे बांट लिया। जर्मनी को दो भागो में विभाजित कर दिया गया। पूर्वी जर्मनी और पश्चिमी जर्मनी। पश्चिमी जर्मनी पर मित्र राष्ट्रो का एवं पूर्वी जर्मनी पर रूस का अधिकार रखा गया। यह विभाजन अन्तर्राष्ट्रीय कलह का कारण बन गया।

जापान के क्यूराइल द्वीपों पर रूस का अधिकार रखा गया। फारमोसा चीन को दे दिया। कोरिया पर रूस तथा अमेरिका ने अपने-अपने क्षेत्रो पर अधिकार कर लिया और उन्हें यह आश्वासन दिया कि उचित समय पर स्वतन्त्रता दे दी जायेगी। इटली के उपनिवेशों पर भी मित्र राष्ट्रों ने अधिकार कर लिया।

(4) **इटली में प्रजातन्त्र की स्थापना**—धुरी राष्ट्रो में इटली ने सर्वप्रथम आत्म समर्पण किया था। इसके पश्चात् इटली मे दो दल शक्तिशाली बन चुके थे। एक साम्यवादी दल जो इटली मे साम्यवादी शासन व्यवस्था स्थापित करने के पक्ष

में था। दूसरा दल गणतन्त्रीय था, जो इटली में गणतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था स्थापित करना चाहता था। इन दोनों दलों में संघर्ष चल रहा था। मित्र राष्ट्रों के सहयोग के कारण इस संघर्ष में गणतन्त्रवादी दल ने साम्यवादी दल को पराजित कर दिया। इस प्रकार इटली में मित्र राष्ट्रों के समर्थक गणतन्त्र दल की सरकार स्थापित हुई।

(5) जापान में राजतन्त्र की समाप्ति—द्वितीय विश्व-युद्ध के समय तक जापान में राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था कायम थी परन्तु जापान के आत्मसमर्पण करते ही अमेरिका ने उस पर अधिकार कर लिया। इसके पश्चात् उसने वहां राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था को समाप्त करके प्रजातन्त्रात्मक शासन व्यवस्था की स्थापना की गई। इस प्रकार जापान में पहली बार प्रजातन्त्र स्थापित हुआ।

(6) अधिनायकवादी शासन व्यवस्था की विफलता—इस युद्ध में लोकतान्त्रिक शक्तियों ने जर्मनी, जापान तथा इटली के अधिनायकों को बुरी तरह से पराजित किया। लोकतांत्रिक शक्तियों की विजय से जनता का प्रजातन्त्रात्मक शासन व्यवस्था के प्रति विश्वास जाग्रत हुआ। इस युद्ध से यह स्पष्ट हो गया कि लोकतन्त्र को कुचल कर तानाशाही शासन अधिक समय तक नहीं चल सकता।

(7) शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में रूस का उदय—इस युद्ध के पश्चात् रूस विश्व का एक शक्तिशाली राष्ट्र बन गया। स्टोनिया, आधा पोलैण्ड, लैटविया, लियूथनिया, फिनलैण्ड का भाग तथा पूर्वी प्रशा पर रूस का अधिकार हो जाने से उसके साम्राज्य का विस्तार हुआ। रूस ने रूमानिया, हंगरी, बल्गेरिया, अल्बानिया और युगोस्लाविया आदि देशों में साम्यवादी शासन व्यवस्था स्थापित की। बाल्कन प्रदेश पर भी रूस का अधिकार हो गया। अब रूस की बढ़ती हुई शक्ति के कारण पश्चिमी राष्ट्र भयभीत हो गये।

(8) विश्व में सर्वशक्तिशाली राष्ट्र के रूप में अमेरिका का उदय—मैकनेल बर्नस ने लिखा है कि "द्वितीय विश्व-युद्ध के सबसे महत्वपूर्ण परिणामों में से एक यह है कि संयुक्त राज्य अमेरिका संसार का सबसे शक्तिशाली देश बन गया।"[1]

द्वितीय विश्व-युद्ध के पूर्व तक इंगलैण्ड विश्व का सर्वाधिक शक्तिशाली देश था परन्तु युद्ध की समाप्ति के पश्चात् अमेरिका विश्व का सर्वाधिक शक्तिशाली राष्ट्र बन गया। विश्व का नेतृत्व ग्रेट ब्रिटेन के हाथ से निकलकर अमेरिका के हाथ में आ गया। इस युद्ध से यह स्पष्ट हो गया कि अब विश्व में संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ महान् शक्तियां रह गई हैं। अमेरिका समर भूमि से बहुत दूर था, इसलिये उसे बहुत कम नुकसान पहुंचा। उसे जन-धन की भी बहुत कम क्षति हुई। इस युद्ध के दौरान अमेरिका का बहुत अधिक औद्योगिक विकास हुआ, क्योंकि

1—मैकनेल बर्नस-वैस्टर्न सिवलीजेशन्स पृष्ठ—839

वह यूरोपियन देशों को माल भेज रहा था। अमेरिका के उद्योगों में 50 प्रतिशत और खेती मे 36 प्रतिशत उत्पादन में वृद्धि हुई। विश्व के महान राष्ट्र उसके कर्जदार बन गये।

(9) विश्व का दो गुटों में विभाजित होना – द्वितीय विश्व-युद्ध के पश्चात् रूस यूरोप का एक शक्तिशाली राष्ट्र बन गया। इसके पश्चात् उसने साम्यवाद का प्रसार करना प्रारम्भ कर दिया। सम्पूर्ण पूर्वी यूरोप में साम्यवाद का नियन्त्रण स्थापित हो गया। चीन मे भी साम्यवादी शासन व्यवस्था स्थापित हो गई। एशिया तथा अफ्रीका के देशों में साम्यवाद का प्रभाव तेजी से बढने लगा। रूस की बढती हुई शक्ति से पश्चिमी राष्ट्र भयभीत हो गये। पश्चिमी राष्ट्रो मे रूस का मतभेद होने से वह शीघ्र ही उनके गुट से अलग हो गया। परिणामस्वरूप विश्व दो गुटो में विभाजित हो गया। (1) पूर्वी गुट (2) पश्चिमी गुट। पूर्वी गुट का नेता साम्यवादी रूस और पश्चिमी गुट का नेता सयुक्त राज्य अमेरिका बना। रूस साम्यवाद का और पश्चिमी गुट पूंजीवाद का प्रतीक है।

अतः साम्यवादी गुट और पूंजीवादी गुट के बीच शीत युद्ध प्रारम्भ हो गया। इससे दोनो गुटो के बीच तनाव और मतभेदो मे निरन्तर वृद्धि हुई है। अमेरिका अपनी पूंजी की ताकत से साम्यवाद के प्रसार को रोकने में लगा हुआ है। परन्तु अविकसित देशो में साम्यवाद का तेजी के साथ प्रसार होता जा रहा है।

(10) विज्ञान के क्षेत्र में प्रगति—द्वितीय विश्व-युद्ध के कारण विज्ञान के क्षेत्र मे बहुत अधिक उन्नति हुई। इस युद्ध के कारण ससार अणु शक्ति से परिचित हुआ। युद्ध की समाप्ति के पश्चात् मानव ने विज्ञान के क्षेत्र मे आश्चर्यजनक प्रगति की। 1961 ई० मे मानव ने अन्तरिक्ष की यात्रायें प्रारम्भ की और 1969 ई० में दो अमेरिकन चाद की सतह पर पहुच गये। इसके अतिरिक्त कृषि तथा चिकित्सा के क्षेत्र मे भी मानव ने अभूतपूर्व उन्नति की।

(11) चीन में साम्यवादी शासन की व्यवस्था की स्थापना—द्वितीय विश्व-युद्ध के प्रारम्भ होने से पूर्व ही चीन जापान से युद्ध कर रहा था। जब द्वितीय विश्व-युद्ध प्रारम्भ हुआ तो चीन मित्र राष्ट्रो की ओर से युद्ध मे सम्मिलित हुआ था। जापान से युद्ध करने के कारण उसकी शक्ति काफी क्षीण हो चुकी थी। चीन के राष्ट्रपति च्यांग काई शेख को अमेरिका का समर्थन प्राप्त था, जबकि चीन के साम्यवादी दल को रूस का समर्थन प्राप्त था। चीन में साम्यवादी दल दिन प्रतिदिन शक्तिशाली होता जा रहा था। द्वितीय विश्व-युद्ध की समाप्ति के पश्चात् चीन में गृह युद्ध प्रारम्भ हो गया। इस गृह युद्ध में साम्यवादी दल की विजय हुई। च्यांग काई शेख को चीन से भाग कर फारमूसा नामक टापू में शरण लेनी पड़ी, जो आज भी अमेरिका के संरक्षण में है। साम्यवादी दल ने चीन में साम्यवादी शासन व्यवस्था

की स्थापना की जिनके परिणामस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय जगत में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ।

(12) राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन—प्रथम विश्व-युद्ध की भांति मित्र राष्ट्रों ने द्वितीय विश्व-युद्ध भी प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों पर लड़ा था किन्तु जब साम्राज्यवादी देशों ने युद्ध की समाप्ति के पश्चात् अपने अधीन देशों को स्वतन्त्रता प्रदान नहीं की तो उन्होंने स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। साम्राज्यवादी देशों ने इन राष्ट्रीय आन्दोलनों को कुचलने का प्रयास किया परन्तु युद्ध में भाग लेने के कारण इन देशों की शक्ति इतनी क्षीण हो गई थी कि उनके लिये जन आन्दोलनों को कुचलना असम्भव हो गया। युद्ध की समाप्ति के पश्चात् इंगलैण्ड में आम चुनाव हुए। इस चुनाव में चर्चिल हार गया और एटली इंगलैण्ड का प्रधानमन्त्री निर्वाचित हुआ। उसने सदियों से गुलाम भारत को 15 अगस्त, 1947 ई० स्वतन्त्रता प्रदान की। इसके साथ ही एशिया में एक नवीन राष्ट्र पाकिस्तान का जन्म हुआ।

ब्रिटेन ने बर्मा, मलाया, मिस्र, आदि देशों को भी स्वतन्त्र कर दिया। बाद में अनेक अफ्रीकी देशों को भी स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त हिन्द चीन, श्रीलंका, हिन्देशिया (जावा, सुमात्रा और बोर्नियो ने हिन्देशिया नामक संघ राज्य की स्थापना की) लीबिया, ट्यूनिस, कांगो आदि अनेक देशों को भी स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। इस प्रकार एशिया और अफ्रीका के देशों में राष्ट्रीय आन्दोलन सफल रहा।

(13) संयुक्त राष्ट्रसंघ का जन्म—यद्यपि राष्ट्रसंघ को विश्व में शांति स्थापित करने में सफलता नहीं मिली परन्तु विश्व के राजनीतिज्ञों ने अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को हल करने के लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय संघ की स्थापना पर जोर दिया। संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट और इंगलैण्ड के प्रधानमन्त्री चर्चिल ने इस विचारधारा का समर्थन किया। इसलिए 24 अक्टूबर, 1945 ई० को संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना की गई। इसका उद्देश्य भी विश्व में शांति स्थापित करना था। इस संघ ने विश्व की समस्याओं को हल करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। इसके कारण ही संसार तीसरे महायुद्ध से बचा हुआ है। इसके अतिरिक्त इस संघ ने पिछड़े तथा अविकसित देशों की जनता की भलाई के लिये सराहनीय कार्य किये हैं।

(14) विभिन्न शान्ति समझौते—युद्ध समाप्ति के पश्चात् कई वर्षों तक विभिन्न देशों ने युद्धकालीन समस्याओं को हल करने के लिये कई शांति संधियां की। इसमें अटलाण्टिक चार्टर, कासा ब्लाका सम्मेलन, मास्को सम्मेलन, काहिरा सम्मेलन, तेहरान सम्मेलन, माल्टा सम्मेलन, सान फ्रांसिसको सम्मेलन और बर्लिन सम्मेलन आदि प्रमुख हैं।

(15) सैनिक संधियों का प्रादुर्भाव—पूंजीवाद और साम्यवादी संघर्ष के कारण अनेक सैनिक संधियों का प्रादुर्भाव हुआ। इसमें नाटो, सीटो, मैन्टो और वारसा आदि प्रमुख हैं। हमारा देश भारत इस प्रकार की सैनिक संधियों से बंधा हुआ नहीं है। इस प्रकार द्वितीय विश्व-युद्ध के भयंकर विनाशकारी परिणाम निकले। इस युद्ध के पश्चात् विश्व का नेतृत्व ब्रिटेन के हाथ से निकल कर अमेरिका के हाथ में आ गया।

प्रस्तावित सन्दर्भ पाठ्य पुस्तकें :—
1–लैंगसम–दी वर्ल्ड सिन्स 1919
2–मैकनैल बर्नस–वैस्टर्न सिवलीजेशन्स
3–एलिस और जोन- संसार का इतिहास
4–वेल्स, एच० जी० –दी आऊट लाइन आफ हिस्ट्री
5–शूमा–इन्टरनेशनल पोलिटिक्स
6–प्लैट जीन और ड्रमंड–विश्व का इतिहास

———

16

संयुक्त राष्ट्र संघ

प्रथम विश्व-युद्ध की समाप्ति के पश्चात् विश्व में शान्ति स्थापित करने के लिये राष्ट्रसंघ की स्थापना की गई थी। यद्यपि राष्ट्रसंघ शान्ति स्थापित करने में असफल रहा। उसकी आंखों के सामने द्वितीय विश्व-युद्ध हो रहा था और वह उसको रोकने के लिये कुछ नहीं कर सका। फिर भी राष्ट्रसंघ की असफलता से यूरोप के राजनीतिज्ञ निराश नहीं हुए। इसी समय द्वितीय विश्व-युद्ध प्रारम्भ हो गया। जिसके भयंकर विनाशकारी परिणाम हुए। इन भयंकर परिणामों को देखते हुए विश्व के राजनीतिज्ञों ने अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग द्वारा विश्व में शान्ति स्थापित करने के लिए एक संघ की स्थापना पर ज़ोर दिया। पर्याप्त वाद-विवाद तथा कई सम्मेलनों के उपरान्त विश्व के राजनीतिज्ञों के प्रयासों से 24 अक्टूबर, 1945 ई० को संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना की गई।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के जन्म का इतिहास—द्वितीय विश्व-युद्ध के दौरान राजनीतिज्ञों ने भविष्य में युद्धों को रोकने के लिये और विश्व में शान्ति स्थापित करने के लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय संघ की स्थापना पर ज़ोर दिया। इस युद्ध के दौरान मित्र राष्ट्रों के कई सम्मेलन हुए। जिनमें इस संघ के घोषणा-पत्रों की व्यवस्था की गई और कई विशेषज्ञों ने मिलकर इसका निर्माण किया। 6 जनवरी, 1941 ई० में अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने अपने प्रसिद्ध भाषण में भाषण, उपासना, भय और स्वातन्त्र्य आदि चार स्वतन्त्रताओं की घोषणा की। रूजवेल्ट ने अपने भाषण में कहा कि "हम ऐसे भावी संसार पर आशा लगाये हैं जिसकी आधार शिला....भाषण .. और विचार स्वतन्त्रता प्रत्येक व्यक्ति को अपने तरीकों से ईश्वर की अराधना की स्वतन्त्रता ; अभाव से स्वतन्त्रता और भय से स्वतन्त्रता हो।"

इस घोषणा के कारण 1941 ई० में लंदन में एक सम्मेलन बुलाया गया। इसमें 14 देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। उन्होंने यह मत प्रकट किया कि यद्यपि राष्ट्रसंघ को विश्व में शांति स्थापित करने में सफलता नहीं मिली है तथापि विश्व की शांति और सुरक्षा के लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय संघ की स्थापना की जानी चाहिए।

युद्ध के दौरान 14 अगस्त, 1941 ई० को अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट और इंगलैण्ड के प्रधानमन्त्री चर्चिल ने विश्व में शांति स्थापित करने के लिये अटलांटिक महासागर में एक पत्र पर हस्ताक्षर किये, जिसे *'अटलांटिक चार्टर'* कहा जाता है। इस चार्टर में उन्होंने सभी राष्ट्रों की समानता, स्वतन्त्रता और निशस्त्रीकरण पर बल देते हुए एक अन्तर्राष्ट्रीय संघ की स्थापना पर जोर दिया। इस चार्टर मे यह घोषणा की गई थी कि "नाजी अत्याचारों को अन्तिम रूप से नष्ट करने के उपरान्त वे ऐसी शांति की स्थापना की आशा करते हैं, जो सभी राष्ट्रों को अपनी सीमाओ मे सुरक्षित रहने के साधन प्रदान कर सके और यह आश्वासन भी दे सके कि सभी मनुष्य सभी देशों में भय तथा युद्ध से स्वतन्त्र होकर अपना जीवन व्यतीत कर सकेंगे।"

कुछ विद्वानों के अनुसार यही घोषणा संयुक्त राष्ट्रसघ की आधार थी। 1942 ई० में वाशिंगटन में एक सम्मेलन बुलाया गया जिसमे 26 राष्ट्रों ने भाग लिया। इन सभी देशों ने अटलान्टिक चार्टर को स्वीकार करते हुए एक अधिकार पत्र पर हस्ताक्षर किये जिसको "संयुक्त राष्ट्रो की घोषणा" कहा जाता है। इस प्रकार पहली बार किसी घोषणा पत्र में "संयुक्त राष्ट्र" शब्द का प्रयोग किया गया।

सोवियत सघ भी अटलाण्टिक चार्टर को स्वीकार कर चुका था परन्तु पूंजीवादी गुट और साम्यवादी गुट के परस्पर संदेह के कारण अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण का विकास नही हो पा रहा था। 30 अक्टूबर, 1943 ई० में मास्को मे एक सम्मेलन *बुलाया गया।* जिसमे अमेरिका और इंगलैण्ड और रूस के विदेश मंत्रियो ने भाग लिया। इस सम्मेलन में विश्व की शांति और सुरक्षा के लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय संघ की स्थापना पर जोर दिया गया।

इसके पश्चात् वाशिंगटन के निकट डम्बर्टन ओक्स नामक स्थान पर एक सम्मेलन हुआ। जिसमे अमेरिका, इंगलैण्ड, रूस और चीन आदि देशो के प्रतिनिधियो ने भाग लिया। इस सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय सगठन की रूपरेखा तैयार करना था। यह सम्मेलन 1944 ई० तक चलता रहा। परन्तु प्रतिनिधियों के पारस्परिक मतभेदो के कारण कोई निर्णय नही हो सका। इसलिये डम्बर्टन सम्मेलन के प्रस्तावों के आधार पर राष्ट्र सघ के चार्टर (संविधान) का निर्माण करने के लिये 25 अप्रैल, 1945 ई० को सेन फ्रांसिसको में सभी राष्ट्रों का एक सम्मेलन बुलाने का निश्चय किया गया। तदनुसार 1945 ई० में सेन फ्रांसिसको में एक सम्मेलन बुलाया गया। इस सम्मेलन में 50 देशो के प्रतिनिधियो ने भाग लिया। सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र के चार्टर का निर्माण किया गया। 26 जून, 1945 ई० को सभी राष्ट्रों ने इस पर अन्तिम रूप से अपने हस्ताक्षर कर दिये। इस अवसर पर अमेरिका के राष्ट्रपति ट्रूमैन ने यह कहा था कि "संयुक्त राष्ट्रसंघ का संविधान, जिस पर आपने अभी हस्ताक्षर किये हैं, वह एक ऐसी शक्तिशाली नींव है जिस पर एक सुन्दर

सार का निर्माण कर सकते हैं। अतः इस कार्य के लिये इतिहास आपका सम्मान करेगा।"

इस प्रकार 24 अक्टूबर, 1945 ई० को राष्ट्रसंघ की स्थापना हुई। इस संघ का प्रधान कार्यालय न्यूयार्क में रखा गया। 8 अप्रेल, 1946 ई० को संयुक्त राष्ट्रसंघ ने एक प्रस्ताव पास करके राष्ट्रसंघ की इतिश्री कर दी। संयुक्त राष्ट्रसंघ ने चीनी, स्पेनिश, रूसी, फ्रांसीसी और अंग्रेजी आदि भाषाओं को मान्यता दे रखी है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ का चार्टर—

संयुक्त राष्ट्रसंघ के संविधान को चार्टर कहते हैं। इसमें 10,000 शब्द, 111 धाराएँ और 19 अध्याय हैं। इस चार्टर में संयुक्त राष्ट्र संघ के विभिन्न अंगों, उनके कार्यों, अधिकारों, उद्देश्यों एवं संघ के सिद्धान्तों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के उद्देश्य—

संयुक्त राष्ट्रसंघ के घोषणा पत्र की 111 धाराओं में संघ के उद्देश्यों और सिद्धान्तों का विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है। चार्टर के अनुसार संघ के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं :—

1. अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में शांति और सुरक्षा बनाये रखना। यदि कहीं भी शांति की सुरक्षा को खतरा हो तो उसे रोकने के लिये हर सम्भव प्रयास करना।
2. राष्ट्रों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों को विकसित करना।
3. आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं मानवीय समस्याओं को शांतिपूर्ण ढंग से हल करना।
4. इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की स्थापना करना।

सक्षेप में संघ के उद्देश्य सुरक्षा, न्याय, कल्याण और मानव अधिकार आदि थे। जब तक कोई भी राष्ट्र चार्टर के अनुसार कार्य करता रहेगा, तब तक उसके आन्तरिक मामलो में हस्तक्षेप नहीं किया जायेगा।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के सिद्धान्त—संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर की धारा 2 के अनुसार इसके प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं :—

1. सभी राष्ट्रों के साथ एक समान व्यवहार किया जायेगा।
2. संघ का प्रत्येक सदस्य राष्ट्र चार्टर के अनुसार अपने कर्तव्य का पालन करेगा।
3. सदस्य राष्ट्र अपने आपसी विवादों को शांति पूर्ण ढंग से हल करेंगे।
4. सदस्य राष्ट्र अपने आपसी विवादों को हल करने के लिये न तो युद्ध का आश्रय लेंगे और न ही युद्ध की धमकी देंगे।

5. जब संघ चार्टर के अनुसार कोई भी कार्यवाही करेगा तो सभी राष्ट्र उसे सभी प्रकार की सहायता देने के लिये वचन बद्ध है।
6. संघ शांति और सुरक्षा बनाये रखने के लिये हर संभव प्रयास करेगा। यदि गैर सदस्य राष्ट्रों ने शांति भंग करने का प्रयास किया तो संयुक्त राष्ट्रसंघ उस पर रोक लगायेगा।
7. यदि किसी भी राष्ट्र ने शांति और सुरक्षा को खतरे में डालने का प्रयास किया तो संघ उसके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप कर सकेगा।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के उद्देश्यों एवं सिद्धान्तों से स्पष्ट है कि इस संघ की स्थापना विश्व में शांति और सुरक्षा की रक्षा करने के लिये की गई थी।

सदस्यता :—

ऐसा कोई भी राष्ट्र जो शान्ति स्थापित करने का इच्छुक हो और चार्टर का पालन करने का आश्वासन देता हो वह इस संघ का सदस्य बन सकता है। सुरक्षा परिषद की सिफारिश के बाद साधारण सभा दो तिहाई बहुमत से किसी भी राष्ट्र को संयुक्त राष्ट्रसंघ की सदस्यता प्रदान कर सकती है। इस समय इस संघ के सदस्यों की संख्या 147 है। कोई भी राष्ट्र इस संघ की सदस्यता को नहीं छोड़ सकता है परन्तु यदि कोई सदस्य राष्ट्र संघ के चार्टर का उल्लंघन करे तो उसे संघ की सदस्यता से वंचित किया जा सकता है किन्तु अभी तक ऐसा नहीं हुआ है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के अंग :—

संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर की धारा 7 के अनुसार इसके 6 मुख्य अंग हैं, जो निम्नलिखित हैं :—

1. साधारण सभा (जनरल असेम्बली)
2. सुरक्षा परिषद
3. आर्थिक और सामाजिक परिषद्
4. संरक्षण परिषद्
5. अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय
6. सचिवालय

1. साधारण सभा (जनरल असेम्बली)—

यह संयुक्त राष्ट्रसंघ की सबसे बड़ी संस्था है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के सभी सदस्य इसके सदस्य हैं। इसमें प्रत्येक राष्ट्र को पांच सदस्य भेजने का अधिकार है, परन्तु मतदान में केवल एक ही सदस्य भाग ले सकता है। असेम्बली में एक अध्यक्ष तथा सात उपाध्यक्ष होते हैं। जिनका चुनाव प्रतिवर्ष सितम्बर के दूसरे सप्ताह में किया जाता है। साधारणतः असेम्बली की बैठक वर्ष में एक बार सितम्बर माह में होती है परन्तु विशेष कारणोंवश या सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर इसकी विशेष बैठक भी बुलाई जा सकती है। असेम्बली में साधारण विषयों पर बहुमत से निर्णय

लिया जाता है परन्तु शान्ति सुरक्षा, नये राष्ट्रों को राष्ट्रसंघ का सदस्य बनाना, और राष्ट्रों को संघ की सदस्यता से वंचित करना जैसे असाधारण विषयो पर दो तिहाई बहुमत से निर्णय लिया जाता है।

कार्य :—

असेम्बली के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं :—

1. साधारण सभा विश्व की शांति और सुरक्षा को खतरा पहुंचाने वाले विषयों पर सुरक्षा परिषद् को अपनी सलाह दे सकती है। राष्ट्रों के आपसी विवादों को शांतिपूर्ण ढंग से हल कर सकती है। इसके अतिरिक्त निशस्त्रीकरण के लिये सिफारिश कर सकती है।
2. साधारण सभा संयुक्त राष्ट्रसंघ के निम्न पदाधिकारियो का चुनाव करती है—
   (1) वह सुरक्षा परिषद् के अस्थाई सदस्यों का चुनाव करती है।
   (ii) आर्थिक और सामाजिक परिषद् के 27 सदस्यों का चुनाव करती है।
   (iii) अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के 15 न्यायाधीशों की नियुक्ति करती है।
   (iv) सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर संघ के महासचिव की नियुक्ति करती है।
   (v) असेम्बली अपने एक अध्यक्ष और सात उपाध्यक्षों का प्रतिवर्ष चुनाव करती है।
   (vi) सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर असेम्बली दो तिहाई बहुमत से किसी भी नये राष्ट्र को संघ की सदस्यता प्रदान कर सकती है। इसके अतिरिक्त चार्टर की अवहेलना करने वाले राष्ट्रों को दण्ड दे सकती है अथवा संघ की सदस्यता से वंचित कर सकती है।
   (vii) संरक्षण परिषद् के सदस्यो का चुनाव करती है।
3. सुरक्षा परिषद् तथा अन्य विभागो से प्राप्त रिपोर्ट पर विचार कर अपना निर्णय देती है।
4. साधारण सभा निम्नलिखित कार्य भी करती है।
   (i) उसे संयुक्त राष्ट्रसंघ के बजट को पास करने का अधिकार है।
   (ii) यह किसी भी कार्यवाही को रोकने के लिये सुरक्षा परिषद् को सिफारिश कर सकती है।
   (iii) धरोहर प्रदेशों के शासन का निरीक्षण कर सकती है।
   (iv) सदस्य राष्ट्रों मे अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की भावना को विकसित करती है।

इस सभा का कार्य छः समितियों के द्वारा चलाया जाता है। अंग्रेजी, फ्रैंच, रूसी, स्पेनिश और चीनी आदि भाषाओं में यह सभा अपना कार्य करती है। साधारण सभा सुरक्षा परिषद् की समस्या पर बिना उसकी सहमति के विचार नही कर सकती है।

2. सुरक्षा परिषद्

सुरक्षा परिषद् संयुक्त राष्ट्रसंघ का एक महत्वपूर्ण अंग है। इसमें 15 सदस्य होते हैं। पांच स्थाई और दस अस्थाई।

1. इंगलैण्ड
2. अमेरिका
3. फ्रांस
4. रूस और
5. साम्यवादी चीन आदि इसके स्थायी सदस्य है। इसके 10 अस्थाई सदस्यों का चुनाव साधारण सभा दो तिहाई बहुमत से करती है। इनका कार्यकाल दो वर्ष होता है। इस परिषद् के स्थायी सदस्यों को वीटो (निषेधाधिकार) प्राप्त होने के कारण संयुक्त राष्ट्रसंघ में काफी शक्तिशाली बने हुए हैं। सुरक्षा परिषद् युद्धों को रोकने, एव विश्व मे शांति और सुरक्षा बनाये रखने का कार्य करती है। इसकी बैठक महीने में दो बार होती है। अपनी सुविधानुसार परिषद् अपनी बैठक कही भी बुला सकती है।

सुरक्षा परिषद् एक सभापति चुनती है, जो परिषद् की कार्यवाही का संचालन करता है। सभापति का कार्यकाल एक माह होता है। सभापति का चुनाव सदस्य राष्ट्रो के प्रथम अक्षर के अनुसार अंग्रेजी वर्णमाला से किया जाता है। इससे परिषद् के प्रत्येक सदस्य को सभापति बनने का अवसर प्राप्त हो जाता है। परिषद् के सदस्य राष्ट्र अपना एक प्रतिनिधि संघ के केन्द्र स्थान न्यूयार्क नगर में रखते है, ताकि कभी भी आवश्यक बैठक बुलाई जाने पर वे उसमें भाग ले सकें। यह संस्था संयुक्त राष्ट्रसघ की सर्वाधिक शक्तिशाली संस्था है।

सुरक्षा परिषद् के कार्य :—

चार्टर के अनुसार सुरक्षा परिषद् के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं। अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को सुलझाने के लिए सुरक्षा परिषद् चार प्रकार के तरीके अपनाती हैं :—

1. विवादी राष्ट्रों को शान्ति पूर्ण ढग से समस्या को हल करने की सलाह देती है।
2. इस उपाय के असफल रहने पर परिषद् अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के द्वारा विवाद को हल करने की सलाह देती है।
3. इस प्रयत्न के असफल रहने पर परिषद् आक्रमणकारी राष्ट्र के विरुद्ध

आर्थिक प्रतिबन्ध लगाती है।

4. जब यह प्रयत्न भी असफल रहता है तो परिषद् आक्रमणकारी राष्ट्र के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही कर सकती है परन्तु इस प्रकार की कार्यवाही करने के लिये पांच स्थायी सदस्यों एवं दो अस्थाई सदस्यों का एकमत होना आवश्यक है।

परिषद् के कार्य को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। साधारण कार्य और असाधारण कार्य। परिषद् का कार्यक्रम, स्थान एवं समय से सम्बन्धित साधारण प्रश्नों पर 9 सदस्यों का समर्थन प्राप्त होने पर निर्णय लिया जा सकता है परन्तु शांति और सुरक्षा जैसे असाधारण विषयों पर 9 सदस्यों का एकमत होना आवश्यक है यदि पांच स्थायी सदस्यों में से एक भी महत्वपूर्ण निर्णय के विरुद्ध मत देता हैं तो प्रस्ताव अस्वीकृत समझा जाता है। यही वीटो की सुप्रसिद्ध व्यवस्था है। वीटो केवल स्थायी सदस्यों को प्राप्त है। वीटो के पक्ष और विपक्ष में काफी चर्चा होती है क्योंकि इसके कारण कई बार परिषद् के कार्य मे बाधा उपस्थित हो जाती है।

यदि परिषद् का कोई भी स्थायी अथवा अस्थाई सदस्य किसी झगड़े से सम्बन्धित है, तो वह चार्टर की धारा 27 के अनुसार उस विषय पर अपना मत नहीं दे सकता है। सुरक्षा परिषद् संयुक्त राष्ट्रसंघ के गैर सदस्य राष्ट्र को किसी भी झगड़े पर निर्णय के विषय में सलाह लेने के लिये आमन्त्रित कर सकती है परन्तु आमंत्रित सदस्य को मत देने का अधिकार नहीं है।

3. आर्थिक और सामाजिक परिषद् :—

प्रारम्भ में इस परिषद् के सदस्यों की संख्या 18 थी। जिसे 1965 में बढ़ा कर 27 कर दी गई। इसके नौ सदस्यों का चुनाव प्रति तीसरे वर्ष साधारण सभा बहुमत से करती है। इसमें छोटे और बड़े राष्ट्रों के बीच मे कोई अन्तर नहीं होता। सदस्य अपनी प्रथम अवधि समाप्त होने पर दुबारा चुनाव लड़ सकता है। इसकी बैठक वर्ष में दो बार होती है। परिषद् के अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष का कार्य काल एक वर्ष होता है जिसका चुनाव वह स्वयं करती है। गैर सदस्य राष्ट्रो को भी इसके अधिवेशन में बुलाया जा सकता है परन्तु उन्हें मत देने का अधिकार नहीं होता। इस परिषद् का प्रत्येक सदस्य एक मत दे सकता है।

उद्देश्य :—

चार्टर की धारा 55 के अनुसार इस परिषद् के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं :—

1. विश्व के सभी देशों में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की भावना का विकास करना। इसके अतिरिक्त उनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति के स्तर का विकास करना।

2. बिना किसी भेदभाव के सभी राष्ट्रों को एक समान मानव अधिकार प्रदान करना।
3. विश्व के सभी देशों के नागरिकों के जीवन-स्तर में वृद्धि करना।
4. आर्थिक विकास के लिये टेक्नीकल सहायता देना।
5. आर्थिक, सामाजिक और स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं को अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग द्वारा सुलझाना।

आर्थिक और सामाजिक परिषद् ने कुछ विशिष्ट समितियों की स्थापना कर रखी है, जो विश्व के आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक, स्वास्थ्य और सांस्कृतिक स्तर का विकास करने के लिये प्रयास करती है। ये समितियां निम्नलिखित है :—

1. अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर सगठन (I. L. O.)
2. खाद्य और कृषि संगठन (F. A. O)
3. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (I. M. F.)
4. विश्व स्वास्थ्य संगठन (W. H. O.)
5. विश्व डाक संगठन (U P O.)
6. संयुक्त राष्ट्रसंघ अन्तर्राष्ट्रीय बाल संकटकालीन कोष (U N I C. E F.)
7. अन्तर्राष्ट्रीय पुन: निर्माण तथा विकास बैंक (I. B R D.)
8. अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निकाय (I. F. C.)
9. अन्तर्राष्ट्रीय हवाई सगठन (I C. A. O.)
10. संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक सगठन (U N E S. C. O.)

परिषद् के कार्य :—

इस परिषद् के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं :—

1. आर्थिक सामाजिक और शैक्षणिक समस्याओं पर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करना।
2. साधारण सभा और अन्य समितियो को अपने सुझाव भेजना।
3. सामाजिक तथा आर्थिक समझौते के प्रारूप को स्वीकृति हेतु साधारण सभा में प्रस्तुत करना।
4. अपने कार्य का सफलतापूर्वक सचालन करने के लिये आयोगों की स्थापना करना।
5. अपनी समस्याओ को हल करने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाना।

परिषद् द्वारा तैयार किये गये मानव अधिकारों की घोषणा के प्रारूप पर असेम्बली ने 10 सितम्बर, 1948 ई० को अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी। यह

निर्णय को क्रियान्वित करने का

परिषद् केवल सिफारिशें कर सकती हैं इसे अपने
अधिकार नहीं है।

4. संरक्षण परिषद् :—

राष्ट्रसंघ की संरक्षण व्यवस्था के स्थान पर इस परिषद् की स्थापना की गई
है। संरक्षण परिषद् तीन प्रकार के प्रदेशों के शासन-व्यवस्था का संचालन करती है–

1. राष्ट्रसंघ के शासनाधीन रहे हुऐ प्रदेशों पर
2. द्वितीय विश्व-युद्ध की समाप्ति के पश्चात् राष्ट्रों से छीने गये प्रदेशों पर
3. महाशक्तियों द्वारा संघ को सौंपे गये प्रदेशों पर।

इस प्रकार के प्रदेशों पर संयुक्त राष्ट्रसंघ बड़े राष्ट्रों के माध्यम से शासन
करता है। इसके सदस्यों की संख्या अनिश्चित है। इसके प्रत्येक सदस्य को एक मत
देने का अधिकार है। इसके सदस्यों का चुनाव साधारण सभा के द्वारा तीन वर्ष के
लिये किया जाता है। इसमें किसी भी विषय पर बहुमत से निर्णय लिया जाता है।
इस परिषद् की वर्ष में दो बार बैठक होती है। बैठक में परिषद् के सदस्य सभापति
का निर्वाचन करते हैं।

इस परिषद् का प्रमुख कार्य पिछड़े हुए एवं परतन्त्र राष्ट्रों को स्वायत्त
शासन करने योग्य बनाना है। जब तक वे इस योग्य नहीं हो जाते तब तक परिषद्
बड़े राष्ट्रों के माध्यम से उन पर शासन करती रहती है। बड़े राष्ट्र इन संरक्षण
प्रदेशों की प्रगति का विवरण प्रतिवर्ष परिषद् के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। परिषद् उन
पर विचार करने के पश्चात् भावी प्रगति के सम्बन्ध में आवश्यक निर्देश देती है।

5. अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय :—

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय संयुक्त राष्ट्र का एक महत्वपूर्ण अंग है। इसमें 15
न्यायाधीश होते हैं परन्तु एक देश का एक से अधिक न्यायाधीश नहीं हो सकता।
न्यायाधीशों का चुनाव सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर साधारण सभा दो तिहाई
बहुमत से एक वर्ष के लिये करती है। न्यायाधीश की अवधि समाप्त होने पर वह
दुबारा भी निर्वाचित हो सकता है। न्यायाधीशों को 21 हजार डालर वार्षिक वेतन
मिलता है। न्यायाधीश अपने अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष का चुनाव स्वयं करते हैं। अन्त-
र्राष्ट्रीय न्यायालय का कार्यालय हालैण्ड की राजधानी हेग में है। यह न्यायालय
फ्रेंच तथा अंग्रेजी भाषा में अपना निर्णय देता है और सारा कार्य करता है।

इस न्यायालय में 9 न्यायाधीशों की उपस्थिति में ही कोई भी विवाद प्रस्तुत
किया जा सकता है। सभी निर्णय बहुमत के आधार पर किये जाते हैं। जिस देश से
सम्बन्धित विवाद पर न्यायालय में सुनवाई चल रही हो उस देश का न्यायाधीश
निर्णय में भाग नहीं ले सकता है। इस न्यायालय का निर्णय अन्तिम होता है और
इसकी कहीं अपील नहीं हो सकती है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्य राष्ट्रों के अलावा

गैर सदस्य राष्ट्र भी इस न्यायालय में अपने विवाद प्रस्तुत कर सकते हैं परन्तु उन्हें सुरक्षा परिषद् के द्वारा रखी गई शर्तों को स्वीकार करना पड़ता है।

कार्य—

इस न्यायालय के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं :—

1. सीमा विवाद, संधियों और अन्तर्राष्ट्रीय कानून से सम्बन्धित विषयों पर अपना निर्णय देना।
2. सुरक्षा परिषद् को किसी भी वैधानिक मामले पर परामर्श दे सकता है परन्तु परिषद् उस सलाह को स्वीकार करने के लिये बाध्य नहीं है। न्यायालय के निर्णय को क्रियान्वित करना सुरक्षा परिषद का कार्य है।

6. सचिवालय—

संयुक्त राष्ट्रसंघ का कार्यालय सचिवालय कहलाता है। यह संघ का कार्य चलाता है। इसका कार्यालय न्यूयार्क में है। सचिवालय का प्रधान "महामन्त्री" कहलाता है जिसकी नियुक्ति सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर साधारण सभा दो तिहाई बहुमत से 5 वर्ष के लिये करती है। महासचिव निर्धारित नियमों के अनुसार सचिवालय के अन्य अधिकारियों की नियुक्ति करता है।

कार्य—

सचिवालय के प्रमुख कार्य निम्नलिखित है :—

1. सचिवालय के कार्यों की वार्षिक रिपोर्ट असेम्बली के समक्ष प्रस्तुत करना।
2. अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को खतरा पहुंचाने वाले विषय की ओर महासचिव सुरक्षा परिषद् का ध्यान आकर्षित कर सकता है।
3. संयुक्त राष्ट्रसंघ के विभिन्न अंगों के प्रशासनिक और राजनैतिक कार्यों को पूरा करता है।

सचिवालय में आठ भाग हैं। प्रत्येक विभाग में एक एक सहायक महा सचिव होता है। ये आठ विभाग निम्नलिखित हैं—

1. प्रशासनिक और धन सम्बन्धी विभाग
2. सुरक्षा परिषद् सम्बन्धी विभाग
3. आर्थिक मामलो का विभाग
4. सार्वजनिक सूचना विभाग
5. प्रशासित प्रदेशों सम्बन्धी सूचना विभाग
6. कानून विभाग
7. सम्मेलन सम्बन्धी तथा साधारण सेवाएँ
8. सामाजिक मामलों का विभाग

चार्टर में संशोधन :—

संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर की धारा 108 से 109 में इसकी संशोधन प्रणाली

का वर्णन किया गया है। इसके अनुसार चार्टर की किसी भी धारा में संशोधन करने के लिये साधारण सभा के दो तिहाई बहुमत के अलावा सुरक्षा के पांच स्थायी सदस्यों सहित सात सदस्यों का एकमत होना आवश्यक है। कोई भी राष्ट्र संयुक्त राष्ट्रसंघ की सदस्यता नहीं छोड़ सकता है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ की मुख्य समितियां :—

उपरोक्त विभागों के अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्रसंघ के अधीन मानव के कल्याण व विकास के लिये निम्न समितियाँ कार्य कर रही है :—

1. यूनेस्को
2. खाद्य एवं कृषि संगठन
3. विश्व स्वास्थ्य संगठन
4. अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संगठन
5. अन्तर्राष्ट्रीय बैंक आदि।

1. यूनेस्को—संयुक्त राष्ट्रसंघ के शिक्षा, विज्ञान और सांस्कृतिक संगठन को यूनेस्को कहा जाता है। विश्व के राष्ट्रों में शिक्षा और विज्ञान की प्रगति के लिये नवम्बर, 1946 ई० में इस संगठन की स्थापना की गई थी। इसका कार्यालय पेरिस में है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के गैर सदस्य राष्ट्र भी इसके सदस्य बन सकते हैं। यह संगठन शिक्षा, विज्ञान और संस्कृत के द्वारा मानवीय एवं मौलिक अधिकारों के प्रति आदर की भावना का विकास करता है। इस संगठन के प्रमुख कार्य निम्नलिखित है :—

1. मैक्सिको में शिक्षा के एक केन्द्र की स्थापना की गई है। जिसका कार्य शिक्षा का विस्तार, शिक्षा की उन्नति एवं विश्व समुदाय में रहने की शिक्षा प्रदान करना है।
2. सांस्कृतिक कार्यक्रम के अन्तर्गत यह संगठन सभा, सम्मेलन और विचार गोष्ठियाँ आयोजित करता है। इसके अतिरिक्त साहित्य का प्रकाशन भी करवाता है।
3. यह संगठन सामूहिक ज्ञान का प्रचार फिल्म, प्रेस, रेडियो, टेलीविजन, समाचार पत्रों और पुस्तकों आदि के माध्यम से करता है।
4. यह संगठन तकनीकी सहायता भी देता है ट्रिपोली में लीबिया के निवासियों को शिक्षा देने के लिये एक टेक्नीकल शिक्षण केन्द्र की स्थापना की गई है।
5. विद्वानों का आदान-प्रदान करता है।
6. प्राकृतिक और सामाजिक ज्ञान के क्षेत्र में उन्नति के लिये प्रयास करता है।

यह संगठन विश्व शांति की स्थापना एवं मानववाद के विकास में महत्वपूर्ण भाग ले रहा है।

2 खाद्य एवं कृषि संगठन—यह सगठन विश्व के देशो की खाद्य और कृषि अवस्था में सुधार करने के लिये महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान करता है। 1942 ई० में अमेरिका के खाद्यान्न का उपयोग करने के लिये इंगलैण्ड और अमेरिका की एक समिति गठित की गई थी। अमेरिका ने 1943 ई० में हाट स्प्रिन्स में एक कृषि सम्मेलन बुलाया। इसमें नियुक्त समिति की सिफारिशो पर खाद्य एवं कृषि संगठन की स्थापना की गई। अकाल पीडित देश को यह संगठन अनाज भेजता है।

3. विश्व स्वास्थ्य संगठन—7 सितम्बर, 1948 ई० को विश्व स्वास्थ्य संगठन की नीव रखी गई। इस संगठन के प्रमुख कार्य निम्नलिखित है :—

1. संघ के सदस्य राष्ट्रों में संक्रामक रोगों को नष्ट करना।
2. मनुष्य को पौष्टिक भोजन उपलब्ध कराने के लिये प्रयास करना।

4. अन्तर्राष्ट्रीय बैंक—विश्व के देशों ने अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की भावना का विकास करने के लिये 1944 ई० में एक अन्तर्राष्ट्रीय बैंक की स्थापना पर जोर दिया। यह बैंक अपने सदस्यो को उनके आर्थिक विकास के लिये ऋण प्रदान करता है। इसके सदस्य राष्ट्र के दूसरे देश से ऋण लेने पर यह उसकी जमानत देता है। अपने सदस्य राष्ट्रों को उनके आर्थिक विकास के लिये सलाह भी देता है। वास्तव में इस बैंक ने सदस्य राष्ट्रों के विकास के लिये काफी सहयोग दिया है।

राष्ट्रसंघ और संयुक्त राष्ट्रसंघ की तुलना—

यद्यपि राष्ट्रसंघ और संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना शान्ति और सुरक्षा के उद्देश्य को लेकर की गई थी परन्तु राष्ट्रसघ असफल रहा। सयुक्त राष्ट्रसंघ भी अपने उद्देश्यों में पूर्णरूप से सफल तो नहीं हो पा रहा है परन्तु फिर भी इसकी उपयोगिता से इन्कार नही किया जा सकता है। इन दोनों मे काफी समानता होते हुए भी निम्नलिखित असमानताऐं भी हैं—

1. राष्ट्रसघ के चार्टर में 26 धाराऐं थी जबकि संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर मे 111 धाराएँ हैं।
2. राष्ट्रसघ पराजित राष्ट्रों के साथ की गई संधियों का एक अंग था जबकि सयुक्त राष्ट्रसंघ का युद्धोत्तर संधियो से कोई सम्बन्ध नही है।
3. अमेरिका राष्ट्रसघ का सदस्य नही था इसके अतिरिक्त पराजित राष्ट्रों को भी सघ का सदस्य नही बनाया गया था जबकि आज लगभग सभी राष्ट्र संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्य हैं।
4. राष्ट्रसंघ के साधारण सभा, सुरक्षा परिषद् और सचिवालय तीन अंग थे, जबकि सयुक्त राष्ट्रसंघ के 6 अंग है।

5. राष्ट्रसंघ की साधारण सभा में किसी भी प्रश्न पर निर्णय लेने के लिये उपस्थित सदस्यों की सर्वसम्मति आवश्यक थी, जबकि संयुक्त राष्ट्रसंघ की साधारण सभा में 2/3 बहुमत से निर्णय लिये जाते हैं।

6 राष्ट्रसंघ सिर्फ आर्थिक प्रतिबन्ध ही लगा सकता था, जबकि संयुक्त राष्ट्र संघ आर्थिक प्रतिबन्ध लगाने के साथ-साथ सैनिक कार्यवाही भी कर सकता है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ की उपलब्धियां :—

संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना को 35 वर्ष हो चुके हैं। इस अवधि में इस संघ के सामने अनेक राजनीतिक और गैर राजनीतिक समस्याएँ आई, जिनको संघ ने हल करने का हर सम्भव प्रयास किया। संघ को जितनी सफलता गैर राजनीतिक कार्यों में प्राप्त हुई है उतनी राजनीतिक कार्यों में नहीं।

ईरान ने संयुक्त राष्ट्रसंघ को शिकायत की कि युद्ध काल की समाप्ति के पश्चात् भी रूस अपनी सेनायें वहां से नहीं हटा रहा है। पश्चिमी राष्ट्रों ने ईरान का समर्थन किया। इस पर संयुक्त राष्ट्रसंघ ने रूस पर दबाव डाला कि वह अपनी सेनाएँ ईरान से हटाले। फलस्वरूप उसने अपनी सेनाएँ ईरान से हटाली। इसी प्रकार सीरिया और लेबनान से इंगलैण्ड और फ्रांस को अपनी सेनायें हटानी पड़ी।

द्वितीय विश्व-युद्ध की समाप्ति के पश्चात् रूस ने यूनान में अपना प्रभाव बढ़ाना शुरू कर दिया। रूस के ईशारे पर साम्यवादी देश अल्बानिया, बल्गेरिया और युगोस्लाविया ने यूनान के साम्यवादी छापामारों को सहायता देना प्रारम्भ कर दिया। यूनान ने साम्यवाद के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने के लिये संघ से शिकायत की। संघ ने जाच के दौरान यूनानी शिकायत को सही पाया। इस पर संघ ने साम्यवादी देशों को यूनानी छापामारों की सहायता बद करने का आदेश दिया। संघ को फिलीस्तान की समस्या हल करने के लिये काफी परिश्रम करना पड़ा। जैसे ही ब्रिटिश सेना ने फिलीस्तीन को स्वतन्त्र देश घोषित कर दिया। इस पर अरब देशों ने अपनी सेनायें वहां भेज दी। इस प्रकार दोनों पक्षों मे घमासान युद्ध प्रारम्भ हो गया। संघ की मध्यस्थता के कारण युद्ध बन्द हो गया लेकिन यह समस्या आज तक बनी हुई है। यद्यपि 1948 ई० में ही संघ ने इजराइल को स्वतन्त्रता दिलवादी थी, तथापि संघ के द्वारा फिलीस्तीन का दो बँटवारा किया गया था उसके प्रति दोनों पक्षों में असंतोष होने के कारण आज भी वहां अशान्ति है।

1949 ई० में संघ ने इन्डोनेशिया को स्वतन्त्रता दिलवाई। द्वितीय विश्व-युद्ध के पूर्व इन्डोनेशिया पर हालैण्ड का अधिकार था। युद्ध के दौरान जापान ने इस प्रदेश पर अधिकार कर लिया था। जापानी सेना के यहां से हटते ही इन्डोनेशिया ने स्वतन्त्रता की घोषणा करने का प्रयास किया तो दोनों के बीच संघर्ष प्रारम्भ

गया। संघ के प्रयासों से दोनों के बीच समझौता हो गया। इस समझौते के अनुसार इण्डोनेशिया को स्वतन्त्रता प्रदान कर दी गई।

15 अगस्त, 1947 ई० को भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। काश्मीर पर अधिकार करने के प्रश्न को लेकर भारत और पाकिस्तान के बीच संघर्ष प्रारम्भ हो गया। इस समय काश्मीर पर हिन्दू शासक शासन कर रहा था जबकि यहां की अधिकांश जनता मुस्लिम थी। काश्मीर का शासक भारत और पाकिस्तान में नहीं मिलना चाहता था अपितु वह एक स्वतन्त्र शासक की तरह शासन करना चाहता था। पाकिस्तान को उसकी यह नीति पसन्द नही आई। इसलिये उसने पश्चिमी कबाइलियों को काश्मीर पर आक्रमण करने के लिये सहायता दी। इससे उत्साहित होकर कबाइलियों ने काश्मीर पर आक्रमण कर दिया। ऐसे समय में काश्मीर शासक ने भारत में सम्मिलित होने की घोषणा की और उसने भारत से सहायता देने की मांग की। इस पर भारत ने अपनी सेना काश्मीर के शासक की सहायता के लिये भेजी। भारत ने पाकिस्तान से यह अनुरोध किया कि वह कबाइलियो को सहायता न दे और उन्हें काश्मीर की सीमा से हटने के लिये आदेश दे परन्तु पाकिस्तान ने इस अनुरोध को ठुकरा दिया। अब पाकिस्तान उन कबाइलियो को अधिक से अधिक सहायता देने लगा। इस पर भारत ने सुरक्षा परिषद् से इस समस्या को हल करने के लिये अनुरोध किया। संघ की मध्यस्थता से दोनों पक्षों के बीच युद्ध बन्द हो गया। इसके पश्चात् संघ ने इस समस्या को हल करने के लिये कई प्रयास किये परन्तु उसे सफलता नही मिली। यह प्रश्न अभी तक संघ के विचाराधीन है। इस पर अभी तक कोई फैसला नही हो पाया है।

संघ को कोरिया के प्रश्न को हल करने मे महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त हुई। द्वितीय विश्व-युद्ध की समाप्ति के पश्चात् उत्तरी कोरिया में साम्यवादी शासन और दक्षिणी कोरिया में प्रजातन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था की स्थापना हुई। जून, 1950 ई० में उत्तरी कोरिया और दक्षिणी कोरिया में संघर्ष प्रारम्भ हो गया। सुरक्षा परिषद् ने उत्तरी कोरिया को आक्रामक राष्ट्र मानते हुये उसे दक्षिण कोरिया से सेना हटाने का आदेश दिया। इस आदेश का पालन न करने पर संघ ने सदस्य राज्यों से सेना एकत्रित कर कोरिया में भेज दी। इस पर संघ की सेना और उत्तरी कोरिया की सेना के बीच युद्ध प्रारम्भ हो गया। प्रारम्भ में उत्तरी कोरिया की सेना को काफी सफलताएँ मिली क्योंकि साम्यवादी चीन उसकी सहायता कर रहा था। परन्तु अन्त में संघ की सेना ने उत्तरी कोरिया की सेना को युद्ध में बुरी तरह पराजित किया। इसके पश्चात् उत्तरी कोरिया की सेना को दक्षिण कोरिया की सीमा से हटा दिया गया। 1953 ई० मे युद्ध विराम समझौता हो गया। इस प्रकार संघ ने अपने आदेश का पालन करवाने के लिये सैनिक कार्यवाही की। संघ ने 1951 ई० में लीबिया को स्वतन्त्रता दिलवाई।

1956 ई० में स्वेज नहर के प्रश्न को लेकर इंगलैण्ड और फ्रांस ने मिश्र पर आक्रमण कर दिया। संघ ने शांतिपूर्ण ढंग से इस समस्या को हल किया। रूस हंगरी में दमन चक्र चला रहा था। इस पर हंगरी ने संघ से शिकायत की। संघ ने इस सम्बन्ध में कार्यवाही की। 1954 ई० में संघ को मिश्र और लेबनान के आपसी विवाद को नियंत्रित करने में सफलता मिली।

इरियन द्वीप समूह के प्रश्न को लेकर इंगलैण्ड और इण्डोनेशिया में विवाद प्रारम्भ हो गया। संघ ने इस विवाद को शांति पूर्ण ढंग से हल किया। कांगो-कंटगा की समस्या को हल करने में भी संघ को महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त हुई। क्यूबा के प्रश्न को लेकर रूस और अमेरिका में युद्ध की नौबत आ गई। संघ के प्रयासों से यह युद्ध टल गया। भारत-पाकिस्तान संघर्ष, अरब इजराइल संघर्ष आदि अनेक मामलों में संघ को युद्ध-विराम सीमित करने में महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त हुई। परन्तु कोरिया की समस्या, काश्मीर की समस्या अरब-इजराइल समस्या, दक्षिणी अफ्रीका में रंग-भेद नीति आदि कई समस्याओं पर संघ को युद्ध-विराम के बाद कोई महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हुई है। ये समस्याएँ आज भी विद्यमान हैं।

संयुक्त राष्ट्रसंघ को उपनिवेशवाद समाप्त कराने में आशातीत सफलता मिली है। संघ ने इण्डोनेशिया, मोरक्को, ट्यूनिशिया व अल्जीरिया आदि देशों को स्वतंत्रता दिलवाई। इसके अतिरिक्त संघ की संरक्षण पद्धति के अन्तर्गत प्रशासित अधिकांश प्रदेशों को स्वतन्त्रता प्रदान कर दी गई है। संघ अफ्रीका में बचे साम्राज्यवादी उपनिवेशों को स्वतन्त्रता दिलाने के लिये हर समय प्रयास कर रहा है। संघ ने निशस्त्रीकरण के लिये काफी प्रयास किया है और आज भी शस्त्रों के निर्माण को रोकने का प्रयास कर रहा है।

संघ को मानव अधिकारों की रक्षा, मानवीय संघ एवं कल्याण के कार्यों में बहुत अधिक सफलता प्राप्त हुई है। इसने आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी क्षेत्रों में सराहनीय कार्य किया है। उसके अधीन खाद्य एवं कृषि संगठन ने विश्व के देशों को उत्पादन बढ़ाने में हर समय सहयोग दिया है। विश्व के देशों को अकाल और भुखमरी से बचाया है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने मजदूरों के जीवन-स्तर को उन्नत करने में महत्वपूर्ण सहयोग दिया है। उसकी प्रेरणा से विश्व के विभिन्न देशों ने मजदूरों की सुरक्षा और उनके जीवन-स्तर को उन्नत बनाने के लिये अनेक कानून पास किये हैं। स्वास्थ्य संगठन ने संक्रामक रोगों को नष्ट करने में महत्वपूर्ण सहयोग दिया है। यूनेस्को ने शिक्षा और संस्कृति के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। बाल आपात कालीन कोष ने विश्व के बच्चों की सुरक्षा के लिये अनेक सराहनीय कार्य किये हैं। इस प्रकार संघ ने विश्व को सुखी एवं समृद्ध बनाकर अपनी उपयोगिता को सिद्ध कर दिया है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ की दुर्बलताएँ :—

संयुक्त राष्ट्रसंघ अपनी दुर्बलताओ के कारण अपने कार्यों में अधिक सफलताएँ प्राप्त नही कर सका है। उसे युद्ध के खतरे को कम करने में आशातीत सफलता प्राप्त नही हुई है। संघ की असफलता का कारण उसकी निम्नलिखित दुर्बलताएँ हैं :—

1 अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे तनाव कम नही होने का प्रमुख कारण यह है कि विश्व के अधिकांश राष्ट्र दो गुटो मे विभाजित हैं। पूर्वी गुट और पश्चिमी गुट। पूर्वी गुट का नेतृत्व रूस कर रहा है, जबकि पश्चिमी गुट का अमेरिका। इन दोनो गुटों मे मतभेद होने से प्रत्येक साधारण प्रश्न भी गुट की प्रतिष्ठा का प्रश्न बन जाता है। इसलिये हर समय यह भय बना रहता है कि पता नही कब विश्व-शांति भंग जाय। दोनो ही गुट अपनी शक्ति मे वृद्धि करने के लिये शस्त्रों मे वृद्धि कर रहे हैं। अमेरिका और रूस मे आज अणु बम और हाइड्रोजन बम बनाने की होड़ लगी हुई है। इस होड़ के कारण गुटबन्दिया बढती जा रही है।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, कनाडा, ब्रिटेन, फ्रास, इटली, डेनमार्क, हालैण्ड, पुर्तगाल, बेल्जियम, लक्जमबर्ग और नार्वे आदि देशो ने साम्यवाद के विरुद्ध एक सैनिक सगठन बनाया है जिसे उत्तरी एटलांटिक सधि संघ (N A T O) कहा जाता है। इस सघ का उद्देश्य साम्यवाद का विरोध करना है और उसके प्रसार को रोकना है। पश्चिमी देशो ने यह सगठन रूस के विरुद्ध बनाया है। रूस ने इसके उत्तर मे पूर्वी यूरोप के देशो का एक सगठन बनाया है जिसे "वारसा पैक्ट" कहा जाता है। अमेरिका एशिया मे साम्यवाद के प्रसार को रोकने के लिये पिछड़े हुए देशों को आर्थिक सहायता दे रहा है। उसने ईरान, ईराक और तुर्की के साथ बगदाद पैक्ट कर रखा है, ताकि वहा पर साम्यवाद का प्रसार नही हो सके। इन सधियो के कारण गुट बन्दियो ने उग्र रूप धारण कर लिया है। इसीलिये सयुक्त राष्ट्रसघ को किसी भी समस्या को सुलझाने मे काफी कठिनाइयो का सामना करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त विश्व के बड़े राष्ट्रों को संघ के सिद्धान्तो में विश्वास नही है। इसलिये सघ अपने उद्देश्य मे सफल नहीं हो पा रहा है। शीत युद्ध से विश्व की शांति भग होने का हमेशा भय रहता है। सघ आज तक कई परतंत्र राष्ट्रो को स्वतन्त्रता नही दिलवा सका है। यह सब उसकी असफलता का प्रतीक है।

2. संघ मे पाश्चात्य देशो का बहुमत होने के कारण वह अपने उद्देश्य में सफल नही हो पा रहा है। इसमे पूर्वी गुट की अपेक्षा पश्चिमी गुट अधिक शक्तिशाली है।

3. इस सघ का स्वरूप भी बड़े राष्ट्रो की विजय का प्रतीक है। किसी भी नये राष्ट्र को संघ का सदस्य बनाने के लिये सुरक्षा परिषद् की स्वीकृति आवश्यक हैं। सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्य, जो विश्व के बड़े-बड़े राष्ट्र हैं, अपने स्वार्थ

को ध्यान में रखते हुए इसकी स्वीकृति या अस्वीकृति देते हैं। यह संघ का एक बहुत बड़ा दोष है।

4. संघ के पास स्वयं की अन्तर्राष्ट्रीय सेना नहीं है। यद्यपि वह आवश्यकता पड़ने पर सदस्य राष्ट्रों से सेना भेजने के लिये कह सकता है लेकिन सदस्य राष्ट्र सेना भेजने के लिये बाध्य नहीं है। वे इसके लिये इन्कार भी कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त सदस्य राष्ट्र अपने व्यक्तिगत हितों की पूर्ति हेतु ही सेना भेजते हैं। यह संघ के भविष्य के लिये शुभ लक्षण नहीं हैं। संघ के पास सेना नहीं होने से उसे सदस्य राष्ट्रों पर निर्भर रहना पड़ता है। इस कारण संघ को अपने आदेशों का पालन करवाने के लिये काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इसलिये संघ के पास स्वयं की एक शक्तिशाली स्थायी सेना होनी चाहिये ताकि वह अपने निर्णयों का उल्लंघन करने वाले राष्ट्र के विरुद्ध उसका उपयोग कर सके।

5. सुरक्षा परिषद् के पांच स्थायी सदस्य राष्ट्रों को वीटो का अधिकार प्राप्त है। जबकि अस्थाई सदस्यों को ऐसा कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। इस प्रकार एक स्थायी सदस्य अन्य कई अस्थायी सदस्यों से अधिक शक्तिशाली है। एक भी स्थायी सदस्य यदि किसी भी प्रस्ताव का विरोध करे तो वह प्रस्ताव पास नहीं हो सकता है। इससे संघ को काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। संघ वीटो के कारण अशक्त है। इसका पिछला इतिहास इस बात की पुष्टि करता है कि स्थायी सदस्यों ने अन्तर्राष्ट्रीय हितों के विरुद्ध अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिये वीटो का अधिकाधिक प्रयोग किया है। इस प्रकार परिषद् के स्थायी सदस्य वीटो का दुरुपयोग करते हैं।

6. सदस्य राष्ट्रों में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की भावना का अभाव होने के कारण संयुक्त राष्ट्रसंघ अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में पूर्ण रूप से सफल नहीं हो पा रहा है। सदस्य राष्ट्रों का संघ के सिद्धान्तों में विश्वास नहीं है। इसलिये वे एक दूसरे को अविश्वास की दृष्टि से देखते हैं। इसके अतिरिक्त सदस्य राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय हितों के स्थान पर राष्ट्रीय हितों को अधिक महत्व देते हैं। प्रत्येक सदस्य राष्ट्र अपनी शक्ति पर विश्वास करता है। इसलिये विश्व के सभी राष्ट्र अपनी सैनिक शक्ति में वृद्धि कर रहे हैं और विश्व को अशान्ति के मुख में ढकेल रहे हैं।

7. संयुक्त राष्ट्रसंघ महाशक्तियों के संघर्ष का अखाड़ा बना हुआ है। आज विश्व की महान शक्तियों में एक दूसरे के प्रति शंका, भय और अविश्वास की भावनाएँ व्याप्त हैं। संघ के समक्ष प्रस्तुत की जाने वाली प्रत्येक समस्या पर वे मानवीय हितों के स्थान पर अपने व्यक्तिगत हितों को ध्यान में रखते हुए उसे हल करने का प्रयास करते हैं। इससे संघ को महाशक्तियों का सहयोग नहीं मिल पाता है।

8. संयुक्त राष्ट्र की असफलता का एक कारण यह है कि उसे सदस्य राष्ट्रों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार प्राप्त नहीं है। आन्तरिक हस्त-

क्षेप की कोई स्पष्ट परिभाषा चार्टर में नहीं दी गई है इसलिये बहुत से देश इस धारा का लाभ उठाकर जातीय भेदभाव और आत्म निर्णय सम्बन्धी प्रश्नों को भी आन्तरिक मामला मान लेते हैं और संघ के आदेशों का उल्लंघन करते रहते हैं।

9. संघ की असफलता का एक कारण यह है कि विश्व के बहुत से राष्ट्र इस सघ के सदस्य नहीं है। जैसे जर्मनी, कोरिया और वियतनाम अभी तक संघ के सदस्य नहीं बन पाये हैं। साम्यवादी चीन को काफी वर्षों पश्चात् सघ का सदस्य बनाया गया था। इस प्रकार सभी राष्ट्रों के लिये संघ के द्वार खुले नही होने के कारण उसे असफलता का सामना करना पड़ रहा है।

10 संघ को अपने खर्चों के लिये सदस्य राष्ट्रों के आर्थिक अनुदान पर निर्भर रहना भी उसकी असफलता का एक कारण है। जब तक सदस्य राष्ट्रों की आकांक्षाओं और राष्ट्रीय हितों के अनुकूल कार्य होता रहता है, तब तक वे संघ को आर्थिक सहायता देते रहते हैं। कई बार जब संघ बडी शक्तियों की इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य करता है तो वे संघ के कार्यों को प्रभावित करने के लिये उसको आर्थिक सहायता देना बन्द कर देते हैं।

यद्यपि सघ मे अनेक दोष हैं फिर भी इस सत्यता को मानने से इन्कार नही किया जा सकता कि सघ को अब तक कई युद्धो को रोकने मे और उन्हें सीमित करने पर बहुत अधिक सफलता प्राप्त हुई है। इसने शांति और सुरक्षा बनाये रखने के लिये हर सम्भव प्रयास किया है। संघ विश्व शांति के लिये एक उपयोगी संस्था है, इस बात से इन्कार नही किया जा सकता।